बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का
रहस्यात्मक परिशीलन

सम्बोधिका

पूज्या प्रवर्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा.

परम विदुषी शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

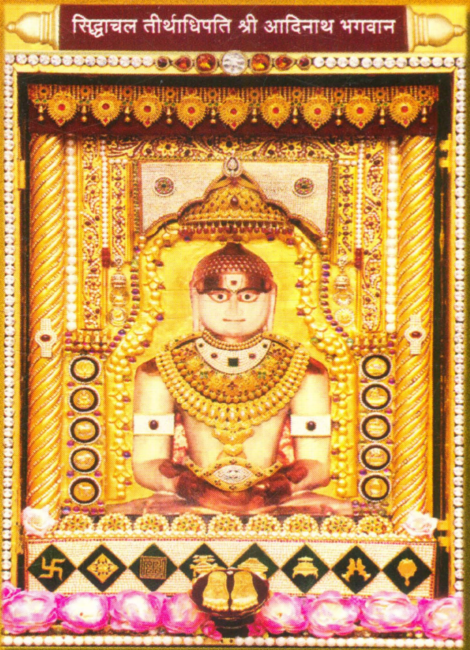

श्री जिनदत्तसूरि अजमेर दादाबाड़ी

श्री मणिधारी जिनचन्द्रसूरि दादाबाड़ी (दिल्ली)

श्री जिनकुशलसूरि मालपुरा दादाबाड़ी (जयपुर)

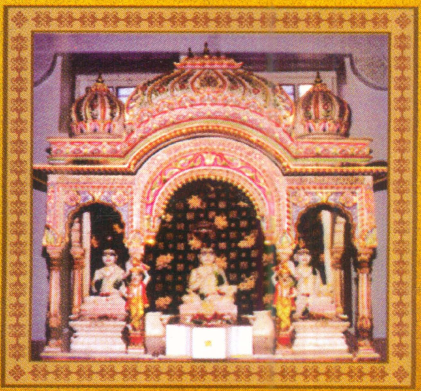

श्री जिनचन्द्रसूरि बिलाडा दादाबाड़ी (जोधपुर)

बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक परिशीलन

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-19

2012-13

R.J. 241 / 2007

णाणस्स सारमायारो

शोधार्थी
डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

निर्देशक
डॉ. सागरमल जैन

जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय
लाडनूं-341306 (राज.)

बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक परिशीलन

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-19

णाणस्स सारमायारो

स्वप्न शिल्पी

आगम मर्मज्ञा प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.

संयम श्रेष्ठा पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

मूर्त्त शिल्पी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

(विधि प्रभा)

शोध शिल्पी

डॉ. सागरमल जैन

बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक परिशीलन

कृपा पुंज : पूज्य आचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागर सूरीश्वरजी म.सा.
मंगल पुंज : पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.
आनन्द पुंज : आगमज्योति प्रवर्तिनी महोदया पूज्या सज्जन श्रीजी म.सा.
प्रेरणा पुंज : पूज्य गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.
वात्सल्य पुंज : गुर्वाज्ञा निमग्ना पूज्य प्रियदर्शना श्रीजी म.सा.
स्नेह पुंज : पूज्य दिव्यदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य तत्वदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य सम्यक्दर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य शुभदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य मुदितप्रज्ञाश्रीजी म.सा., पूज्य शीलगुणाश्रीजी म.सा., सुयोग्या कनकप्रभाजी, सुयोग्या श्रुतदर्शनाजी सुयोग्या संयमप्रज्ञाजी आदि भगिनी मण्डल
शोधकर्त्री : साध्वी सौम्यगुणाश्री (विधिप्रभा)
ज्ञान वृष्टि : डॉ. सागरमल जैन
प्रकाशक :
- प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड, शाजापुर-465001
  email : sagarmal.jain@gmail.com
- सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
  बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड, पालीताणा-364270

प्रथम संस्करण : सन् 2014
प्रतियाँ : 1000
सहयोग राशि : ₹ 150.00
(पुन: प्रकाशनार्थ)
कम्पोज : विमल चन्द्र मिश्र, वाराणसी
कॅवर सेटिंग : शम्भू भट्टाचार्य, कोलकाता
मुद्रक : Antartica Press, Kolkata
ISBN : 978-81-910801-6-2 (XIX)
© All rights reserved by Sajjan Mani Granthmala.

प्राप्ति स्थान

1. श्री सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड,
पो. पालीताणा-364270 (सौराष्ट्र)
फोन : 02848-253701

2. श्री कान्तिलालजी मुकीम
श्री जिनरंगसूरि पौशाल, आड़ी बांस
तल्ला गली, 31/A, पो. कोलकाता-7
मो. 98300-14736

3. श्री भाईसा साहित्य प्रकाशन
M.V. Building, Ist Floor
Hanuman Road, PO : VAPI
Dist. : Valsad-396191 (Gujrat)
मो. 98255-09596

4. पार्श्वनाथ विद्यापीठ
I.T.I. रोड, करौंदी वाराणसी-5 (यू.पी.)
मो. 09450546617

5. डॉ. सागरमलजी जैन
प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड
पो. शाजापुर-465001 (म.प्र.)
मो. 94248-76545
फोन : 07364-222218

6. श्री आदिनाथ जैन श्वेताम्बर
तीर्थ, कैवल्यधाम
पो. कुम्हारी-490042
जिला- दुर्ग (छ.ग.)
मो. 98271-44296
फोन : 07821-247225

7. श्री धर्मनाथ जैन मन्दिर
84, अमन कोविल स्ट्रीट
कोण्डी थोप, पो. चेन्नई-79 (T.N.)
फोन : 25207936,
044-25207875

8. श्री जिनकुशलसूरि जैन दादावाडी,
महावीर नगर, केम्प रोड
पो. मालेगाँव
जिला- नासिक (महा.)
मो. 9422270223

9. श्री सुनीलजी बोथरा
टूल्स एण्ड हार्डवेयर,
संजय गांधी चौक, स्टेशन रोड
पो. रायपुर (छ.ग.)
फोन : 94252-06183

10. श्री पदमचन्दजी चौधरी
शिवजीराम भवन, M.S.B. का रास्ता,
जौहरी बाजार
पो. जयपुर-302003
मो. 9414075821, 9887390000

11. श्री विजयराजजी डोसी
जिनकुशल सूरि दादाबाड़ी
89/90 गोविंदप्पा रोड
बसवनगुडी, पो. बैंगलोर (कर्ना.)
मो. 093437-31869

संपर्क सूत्र

श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत
9331032777
श्री रिखबचन्दजी झाड़चूर
9820022641
श्री नवीनजी झाड़चूर
9323105863
श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख
8719950000
श्री जिनेन्द्र बैद
9835564040
श्री पन्नाचन्दजी दूगड़
9831105908

भावार्पण

एकता के सूत्र में जिसने
सकल विश्व को पिरोया।
हिंसा के आंधी तूफान पर
मैत्री बांध लगाया।।
भौतिकवाद और तृष्णा के
परिणामों का दर्शन करवाया।
अंगुलीमाल और आनन्द को
सत्य का पथ दिखलाया।।

ऐसे
विश्व विख्यात, बौद्ध परम्परा के संस्थापक,
श्रमण धर्म के संवाहक
भगवान बुद्ध के सिद्धांतों को
सादर समर्पित

सज्जन हृदयगत

No Time Busy Life की आधुनिक संस्कृति में

हर कोई चाहता है...

शारीरिक स्वस्थता पर भोजन में नहीं पौष्टिकता

मुखमंडल की सुंदरता पर विचारों में नहीं दिव्यता

वैचारिक स्थिरता पर जीवन में नहीं व्यवस्था

आज चारों तरफ फैल रहा है...

कदम-कदम पर यांत्रिक एवं वैचारिक प्रदूषण

शक्ति प्रदर्शन के लिए हो रहा है परमाणु परीक्षण

प्रगति के नाम पर हो रहा है अपनों से ही Competition

चाहे घर हो या Office

ठेला हो या उड़न खटोला

पाठशाला हो या पाकशाला

व्यापार हो या व्यवहार

हर क्षेत्र में अपेक्षित है साहस और सफलता

शारीरिक निरोगता, मानसिक स्वस्थता, वैचारिक शांतता

आत्मिक स्थिरता, पारिवारिक एकता, सामाजिक शालीनता

वाणी में मृदुता, भावों में निर्मलता, जीवन में धैर्यता

जिसका सरलतम उपाय बताया है

सभी धार्मिक ग्रन्थों ने

वैज्ञानिक अनुसंधानों ने

Fitness संस्थानों ने

उसे आपके समक्ष रखने का

एक हार्दिक प्रयास....

हार्दिक अनुमोदन

मोकलसर (मरुधर) हॉल बेंगलोर निवासी

जिन शासन के अनमोल रत्न

मोकलसर के भामाशाह

मिलनसार स्वभावी, समन्वय प्रेमी

गुरु भक्त

श्री तेजराजजी गोलछा परिवार

ज्ञान उपवन के महकते पुष्प
श्री तेजराजजी गोलछा, बैंगलोर

भारत विविधताओं से परिपूर्ण देश है। चाहे यहाँ के धर्म सम्प्रदाय हो, चाहे प्रकृति, चाहे भाषा या रहन-सहन। हर क्षेत्र में यहाँ वैविध्य दिखाई देता है। यहाँ की प्राकृतिक संरचना ऐसी है कि जहाँ सहारा के रेगिस्तान हैं तो Switzerlant और Canada से ठंडे प्रदेश भी। प्राकृतिक सौंदर्य का ऐसा ही अनुपम उदाहरण है फूलों की नगरी बेंगलोर।

यहाँ पर प्रकृति की सुंदरता का दर्शन ही नहीं होता अपितु धर्म और विज्ञान का भी वर्चस्व दिखाई देता है। यहाँ की मिट्टी में ऐसे कई समन्वित प्रज्ञा पुरुष भी दिखाई देते हैं उनमें एक विरल व्यक्तित्व के धनी हैं मोकलसर निवासी श्री तेजराजजी गोलेछा।

आप में वैचारिक प्रौढ़ता, दीर्घ दर्शिता, अपार दानवीरता, उदारता के साथ-साथ शासन समर्पण एवं गुरु निष्ठा का भी दिग्दर्शन होता है। व्यावसायिक क्षेत्र में आप उच्च शिखर पर शीर्षस्थ हैं तो धार्मिक एवं सामाजिक संस्थानों में आप अनेक पदों को शोभित कर रहे हैं। आपको इस युग के भामाशाह के रूप में जाना जाता है।

मूलत: श्री तेजराजजी गोलेछा का जन्म मोकलसर में हुआ। वसुधा के समान धीर, गंभीर एवं धर्म स्नेही मातुश्री ने आपको वीर माता के समान सत्संस्कारों से नवाजा। पिता श्री पुखराजजी का नाम समाज के वरिष्ठ श्रावकों में जाना जाता है। आपका चार भाईयों का परिवार है। चारों भाइयों में राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न जैसा प्रेम परिलक्षित होता है। आप सभी में ज्येष्ठ हैं परन्तु छोटे भाईयों को सदैव समकक्ष स्थान एवं सम्मान देते हैं।

पूज्य उपाध्याय भगवन्त श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. एवं विदुषी साध्वीवर्य्या श्री हेमप्रभा श्रीजी म.सा. के प्रति आप विशेष रूप से श्रद्धान्वित हैं। उन्हीं के सद्बोध द्वारा आपका धर्म मार्ग पर आरोहण हुआ और आज

आप इस मार्ग पर बहुत आगे बढ़ चुके हैं। सम्पूर्ण भारत वर्ष में आपकी छवि एक दानवीर श्रावक के रूप में प्रसिद्ध है।

आपके परिवार द्वारा अपनी जन्म भूमि मोकलसर से पालीताणा पैदल संघ यात्रा का भव्य आयोजन सहस्राधिक यात्रियों के साथ किया गया। आपके ऊपर लक्ष्मी की वरद कृपा है और आप उसका उपयोग भी मुक्त हस्त से करते हैं। समाज के प्रत्येक कार्य में भी आप सदा आगेवान रहते हैं। आपका भौतिक साधनों से संयुक्त धर्ममय जीवन आज के युवा वर्ग के लिए आदर्श एवं अनुकरणीय है। आपके जीवन के बारे में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि–

कुबेर धनवृष्टि करता तुम पर, दुर्गा शक्ति देती हर्षा
शारदा की दिव्य कृपा से, बुद्धि की भी है अमी वर्षा
गुरुजनों का वरदहस्त है, मात-पिता का मंगल आशीष
धर्म ज्योति को जागृत रखते, तेज हृदय में अहर्निश ।।

पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. के सन् 2002 के बैंगलोर चातुर्मास के दौरान आपका उनसे आत्मीय परिचय हुआ। साध्वी सौम्यगुणाजी द्वारा करवाए गए सरस्वती अनुष्ठान से आप अत्यन्त प्रभावित हुए एवं तभी से आपका उनके प्रति विशेष लगाव रहा। श्रेष्ठीवर्य्य श्री विजयराजजी डोसी के माध्यम से आपको साध्वीजी के साहित्य के विषय में ज्ञात हुआ तब आपने पुस्तक प्रकाशन की रुचि अभिव्यक की।

सज्जनमणि ग्रन्थमाला आपके भावों की अनुमोदना करता है। आप इसी तरह धर्म मार्ग पर गतिशील रहें यही मंगलकामना।

●

सम्पादकीय

मुद्रा विज्ञान पंच महाभूतों पर आश्रित सबसे प्राचीन एवं त्रिकाल प्रासंगिक महाविज्ञान है। भारतीय ऋषि-महर्षियों की वैज्ञानिकता एवं विलक्षणता का ज्वलंत प्रमाण है। ध्यान, आसन, प्राणायाम आदि प्राकृतिक योग साधनाएँ सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति की ही देन है। मुद्रा भी इन्हीं योग साधनाओं का एक प्रकार है।

मुद्रा अर्थात Actin या अंग संचालन की एक विशेष क्रिया जिसके द्वारा हाव-भाव प्रदर्शित किए जाते हैं। जब से इस सृष्टि में जीव हैं तभी से मुद्रा विज्ञान का भी अस्तित्व है। वाणी से पहले भाव अभिव्यक्ति का साधन मुद्रा ही बनती है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि उसके अन्त:करण में जैसे भाव होते हैं वैसी ही अभिव्यक्ति उसके मन, वचन, काया से होने लगती है। उदा. जब हमें किसी पर स्नेह आ रहा हो तो सहजतया मस्तक पर हाथ चला जाता है। क्रोध आ रहा हो तो आँखे लाल हो जाती है एवं शरीर तन जाता है। अभिमान का भाव आने पर कन्धे तन जाते हैं। पूर्व काल में चित्र एवं सांकेतिक भाषा का प्रयोग एक प्रकार से मुद्रा योग का ही रूप था। उबासी आने पर चुटकी बजाने के पीछे मुद्रा प्रयोग का एक बहुत बड़ा रहस्य छुपा हुआ था। जब भी उबासी आदि लेते हुए जबड़ा फँस जाए तो अंगूठे और मध्यमा अंगुली द्वारा मुख के आगे चुटकी बजाने से जबड़ा शीघ्र ही ठीक हो जाता है।

मुद्रा मानव के शरीर रूपी यन्त्र की नियन्त्रक तालिकाएँ (Switch) हैं। इन तालिकाओं के द्वारा मनुष्य के शरीर में महत्त्वपूर्ण तात्त्विक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यत्मिक एवं शारीरिक परिवर्तन बिना किसी सहायता के सरलता से लाए जा सकते हैं। मुद्रा प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि किसी भी वर्ग, आयु, लिंग के लोगों द्वारा सहजता पूर्वक सीखी जा सकती है। इसके लिए किसी विशिष्ट सामग्री, सुविधा या वातावरण की आवश्यकता नहीं, व्यक्ति जब चाहे इनका तत्काल प्रयोग कर सकता है। आज रोगों की बढ़ती संख्या तथा Doctor एवं दवाइयों का खर्च आम आदमी के लिए बहुत बड़ी समस्या है। इन परिस्थितियों में मुद्रा प्रयोग एक ब्रह्मास्त्र है।

मुद्रा निर्माण में मुख्य सहयोगी अंग है हाथ। प्रकृति ने जल, अग्नि, वायु आदि पाँचों तत्त्वों को हमारे हाथ में समाहित किया है। मुद्रा प्रयोग के द्वारा इन तत्त्वों का संतुलन किया जाता है।

आध्यात्मिक जगत के उत्थान में भी मुद्रा प्रयोग एक सम्यक मार्ग है। आन्तरिक भावजगत एवं चक्र जागरण में मुद्रा प्रयोग संजीवनी औषधि के रूप में कार्य करता है।

दैविक साधना अथवा देवताओं को आमंत्रित करते हुए उन्हें प्रसन्न करने आदि में भी मुद्रा प्रयोग प्राचीनकाल से देखा जाता है। प्राय: जितने भी धर्म सम्प्रदाय हैं उनमें कुछ मुद्राओं का प्रयोग उनके उत्पत्ति काल से ही प्रचलित है। प्रार्थना आदि के लिए सभी के द्वारा कुछ विशिष्ट मुद्राएँ धारण की जाती है। इस्लाम धर्म में नमाज अदा करते हुए ईसाई लोगों के द्वारा प्रार्थना करते हुए कुछ विशिष्ट मुद्राएँ प्रयोग में ली जाती है। वैदिक परम्परा में देवोपासना से सम्बन्धित एवं बौद्ध परम्परा में भगवान बुद्ध से सम्बन्धित मुद्राएँ विश्व प्रसिद्ध है।

यदि जन साहित्य का अवलोकन करें तो आगम साहित्य में कहीं-कहीं पर कुछ विशिष्ट मुद्राओं का आलेख प्राप्त होता है जैसे प्रतिक्रमण सम्बन्धी मुद्राओं का उल्लेख आवश्यक सूत्र में तो गोदुहासन, खड्गासन आदि का वर्णन भगवान महावीर की साधना कर आचारांग सूत्र में प्राप्त होता है। मध्यकालीन साहित्य की अपेक्षा विविध प्रतिष्ठाकल्प, विधिमार्गप्रपा, आचारदिनकर आदि ग्रन्थ इस विषय में द्रष्टव्य हैं।

साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने विविध-विधानों में मुद्राओं के महत्व को देखते हुए आद्योपरान्त उपलब्ध मुद्राओं का सचित्र वर्णन करते हुए उनके लाभ आदि की प्रामाणिक चर्चा की है। जैन मुद्राओं के साथ नाट्य, बौद्ध, हिन्दू, यौगिक एवं आधुनिक चिकित्सा सम्बन्धी मुद्राओं का वर्णन करके इस कृति को विश्व उपयोगी बनाया है। मुद्राओं का सचित्र वर्णन उसकी प्रयोग विधि को और सहज एवं सरल बनाएगा। सहस्राधिक मुद्राओं का विशद एवं प्रामाणिक यह संकलन विश्व वंदनीय है। प्रथम बार इतनी मुद्राओं को एक साथ प्रस्तुत किया जा रहा हैं।

साध्वी के इस विश्वस्तरीय योगदान के लिए सदियों तक उन्हें याद किया जाएगा। यह कार्य जिन धर्म को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाएगा। मैं सौम्यगुणाश्रीजी के इस कार्य की अंतरमन से सराहना करता हूँ। वे इसी निष्ठा एवं लगन के साथ श्रुत उपासना में संलग्न रहें एवं जिनशासन के श्रुत भण्डार का वर्धन करें यही हार्दिक अभ्यर्थना है।

डॉ. सागरमल जैन
प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर

आशीर्वचन

आज मन अत्यन्त आनंदित है। जिनशासन की बगिया को महकाने एवं उसे विविध रंग-बिरंगे पुष्पों से सुरभित करने का जो स्वप्न हर आचार्य देखा करता है आज वह स्वप्न पूर्णाहुति की सीमा पर पहुँच गया है। खरतरगच्छ की छोटी सी फुलवारी का एक सुविकसित सुयोग्य पुष्प है साध्वी सौम्यगुणाजी, जिसकी महक से आज सम्पूर्ण जगत सुगन्धित हो रहा है।

साध्वीजी के कृतित्व ने साध्वी समाज के योगदान को चिरस्मृत कर दिया है। आर्या चन्दनबाला से लेकर अब तक महावीर के शासन को प्रगतिशील रखने में साध्वी समुदाय का विशेष सहयोग रहा है।

विदुषी साध्वी सौम्यगुणाजी की अध्ययन रसिकता, ज्ञान प्रौढ़ता एवं श्रुत तल्लीनता से जैन समाज अक्षरशः परिचित है। आज वर्षों का दीर्घ परिश्रम जैन समाज के समक्ष 23 खण्डों के रूप में प्रस्तुत हो रहा है।

साध्वीजी ने जैन विधि-विधान के विविध पक्षों को भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से उद्घाटित कर इसकी त्रैकालिक प्रासंगिकता को सुसिद्ध किया है। इन्होंने श्रावक एवं साधु के लिए आचरणीय अनेक विधि-विधानों का ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, समीक्षात्मक, तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए निष्पक्ष दृष्टि से विविध परम्पराओं में प्राप्त इसके स्वरूप को भी स्पष्ट किया है।

साध्वीजी इसी प्रकार जैन श्रुत साहित्य को अपनी कृतियों से रोशन करती रहे एवं अपने ज्ञान गांभीर्य का रसास्वादन सम्पूर्ण जैन समाज को करवाती रहे, यही कामना करता हूँ। अन्य साध्वी मण्डल इनसे प्रेरणा प्राप्त कर अपनी अतुल क्षमता से संघ-समाज को लाभान्वित करें एवं जैन साहित्य की अनुद्घाटित परतों को खोलने का प्रयत्न करें, जिससे आने वाली भावी पीढ़ी जैनागमों के रहस्यों का रसास्वादन कर पाएं। इसी के साथ धर्म से विमुख एवं विश्रृंखलित होता जैन समाज विधि-विधानों के महत्त्व को समझ पाए तथा वर्तमान में फैल रही भ्रान्त

मान्यताएँ एवं आडंबर सम्यक दिशा को प्राप्त कर सकें। पुनश्च मैं साध्वीजी को उनके प्रयासों के लिए साधुवाद देते हुए यह मंगल कामना करता हूँ कि वे इसी प्रकार साहित्य उत्कर्ष के मार्ग पर अग्रसर रहें एवं साहित्यान्वेषियों की प्रेरणा बनें।

आचार्य कैलास सागर सूरि
नाकोड़ा तीर्थ

हर क्रिया की अपनी एक विधि होती है। विधि की उपस्थिति व्यक्ति को मर्यादा भी देती है और उस क्रिया के प्रति संकल्प-बद्ध रहते हुए पुरुषार्थ करने की प्रेरणा भी। यही कारण है कि जिन शासन में हर क्रिया की अपनी एक स्वतंत्र विधि है।

प्राचीन ग्रन्थों में वर्णन उपलब्ध होता है कि भरत महाराजा ने हर श्रावक के गले में सम्यक दर्शन,सम्यक ज्ञान और सम्यक चारित्र रूप त्रिरत्नों की जनोई धारण करवाई थी। कालान्तर में जैन श्रावकों में यह परम्परा विलुप्त हो गई। दिगम्बर श्रावकों में आज भी यह परम्परा गतिमान है।

जिस प्रकार ब्राह्मणों में सोलह संस्कारों की विधि प्रचलित है। ठीक उसी प्रकार जैन ग्रन्थों में भी सोलह संस्कारों की विधि का उल्लेख है। आचार्य श्री वर्धमानसूरि खरतरगच्छ की रुद्रपल्लीय शाखा में हुए पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के विद्वान आचार्य थे। आचारदिनकर नामक ग्रन्थ में इन सोलह संस्कारों का विस्तृत निरूपण किया गया है। हालांकि गहन अध्ययन करने पर मालूम होता है कि आचार्य श्री वर्धमानसूरि पर तत्कालीन ब्राह्मण विधियों का पर्याप्त प्रभाव था, किन्तु स्वतंत्र विधि-ग्रन्थ के हिसाब से उनका यह ग्रन्थ अद्भुत एवं मौलिक है।

साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन गृहस्थ के व्रत ग्रहण संबंधी विधि विधानों पर तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन करके प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। यह बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ साबित होगा, इसमें कोई शंका नहीं है। साध्वी सौम्यगुणाजी सामाजिक दायित्वों में व्यस्त होने पर भी चिंतनशील एवं पुरुषार्थशील हैं। कुछ वर्ष पूर्व में

विधिमार्गप्रपा नामक ग्रन्थ पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर अपनी विद्वत्ता की अनूठी छाप समाज पर छोड़ चुकी हैं।

मैं हार्दिक भावना करता हूँ कि साध्वीजी की अध्ययनशीलता लगातार बढ़ती रहे और वे शासन एवं गच्छ की सेवा में ऐसे रत्न उपस्थित करती रहें।

उपाध्याय श्री मणिप्रभसागर

किसी भी धर्म दर्शन में उपासनाओं का विधान अवश्यमेव होता है। विविध भारतीय धर्म-दर्शनों में आध्यात्मिक उत्कर्ष हेतु अनेक प्रकार से उपासनाएँ बतलाई गई हैं। जीव मात्र के कल्याण की शुभ कामना करने वाले हमारे पूज्य ऋषि मुनियों द्वारा शील-तप-जप आदि अनेक धर्म आराधनाओं का विधान किया गया है।

प्रत्येक उपासना का विधि-क्रम अलग-अलग होता है। साध्वीजी ने जैन विधि विधानों का इतिहास और तत्सम्बन्धी वैविध्यपूर्ण जानकारियाँ इस ग्रन्थ में दी है। ज्ञान उपासिका साध्वी श्री सौम्यगुणा श्रीजी ने खूब मेहनत करके इसका सुन्दर संयोजन किया है।

भव्य जीवों को अपने योग्य विधि-विधानों के बारे में बहुत-सी जानकारियाँ इस ग्रन्थ के द्वारा प्राप्त हो सकती है।

मैं ज्ञान निमग्ना साध्वी श्री सौम्यगुणा श्रीजी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि इन्होंने चतुर्विध संघ के लिए उपयोगी सामग्री से युक्त ग्रन्थों का संपादन किया है।

मैं कामना करता हूँ कि इसके माध्यम से अनेक ज्ञानपिपासु अपना इच्छित लाभ प्राप्त करेंगे।

आचार्य पद्मसागर सूरि

विनयाद्यनेक गुणगण गरीमायमाना विदुषी साध्वी श्री शशिप्रभा श्रीजी एवं सौम्यगुणा श्रीजी आदि सपरिवार सादर अनुवन्दना सुखशाता के साथ।

आप शाता में होंगे। आपकी संयम यात्रा के साथ ज्ञान यात्रा अविरत चल रही होगी।

आप जैन विधि विधानों के विषय में शोध प्रबंध लिख रहे हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई।

ज्ञान का मार्ग अनंत है। इसमें ज्ञानियों के तात्पयर्थि के साथ प्रामाणिकता पूर्ण व्यवहार होना आवश्यक रहेगा।

आप इस कार्य में सुंदर कार्य करके ज्ञानोपासना द्वारा स्वश्रेय प्राप्त करें ऐसी शासन देव से प्रार्थना है।

आचार्य राजशेखर सूरि
भद्रावती तीर्थ

महत्तरा श्रमणीवर्या श्री शशिप्रभाश्री जी
योग अनुवंदना।

आपके द्वारा प्रेषित पत्र प्राप्त हुआ। इसी के साथ 'शोध प्रबन्ध सार' को देखकर ज्ञात हुआ कि आपकी शिष्या साध्वी सौम्यगुणा श्री द्वारा किया गया बृहदस्तरीय शोध कार्य जैन समाज एवं श्रमण-श्रमणी वर्ग हेतु उपयोगी जानकारी का कारण बनेगा।

आपका प्रयास सराहनीय है।

श्रुत भक्ति एवं ज्ञानाराधना स्वपर के आत्म कल्याण का कारण बने यही शुभाशीर्वाद।

आचार्य रत्नाकरसूरि

जो कर रहे स्व-पर उपकार
अन्तर्हृदय से उनको अमृत उद्गार

मानव जीवन का प्रासाद विविधता की बहुविध पृष्ठ भूमियों पर आधृत है। यह न तो सरल सीधा राजमार्ग (Straight like highway) है न पर्वत का सीधा चढ़ाव (ascent) न घाटी का उतार (descent) है अपितु यह सागर की लहर (sea-wave) के समान गतिशील और उतार-चढ़ाव से युक्त है। उसके जीवन की गति सदैव एक जैसी नहीं रहती।

कभी चढ़ाव (Ups) आते हैं तो कभी उतार (Downs) और कभी कोई अवरोध (Speed Breaker) आ जाता है तो कभी कोई (trun) भी आ जाता है। कुछ अवरोध और मोड़ तो इतने खतरनाक (sharp) और प्रबल होते हैं कि मानव की गति-प्रगति और सन्मति लड़खड़ा जाती है, रुक जाती है इन बदलती हुई परिस्थितियों के साथ अनुकूल समायोजन स्थापित करने के लिए जैन दर्शन के आप्त मनीषियों ने प्रमुखतः दो प्रकार के विधि-विधानों का उल्लेख किया है– 1. बाह्य विधि-विधान 2. आन्तरिक विधि-विधान।

बाह्य विधि-विधान के मुख्यतः चार भेद हैं– 1. जातीय विधि-विधान 2. सामाजिक विधि-विधान 3. वैधानिक विधि-विधान 4. धार्मिक विधि-विधान।

1. जातीय विधि-विधान– जाति की समुत्कर्षता के लिए अपनी-अपनी जाति में एक मुखिया या प्रमुख होता है जिसके आदेश को स्वीकार करना प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य है। मुखिया नैतिक जीवन के विकास हेतु उचित-अनुचित विधि-विधान निर्धारित करता है। उन विधि-विधानों का पालन करना ही नैतिक चेतना का मानदण्ड माना जाता है।

2. सामाजिक विधि-विधान– नैतिक जीवन को जीवंत बनाए रखने के लिए समाज अनेकानेक आचार-संहिता का निर्धारण करता है। समाज द्वारा निर्धारित कर्त्तव्यों की आचार-संहिता को ज्यों का त्यों चुपचाप स्वीकार कर लेना ही नैतिक प्रतिमान है। समाज में पीढ़ियों से चले आने वाले सज्जन पुरुषों का अच्छा आचरण या व्यवहार समाज का विधि-विधान कहलाता है। जो इन विधि-विधानों का आचरण करता है, वह पुरुष सत्पुरुष बनने की पात्रता का विकास करता है।

3. वैधानिक विधि-विधान– अनैतिकता-अनाचार जैसी हीन प्रवृत्तियों से मुक्त करवाने हेतु राज सत्ता के द्वारा अनेकविध विधि-विधान बनाए जाते हैं। इन विधि-विधानों के अन्तर्गत 'यह करना उचित है' अथवा 'यह करना चाहिए' आदि तथ्यों का निरूपण रहता है। राज सत्ता द्वारा आदेशित विधि-विधान का पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

इन नियमों का पालन करने से चेतना अशुभ प्रवृत्तियों से अलग रहती है।

4. धार्मिक विधि-विधान– इसमें आप्त पुरुषों के आदेश-निर्देश, विधि-निषेध, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य निर्धारित रहते हैं। जैन दर्शन में "आणाए धम्मो" कहकर इसे स्पष्ट किया गया है। जैनागमों में साधक के लिए जो विधि-विधान या आचार निश्चित किए गये हैं, यदि उनका पालन नहीं किया जाता है तो आप्त के अनुसार यह कर्म अनैतिकता की कोटि में आता है। धार्मिक विधि-विधान जो अर्हत् आदेशानुसार है उसका धर्माचरण करता हुआ वीर साधक अकुतोभय हो जाता है अर्थात वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न हो, वैसा व्यवहार नहीं करता। यही सद्व्यवहार धर्म है तथा यही हमारे कर्मों के नैतिक मूल्यांकन की कसौटी है। तीर्थंकरोपदिष्ट विधि-निषेध मूलक विधानों को नैतिकता एवं अनैतिकता का मानदण्ड माना गया है।

लौकिक एषणाओं से विमुक्त, अरहन्त प्रवाह में विलीन, अप्रमत्त स्वाध्याय रसिका साध्वी रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन वाङ्मय की अनमोल कृति खरतरगच्छाचार्य श्री जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित **विधिमार्गप्रपा** में गुम्फित जाज्वल्यमान विषयों पर अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन को मुख्यतः चार भाग (23 खण्डों) में वर्गीकृत करने का अतुलनीय कार्य किया है। शोध ग्रन्थ के अनुशीलन से यह स्पष्टतः हो जाता है कि साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने चेतना के ऊर्ध्वीकरण हेतु प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में जिन आज्ञा का निरूपण किसी परम्परा के दायरे से नहीं प्रज्ञा की कसौटी पर कस कर किया है। प्रस्तुत कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि हर पंक्ति प्रज्ञा के आलोक से जगमगा रही है। बुद्धिवाद के इस युग में विधि-विधान को एक नव्य-भव्य स्वरूप प्रदान करने का सुन्दर, समीचीन, समुचित प्रयास किया गया है। आत्म पिपासुओं के लिए एवं अनुसन्धित्सुओं के लिए यह श्रुत निधि आत्म सम्मानार्जन, भाव परिष्कार और आन्तरिक औज्ज्वल्य की निष्पत्ति में सहायक सिद्ध होगी।

अल्प समयावधि में साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने जिस प्रमाणिकता एवं दार्शनिकता से जिन वचनों को परम्परा के आग्रह से रिक्त तथा साम्प्रदायिक मान्यताओं के दुराग्रह से मुक्त रखकर सर्वग्राही श्रुत का निष्पादन जैन वाङ्मय के क्षितिज पर नव्य नक्षत्र के रूप में किया है। आप श्रुत साभिरुचि में निरन्तर प्रवहमान बनकर अपने निर्णय, विशुद्ध विचार एवं निर्मल प्रज्ञा के द्वारा सदैव सरल, सरस और सुगम अभिनव ज्ञान रश्मियों को प्रकाशित करती रहें। यही अन्तःकरण आशीर्वाद सह अनेकशः अनुमोदना... अभिनंदन।

जिनमहोदय सागर सूरि चरणरज
मुनि पीयूष सागर

जैन विधि की अनमोल निधि

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि साध्वी डॉ. सौम्यगुणा श्रीजी म.सा. द्वारा "जैन-विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन" इस विषय पर सुविस्तृत शोध प्रबन्ध सम्पादित किया गया है। वस्तुतः किसी भी कार्य या व्यवस्था के सफल निष्पादन में विधि (Procedure) का अप्रतिम महत्त्व है। प्राचीन कालीन संस्कृतियाँ चाहे वह वैदिक हो या श्रमण, इससे अछूती नहीं रही। श्रमण संस्कृति में अग्रगण्य है– जैन संस्कृति। इसमें विहित विविध विधि-विधान वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक जीवन के विकास में अपनी महती भूमिका अदा करते हैं। इसी तथ्य को प्रतिपादित करता है प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध।

इस शोध प्रबन्ध की प्रकाशन वेला में हम साध्वीश्री के कठिन प्रयत्न की आत्मिक अनुमोदना करते हैं। निःसंदेह, जैन विधि की इस अनमोल निधि से श्रावक-श्राविका, श्रमण-श्रमणी, विद्वान-विचारक सभी लाभान्वित होंगे। यह विश्वास करते हैं कि वर्तमान युवा पीढ़ी के लिए भी यह कृति अति प्रासंगिक होगी, क्योंकि इसके माध्यम से उन्हें आचार-पद्धति यानि विधि-विधानों का वैज्ञानिक पक्ष भी ज्ञात होगा और वह अधिक आचार निष्ठ बन सकेगी।

साध्वीश्री इसी प्रकार जिनशासन की सेवा में समर्पित रहकर स्व-पर विकास में उपयोगी बनें, यही मंगलकामना।

मुनि महेन्द्रसागर
1.2.13 भद्रावती

विदुषी आर्या रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन विधि विधानों पर विविध पक्षीय बृहद शोध कार्य संपन्न किया है। चार भागों में विभाजित एवं 23 खण्डों में वर्गीकृत यह विशाल कार्य निःसंदेह अनुमोदनीय, प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय है।

शासन देव से प्रार्थना है कि उनकी बौद्धिक क्षमता में दिन दूगुनी रात चौगुनी वृद्धि हो। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ज्ञान गुण की वृद्धि के साथ आत्म ज्ञान प्राप्ति में सहायक बनें।

यह शोध ग्रन्थ ज्ञान पिपासुओं की पिपासा को शान्त करे, यही मनोहर अभिलाषा।

महत्तरा मनोहर श्री चरणरज
प्रवर्त्तिनी कीर्तिप्रभा श्रीजी

दूध को दही में परिवर्तित
करना सरल है। जामन डालिए
और दही तैयार हो जाता है।
किन्तु, दही से मक्खन निकालना
कठिन है। इसके लिए दही को
मथना पड़ता है। तब कहीं
जाकर मक्खन प्राप्त होता है।
इसी प्रकार अध्ययन एक
अपेक्षा से सरल है, किन्तु
तुलनात्मक अध्ययन कठिन है।
इसके लिए कई शास्त्रों को
मथना पड़ता है।

साध्वी सौम्यगुणा श्री ने जैन
विधि-विधानों पर रचित साहित्य
का मंथन करके एक सुंदर चिंतन
प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया है
वह अत्यंत अनुमोदनीय एवं
प्रशंसनीय है।

शुभकामना व्यक्त
करती हूँ कि यह
शास्त्रमंथन अनेक साधकों
के कर्मबंधन तोड़ने में
सहायक बने।

साध्वी संवेगनिधि

सुश्रावक श्री कान्तिलालजी मुकीम द्वारा शोध प्रबंध सार संप्राप्त हुआ। विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाजी के शोधसार ग्रन्थ को देखकर ही कल्पना होने लगी कि शोध ग्रन्थ कितना विराट्काय होगा। वर्षों के अथक परिश्रम एवं सतत रुचि पूर्वक किए गए कार्य का यह सुफल है।

वैदुष्य सह विशालता इस शोध ग्रन्थ की विशेषता है।

हमारी हार्दिक शुभकामना है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका बहुमुखी विकास हो! जिनशासन के गगन में उनकी प्रतिभा, पवित्रता एवं पुण्य का दिव्यनाद हो। किं बहुना!

साध्वी मणिप्रभा श्री
भद्रावती तीर्थ

मंगल नाद

मुद्रा नाम सुनते ही हमारे सामने प्रतिष्ठा आदि में अथवा साधना आदि में प्रयुक्त कुछ मुद्राएँ उभरने लगती है, परन्तु यह शब्द मात्र वहाँ तक सीमित नहीं है। हमारी दैनिक क्रियाओं में भी मुद्रा का प्रमुख स्थान है क्योंकि जन-जीवन की प्रत्येक अभिव्यक्ति मुद्रा के माध्यम से होती है। यदि विधि-विधान के सन्दर्भ में मुद्रा प्रयोग पर विचार करें तो अब तक प्रचलित मुद्राओं के विषय में ही जानकारी एवं पुस्तकें आदि संप्राप्त है।

साध्वी सौम्यगुणाजी ने मुद्रा विषयक कार्य अत्यन्त बृहद् स्तर पर कई नूतन रहस्यों की उद्‌घाटित करते हुए किया है। इन्होंने जैन परम्परा से सम्बन्धित लगभग 200 मुद्राएँ, 400 बौद्ध मुद्राएँ, हिन्दू और नाट्य परम्परा से सम्बन्धित करीब 400 ऐसे लगभग हजार मुद्राओं पर ऐतिहासिक कार्य किया है। जो विश्व स्तर पर अपना प्रथम स्थान रखता है। यह कार्य समस्त धर्मावलम्बियों के लिए उपयोगी भी बनेगा, क्योंकि इसे साम्प्रदायिक सीमाओं से परे किया गया है। यद्यपि बौद्ध एवं वैदिक परम्परा में इस विषय पर कार्य हुआ है किन्तु वह स्वरूप एवं विवरण तक ही सीमित है, उनकी उपादेयता एवं उपयोगिता आदि के सम्बन्ध में यह प्रथम कार्य है। इसी के साथ साध्वीजी ने सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, मनोवैज्ञानिक आदि के परिप्रेक्ष्य में भी इस विषय पर गहन अध्ययन किया है।

इन मुद्राओं में से भी अभ्यास साध्य, अनभ्यास साध्य मुद्राओं का वर्णन भिन्न-भिन्न साहित्य में प्राप्त मुद्राओं के आधार पर किया गया है। इसकी वर्तमान उपयोगिता दर्शाने हेतु साध्वीजी ने एक्युप्रेशर, चक्र जागरण, तत्त्व संतुलन एवं विभिन्न रोगों पर इनका प्रभाव आदि को परिप्रेक्ष्यों में भी यह कार्य किया है। मुद्राओं का ज्ञान सुगमता से किया जा सके एतदर्थ प्रत्येक मुद्रा का रेखाचित्र दीर्घ परिश्रम एवं अत्यन्त सजगता पूर्वक बनाया गया है।

इस दुरुह कार्य को साध्वीजी ने जिस निष्ठा एवं उदार हृदयता के साथ सम्पन्न किया है। इसके लिए वे सदैव अनुशंसनीय एवं अनुमोदनीय हैं। इनकी बौद्धिक क्षमता का ही परिणाम है कि दो वर्ष जितने लम्बे कार्य को इन्होंने एक वर्ष के भीतर पूर्ण किया है। यद्यपि कई बार हम लोगों ने समय की अल्पता, करते हुए यह कार्य की विराटता एवं दुरुहता को देख जैन परम्परा तक सीमित करने का सुझाव भी दिया परंतु यदि सामग्री एवं जानकारी होते हुए कार्य को आधा अधूरा छोड़ना यह अन्वेषक का लक्षण नहीं है। इसलिए अत्यल्प समय में कठोर श्रम के साथ इस कार्य को सात खण्डों में सम्पन्न किया है। आज मैं सौम्याजी के इस कार्य से स्वयं को ही नहीं अपितु संपूर्ण जैन समाज को गौरवान्वित अनुभव कर रही हूँ।

मैं अन्तर्मन से सौम्याजी की एकाग्रता, कार्य मग्नता, आज्ञाकारिता एवं अप्रमत्तता के लिए इन्हें साधुवाद एवं भविष्य के लिए शुभाशीष प्रदान करती हूँ।

आर्य्या शशिप्रभा श्री

दीक्षा गुरु प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.
एक परिचय

रजताभ रजकणों से रंजित राजस्थान असंख्य कीर्ति गाथाओं का वह रश्मि पुंज है जिसने अपनी आभा के द्वारा संपूर्ण धरा को देदीप्यमान किया है। इतिहास के पन्नों में जिसकी पावन पाण्डुलिपियाँ अंकित है ऐसे रंगीले राजस्थान का विश्रुत नगर है जयपुर। इस जौहरियों की नगरी ने अनेक दिव्य रत्न इस वसुधा को अर्पित किए। उन्हीं में से कोहिनूर बनकर जैन संघ की आभा को दीप्त करने वाला नाम है– पूज्या प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.।

आपश्री इस कलियुग में सतयुग का बोध कराने वाली सहज साधिका थी। चतुर्थ आरे का दिव्य अवतार थी। जयपुर की पुण्य धरा से आपका विशेष सम्बन्ध रहा है। आपके जीवन की अधिकांश महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जैसे– जन्म, विवाह, दीक्षा, देह विलय आदि इसी वसुधा की साक्षी में घटित हुए।

आपका जीवन प्राकृतिक संयोगों का अनुपम उदाहरण था। जैन परम्परा के तेरापंथी आम्नाय में आपका जन्म, स्थानकवासी परम्परा में विवाह एवं मन्दिरमार्गी खरतर परम्परा में प्रव्रज्या सम्पन्न हुई। आपके जीवन का यही त्रिवेणी संगम रत्नत्रय की साधना के रूप में जीवन्त हुआ।

आपका जन्म वैशाखी बुद्ध पूर्णिमा के पर्व दिवस के दिन हुआ। आप उन्हीं के समान तत्त्ववेत्ता, अध्यात्म योगी, प्रज्ञाशील साधक थी। सज्जनता, मधुरता, सरलता, सहजता, संवेदनशीलता, परदु:खकातरता आदि गुण तो आप में जन्मत: परिलक्षित होते थे। इसी कारण आपका नाम सज्जन रखा गया और यही नाम दीक्षा के बाद भी प्रवर्त्तित रहा।

संयम ग्रहण हेतु दीर्घ संघर्ष करने के बावजूद भी आपने विनय, मृदुता, साहस एवं मनोबल डिगने नहीं दिया। अन्तत: 35 वर्ष की आयु में पूज्या प्रवर्त्तिनी ज्ञान श्रीजी म.सा. के चरणों में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीवान परिवार के राजशाही ठाठ में रहने के बाद भी संयमी जीवन का हर छोटा-बड़ा कार्य आप अत्यंत सहजता पूर्वक करती थी। छोटे-बड़े सभी की

सेवा हेतु सदैव तत्पर रहती थी। आपका जीवन सद्गुणों से युक्त विद्वत्ता की दिव्य माला था। आप में विद्यमान गुण शास्त्र की निम्न पंक्तियों को चरितार्थ करते थे-

शीलं परहितासक्ति, रनुत्सेकः क्षमा धृतिः।
अलोभश्चेति विद्यायाः, परिपाकोज्ज्वलं फलः ।।

अर्थात शील, परोपकार, विनय, क्षमा, धैर्य, निर्लोभता आदि विद्या की पूर्णता के उज्ज्वल फल हैं।

अहिंसा, तप साधना, सत्यनिष्ठा, गम्भीरता, विनम्रता एवं विद्वानों के प्रति असीम श्रद्धा उनकी विद्वत्ता की परिधि में शामिल थे। वे केवल पुस्तकें पढ़कर नहीं अपितु उन्हें आचरण में उतार कर महान बनी थी। आपको शब्द और स्वर की साधना का गुण भी सहज उपलब्ध था।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात आप 20 वर्षों तक गुरु एवं गुरु भगिनियों की सेवा में जयपुर रही। तदनन्तर कल्याणक भूमियों की स्पर्शना हेतु पूर्वी एवं उत्तरी भारत की पदयात्रा की। आपश्री ने 65 वर्ष की आयु और उसमें भी ज्येष्ठ महीने की भयंकर गर्मी में सिद्धाचल तीर्थ की नव्वाणु यात्रा कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार आदि क्षेत्रों में धर्म की सरिता प्रवाहित करते हुए भी आप सदैव ज्ञानदान एवं ज्ञानपान में संलग्न रहती थी। इसी कारण लोक परिचय, लोकैषणा, लोकाशंसा आदि से अत्यंत दूर रही।

आपश्री प्रखर वक्ता, श्रेष्ठ साहित्य सर्जिका, तत्त्व चिंतिका, आशु कवयित्री एवं बहुभाषाविद थी। विद्वदवर्ग में आप सर्वोत्तम स्थान रखती थी। हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी आदि अनेक भाषाओं पर आपका सर्वाधिकार था। जैन दर्शन के प्रत्येक विषय का आपको मर्मस्पर्शी ज्ञान था। आप ज्योतिष, व्याकरण, अलंकार, साहित्य, इतिहास, शकुन शास्त्र, योग आदि विषयों की भी परम वेत्ता थी।

उपलब्ध सहस्र रचनाएँ तथा अनुवादित सम्पादित एवं लिखित साहित्य आपकी कवित्व शक्ति और विलक्षण प्रज्ञा को प्रकट करते हैं।

प्रभु दर्शन में तन्मयता, प्रतिपल आत्म रमणता, स्वाध्याय मग्नता, अध्यात्म लीनता, निस्पृहता, अप्रमत्तता, पूज्यों के प्रति लघुता एवं छोटों के

प्रति मृदुता आदि गुण आपश्री में बेजोड़ थे। हठवाद, आग्रह, तर्क-वितर्क, अहंकार, स्वार्थ भावना का आप में लवलेश भी नहीं था। सभी के प्रति समान स्नेह एवं मृदु व्यवहार, निरपेक्षता एवं अंतरंग विरक्तता के कारण आप सर्वजन प्रिय और आदरणीय थी।

आपकी गुण गरिमा से प्रभावित होकर गुरुजनों एवं विद्वानों द्वारा आपको आगम ज्योति, शास्त्र मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, अध्यात्म योगिनी आदि सार्थक पदों से अलंकृत किया गया। वहीं सकल श्री संघ द्वारा आपको साध्वी समुदाय में सर्वोच्च प्रवर्त्तिनी पद से भी विभूषित किया गया।

आपश्री के उदात्त व्यक्तित्व एवं कर्मशील कर्तृत्व से प्रभावित हजारों श्रद्धालुओं की आस्था को 'श्रमणी' अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में लोकार्पित किया गया। खरतरगच्छ परम्परा में अब तक आप ही एक मात्र ऐसी साध्वी हैं जिन पर अभिनन्दन ग्रन्थ लिखा गया है।

आप में समस्त गुण चरम सीमा पर परिलक्षित होते थे। कोई सद्गुण ऐसा नहीं था जिसके दर्शन आप में नहीं होते हो। जिसने आपको देखा वह आपका ही होकर रह गया।

आपके निरपेक्ष, निस्पृह एवं निरासक्त जीवन की पूर्णता जैन एवं जैनेतर दोनों परम्पराओं में मान्य, शाश्वत आराधना तिथि **'मौन एकादशी'** पर्व के दिन हुई। इस पावन तिथि के दिन आपने देह का त्याग कर सदा के लिए मौन धारण कर लिया। आपके इस समाधिमरण को श्रेष्ठ मरण के रूप में सिद्ध करते हुए उपाध्याय मणिप्रभ सागरजी म.सा. ने लिखा है–

महिमा तेरी क्या गाये हम, दिन कैसा स्वीकार किया।
मौन ग्यारस माला जपते, मौन सर्वथा धार लिया
गुरुवर्य्या तुम अमर रहोगी, साधक कभी न मरते हैं।।

आज परम पूज्या संघरत्ना शशिप्रभा श्रीजी म.सा. आपके मंडल का सम्यक संचालन कर रही हैं। यद्यपि आपका विचरण क्षेत्र अल्प रहा परंतु आज आपका नाम दिग्दिगन्त व्याप्त है। आपके नाम स्मरण मात्र से ही हर प्रकार की Tension एवं विपदाएँ दूर हो जाती है।

●

शिक्षा गुरु पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. एक परिचय

'धोरों की धरती' के नाम से विख्यात राजस्थान अगणित यशोगाथाओं का उद्भव स्थल है। इस बहुरत्ना वसुंधरा पर अनेकश: वीर योद्धाओं, परमात्म भक्तों एवं ऋषि-महर्षियों का जन्म हुआ है। इसी रंग-रंगीले राजस्थान की परम पुण्यवंती साधना भूमि है श्री फलौदी। नयन रम्य जिनालय, दादाबाड़ियों एवं स्वाध्याय गुंज से शोभायमान उपाश्रय इसकी ऐतिहासिक धर्म समृद्धि एवं शासन समर्पण के प्रबल प्रतीक हैं। इस मातृभूमि ने अपने उर्वरा से कई अमूल्य रत्न जिनशासन की सेवा में अर्पित किए हैं। चाहे फिर वह साधु-साध्वी के रूप में हो या श्रावक-श्राविका के रूप में। वि.सं. 2001 की भाद्रकृष्णा अमावस्या को धर्मनिष्ठ दानवीर ताराचंदजी एवं सरल स्वभावी बालादेवी गोलेछा के गृहांगण में एक बालिका की किलकारियां गूंज रही थी। अमावस्या के दिन उदित हुई यह किरण भविष्य में जिनशासन की अनुपम किरण बनकर चमकेगी यह कौन जानता था? कहते हैं सज्जनों के सम्पर्क में आने से दुर्जन भी सज्जन बन जाते हैं तब सम्यकदृष्टि जीव तो नि:सन्देह सज्जन का संग मिलने पर स्वयमेव ही महानता को प्राप्त कर लेते हैं।

किरण में तप त्याग और वैराग्य के भाव जन्मजात थे। इधर पारिवारिक संस्कारों ने उसे अधिक उफान दिया। पूर्वोपार्जित सत्संस्कारों का जागरण हुआ और वह भुआ महाराज उपयोग श्रीजी के पथ पर अग्रसर हुई। अपने बाल मन एवं कोमल तन को गुरु चरणों में समर्पित कर 14 वर्ष की अल्पायु में ही किरण एक तेजस्वी सूर्य रश्मि से शीतल शशि के रूप में प्रवर्त्तित हो गई। आचार्य श्री कवीन्द्र सागर सूरीश्वरजी म.सा. की निश्रा में मरूधर ज्योति मणिप्रभा श्रीजी एवं आपकी बड़ी दीक्षा एक साथ सम्पन्न हुई।

इसे पुण्य संयोग कहें या गुरु कृपा की फलश्रुति? आपने 32 वर्ष के गुरु सान्निध्य काल में मात्र एक चातुर्मास गुरुवर्य्याश्री से अलग किया और वह भी पूज्या प्रवर्त्तिनी विचक्षण श्रीजी म.सा. की आज्ञा से। 32 वर्ष की सान्निध्यता में आप कुल 32 महीने भी गुरु सेवा से वंचित नहीं रही। आपके जीवन की यह

विशेषता पूज्यवरों के प्रति सर्वात्मना समर्पण, अगाध सेवा भाव एवं गुरुकुल वास के महत्त्व को इंगित करती है।

आपश्री सरलता, सहजता, सहनशीलता, सहृदयता, विनम्रता, सहिष्णुता, दीर्घदर्शिता आदि अनेक दिव्य गुणों की पुंज हैं। संयम पालन के प्रति आपकी निष्ठा एवं मनोबल की दृढ़ता यह आपके जिन शासन समर्पण की सूचक है। आपका निश्छल, निष्कपट, निर्दम्भ व्यक्तित्व जनमानस में आपकी छवि को चिरस्थापित करता है। आपश्री का बाह्य आचार जितना अनुमोदनीय है, आंतरिक भावों की निर्मलता भी उतनी ही अनुशंसनीय है। आपकी इसी गुणवत्ता ने कई पथ भ्रष्टों को भी धर्माभिमुख किया है। आपका व्यवहार हर वर्ग के एवं हर उम्र के व्यक्तियों के साथ एक समान रहता है। इसी कारण आप आबाल वृद्ध सभी में समादृत हैं। हर कोई बिना किसी संकोच या हिचक के आपके समक्ष अपने मनोभाव अभिव्यक्त कर सकता है।

शास्त्रों में कहा गया है 'सन्त हृदय नवनीत समाना'– आपका हृदय दूसरों के लिए मक्खन के समान कोमल और सहिष्णु है। वहीं इसके विपरीत आप स्वयं के लिए वज्र से भी अधिक कठोर हैं। आपश्री अपने नियमों के प्रति अत्यन्त दृढ़ एवं अतुल मनोबली हैं। आज जीवन के लगभग सत्तर बसंत पार करने के बाद भी आप युवाओं के समान अप्रमत्त, स्फुर्तिमान एवं उत्साही रहती हैं। विहार में आपश्री की गति समस्त साध्वी मंडल से अधिक होती है।

आहार आदि शारीरिक आवश्यकताओं को आपने अल्पायु से ही सीमित एवं नियंत्रित कर रखा है। नित्य एकाशना, पुरिमड्ढ प्रत्याख्यान आदि के प्रति आप अत्यंत चुस्त हैं। जिस प्रकार सिंह अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने हेतु पूर्णत: सचेत एवं तत्पर रहता है वैसे ही आपश्री विषय-कषाय रूपी शत्रुओं का दमन करने में सतत जागरूक रहती हैं। विषय वर्धक अधिकांश विगय जैसे– मिठाई, कढ़ाई, दही आदि का आपके सर्वथा त्याग है।

आपश्री आगम, धर्म दर्शन, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि विविध विषयों की ज्ञाता एवं उनकी अधिकारिणी है। व्यावहारिक स्तर पर भी आपने एम.ए. के समकक्ष दर्शनाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की है। अध्ययन के संस्कार आपको गुरु परम्परा से वंशानुगत रूप में प्राप्त हुए हैं। आपकी निश्रागत गुरु भगिनियों एवं शिष्याओं के अध्ययन, संयम पालन तथा आत्मोकर्ष के प्रति आप सदैव सचेष्ट

रहती हैं। आपश्री एक सफल अनुशास्ता हैं यही वजह है कि आपकी देखरेख में सज्जन मण्डल की फुलवारी उन्नति एवं उत्कर्ष को प्राप्त कर रही हैं।

तप और जप आपके जीवन का अभिन्न अंग है। 'ॐ ह्रीं अर्हं' पद की रटना प्रतिपल आपके रोम-रोम में गुंजायमान रहती है। जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आप तदनुकूल मन:स्थिति बना लेती हैं। आप हमेशा कहती हैं कि

जो-जो देखा वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

आपकी परमात्म भक्ति एवं गुरुदेव के प्रति प्रवर्धमान श्रद्धा दर्शनीय है। आपका आगमानुरूप वर्तन आपको निसन्देह महान पुरुषों की कोटी में उपस्थित करता है। आपश्री एक जन प्रभावी वक्ता एवं सफल शासन सेविका हैं।

आपश्री की प्रेरणा से जिनशासन की शाश्वत परम्परा को अक्षुण्ण रखने में सहयोगी अनेकश: जिनमंदिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार हुआ है। श्रुत साहित्य के संवर्धन में आपश्री के साथ आपकी निश्रारत साध्वी मंडल का भी विशिष्ट योगदान रहा है। अब तक 25-30 पुस्तकों का लेखन-संपादन आपकी प्रेरणा से साध्वी मंडल द्वारा हो चुका है एवं अनेक विषयों पर कार्य अभी भी गतिमान है।

भारत के विविध क्षेत्रों का पद भ्रमण करते हुए आपने अनेक क्षेत्रों में धर्म एवं ज्ञान की ज्योति जागृत की है। राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, छ.ग., यू.पी., बिहार, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, झारखंड, आन्ध्रप्रदेश आदि अनेक प्रान्तों की यात्रा कर आपने उन्हें अपनी पदरज से पवित्र किया है। इन क्षेत्रों में हुए आपके ऐतिहासिक चातुर्मासों की चिरस्मृति सभी के मानस पटल पर सदैव अंकित रहेगी। अन्त में यही कहूँगी-

चिन्तन में जिसके हो क्षमता, वाणी में सहज मधुरता हो।
आचरण में संयम झलके, वह श्रद्धास्पद बन जाता है।
जो अन्तर में ही रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।
जो भीतर में ही भ्रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।।

ऐसी विरल साधिका आर्यारत्न पूज्याश्री के चरण सरोजों में मेरा जीवन सदा भ्रमरवत् गुंजन करता रहे, यही अन्तरकामना।

साध्वी सौम्याजी की शोध यात्रा के स्वर्णिम पल

साध्वी प्रियदर्शनाश्री

आज सौम्यगुणाजी को सफलता के इस उत्तुंग शिखर पर देखकर ऐसा लग रहा है मानो चिर रात्रि के बाद अब यह मनभावन अरुणिम वेला उदित हुई हो। आज इस सफलता के पीछे रहा उनका अथक परिश्रम, अनेकशः बाधाएँ, विषय की दुरूहता एवं दीर्घ प्रयास के विषय में सोचकर ही मन अभिभूत हो जाता है। जिस प्रकार किसान बीज बोने से लेकर फल प्राप्ति तक अनेक प्रकार से स्वयं को तपाता एवं खपाता है और तब जाकर उसे फल की प्राप्ति होती है या फिर जब कोई माता नौ महीने तक गर्भ में बालक को धारण करती है तब उसे मातृत्व सुख की प्राप्ति होती है ठीक उसी प्रकार सौम्यगुणाजी ने भी इस कार्य की सिद्धि हेतु मात्र एक या दो वर्ष नहीं अपितु सत्रह वर्ष तक निरन्तर कठिन साधना की है। इसी साधना की आँच में तपकर आज 23 Volumes के बृहद् रूप में इनका स्वर्णिम कार्य जन ग्राह्य बन रहा है।

आज भी एक-एक घटना मेरे मानस पटल पर फिल्म के रूप में उभर रही है। ऐसा लगता है मानो अभी की ही बात हो, सौम्याजी को हमारे साथ रहते हुए 28 वर्ष होने जा रहे हैं और इन वर्षों में इन्हें एक सुन्दर सलोनी गुड़िया से एक विदुषी शासन प्रभाविका, गूढ़ान्वेषी साधिका बनते देखा है। एक पाँचवीं पढ़ी हुई लड़की आज D.LIt की पदवी से विभूषित होने वाली है। वह भी कोई सामान्य D.Lit. नहीं, 22-23 भागों में किया गया एक बृहद् कार्य और जिसका एक-एक भाग एक शोध प्रबन्ध (Thesis) के समान है। अब तक शायद ही किसी भी शोधार्थी ने डी.लिट् कार्य इतने अधिक Volumes में सम्पन्न किया होगा। लाडनूं विश्वविद्यालय की प्रथम डी.लिट्. शोधार्थी सौम्याजी के इस कार्य ने विश्वविद्यालय के ऐतिहासिक कार्यों में स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ते हुए श्रेष्ठतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

सत्रह वर्ष पहले हम लोग पूज्या गुरुवर्य्याश्री के साथ पूर्वी क्षेत्र की स्पर्शना कर रहे थे। बनारस में डॉ. सागरमलजी द्वारा आगम ग्रन्थों के गूढ़ रहस्यों को जानने

का यह एक स्वर्णिम अवसर था अत: सन् 1995 में गुर्वाज्ञा से मैं, सौम्याजी एवं नूतन दीक्षित साध्वीजी ने भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी की ओर अपने कदम बढ़ाए। शिखरजी आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए हम लोग धर्म नगरी काशी पहुँचे।

वाराणसी स्थित पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वहाँ के मन्दिरों एवं पंडितों के मंत्रनाद से दूर नीरव वातावरण में अद्भुत शांति का अनुभव करवा रहा था। अध्ययन हेतु मनोज्ञ एवं अनुकूल स्थान था। संयोगवश मरूधर ज्योति पूज्या मणिप्रभा श्रीजी म.सा. की निश्रावर्ती, मेरी बचपन की सखी पूज्या विद्युतप्रभा श्रीजी आदि भी अध्ययनार्थ वहाँ पधारी थी।

डॉ. सागरमलजी से विचार विमर्श करने के पश्चात आचार्य जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा पर शोध करने का निर्णय लिया गया। सन् 1973 में पूज्य गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. बंगाल की भूमि पर पधारी थी। स्वाध्याय रसिक आगमज्ञ श्री अगरचन्दजी नाहटा, श्री भँवलालजी नाहटा से पूज्याश्री की पारस्परिक स्वाध्याय चर्चा चलती रहती थी। एकदा पूज्याश्री ने कहा कि मेरी हार्दिक इच्छा है जिनप्रभसूरिकृत विधिमार्गप्रपा आदि ग्रन्थों का अनुवाद हो। पूज्याश्री योग-संयोग वश उसका अनुवाद नहीं कर पाई। विषय का चयन करते समय मुझे गुरुवर्य्या श्री की वही इच्छा याद आई या फिर यह कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सौम्याजी की योग्यता देखते हुए शायद पूज्याश्री ने ही मुझे इसकी अन्तस् प्रेरणा दी।

यद्यपि यह ग्रंथ विधि-विधान के क्षेत्र में बहु उपयोगी था परन्तु प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में आबद्ध होने के कारण उसका हिन्दी अनुवाद करना आवश्यक हो गया। सौम्याजी के शोध की कठिन परीक्षाएँ यहीं से प्रारम्भ हो गई। उन्होंने सर्वप्रथम प्राकृत व्याकरण का ज्ञान किया। तत्पश्चात दिन-रात एक कर पाँच महीनों में ही इस कठिन ग्रंथ का अनुवाद अपनी क्षमता अनुसार कर डाला। लेकिन यहीं पर समस्याएँ समाप्त नहीं हुई। सौम्यगुणाजी जो कि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से दर्शनाचार्य (एम.ए.) थीं, बनारस में पी-एच.डी. हेतु आवेदन नहीं कर सकती थी। जिस लक्ष्य को लेकर आए थे वह कार्य पूर्ण नहीं होने से मन थोड़ा विचलित हुआ परन्तु विश्वविद्यालय के नियमों के कारण हम कुछ भी करने में असमर्थ थे अत: पूज्य गुरुवर्य्याश्री के चरणों में पहुँचने हेतु पुन: कलकत्ता की ओर प्रयाण किया। हमारा वह चातुर्मास संघ आग्रह के कारण पुन: कलकत्ता नगरी

में हुआ। वहाँ से चातुर्मास पूर्णकर धर्मानुरागी जनों को शीघ्र आने का आश्वासन देते हुए पूज्याश्री के साथ जयपुर की ओर विहार किया। जयपुर में आगम ज्योति, पूज्या गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की समाधि स्थली मोहनबाड़ी में मूर्ति प्रतिष्ठा का आयोजन था अत: उग्र विहार कर हम लोग जयपुर पहुँचें। बहुत ही सुन्दर और भव्य रूप में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जयपुर संघ के अति आग्रह से पूज्याश्री एवं सौम्यगुणाजी का चातुर्मास जयपुर ही हुआ। जयपुर का स्वाध्यायी श्रावक वर्ग सौम्याजी से काफी प्रभावित था। यद्यपि बनारस में पी-एच.डी. नहीं हो पाई थी किन्तु सौम्याजी का अध्ययन आंशिक रूप में चालू था। उसी बीच डॉ. सागरमलजी के निर्देशानुसार जयपुर संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रो. डॉ. शीतलप्रसाद जैन के मार्गदर्शन में धर्मानुरागी श्री नवरतनमलजी श्रीमाल के डेढ़ वर्ष के अथक प्रयास से उनका रजिस्ट्रेशन हुआ। सामाजिक जिम्मेदारियों को संभालते हुए उन्होंने अपने कार्य को गति दी।

पी-एच.डी. का कार्य प्रारम्भ तो कर लिया परन्तु साधु जीवन की मर्यादा, विषय की दुरूहता एवं शोध आदि के विषय में अनुभवहीनता से कई बाधाएँ उत्पन्न होती रही। निर्देशक महोदय दिगम्बर परम्परा के होने से श्वेताम्बर विधि-विधानों के विषय में उनसे भी विशेष सहयोग मिलना मुश्किल था अत: सौम्याजी को जो करना था अपने बलबूते पर ही करना था। यह सौम्याजी ही थी जिन्होंने इतनी बाधाओं और रूकावटों को पार कर इस शोध कार्य को अंजाम दिया।

जयपुर के पश्चात कुशल गुरुदेव की प्रत्यक्ष स्थली मालपुरा में चातुर्मास हुआ। वहाँ पर लाइब्रेरी आदि की असुविधाओं के बीच भी उन्होंने अपने कार्य को पूर्ण करने का प्रयास किया। तदनन्तर जयपुर में एक महीना रहकर महोपाध्याय विनयसागरजी से इसका करेक्शन करवाया तथा कुछ सामग्री संशोधन हेतु डॉ. सागरमलजी को भेजी। यहाँ तक तो उनकी कार्य गति अच्छी रही किन्तु इसके बाद लम्बे विहार होने से उनका कार्य प्राय: अवरूद्ध हो गया। फिर अगला चातुर्मास पालीताणा हुआ। वहाँ पर आने वाले यात्रीगणों की भीड़ और तप साधना-आराधना में अध्ययन नहींवत ही हो पाया। पुन: साधु जीवन के नियमानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर कदम बढ़ाए। रायपुर (छ.ग.) जाने हेतु लम्बे विहारों के चलते वे अपने कार्य को किंचित भी संपादित नहीं कर पा रही थी। रायपुर पहुँचते-पहुँचते Registration की अवधि अन्तिम चरण तक पहुँच चुकी थी अत: चातुर्मास के पश्चात मुदितप्रज्ञा श्रीजी और इन्हें रायपुर छोड़कर शेष लोगों ने अन्य आसपास

के क्षेत्रों की स्पर्शना की। रायपुर निवासी सुनीलजी बोथरा के सहयोग से दो-तीन मास में पूरे काम को शोध प्रबन्ध का रूप देकर उसे सन् 2001 में राजस्थान विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया। येन केन प्रकारेण इस शोध कार्य को इन्होंने स्वयं की हिम्मत से पूर्ण कर ही दिया।

तदनन्तर 2002 का बैंगलोर चातुर्मास सम्पन्न कर मालेगाँव पहुँचे। वहाँ पर संघ के प्रयासों से चातुर्मास के अन्तिम दिन उनका शोध वायवा संपन्न हुआ और उन्हें कुछ ही समय में पी-एच.डी. की पदवी विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई। सन् 1995 बनारस में प्रारम्भ हुआ कार्य सन् 2003 मालेगाँव में पूर्ण हुआ। इस कालावधि के दौरान समस्त संघों को उनकी पी-एच.डी. के विषय में ज्ञात हो चुका था और विषय भी रुचिकर था अत: उसे प्रकाशित करने हेतु विविध संघों से आग्रह होने लगा। इसी आग्रह ने उनके शोध को एक नया मोड़ दिया। सौम्याजी कहती 'मेरे पास बताने को बहुत कुछ है, परन्तु वह प्रकाशन योग्य नहीं है' और सही मायने में शोध प्रबन्ध सामान्य जनता के लिए उतना सुगम नहीं होता अत: गुरुवर्य्या श्री के पालीताना चातुर्मास के दौरान विधिमार्गप्रपा के अर्थ का संशोधन एवं अवान्तर विधियों पर ठोस कार्य करने हेतु वे अहमदाबाद पहुँची। इसी दौरान पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. ने भी इस कार्य का पूर्ण सर्वेक्षण कर उसमें अपेक्षित सुधार करवाए। तदनन्तर L.D. Institute के प्रोफेसर जितेन्द्र भाई, फिर कोबा लाइब्रेरी से मनोज भाई सभी के सहयोग से विधिमार्गप्रपा के अर्थ में रही त्रुटियों को सुधारते हुए उसे नवीन रूप दिया।

इसी अध्ययन काल के दौरान जब वे कोबा में विधि ग्रन्थों का आलोडन कर रही थी तब डॉ. सागरमलजी का बायपास सर्जरी हेतु वहाँ पदार्पण हुआ। सौम्याजी को वहाँ अध्ययनरत देखकर बोले– "आप तो हमारी विद्यार्थी हो, यहाँ क्या कर रही हो? शाजापुर पधारिए मैं यथासंभव हर सहयोग देने का प्रयास करूँगा।" यद्यपि विधि विधान डॉ. सागरमलजी का विषय नहीं था परन्तु उनकी ज्ञान प्रौढ़ता एवं अनुभव शीलता सौम्याजी को सही दिशा देने हेतु पर्याप्त थी। वहाँ से विधिमार्गप्रपा का नवीनीकरण कर वे गुरुवर्य्याश्री के साथ मुम्बई चातुर्मासार्थ गईं। महावीर स्वामी देरासर पायधुनी से विधिप्रपा का प्रकाशन बहुत ही सुन्दर रूप में हुआ।

किसी भी कार्य में बार-बार बाधाएँ आए तो उत्साह एवं प्रवाह स्वत: मन्द हो जाता है, परन्तु सौम्याजी का उत्साह विपरीत परिस्थितियों में भी वृद्धिंगत रहा।

मुम्बई का चातुर्मास पूर्णकर वे शाजापुर गईं। वहाँ जाकर डॉ. साहब ने डी.लिट करने का सुझाव दिया और लाडनूं विश्वविद्यालय के अन्तर्गत उन्हीं के निर्देशन में रजिस्ट्रेशन भी हो गया। यह लाडनूं विश्व भारती का प्रथम डी.लिट. रजिस्ट्रेशन था। सौम्याजी से सब कुछ ज्ञात होने के बाद मैंने उनसे कहा– प्रत्येक विधि पर अलग-अलग कार्य हो तो अच्छा है और उन्होंने वैसा ही किया। परन्तु जब कार्य प्रारम्भ किया था तब वह इतना विराट रूप ले लेगा यह अनुमान भी नहीं था। शाजापुर में रहते हुए इन्होंने छ:सात विधियों पर अपना कार्य पूर्ण किया। फिर गुर्वाज्ञा से कार्य को बीच में छोड़ पुनः गुरुवर्य्या श्री के पास पहुँची। जयपुर एवं टाटा चातुर्मास के सम्पूर्ण सामाजिक दायित्वों को संभालते हुए पूज्याश्री के साथ रही।

शोध कार्य पूर्ण रूप से रूका हुआ था। डॉ.साहब ने सचेत किया कि समयावधि पूर्णता की ओर है अतः कार्य शीघ्र पूर्ण करें तो अच्छा रहेगा वरना रजिस्ट्रेशन रद्द भी हो सकता है। अब एक बार फिर से उन्हें अध्ययन कार्य को गति देनी थी। उन्होंने लघु भगिनी मण्डल के साथ लाइब्रेरी युक्त शान्त-नीरव स्थान हेतु वाराणसी की ओर प्रस्थान किया। इस बार लक्ष्य था कि कार्य को किसी भी प्रकार से पूर्ण करना है। उनकी योग्यता देखते हुए श्री संघ एवं गुरुवर्य्या श्री उन्हें अब समाज के कार्यों से जोड़े रखना चाहते थे परंतु कठोर परिश्रम युक्त उनके विशाल शोध कार्य को भी सम्पन्न करवाना आवश्यक था। बनारस पहुँचकर इन्होंने मुद्रा विधि को छोटा कार्य जानकर उसे पहले करने के विचार से उससे ही कार्य को प्रारम्भ किया। देखते ही देखते उस कार्य ने भी एक विराट रूप ले लिया। उनका यह मुद्रा कार्य विश्वस्तरीय कार्य था जिसमें उन्होंने जैन, हिन्दू, बौद्ध, योग एवं नाट्य परम्परा की सहस्राधिक हस्त मुद्राओं पर विशेष शोध किया। यद्यपि उन्होंने दिन-रात परिश्रम कर इस कार्य को 6-7 महीने में एक बार पूर्ण कर लिया, किन्तु उसके विभिन्न कार्य तो अन्त तक चलते रहे। तत्पश्चात उन्होंने अन्य कुछ विषयों पर और भी कार्य किया। उनकी कार्यनिष्ठा देख वहाँ के लोग हतप्रभ रह जाते थे। संघ-समाज के बीच स्वयं बड़े होने के कारण नहीं चाहते हुए भी सामाजिक दायित्व निभाने ही पड़ते थे।

सिर्फ बनारस में ही नहीं रायपुर के बाद जब भी वे अध्ययन हेतु कहीं गई तो उन्हें ही बड़े होकर जाना पड़ा। सभी गुरु बहिनों का विचरण शासन कार्यों हेतु भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में होने से इस समस्या का सामना भी उन्हें करना ही था।

साधु जीवन में बड़े होकर रहना अर्थात संघ-समाज-समुदाय की समस्त गतिविधियों पर ध्यान रखना, जो कि अध्ययन करने वालों के लिए संभव नहीं होता परंतु साधु जीवन यानी विपरीत परिस्थितियों का स्वीकार और जो इन्हें पार कर आगे बढ़ जाता है वह जीवन जीने की कला का मास्टर बन जाता है। इस शोधकार्य ने सौम्याजी को विधि-विधान के साथ जीवन के क्षेत्र में भी मात्र मास्टर नहीं अपितु विशेषज्ञ बना दिया।

पूज्य बड़े म.सा. बंगाल के क्षेत्र में विचरण कर रहे थे। कोलकाता वालों की हार्दिक इच्छा सौम्याजी को बुलाने की थी। वैसे जौहरी संघ के पदाधिकारी श्री प्रेमचन्दजी मोघा एवं मंत्री मणिलालजी दुसाज शाजापुर से ही उनके चातुर्मास हेतु आग्रह कर रहे थे। अत: न चाहते हुए भी कार्य को अर्ध विराम दे उन्हें कलकत्ता आना पड़ा। शाजापुर एवं बनारस प्रवास के दौरान किए गए शोध कार्य का कम्पोज करवाना बाकी था और एक-दो विषयों पर शोध भी। परंतु "जिसकी खाओ बाजरी उसकी बजाओ हाजरी" अत: एक और अवरोध शोध कार्य में आ चुका था। गुरुवर्य्या श्री ने सोचा था कि चातुर्मास के प्रारम्भिक दो महीने के पश्चात इन्हें प्रवचन आदि दायित्वों से निवृत्त कर देंगे परंतु समाज में रहकर यह सब संभव नहीं होता।

चातुर्मास के बाद गुरुवर्य्या श्री तो शेष क्षेत्रों की स्पर्शना हेतु निकल पड़ी किन्तु उन्हें शेष कार्य को पूर्णकर अन्तिम स्वरूप देने हेतु कोलकाता ही रखा। कोलकाता जैसी महानगरी एवं चिर-परिचित समुदाय के बीच तीव्र गति से अध्ययन असंभव था अत: उन्होंने मौन धारण कर लिया और सप्ताह में मात्र एक घंटा लोगों से धर्म चर्चा हेतु खुला रखा। फिर भी सामाजिक दायित्वों से पूर्ण मुक्ति संभव नहीं थी। इसी बीच कोलकाता संघ के आग्रह से एवं अध्ययन हेतु अन्य सुविधाओं को देखते हुए पूज्याश्री ने इनका चातुर्मास कलकत्ता घोषित कर दिया। पूज्याश्री से अलग हुए सौम्याजी को करीब सात महीने हो चुके थे। चातुर्मास सम्मुख था और वे अपनी जिम्मेदारी पर प्रथम बार स्वतंत्र चातुर्मास करने वाली थी।

जेठ महीने की भीषण गर्मी में उन्होंने गुरुवर्य्याश्री के दर्शनार्थ जाने का मानस बनाया और ऊपर से मानसून सिना ताने खड़ा था। अध्ययन कार्य पूर्ण करने हेतु समयावधि की तलवार तो उनके ऊपर लटक ही रही थी। इन परिस्थितियों में उन्होंने 35-40 कि.मी. प्रतिदिन की रफ्तार से दुर्गापुर की तरफ कदम बढ़ाए। कलकत्ता से दुर्गापुर और फिर पुन: कोलकाता की यात्रा में लगभग एक महीना

पढ़ाई नहींवत हुई। यद्यपि गुरुवर्य्याश्री के साथ चातुर्मासिक कार्यक्रमों की जिम्मेदारियाँ इन्हीं की होती है फिर भी अध्ययन आदि के कारण इनकी मानसिकता चातुर्मास संभालने की नहीं थी और किसी दृष्टि से उचित भी था। क्योंकि सबसे बड़े होने के कारण प्रत्येक कार्यभार का वहन इन्हीं को करना था अत: दो माह तक अध्ययन की गति पर पुन: ब्रेक लग गया। पूज्या श्री हमेशा फरमाती है कि–

जो जो देखा वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

सौम्याजी ने भी गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर संघ-समाज को समय ही नहीं अपितु भौतिकता में भटकते हुए मानव को धर्म की सही दिशा भी दिखाई। वर्तमान परिस्थितियों पर उनकी आम चर्चा से लोगों में धर्म को देखने का एक नया नजरिया विकसित हुआ। गुरुवर्य्याश्री एवं हम सभी को आन्तरिक आनंद की अनुभूति हो रही थी किन्तु सौम्याजी को वापस दुगुनी गति से अध्ययन में जुड़ना था। इधर कोलकाता संघ ने पूर्ण प्रयास किए फिर भी हिन्दी भाषा का कोई अच्छा कम्पोजर न मिलने से कम्पोजिंग कार्य बनारस में करवाया गया। दूरस्थ रहकर यह सब कार्य करवाना उनके लिए एक विषम समस्या थी। परंतु अब शायद वे इन सबके लिए सध गई थी, क्योंकि उनका यह कार्य ऐसी ही अनेक बाधाओं का सामना कर चुका था।

उधर सैंथिया चातुर्मास में पूज्याश्री का स्वास्थ्य अचानक दो-तीन बार बिगड़ गया। अत: वर्षावास पूर्णकर पूज्य गुरूवर्य्या श्री पुन: कोलकाता की ओर पधारी। सौम्याजी प्रसन्न थी क्योंकि गुरूवर्य्या श्री स्वयं उनके पास पधार रही थी। गुरुजनों की निश्रा प्राप्त करना हर विनीत शिष्य का मनेच्छित होता है। पूज्या श्री के आगमन से वे सामाजिक दायित्वों से मुक्त हो गई थी। अध्ययन के अन्तिम पड़ाव में गुरूवर्य्या श्री का साथ उनके लिए सुवर्ण संयोग था क्योंकि प्राय: शोध कार्य के दौरान पूज्याश्री उनसे दूर रही थी।

शोध समय पूर्णाहुति पर था। परंतु इस बृहद कार्य को इतनी विषमताओं के भंवर में फँसकर पूर्णता तक पहुँचाना एक कठिन कार्य था। कार्य अपनी गति से चल रहा था और समय अपनी धुरी पर। सबमिशन डेट आने वाली थी किन्तु कम्पोजिंग एवं प्रूफ रीडिंग आदि का काफी कार्य शेष था।

पूज्याश्री के प्रति अनन्य समर्पित श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा को जब इस स्थिति के बारे में ज्ञात हुआ तो उन्होंने युनिवर्सिटी द्वारा समयावधि बढ़ाने हेतु

अर्जी पत्र देने का सुझाव दिया। उनके हार्दिक प्रयासों से 6 महीने का एक्सटेंशन प्राप्त हुआ। इधर पूज्या श्री तो शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा सम्पन्न कर अन्य क्षेत्रों की ओर बढ़ने की इच्छुक थी। परंतु भविष्य के गर्भ में क्या छुपा है यह कोई नहीं जानता। कुछ विशिष्ट कारणों के चलते कोलकाता भवानीपुर स्थित शंखेश्वर मन्दिर की प्रतिष्ठा चातुर्मास के बाद होना निश्चित हुआ। अत: अब आठ-दस महीने तक बंगाल विचरण निश्चित था। सौम्याजी को अप्रतिम संयोग मिला था कार्य पूर्णता के लिए।

शासन देव उनकी कठिन से कठिन परीक्षा ले रहा था। शायद विषमताओं की अग्नि में तपकर वे सौम्याजी को खरा सोना बना रहे थे। कार्य अपनी पूर्णता की ओर पहुँचता इसी से पूर्व उनके द्वारा लिखित 23 खण्डों में से एक खण्ड की मूल कॉपी गुम हो गई। पुन: एक खण्ड का लेखन और समयावधि की अल्पता ने समस्याओं का चक्रव्यूह सा बना दिया। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। जिनपूजा क्रिया विधानों का एक मुख्य अंग है अत: उसे गौण करना या छोड़ देना भी संभव नहीं था। चांस लेते हुए एक बार पुन: Extension हेतु निवेदन पत्र भेजा गया। मुनि जीवन की कठिनता एवं शोध कार्य की विशालता के मद्देनजर एक बार पुन: चार महीने की अवधि युनिवर्सिटी के द्वारा प्राप्त हुई।

शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा निमित्त सम्पूर्ण साध्वी मंडल का चातुर्मास बकुल बगान स्थित लीलीजी मणिलालजी सुखानी के नूतन बंगले में होना निश्चित हुआ।

पूज्याश्री ने खडगपुर, टाटानगर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। पाँच-छह साध्वीजी अध्ययन हेतु पौशाल में ही रूके थे। श्री जिनरंगसूरि पौशाल कोलकाता बड़ा बाजार में स्थित है। साधु-साध्वियों के लिए यह अत्यंत शाताकारी स्थान है। सौम्याजी को बनारस से कोलकाता लाने एवं अध्ययन पूर्ण करवाने में पौशाल के ट्रस्टियों की विशेष भूमिका रही है। सौम्याजी ने अपना अधिकांश अध्ययन काल वहाँ व्यतीत किया।

ट्रस्टीगण श्री कान्तिलालजी, कमलचंदजी, विमलचंदजी, मणिलालजी आदि ने भी हर प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की। संघ-समाज के सामान्य दायित्वों से बचाए रखा। इसी अध्ययन काल में बीकानेर हाल कोलकाता निवासी श्री खेमचंदजी बांठिया ने आत्मीयता पूर्वक सेवाएँ प्रदान कर इन लोगों को निश्चिन्त रखा। इसी तरह अनन्य सेवाभावी श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत (लालाबाबू) जो सौम्याजी को बहनवत मानते हैं उन्होंने एक भाई के समान उनकी हर आवश्यकता

का ध्यान रखा। कलकत्ता संघ सौम्याजी के लिए परिवारवत ही हो गया था। सम्पूर्ण संघ की एक ही भावना थी कि उनका अध्ययन कोलकाता में ही पूर्ण हो।

पूज्याश्री टाटानगर से कोलकाता की ओर पधार रही थी। सुयोग्या साध्वी सम्यग्दर्शनाजी उग्र विहार कर गुरुवर्य्याश्री के पास पहुँची थी। सौम्याजी निश्चिंत थी कि इस बार चातुर्मासिक दायित्व सुयोग्या सम्यग दर्शनाजी महाराज संभालेंगे। वे अपना अध्ययन उचित समयावधि में पूर्ण कर लेंगे। परंतु परिस्थिति विशेष से सम्यगजी महाराज का चातुर्मास खडगपुर ही हो गया।

सौम्याजी की शोधयात्रा में संघर्षों की समाप्ति ही नहीं हो रही थी। पुस्तक लेखन, चातुर्मासिक जिम्मेदारियाँ और प्रतिष्ठा की तैयारियाँ कोई समाधान दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा था। अध्ययन की महत्ता को समझते हुए पूज्याश्री एवं अमिताजी सुखानी ने उन्हें चातुर्मासिक दायित्वों से निवृत्त रहने का अनुनय किया किन्तु गुरु की शासन सेवा में सहयोगी बनने के लिए इन्होंने दो महीने गुरुवर्य्या श्री के साथ चातुर्मासिक दायित्वों का निर्वाह किया। फिर वह अपने अध्ययन में जुट गई।

कई बार मन में प्रश्न उठता कि हमारी प्यारी सौम्या इतना साहस कहाँ से लाती है। किसी कवि की पंक्तियाँ याद आ रही है–

सूरज से कह दो बेशक वह, अपने घर आराम करें।
चाँद सितारे जी भर सोएं, नहीं किसी का काम करें।
अगर अमावस से लड़ने की जिद कोई कर लेता है।
तो सौम्य गुणा सा जुगनु सारा, अंधकार हर लेता है।।

जिन पूजा एक विस्तृत विषय है। इसका पुनर्लेखन तो नियत अवधि में हो गया परंतु कम्पोजिंग आदि नहीं होने से शोध प्रबंध के तीसरे एवं चौथे भाग को तैयार करने के लिए समय की आवश्यकता थी। अब तीसरी बार लाडनूं विश्वविद्यालय से Extension मिलना असंभव प्रतीत हो रहा था।

श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा समस्त परिस्थितियों से अवगत थे। उन्होंने पूज्य गुरूवर्य्या श्री से निवेदन किया कि सौम्याजी को पूर्णत: निवृत्ति देकर कार्य शीघ्रातिशीघ्र करवाया जाए। विश्वविद्यालय के तत्सम्बन्धी नियमों के बारे में पता करके डेढ़ महीने की अन्तिम एवं विशिष्ट मौहलत दिलवाई। अब देरी होने का मतलब था Rejection of Work by University अत: त्वरा गति से कार्य चला।

सौम्याजी पर गुरुजनों की कृपा अनवरत रही है। पूज्य गुरूवर्य्या सज्जन श्रीजी म.सा. के प्रति वह विशेष श्रद्धा प्रणत हैं। अपने हर शुभ कर्म का निमित्त एवं उपादान उन्हें ही मानती हैं। इसे साक्षात गुरु कृपा की अनुश्रुति ही कहना होगा कि उनके समस्त कार्य स्वत: ग्यारस के दिन सम्पन्न होते गए। सौम्याजी की आन्तरिक इच्छा थी कि पूज्याश्री को समर्पित उनकी कृति पूज्याश्री की पुण्यतिथि के दिन विश्वविद्यालय में Submit की जाए और निमित्त भी ऐसे ही बने कि Extension लेते-लेते संयोगवशात पुन: वही तिथि और महीना आ गया।

23 दिसम्बर 2012 मौन ग्यारस के दिन लाडनूं विश्वविद्यालय में 4 भागों में वर्गीकृत 23 खण्डीय Thesis जमा की गई। इतने विराट शोध कार्य को देखकर सभी हतप्रभ थे। 5556 पृष्ठों में गुम्फित यह शोध कार्य यदि शोध नियम के अनुसार तैयार किया होता तो 11000 पृष्ठों से अधिक हो जाते। यह सब गुरूवर्य्या श्री की ही असीम कृपा थी।

पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. की हार्दिक इच्छा थी कि सौम्याजी के इस ज्ञानयज्ञ का सम्मान किया जाए जिससे जिन शासन की प्रभावना हो और जैन संघ गौरवान्वित बने।

भवानीपुर-शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा का पावन सुयोग था। श्रुतज्ञान के बहुमान रूप 23 ग्रन्थों का भी जुलूस निकाला गया। सम्पूर्ण कोलकाता संघ द्वारा उनकी वधामणी की गई। यह एक अनुमोदनीय एवं अविस्मरणीय प्रसंग था।

बस मन में एक ही कसक रह गई कि मैं इस पूर्णाहुति का हिस्सा नहीं बन पाई।

आज सौम्याजी की दीर्घ शोध यात्रा को पूर्णता के शिखर पर देखकर नि:सन्देह कहा जा सकता है कि पूज्या प्रवर्त्तिनी म.सा. जहाँ भी आत्म साधना में लीन है वहाँ से उनकी अनवरत कृपा दृष्टि बरस रही है। शोध कार्य पूर्ण होने के बाद भी सौम्याजी को विराम कहाँ था? उनके शोध विषय की त्रैकालिक प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। पुस्तक प्रकाशन सम्बन्धी सभी कार्य शेष थे तथा पुस्तकों का प्रकाशन कोलकाता से ही हो रहा था। अत: कलकत्ता संघ के प्रमुख श्री कान्तिलालजी मुकीम, विमलचंदजी महमवाल, श्राविका श्रेष्ठा प्रमिलाजी महमवाल, विजयेन्द्रजी संखलेचा आदि ने पूज्याश्री के सम्मुख सौम्याजी को रोकने का निवेदन किया। श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत, श्री मणिलालजी दूसाज आदि भी निवेदन कर चुके थे।

यद्यपि अजीमगंज दादाबाड़ी प्रतिष्ठा के कारण रोकना असंभव था परंतु मुकिमजी के अत्याग्रह के कारण पूज्याश्री ने उन्हें कुछ समय के लिए वहाँ रहने की आज्ञा प्रदान की।

गुरूवर्य्या श्री के साथ विहार करते हुए सौम्यागुणाजी को तीन Stop जाने के बाद वापस आना पड़ा। दादाबाड़ी के समीपस्थ शीतलनाथ भवन में रहकर उन्होंने अपना कार्य पूर्ण किया। इस तरह इनकी सम्पूर्ण शोध यात्रा में कलकत्ता एक अविस्मरणीय स्थान बनकर रहा।

क्षणै: क्षणै: बढ़ रहे उनके कदम अब मंजिल पर पहुँच चुके हैं। आज जो सफलता की बहुमंजिला इमारत इस पुस्तक श्रृंखला के रूप में देख रहे हैं वह मजबूत नींव इन्होंने अपने उत्साह, मेहनत और लगन के आधार पर रखी है। सौम्यगुणाजी का यह विशद् कार्य युग-युगों तक एक कीर्तिस्तम्भ के रूप में स्मरणीय रहेगा। श्रुत की अमूल्य निधि में विधि-विधान के रहस्यों को उजागर करते हुए उन्होंने जो कार्य किया है वह आने वाली भावी पीढ़ी के लिए आदर्श रूप रहेगा। लोक परिचय एवं लोकप्रसिद्धि से दूर रहने के कारण ही आज वे इस बृहद् कार्य को सम्पन्न कर पाई हैं। मैं परमात्मा से यही प्रार्थना करती हूँ कि वे सदा इसी तरह श्रुत संवर्धन के कल्याण पथ पर गतिशील रहे। अंतत: उनके अडिग मनोबल की अनुमोदना करते हुए यही कहूँगी-

प्रगति शिला पर चढ़ने वाले बहुत मिलेंगे,
कीर्तिमान करने वाला तो विरला होता है।
आंदोलन करने वाले तो बहुत मिलेंगे,
दिशा बदलने वाला कोई निराला होता है।
तारों की तरह टिम-टिमाने वाले अनेक होते हैं,
पर सूरज बन रोशन करने वाला कोई एक ही होता है।
समय गंवाने वालों से यह दुनिया भरी है,
पर इतिहास बनाने वाला कोई सौम्य सा ही होता है।
प्रशंसा पाने वाले जग में अनेक मिलेंगे,
प्रिय बने सभी का ऐसा कोई सज्जन ही होता है ।।

●

हार्दिक बधाई

किसी कवि ने बहुत ही सुन्दर कहा है-

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सो घड़ा, ऋतु आवत फल होय।।

हर कार्य में सफलता समय आने पर ही प्राप्त होती है। एक किसान बीज बोकर साल भर तक मेहनत करता है तब जाकर उसे फसल प्राप्त होती है। चार साल तक College में मेहनत करने के बाद विद्यार्थी Doctor, Engineer या MBA होता है।

साध्वी सौम्यगुणाजी आज सफलता के जिस शिखर पर पहुँची है उसके पीछे उनकी वर्षों की मेहनत एवं धैर्य नींव रूप में रहे हुए हैं। लगभग 30 वर्ष पूर्व सौम्याजी का आगमन हमारे मण्डल में एक छोटी सी गुड़िया के रूप में हुआ था। व्यवहार में लघुता, विचारों में सरलता एवं बुद्धि की श्रेष्ठता उनके प्रत्येक कार्य में तभी से परिलक्षित होती थी। ग्यारह वर्ष की निशा जब पहली बार पूज्याश्री के पास वैराग्यवासित अवस्था में आई तब मात्र चार माह की अवधि में प्रतिक्रमण, प्रकरण, भाष्य,कर्मग्रन्थ, प्रातःकालीन पाठ आदि कंठस्थ कर लिए थे। उनकी तीव्र बुद्धि एवं स्मरण शक्ति की प्रखरता के कारण पूज्य छोटे म.सा. (पूज्य शशिप्रभा श्रीजी म.सा.) उन्हें अधिक से अधिक चीजें सिखाने की इच्छा रखते थे।

निशा का बाल मन जब अध्ययन से उक्ता जाता और बाल सुलभ चेष्टाओं के लिए मन उत्कंठित होने लगता, तो कई बार वह घंटों उपाश्रय की छत पर तो कभी सीढ़ियों में जाकर छुप जाती ताकि उसे अध्ययन न करना पड़े। परंतु यह उसकी बाल क्रीड़ाएँ थी। 15-20 गाथाएँ याद करना उसके लिए एक सहज बात थी। उनके अध्ययन की लगन एवं सीखने की कला आदि के अनुकरण की प्रेरणा आज भी छोटे म.सा. आने वाली नई मंडली को देते हैं। सूत्रागम अध्ययन, ज्ञानार्जन, लेखन, शोध आदि के कार्य में उन्होंने जो श्रृंखला प्रारम्भ की है आज सज्जनमंडल में उसमें कई कड़ियाँ जुड़ गई हैं परन्तु मुख्य कड़ी तो

मुख्य ही होती है। ये सभी के लिए प्रेरणा बन रही हैं किन्तु इनके भीतर जो प्रेरणा आई वह कहीं न कहीं पूज्य गुरुवर्य्या श्री की असीम कृपा है।

उच्च उड़ान नहीं भर सकते
तुच्छ बाहरी चमकीले पर
महत कर्म के लिए चाहिए
महत प्रेरणा बल भी भीतर

यह महत प्रेरणा गुरु कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। विनय, सरलता, शालीनता, ऋजुता आदि गुण गुरुकृपा की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

सौम्याजी का मन शुरू से सीधा एवं सरल रहा है। सांसारिक कपट-माया या व्यवहारिक औपचारिकता निभाना इनके स्वभाव में नहीं है। पूज्य प्रवर्तिनीजी म.सा. को कई बार ये सहज में कहती **'महाराज श्री!' मैं तो आपकी कोई सेवा नहीं करती, न ही मुझमें विनय है, फिर मेरा उद्धार कैसे होगा, मुझे गुरु कृपा कैसे प्राप्त होगी?' तब पूज्याश्री फरमाती– 'सौम्या! तेरे ऊपर तो मेरी अनायास कृपा है, तूं चिंता क्यों करती है? तूं तो महान साध्वी बनेगी।'** आज पूज्याश्री की ही अन्तस शक्ति एवं आशीर्वाद का प्रस्फोटन है कि लोकैषणा, लोक प्रशंसा एवं लोक प्रसिद्धि के मोह से दूर वे श्रुत सेवा में सर्वात्मना समर्पित हैं। जितनी समर्पित वे पूज्या श्री के प्रति थी उतनी ही विनम्र अन्य गुरुजनों के प्रति भी। गुरु भगिनी मंडल के कार्यों के लिए भी वे सदा तत्पर रहती हैं। चाहे बड़ों का कार्य हो, चाहे छोटों का उन्होंने कभी किसी को टालने की कोशिश नहीं की। चाहे प्रियदर्शना श्रीजी हो, चाहे दिव्यदर्शना श्रीजी, चाहे शुभदर्शनाश्रीजी हो, चाहे शीलगुणा जी आज तक सभी के साथ इन्होंने लघु बनकर ही व्यवहार किया है। कनकप्रभाजी, संयमप्रज्ञाजी आदि लघु भगिनी मंडल के साथ भी इनका व्यवहार सदैव सम्मान, माधुर्य एवं अपनेपन से युक्त रहा है। ये जिनके भी साथ चातुर्मास करने गई हैं उन्हें गुरुवत सम्मान दिया तथा उनकी विशिष्ट आन्तरिक मंगल कामनाओं को प्राप्त किया है। पूज्या विनीता श्रीजी म.सा., पूज्या मणिप्रभाश्रीजी म.सा., पूज्या हेमप्रभा श्रीजी म.सा., पूज्या सुलोचना श्रीजी म.सा., पूज्या विद्युतप्रभाश्रीजी म.सा. आदि की इन पर विशेष कृपा रही है। पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा., आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी म.सा., आचार्य श्री कीर्तियशसूरिजी आदि ने इन्हें अपना

स्नेहाशीष एवं मार्गदर्शन दिया है। आचार्य श्री राजयशसूरिजी म.सा., पूज्य भ्राता श्री विमलसागरजी म.सा. एवं पूज्य वाचंयमा श्रीजी (बहन) म.सा. इनका Ph.D. एवं D.Litt. का विषय विधि-विधानों से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें 'विधिप्रभा' नाम से ही बुलाते हैं।

पूज्या शशिप्रभाजी म.सा. ने अध्ययन काल के अतिरिक्त इन्हें कभी भी अपने से अलग नहीं किया और आज भी हम सभी गुरु बहनों की अपेक्षा गुरु निश्रा प्राप्ति का लाभ इन्हें ही सर्वाधिक मिलता है। पूज्याश्री के चातुर्मास में अपने विविध प्रयासों के द्वारा चार चाँद लगाकर ये उन्हें और भी अधिक जानदार बना देती हैं।

तप-त्याग के क्षेत्र में तो बचपन से ही इनकी विशेष रुचि थी। नवपद की ओली का प्रारम्भ इन्होंने गृहस्थ अवस्था में ही कर दिया था। इनकी छोटी उम्र को देखकर छोटे म.सा. ने कहा- देखो! तुम्हें तपस्या के साथ उतनी ही पढ़ाई करनी होगी तब तो ओलीजी करना अन्यथा नहीं। ये बोली- मैं रोज पन्द्रह नहीं बीस गाथा करूंगी आप मुझे ओलीजी करने दीजिए और उस समय ओलीजी करके सम्पूर्ण प्रातःकालीन पाठ कंठाग्र किये। बीसस्थानक, वर्धमान, नवपद, मासक्षमण, श्रेणी तप, चत्तारि अट्ठ दस दोय, पैंतालीस आगम, ग्यारह गणधर, चौदह पूर्व, अट्ठाईस लब्धि, धर्मचक्र, पखवासा आदि कई छोटे-बड़े तप करते हुए इन्होंने अध्ययन एवं तपस्या दोनों में ही अपने आपको सदा अग्रसर रखा।

आज उनके वर्षों की मेहनत की फलश्रुति हुई है। जिस शोध कार्य के लिए वे गत 18 वर्षों से जुटी हुई थी उस संकल्पना को आज एक मूर्त्त स्वरूप प्राप्त हुआ है। अब तक सौम्याजी ने जिस धैर्य, लगन, एकाग्रता, श्रुत समर्पण एवं दृढ़निष्ठा के साथ कार्य किया है वे उनमें सदा वृद्धिंगत रहे। पूज्य गुरुवर्य्या श्री के नक्षे कदम पर आगे बढ़ते हुए वे उनके कार्यों को और नया आयाम दें तथा श्रुत के क्षेत्र में एक नया अवदान प्रस्तुत करें। इन्हीं शुभ भावों के साथ-

गुरु भगिनी मण्डल

प्राक्कथन

मुद्रा योग विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, अध्यात्म साधना का आवश्यक चरण है तथा शास्त्रीय विद्याओं में विशिष्टतम विद्या है। मानव मात्र के समग्र विकास के लिए मुद्रा योग अत्यन्त ही उपयोगी है। भारतीय ऋषि-महर्षियों ने मन, बुद्धि एवं शरीर को शान्त रखने के लिए विभिन्न मुद्राओं का प्रयोग किया था। इस विज्ञान के द्वारा हम आज भी आध्यात्मिक, शारीरिक एवं मानसिक शक्ति प्राप्त करके भव-भवान्तर को सफल बना सकते हैं।

मानव मात्र की अन्तः शक्तियाँ असीम हैं किन्तु वे हमारी असीमित कल्पना के विस्तृत क्षेत्र से भी परे हैं। भौतिक स्तर पर जीवन यात्रा का निर्वहन करने वाला व्यक्ति उन अन्तः शक्तियों को न पहचान सकता है और न ही उनका सार्थक उपयोग कर पाता है। वह सामान्यतः अज्ञानजनित बुद्धि एवं मोहादि के वशीभूत हुआ बाह्य उपलब्धियों को ही वास्तविक मानता है। मुद्रा एक ऐसी पद्धति है जिसके माध्यम से हम जड़-चेतन का भेद ज्ञान करते हुए यथार्थता के निकट पहुँच सकते हैं, पौद्गलिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का मूल्यांकन कर सकते हैं और अन्तरंग शक्तियों को जागृत करने हेतु प्रयत्नशील हो सकते हैं। प्रत्येक मानव का अन्तिम लक्ष्य यही होना चाहिए कि उसे अपनी निजी शक्तियों का बोध हो और अपने स्वरूप की पहचान हो। एक बार चेतना के उच्च स्तरों की झलक दिख जाये तो मायाजाल के सभी झूठे प्रपंच एवं समस्याएँ समाप्त हो सकती है।

इस उच्च भूमिका पर आरोहण करने के लिए चित्त का एकाग्र होना आवश्यक है। अधिकांश पद्धतियों में एकाग्रता के महत्त्व पर जोर दिया गया है। एकाग्रता द्वारा हम बहिरंग जीवन की ओर प्रवाहित होती हुई चेतना को अन्तरंग क्षेत्रों की ओर मोड़ सकते हैं। यदि प्रश्न उठता है कि एकाग्रता क्या है? साधारणतः एकाग्रता का मतलब है अपनी चेतन-धारा को सभी बाह्य विषयों एवं विचारों से हटाकर किसी विशेष विचार-बिन्दु पर केन्द्रित करना। यह कार्य सरल नहीं है। हमारी चेतना को विविधता प्रिय है। एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे विषय पर मंडराने की आदत बहुत पुरानी है इसे एक विषय पर केन्द्रित

करना संकल्प साध्य है।

मुद्राएँ शरीर एवं चित्त स्थिरीकरण के लिए ब्रह्मास्त्र का कार्य करती हैं। जैसे ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कभी निष्फल नहीं जाता वैसे ही सुविधि युक्त किया गया मुद्राभ्यास स्थिरता गुण को विकसित करता है। घेरण्ड संहिता में सुस्पष्ट कहा गया है कि स्थिरता के लिए मुद्रायोग को साधना चाहिए।

स्थैर्य गुण बहिरंग व अन्तरंग समग्र पक्षों से अत्यन्त लाभदायी है। हम अनुभव करें तो निःसन्देह महसूस हो सकेगा कि स्थिरता के पलों में व्यक्ति की चेतना अबाध रूप से प्रवाहित होने लगती है। इस अवस्था में अवचेतन मन में छिपे मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप चेतन मन के स्तर तक ऊपर उठ आते हैं तथा अनावृत्त होने लगते हैं।

सामान्य तौर पर मानसिक विक्षेपों के कारण हम अपनी आंतरिक शक्तियों से संबंध स्थापित नहीं कर पाते अथवा उन्हें अभिव्यक्त नहीं कर पाते। जबकि एकाग्रता के क्षणों में ही हम अपने व्यक्तित्व के आंतरिक पक्षों को समझना प्रारंभ करते हैं। इस प्रकार एकाग्र चित्त के परिणाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। मुद्रा विज्ञान से इन परिणामों को अवश्यंभावी प्राप्त किया जाता है।

मुद्राएँ शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन बनाए रखती है। हठयोग संबंधी मुद्राभ्यास में बन्ध का प्रयोग भी किया जाता है स्वभावतः मुद्रा और बन्ध हमारे शरीर के स्नायु जालकों तथा अन्तःस्रावी ग्रन्थियों को उत्तेजित करते हैं और शरीर की जैव-ऊर्जाओं को सक्रिय करते हैं। कभी-कभी मुद्राएँ आंतरिक, मानसिक या अतीन्द्रिय भावनाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के रूप में भी कार्य करती हैं। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है।

हमारे शरीर में अतीन्द्रिय शक्तियों से युक्त एक यौगिक पथ है जिसे मेरूदण्ड कहते हैं। इस मार्ग पर तथा इसके ऊपरी और निचले हिस्से में अनेक शक्तियाँ मौजूद हैं। साथ ही इस मार्गस्थित शक्तियों के इर्द-गिर्द विभिन्न स्नायु जाल बिछे हुए हैं। ये जाल मस्तिष्क केन्द्रों और अंतःस्रावी ग्रंथियों से सीधे जुड़े होते हैं। यौगिक मुद्राओं से स्नायु मंडल जागृत होकर शरीर में अनेक मनोवैज्ञानिक और जीव-रासायनिक परिवर्तन करते हैं। इन स्थितियों में अदृश्य शक्ति सम्पन्न षट्चक्रों का भेदन होता है और चेतन धारा ऊर्ध्वगामी बनती है।

मुद्रा तत्त्व परिवर्तन की अपूर्व क्रिया है। हमारा शरीर पंच तत्त्वों से निर्मित माना जाता है। इन तत्त्वों की विकृति के कारण ही प्रकृति में असंतुलन और

शरीर में रोग पैदा होते हैं। हस्त मुद्राएँ पंच तत्त्वों को संतुलित करने का सशक्त माध्यम है क्योंकि शरीर की पाँचों अंगुलियाँ पंच तत्त्व की प्रतिनिधि है, जिन्हें इन अंगुलियों की मदद से घटा-बढ़ाकर संतुलित किया जा सकता है। शरीर विज्ञान के अनुसार अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के अग्रभाग से जोड़ा जाए तो उससे सम्बन्धित तत्त्व स्थिर हो जाता है, जैसे अंगूठा अग्नि तत्त्व का स्थान है, तर्जनी वायु तत्त्व का, मध्यमा आकाश तत्त्व का, अनामिका पृथ्वी तत्त्व का और कनिष्ठिका जल तत्त्व का प्रतीक है। इस प्रकार अंगूठे के स्पर्श से संबंधित अंगुलियों के तत्त्व जो शरीर में व्याप्त हैं, प्रभावित होते हैं।

अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के निचले हिस्से अर्थात् मूल पर्व पर लगाने से उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व की शरीर में वृद्धि होती है। यदि अंगुली को मोड़कर अंगूठे की जड़ में अर्थात उसके आधार पर रखने से उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व का शरीर में ह्रास होता है। इस प्रकार विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से पंच तत्त्वों को घटा-बढ़ाकर सन्तुलित किया जा सकता है। इससे शरीर को स्वास्थ्य-लाभ मिलता है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि अधिकांश मुद्राएँ हाथों से ही क्यों की जाती है? यदि गहराई से अवलोकन करें तो परिज्ञात होता है कि शरीर के सक्रिय अंगों में हाथ प्रमुख है। हथेली में एक विशेष प्रकार की प्राण ऊर्जा अथवा शक्ति का प्रवाह निरन्तर होता रहता है। इसी कारण शरीर के किसी भी भाग में दुःख, दर्द, पीड़ा होने पर सहज की हाथ वहाँ चला जाता हैं। अंगुलियों में अपेक्षाकृत संवेदनशीलता अधिक होती है इसी कारण अंगुलियों से ही नाड़ी को देखा जाता है। जिससे मस्तिष्क में नब्ज की कार्यविधि का संदेश शीघ्र पहुंच जाता है। रेकी चिकित्सा में हथेली का ही उपयोग होता है। रत्न चिकित्सा में विभिन्न प्रकार के नगीने अंगूठी के माध्यम से हाथ की अंगुलियों में ही पहने जाते हैं जिनकी तरंगों के प्रभाव से शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है।

एक्यूप्रेशर चिकित्सा में हथेली में सारे शरीर के संवदेन बिन्दु होते हैं। सुजोक बायल मेरेडियन के सिद्धान्तानुसार अंगुलियों से ही शरीर के विभिन्न अंगों में प्राण ऊर्जा के प्रवाह को नियन्त्रित और संतुलित किया जा सकता है। हस्त रेखा विशेषज्ञ हथेली देखकर व्यक्ति के वर्तमान, भूत और भविष्य की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को बतला सकते हैं। कहने का आशय यही है कि हाथ, हथेली और अंगुलियों का मनुष्य की जीवन शैली से सीधा सम्बन्ध होता है। ये

मुद्राएँ शरीरस्थ चेतना के शक्ति केन्द्रों में रिमोट कन्ट्रोल के समान कार्य करती हैं फलत: स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारण होता है।

मुद्रा यह किसी एक धर्म या सम्प्रदाय से अथवा हिन्दु या बौद्ध धर्म से ही सम्बन्धित नहीं है। ईसाई धर्म में भी हस्त मुद्राएँ देवता एवं संतों के अभिप्राय तथा अभिव्यक्ति के माध्यम रहे हैं। ईसा मसीह द्वारा ऊपर किए गए दाएँ हाथ की मध्यमा एवं तर्जनी ऊर्ध्व की ओर, अनामिका एवं कनिष्ठका हथेली में मुड़ी हुई तथा अंगूठा उन दोनों को आवेष्टित करते हुए ऐसी जो मुद्रा दर्शायी जाती है वह कृपा, क्षमा एवं देवी आशीष की सूचक है। इसी प्रकार मरियम की मूर्ति में जो मुद्रा दिखाई देती है वह मातृत्व एवं ममत्त्व भाव की सूचक है। यह भगवान के इच्छाओं के स्वीकार की भी द्योतक है।

हिन्दु और बौद्ध धर्म में प्रयुक्त कई मुद्राएँ विशिष्ट देवी-देवताओं आदि की सूचक है। मुख्यतया तांत्रिक मुद्राएँ विशेष प्रसंगों में पादरी तथा लामाओं द्वारा धारण की जाती है। इस प्रकार मुद्रा विज्ञान समस्त धर्मपरम्परा सम्मत है।

मुद्रा योग से संबन्धित यह शोध कार्य सात खण्डों में किया गया है।

प्रथम खण्ड में मुद्रा का स्वरूप विश्लेषण करते हुए तत्संबंधी कई मूल्यवान् तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मुद्रा योग का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक पक्ष भी प्रस्तुत किया है जिससे शोधार्थी एवं आत्मार्थी आवश्यक जानकारी एक साथ प्राप्त कर सकते हैं। इस खण्ड का अध्ययन करने पर परवर्ती खण्डों की विषय वस्तु भी स्पष्ट हो जाती है इस प्रकार यह मुख्य आधारभूत होने से इस खण्ड को प्रथम क्रम पर रखा गया है।

तदनन्तर सर्व प्रकार की मुद्राओं का उद्भव नृत्य व नाट्य कला से माना जाता है। विश्व की भौगोलिक गतिविधियों के अनुसार आज से लगभग **बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास न्यून एक कोटाकोटि सागरोपम पूर्व** भगवान ऋषभदेव हुए, जिन्हें वैदिक परम्परा में भी युग के आदि कर्त्ता माना गया है। जैन आगमकार कहते हैं कि उस समय मनुष्यों का जीवन निर्वाह कल्पवृक्ष से होता था। धीर-धीरे काल का सुप्रभाव निस्तेज होने लगा, उससे भोजन आदि की कई समस्याएं उपस्थित हुई। तब ऋषभदेव ने पिता प्रदत्त राज्य पद का संचालन करते हुए लोगों को भोजन पकाने, अन्न उत्पादन करने, वस्त्र बुनने आदि का ज्ञान दिया। वे पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन आमोद-प्रमोद तथा नीति नियम पूर्वक जी सकें, एतदर्थ पुरुषों को 72 एवं

स्त्रियों को 64 प्रकार की विशिष्ट कलाएँ सिखाई। उनमें नृत्य-नाट्य और मुद्रा कला का भी प्रशिक्षण दिया। इससे सिद्ध होता है कि मुद्रा विज्ञान की परम्परा आदिकालीन एवं प्राचीनतम है। इसलिए नाट्य मुद्राओं को द्वितीय खण्ड में स्थान दिया गया है।

प्रश्न हो सकता है कि नाट्य मुद्राओं पर किया गया यह कार्य कितना उपयोगी एवं प्रासंगिक है? इस सम्बन्ध में इतना स्पष्ट है कि जीवन में स्वाभाविक मुद्रा का अद्भुत प्रभाव पड़ता है। 1. नृत्य में प्रायः सभी मुद्राएँ सहज होती है।

2. जो लोग नृत्य-नाट्यादि में रूचि रखते हैं वे इस कला के मर्म को समझ सकेंगे तथा उसकी उपयोगिता के बारे में अन्यों को ज्ञापित कर इस कला का गौरव बढ़ा सकते हैं।

3. जो नृत्यादि कला सीखने में उत्साही एवं उद्यमशील हैं वे मुद्राओं से होते फायदों के बारे में यदि जाने तो इस कला के प्रति सर्वात्मना समर्पित हो एक स्वस्थ जीवन की उपलब्धि करते हुए दर्शकों के चित्त को पूरी तरह आनन्दित कर सकते हैं। साथ ही दर्शकों का शरीर व मन प्रभावित होने से वे भी निरोग तथा चिन्तामुक्त जीवन से परिवार एवं समाज विकास में ठोस कार्य कर सकते हैं।

4. नृत्य कला में प्रयुक्त मुद्राओं से होने वाले सुप्रभावों की प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध हो तो इसके प्रति उपेक्षित जनता भी अनायास जुड़ सकती है और हाथ-पैरों के सहज संचालन से कई अनूठी उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकती हैं।

5. यदि नाट्याभिनय में दक्षता हासिल हो जाये तो प्रतिष्ठा-दीक्षादि महोत्सव, गुरू भगवन्तों के नगर प्रवेश, प्रभु भक्ति आदि प्रसंगों में उपस्थित जन समूह को भक्ति मग्न कर सकते हैं। साथ ही शुभ परिणामों की भावधारा का वेग बढ़ जाने से पूर्वबद्ध अशुभ कर्मों को क्षीणकर परम पद को प्राप्त किया जा सकता है।

6. कुछ लोगों में नृत्य कला का अभाव होता है ऐसे व्यक्तियों को इसका मूल्य समझ में आ जाये तो वे भक्ति माहौल में स्वयं को एकाकार कर सकते हैं। उस समय हाथ आदि अंगों का स्वाभाविक संचालन होने से षट्चक्र आदि कई शक्ति केन्द्र प्रभावित होते हैं और उससे एक आरोग्य वर्धक जीवन प्राप्त

होता है तथा अंतरंग की दूषित वृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं।

7. हमारे दैनिक जीवन व्यवहार में हर्ष-शोक, राग-द्वेष, आनन्द-विषाद आदि परिस्थितियों के आधार पर जो शारीरिक आकृतियाँ बनती है इन समस्त भावों को नाट्य में भी दर्शाया जाता है इस प्रकार नाट्य मुद्राएँ समस्त देहधारियों (मानवों) की जीवनचर्या का अभिन्न अंग है।

नाट्य मुद्राओं पर शोध करने का एक ध्येय यह भी है कि किसी संत पुरुष या अलौकिक पुरुष द्वारा सिखाया गया ज्ञान कभी निरर्थक नहीं हो सकता। इस प्रकार नाट्य मुद्राएँ अनेक दृष्टियों से मूल्यवान् हैं।

तदनन्तर जैन शास्त्रों में वर्णित मुद्राओं को महत्त्व देते हुए उन्हें तीसरे खण्ड में गुम्फित किया गया है। क्योंकि जैन धर्म अनादिनिधन होने के साथ-साथ इस मुद्रा विज्ञान के आरम्भ कर्ता एवं युग के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान है। इन्हें जैन धर्म के आद्य संस्थापक भी माना जाता है।

मुद्रा सम्बन्धी चौथे खण्ड में हिन्दू परम्परा की मुद्राओं का आधुनिक परिशीलन किया गया है। हिन्दू धर्म में प्रचलित कई मुद्राओं का प्रभाव जैन आचार्यों पर पड़ा तथा देवपूजन आदि से संबंधित कतिपय मुद्राएँ यथावत् स्वीकार भी कर ली गई ऐसा माना जाता है। वर्तमान में विवाह आदि कई संस्कार प्राय: हिन्दू पण्डितों के द्वारा ही करवाये जा रहे हैं इसलिए इसे चौथे क्रम पर रखा गया है। दूसरे, हिन्दू धर्म में सर्वाधिक क्रियाकाण्ड होता है और उनमें मुद्रा प्रयोग होता ही है।

मुद्रा सम्बन्धी पाँचवें खण्ड में बौद्ध परम्परावर्ती मुद्राओं को सम्बद्ध किया गया है। यद्यपि भगवान महावीर और भगवान बुद्ध समकालीन थे फिर भी हिन्दू धर्म जैनों के निकट माना जाता है। यही कारण है कि अनेक कर्मकाण्डों का प्रभाव जैन अनुयायियों पर पड़ा। आज भी जैन परम्परा के लोग हिन्दू मन्दिरों में बिना किसी भेद-भाव के चले जाते हैं जबकि बौद्ध धर्म के प्रति ऐसा झुकाव नहीं देखा जाता।

हिन्दू धर्म भारत के प्राय: सभी प्रान्तों में फैला हुआ है जबकि बौद्ध धर्म श्रमण परम्परा का संवाहक होने पर भी कुछ प्रान्तों में ही सिमट गया है। इन्हीं पहलूओं को ध्यान में रखते हुए बौद्ध मुद्राओं को पांचवाँ स्थान दिया गया है।

प्रस्तुत शोध के छठवें खण्ड में यौगिक मुद्राओं एवं सातवें खण्ड में आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रचलित मुद्राओं का विवेचन किया गया है।

वर्तमान में बढ़ रही समस्याओं एवं अनावश्यक तनावों से छुटकारा पाने के लिए योगाभ्यास परमावश्यक है। इसलिए यौगिक एवं प्रचलित मुद्राओं को पृथक् स्थान देते हुए जन साधारण के लिए उपयोगी बनाया है। साथ ही ये मुद्राएँ किसी परम्परा विशेष से भी सम्बन्धित नहीं है।

इस तरह उपरोक्त सातों खण्ड में मुद्राओं का जो क्रम रखा गया है वह पाठकों के सुगम बोध के लिए है। इससे मुद्राओं की श्रेष्ठता या लघुता का निर्णय नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्वरूपतः प्रत्येक मुद्रा अपने आप में सर्वोत्तम है। किन्तु प्रयोक्ता के अनुसार जो जिसके लिए विशेष फायदा करती है वह श्रेष्ठ हो जाती है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यह शोध कार्य केवल विधि स्वरूप तक ही सीमित नहीं है इसमें प्रत्येक मुद्रा का शब्दार्थ, उद्देश्य, उनके सुप्रभाव, प्रतीकात्मक अर्थ, कौन सी मुद्रा किस प्रसंग में की जाये आदि महत्त्वपूर्ण तथ्यों को भी उजागर किया गया है जिससे यह शोध समग्र पाठकों के लिए हमेशा उपादेय सिद्ध हो सकेगा।

प्रसंगानुसार मुद्रा चित्रों के सम्बन्ध में यह कहना चाहूंगी कि यद्यपि चित्रों को बनाने में पूर्ण सावधानी रखी गयी है फिर भी उसमें गलतियाँ रहना संभव है। क्योंकि हाथ से मुद्रा बनाकर दिखाने एवं उसके चित्र को बनाने वाले की दृष्टि और समझ में अन्तर हो सकता है।

चित्र के माध्यम से प्रत्येक पहलु को स्पष्टतः दर्शाना संभव नहीं होता, क्योंकि परिभाषानुसार हाथ का झुकाव, मोड़ना आदि अभ्यास पूर्वक ही आ सकता है।

प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त मुद्राओं के वर्णन को समझने में और ग्रन्थ कर्त्ता के अभिप्राय में अन्तर होने से कोई मुद्रा गलत बन गई हो तो क्षमाप्रार्थी हूँ।

यहाँ निम्न बिन्दुओं पर भी ध्यान दें-

1. हमारे द्वारा दर्शाए गए मुद्रा चित्रों के अंतर्गत कुछ मुद्राओं में दायाँ हाथ दर्शक के देखने के हिसाब से माना गया है तथा कुछ मुद्राओं में दायाँ हाथ प्रयोक्ता के अनुसार दर्शाया गया है।
2. कुछ मुद्राएँ बाहर की तरफ दिखाने की है उनमें चित्रकार ने मुद्रा बनाते समय वह Pose अपने मुख की तरफ दिखा दिया है।
3. कुछ मुद्राओं में एक हाथ को पार्श्व में दिखाना है उस हाथ को स्पष्ट

दर्शाने के लिए उसे पार्श्व में न दिखाकर थोड़ा सामने की तरफ दिखाया है।

4. कुछ मुद्राएँ स्वरूप के अनुसार दिखाई नहीं जा सकती है अत: उनकी यथावत् आकृति नहीं बन पाई हैं।
5. कुछ मुद्राएँ स्वरूप के अनुसार बनने के बावजूद भी चित्र में स्पष्टता नहीं उभर पाई हैं।
6. कुछ मुद्राओं के चित्र अत्यन्त कठिन होने से नहीं बन पाए हैं।

मुद्रा योग के पाँचवें खण्ड के अन्तर्गत बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक अनुशीलन किया गया है। यह पाँचवाँ खण्ड एकादश अध्यायों में गूंथा गया है–

पहला अध्याय भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत पर पड़ने वाले मुद्रा के विविध प्रभावों को उपदर्शित करता है।

दूसरे अध्याय में भगवान बुद्ध की मुख्य पांच एवं सामान्य चालीस मुद्राओं का सचित्र वर्णन किया गया है।

तीसरे अध्याय में सप्त रत्न, **चौथे अध्याय** में अष्ट मंगल, **पाँचवें अध्याय** में अठारह कर्त्तव्य, **छठे अध्याय** में बारह द्रव्य हाथ मिलन, **सातवें अध्याय** में म-म-मडोस ऐसे विविध प्रसंगों में उपयोगी मुद्राओं का सहेतुक चित्रण किया गया है।

आठवाँ अध्याय जापानी बौद्ध मुद्राओं एवं **नौवाँ अध्याय** भारतीय बौद्ध मुद्राओं का प्रतिपादन करता है।

दशवें अध्याय में गर्भधातु- वज्रधातु मण्डल संबंधी धार्मिक मुद्राओं का निरूपण किया गया है।

ग्यारहवाँ अध्याय उपसंहार के रूप में प्रस्तुत है। इस कृति के परिशिष्ट में भगवान बुद्ध के प्राचीन मुद्रा चित्र भी दिए गए हैं।

वन्दना की झंकार

जैन विधि-विधानों से सम्बन्धित एक बृहद्स्तरीय अन्वेषण आज पूर्णाहुति की प्रतीक्षित अरूणिम वेला पर है। जिनका प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संबल इस विराट् विषय के प्रतिपादन में आधार स्तंभ बना उन सभी उपकारी जनों की अभिवन्दना-अनुमोदना करने के लिए मन तरंगित हो रहा है। यद्यपि उन्हें पूर्णत: अभिव्यक्ति देना असंभव है फिर भी सामर्थ्य जुटाती हुई करबद्ध होकर सर्वप्रथम, जिनके दिव्य ज्ञान के आलोक ने भव्य जीवों के हृदयान्धकार को दूर किया, जिनकी पैंतीस गुणयुक्त वाणी ने जीव जगत का उद्धार किया, जिनके रोम-रोम से निर्झरित करूणा भाव ने समस्त जीवराशि को अभयदान दिया तथा मोक्ष मार्ग पर आरोहण करने हेतु सम्यक चारित्र का महादान दिया, ऐसे भवो भव उपकारी सर्वज्ञ अरिहंत परमात्मा के चरण सरोजों में अनन्त-अनन्त वंदना करती हूँ।

जिनके स्मरण मात्र से दु:साध्य कार्य सरल हो जाता है ऐसे साधना सहायक, सिद्धि प्रदायक श्री सिद्धचक्र को आत्मस्थ वंदन।

चिन्तामणि रत्न की भाँति हर चिन्तित स्वप्न को साकार करने वाले, कामधेनु की भाँति हर अभिलाषा को पूर्ण करने वाले एवं जिनकी वरद छाँह में जिनशासन देदीप्यमान हो रहा है ऐसे क्रान्ति और शान्ति के प्रतीक चारों दादा गुरूदेव तथा सकल श्रुतधर आचार्यों के चरणारविन्द में भावभीनी वन्दना।

प्रबल पुण्य के स्वामी, सरलहृदयी, शासन उद्धारक, खरतरगच्छाचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागर सूरीश्वरजी म.सा. के पवित्र चरणों में श्रद्धा भरी वंदना। जिन्होंने सदा अपनी कृपावृष्टि एवं प्रेरणादृष्टि से इस शोध यात्रा को लक्ष्य तक पहुँचाने हेतु प्रोत्साहित किया।

जिनके प्रज्ञाशील व्यक्तित्व एवं सृजनशील कर्तृत्व ने जैन समाज में अभिनव चेतना का पल्लवन किया, जिनकी अन्तस् भावना ने मेरी अध्ययन रुचि को जीवन्त रखा ऐसे उपाध्याय भगवन्त पूज्य गुरुदेव श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. के चरण नलिनों में कोटिश: वन्दन।

मैं हृदयावनत हूँ प्रभुत्वशील एवं स्नेहिल व्यक्तित्व के धनी, गुण गरिमा से मंडित प.पू. आचार्य पद्मसागरसूरीश्वरजी म.सा. की, जिन्होंने कोबा लाइब्रेरी के माध्यम से दुष्प्राप्य ग्रन्थों को उपलब्ध करवाया तथा सहृदयता एवं उदारता के साथ मेरी शंकाओं का समाधान कर प्रगति पाथेय प्रदान किया। उन्हीं के निश्रावर्ती मनोज्ञ स्वभावी, गणिवर्य्य श्री प्रशांतसागरजी म.सा. की भी मैं ऋणी हूँ जिन्होंने निस्वार्थ भाव से सदा सहयोग करते हुए मुझे उत्साहित रखा।

मैं कृतज्ञ हूँ सरस्वती साधना पथ प्रदीप, प.पू. ज्येष्ठ भ्राता श्री विमलसागरजी म.सा. के प्रति, जिन्होंने इस शोध कार्य की मूल्यवत्ता का आकलन करते हुए मेरी अंतश्चेतना को जागृत रखा।

मैं सदैव उपकृत रहूंगी प्रवचन प्रभावक, शास्त्र वेत्ता, सन्मार्ग प्रणेता प.पू. आचार्य श्री कीर्तियश सूरीश्वरजी म.सा एवं आगम मर्मज्ञ, संयमोत्कर्षी प.पू. रत्नयश विजयजी म.सा के प्रति, जिन्होंने नवीन ग्रन्थों की जानकारी देने के साथ-साथ शोध कार्य का प्रणयन करते हुए इसे विबुध जन ग्राह्य बनाकर पूर्णता प्रदान की।

मैं आस्था प्रणत हूँ जगवल्लभ प.पू. आचार्य श्री राजयश सूरीश्वरजी म.सा एवं वात्सल्य मूर्ति प.पू. बहन महाराज वाचंयमा श्रीजी म.सा के प्रति, जिन्होंने समय-समय पर अपने अनुभव ज्ञान द्वारा मेरी दुविधाओं का निवारण कर इस कार्य को भव्यता प्रदान की।

मैं नतमस्तक हूँ समन्वय साधक, भक्त सम्मोहक, साहित्य उद्धारक, अचल गच्छाधिपति प.पू. आचार्य श्री गुणरत्नसागर सूरीश्वरजी म.सा. के चरणों में, जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से मेरी जिज्ञासाओं का समाधान करके मेरे कार्य को आगे बढ़ाया।

मैं आस्था प्रणत हूँ लाडनूं विश्व भारती के प्रेरणा पुरुष, अनेक ग्रन्थों के सृजनहार, कुशल अनुशास्ता, साहित्य मनीषी आचार्य श्री तुलसी एवं आचार्य श्री महाप्रज्ञजी के चरणों में, जिनके सृजनात्मक कार्यों ने इस साफल्य में आधार भूमि प्रदान की।

इसी श्रृंखला में श्रद्धानत हूँ त्रिस्तुतिक गच्छाधिपति, पुण्यपुंज प.पू. आचार्य श्री जयन्तसेन सूरीश्वरजी म.सा. के प्रति, जिन्होंने हर संभव स्व सामाचारी विषयक तथ्यों से अवगत करवाते हुए इस शोध को सुलभ बनाया।

मैं श्रद्धावनत हूँ विश्व प्रसिद्ध, प्रवचन प्रभावक, क्रान्तिकारी सन्त प्रवर श्री तरुणसागरजी म.सा के प्रति, जिन्होंने यथोचित सुझाव देकर रहस्य अन्वेषण में सहायता प्रदान की।

मैं आभारी हूँ मृदुल स्वभावी प.पू. पीयूषसागरजी म.सा. एवं गूढ़ स्वाध्यायी प. पू. सम्यक्रत्नसागरजी म.सा. की जिन्होंने सदैव मेरा उत्साह वर्धन किया।

उपकार स्मरण की इस कड़ी में अन्तर्हृदय से उपकृत हूँ महत्तरा पद विभूषिता पू. विनीता श्रीजी म.सा., प्रवर्तिनी प्रवरा पू. चन्द्रप्रभा श्रीजी म.सा., सरलमना पू. चन्द्रकला श्रीजी म.सा., मरूधर ज्योति पू. मणिप्रभा श्रीजी म.सा., स्नेह गंगोत्री पू. हेमप्रभा श्रीजी म.सा. एवं अन्य सभी समादृत साध्वी मंडल के प्रति, जिनके अन्तर मन की मंगल कामनाओं ने मेरे मार्ग को निष्कंटक बनाया तथा आत्मीयता प्रदान कर सम्यक् ज्ञान के अर्जन को प्रवर्द्धमान रखा।

जिनकी मृदुता, दृढ़ता, गंभीरता, क्रियानिष्ठता एवं अनुभव प्रौढ़ता ने सुज्ञजनों को सन्मार्ग प्रदान किया, जिनका निश्छल व्यवहार **'जहा अंतो तहा बहिं'** का जीवन्त उदाहरण था, जो पंचम आरे में चौथे आरे की साक्षात प्रतिमूर्ति थी, ऐसी श्रद्धालोक की देवता, वात्सल्य वारिधि, प्रवर्त्तिनी महोदया, गुरूवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा के पावन पद्मों में सर्वात्मना वंदन करती हूँ।

मैं उऋण भावों से कृतज्ञ हूँ जप एवं ध्यान की निर्मल ज्योति से प्रकाशमान तथा चारित्र एवं तप की साधना से दीप्तिमान सज्जनमणि प.पू. गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा के प्रति, जिन्होंने मुझ जैसे अनघड़ पत्थर को साकार रूप प्रदान किया।

मैं अन्तर्हृदय से आभारी हूँ मेरे शोध कार्य की प्रारंभकर्त्ता, अनन्य गुरू समर्पिता, ज्येष्ठ गुरू भगिनी पू. प्रियदर्शना श्रीजी म.सा. तथा सेवाभावी पू. दिव्य दर्शना श्रीजी म.सा., स्वनिमग्ना पू. तत्त्वदर्शना श्रीजी म.सा., दृढ़ मनोबली पू. सम्यग्दर्शना श्रीजी म.सा., स्मित वदना पू. शुभदर्शना श्रीजी म.सा., मितभाषी पू. मुदितप्रज्ञा श्रीजी म.सा., समन्वय स्वभावी पू. शीलगुणाजी मृदु भाषिणी साध्वी कनकप्रभाजी, कोमल हृदयी श्रुतदर्शनाजी, प्रसन्न स्वभावी साध्वी संयमप्रज्ञाजी, आदि समस्त गुरु भगिनि मण्डल की, जिन्होंने सामाजिक दायित्त्वों से निवृत्त रखते हुए सद्भावों की सुगन्ध से मेरे मन को तरोताजा रखा।

मेरी शोध यात्रा को पूर्णता के शिखर पर पहुँचाने में अनन्य सहयोगिनी, सहज स्वभावी **स्थितप्रज्ञा जी** एवं विनम्रशीला **संवेगप्रज्ञा जी** तथा इसी के साथ अल्प भाषिणी **सुश्री मोनिका बैराठी** एवं शान्त स्वभावी **सुश्री सीमा छाजेड़** को साधुवाद देती हुई उनके उज्ज्वल भविष्य की तहेदिल से कामना करती हूँ।

मैं अन्तस्थ भावों से उपकृत हूँ श्रुत समाज के गौरव पुरुष, ज्ञान पिपासुओं के लिए सद्ज्ञान प्रपा के समान, आदरणीय डॉ. सागरमलजी के प्रति, जिनका सफल निर्देशन इस शोध कार्य का मूलाधार है।

इस बृहद् शोध के कार्य काल में हर तरह की सेवाओं के लिए तत्पर, उदारहृदयी श्रीमती मंजुजी सुनीलजी बोथरा (रायपुर) के भक्तिभाव की अनुशंसा करती हूँ।

जिन्होंने दूरस्थ रहकर भी इस ज्ञान यज्ञ को निर्बाध रूप से प्रवाहमान बनाए रखने में यथोचित सेवाएँ प्रदान की, ऐसी श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख (जगदलपुर) भी साधुवाद के पात्र हैं।

सेवा स्मरण की इस श्रृंखला में मैं ऋणी हूँ कोलकाता निवासी, अनन्य सेवाभावी श्री चन्द्रकुमारजी शकुंतलाजी मुणोत की, जिन्होंने ढ़ाई साल के कोलकाता प्रवास में भ्रातातुल्य स्नेह एवं सहयोग प्रदान करते हुए अपनी सेवाएँ अनवरत प्रदान की। श्री खेमचंदजी किरणजी बांठिया की अविस्मरणीय सेवाएँ भी इस शोध यात्रा की पूर्णता में अनन्य सहयोगी बनी।

सहयोग की इस श्रृंखला में मैं आभारी हूँ, टाटा निवासी श्री जिनेन्द्रजी नीलमजी बैद की, जिनके अथक प्रयासों से मुद्राओं का रेखांकन संभव हो पाया।

अनुमोदना की इस कड़ी में कोलकाता निवासी श्री कान्तिलालजी मुकीम, मणिलालजी दूसाज, कमलचंदजी धांधिया, विमलचन्दजी महमवाल, विजयेन्द्रजी संखलेचा, अजयजी बोथरा, महेन्द्रजी नाहटा, पन्नालाल दूगड़, निर्मलजी कोचर आदि की सेवाओं को विस्मृत नहीं कर सकती हूँ।

बनारस निवासी श्री अश्विनभाई शाह, ललितजी भंसाली, कीर्ति भाई ध्रुव दिव्येशजी शाह, राहुलजी गांधी आदि भी साधुवाद के अधिकारी हैं जिन्होंने अपनी आत्मियता एवं नि:स्वार्थ सेवाएँ बनारस प्रवास के बाद भी बनाए रखी।

इसी कड़ी में बनारस सेन्ट्रल लाइब्रेरी के मुख्य लाइब्रेरियन श्री संजयजी सर्राफ एवं श्री विवेकानन्दजी जैन की भी मैं अत्यंत आभारी हूँ कि उन्होंने

पुस्तकें उपलब्ध करवाने में अपना अनन्य सहयोग दिया।

इसी श्रृंखला में श्री कोलकाता संघ, मुंबई संघ, जयपुर संघ, मालेगाँव संघ, अहमदाबाद संघ, बनारस संघ, शाजापुर संघ, टाटा संघ के पदाधिकारियों एवं धर्म समर्पित सदस्यों ने स्थानीय सेवाएँ प्रदान कर इस शोध यात्रा को सरल एवं सुगम बनाया अत: उन सभी को साधुवाद देती हूँ।

इस शोध कार्य को प्रामाणिक बनाने में कोबा लाइब्रेरी (अहमदाबाद) एवं वहाँ के सदस्यगण मनोज भाई, केतन भाई, अरूणजी आदि, एल. डी. इन्स्टीट्यूट (अहमदाबाद), प्राच्य विद्यापीठ (शाजापुर), पार्श्वनाथ शोध संस्थान (वाराणसी) एवं लाइब्रेरियन ओमप्रकाश सिंह तथा संस्थान अधिकारियों ने यथेच्छित पुस्तकों के आदान-प्रदान में जो सहयोग दिया, उसके लिए मैं उनकी सदैव आभारी रहूंगी।

प्रस्तुत कार्य को जन समुदाय के लिए उपयोगी बनाने में जिनकी पुण्यराशि संबल बनी है उन समस्त श्रुतप्रेमी लाभार्थी परिवार की उन्मुक्त कण्ठ से अनुमोदना करती हूँ।

इन शोध कृतियों को कम्प्यूटराईज्ड, संशोधन एवं सेटिंग करने में अनन्य सहयोगी विमलचन्द्र मिश्रा (वाराणसी) का अत्यन्त आभार मानती हूँ। आपके विनम्र, सुशील एवं सज्जन स्वभाव ने मुझे अनेक बार के प्रूफ संशोधन की चिन्ताओं से सदैव मुक्त रखा। स्वयं के कारोबार को संभालते हुए आपने इस बृहद् कार्य को जिस निष्ठा के साथ पूर्ण किया है यह सामान्य व्यक्ति के लिए नामुमकिन है।

इसी श्रृंखला में शांत स्वभावी श्री रंजनजी, रोहितजी कोठारी (कोलकाता) भी धन्यवाद के पात्र हैं। सम्पूर्ण पुस्तकों के प्रकाशन एवं कॅवर डिजाइनिंग में अप्रमत्त होकर अंतरमन से सहयोग दिया। शोध प्रबंध की सम्पूर्ण कॉपी बनाने का लाभ लेकर आप श्रुत संवर्धन में भी परम हेतुभूत बने हैं।

23 खण्डों को आकर्षक एवं चित्तरंजक कॅवर से नयनरम्य बनाने के लिए कॅवर डिजाईनर शंभु भट्टाचार्य की भी मैं तहेदिल से आभारी हूँ।

इसे संयोग कहूँ या विधि की विचित्रता? मेरी प्रथम शोध यात्रा की संकल्पना लगभग 17 वर्ष पूर्व जहाँ से प्रारम्भ हुई वहीं पर उसकी चरम पूर्णाहुति भी हो रही है। श्री जिनरंगसूरि पौशाल (कोलकाता) अध्ययन योग्य सर्वश्रेष्ठ

स्थान है। यहाँ के शान्त-प्रशान्त परमाणु मनोयोग को अध्ययन के प्रति जोड़ने में अत्यन्त सहायक बने हैं। इसी के साथ मैं साधुवाद देती हूँ श्रीजिनरंगसूरि पौशाल, कोलकाता के ट्रस्टी श्री कमलचंदजी धांधिया, कान्तिलालजी मुकीम, विमलचंदजी महमवाल, मणिलालजी दूसाज आदि समस्त भूतपूर्व एवं वर्तमान ट्रस्टियों को, जिन्होंने अध्ययन एवं स्थान की महत्त्वपूर्ण सुविधा के साथ कम्पोजिंग में भी पूर्ण रूप से अर्थ सहयोग दिया। इन्हीं की पितृवत छत्र-छाया में यह शोध कार्य शिखर तक पहुँच पाया है। इस अवधि के दौरान ग्रन्थ आदि की आवश्यक सुविधाओं हेतु शाजापुर, बनारस आदि शोध संस्थानों में प्रवास रहा। उन दिनों से ही जौहरी संघ के पदाधिकारी गण कान्तिलालजी मुकीम, मणिलालजी दूसाज, विमलचन्दजी महमवाल आदि बार-बार निवेदन करते रहे कि आप पूर्वी क्षेत्र की तरफ एक बार फिर से पधारिए। हम आपके अध्ययन की पूर्ण व्यवस्था करेंगे। उन्हीं की सद्भावनाओं के फलस्वरूप शायद इस कार्य का अंतिम प्रणयन यहाँ हो रहा है। इसी के साथ शोध प्रतियों के मुद्रण कार्य में भी श्री जिनरंगसूरि पौशाल ट्रस्टियों का हार्दिक सहयोग रहा है।

अन्ततः यही कहूँगी–

प्रभु वीर वाणी उद्यान की, सौरभ से महकी जो कृति ।
जड़ वक्र बुद्धि से जो मैंने, की हो इसकी विकृति ।
अविनय, अवज्ञा, आशातना, यदि हुई हो श्रुत की वंचना ।
मिच्छामि दुक्कडम् देती हूँ, स्वीकार हो मुझ प्रार्थना ।।

●

मिच्छामि दुक्कडं

आगम मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, जैन जगत की अनुपम साधिका, प्रवर्त्तिनी पद सुशोभिता, खरतरगच्छ दीपिका पू. गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की अन्तरंग कृपा से आज छोटे से लक्ष्य को पूर्ण कर पाई हूँ।

यहाँ शोध कार्य के प्रणयन के दौरान उपस्थित हुए कुछ संशय युक्त तथ्यों का समाधान करना चाहूँगी-

सर्वप्रथम तो मुनि जीवन की औत्सर्गिक मर्यादाओं के कारण जानते-अजानते कई विषय अनछुए रह गए हैं। उपलब्ध सामग्री के अनुसार ही विषय का स्पष्टीकरण हो पाया है अतः कहीं-कहीं सन्दर्भित विषय में अपूर्णता भी प्रतीत हो सकती है।

दूसरा जैन संप्रदाय में साध्वी वर्ग के लिए कुछ नियत मर्यादाएँ हैं जैसे प्रतिष्ठा, अंजनशलाका, उपस्थापना, पदस्थापना आदि करवाने एवं आगम शास्त्रों को पढ़ाने का अधिकार साध्वी समुदाय को नहीं है। योगोद्वहन, उपधान आदि क्रियाओं का अधिकार मात्र पदस्थापना योग्य मुनि भगवंतों को ही है। इन परिस्थितियों में प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या एक साध्वी अनधिकृत एवं अननुभूत विषयों पर अपना चिन्तन प्रस्तुत कर सकती है?

इसके जवाब में यही कहा जा सकता है कि 'जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' यह शोध का विषय होने से यत्किंचित लिखना आवश्यक था अतः गुरु आज्ञा पूर्वक विद्वद्वर आचार्य भगवंतों से दिशा निर्देश एवं सम्यक जानकारी प्राप्तकर प्रामाणिक उल्लेख करने का प्रयास किया है।

तीसरा प्रायश्चित्त देने का अधिकार यद्यपि गीतार्थ मुनि भगवंतों को है किन्तु प्रायश्चित्त विधि अधिकार में जीत (प्रचलित) व्यवहार के अनुसार प्रायश्चित्त योग्य तप का वर्णन किया है। इसका उद्देश्य मात्र यही है कि भव्य जीव पाप भीरू बनें एवं दोषकारी क्रियाओं से परिचित होवें। कोई भी आत्मार्थी इसे देखकर स्वयं प्रायश्चित्त ग्रहण न करें।

इस शोध के अन्तर्गत कई विषय ऐसे हैं जिनके लिए क्षेत्र की दूरी के कारण यथोचित जानकारी एवं समाधान प्राप्त नहीं हो पाए, अतः तद्विषयक पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं कर पाई हूँ।

कुछ लोगों के मन में यह शंका भी उत्पन्न हो सकती है कि मुद्रा विधि के अधिकार में हिन्दू, बौद्ध, नाट्य आदि मुद्राओं पर इतना गूढ़ अध्ययन क्यों?

मुद्रा एक यौगिक प्रयोग है। इसका सामान्य हेतु जो भी हो परंतु इसकी अनुभूति आध्यात्मिक एवं शारीरिक स्वस्थता के रूप में ही होती है।

प्रायः मुद्राएँ मानव के दैनिक चर्या से सम्बन्धित है। इतर परम्पराओं का जैन परम्परा के साथ पारस्परिक साम्य-वैषम्य भी रहा है अतः इनके सद्पक्षों को उजागर करने हेतु अन्य मुद्राओं पर भी गूढ़ अन्वेषण किया है।

यहाँ यह भी कहना चाहूँगी कि शोध विषय की विराटता, समय की प्रतिबद्धता, समुचित साधनों की अल्पता, साधु जीवन की मर्यादा, अनुभव की न्यूनता, व्यावहारिक एवं सामान्य ज्ञान की कमी के कारण सभी विषयों का यथायोग्य विश्लेषण नहीं भी हो पाया है। हाँ, विधि-विधानों के अब तक अस्पृष्ट पन्नों को खोलने का प्रयत्न अवश्य किया है। प्रज्ञा सम्पन्न मुनि वर्ग इसके अनेक रहस्य पटलों को उद्घाटित कर सकेंगे। यह एक प्रारंभ मात्र है।

अन्ततः जिनवाणी का विस्तार करते हुए एवं शोध विषय का अन्वेषण करते हुए अल्पमति के कारण शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा की हो, आचार्यों के गूढ़ार्थ को यथारूप न समझा हो, अपने मत को रखते हुए जाने-अनजाने अर्हतवाणी का कटाक्ष किया हो, जिनवाणी का अपलाप किया हो, भाषा रूप में उसे सम्यक अभिव्यक्ति न दी हो, अन्य किसी के मत को लिखते हुए उसका संदर्भ न दिया हो अथवा अन्य कुछ भी जिनाज्ञा विरुद्ध किया हो या लिखा हो तो उसके लिए त्रिकरण-त्रियोगपूर्वक श्रुत रूप जिन धर्म से मिच्छामि दुक्कड़म् करती हूँ।

●

अनुक्रमणिका

अध्याय-1 : मुद्राओं से प्रभावित सप्त चक्र आदि के विशिष्ट प्रभाव **1-29**

1. सप्त चक्रों पर मुद्रा के प्रभाव 2. ग्रन्थि तन्त्रों पर मुद्रा के प्रभाव 3. चैतन्य केन्द्रों पर मुद्रा के प्रभाव 4. पाँच तत्त्वों पर मुद्रा के प्रभाव

अध्याय-2 : भगवान बुद्ध की मुख्य 5 एवं सामान्य 40 मुद्राओं की रहस्यपूर्ण विधियाँ **30-95**

1. अभय मुद्रा 2. ध्यान मुद्रा 3. भूमिस्पर्श मुद्रा 4. व्याख्यान मुद्रा 5. धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा 6. पेंग्-तुक्कर किरिय मुद्रा 7. पेंग् सुंग् रब्मथुपयस् मुद्रा 8. पेंग् लोय् तर्ड मुद्रा 9. पेंग् सुंग् रब्यक् मुद्रा 10. भूमिस्पर्श मुद्रा 11. पेंग् लिला मुद्रा 12. पेंग् तवैनेत्र मुद्रा 13. पेंग्-छोंग्-क्रोम्-केडव् मुद्रा 14. पेंग् फ्रसर्न्भत्र मुद्रा 15. पेंग्-छन्-समोर मुद्रा 16. पेंग् लिला मुद्रा 17. पेंग् फ्रातर्न एहि भिक्खु मुद्रा 18. पेंग् प्लोंग्-अर्यु-संग्खर्न मुद्रा 19. अभय मुद्रा 20. पेंग्-उह्म भत्र मुद्रा 21. पेंग् पत्तकित् मुद्रा 22. पेंग् फ्रतब्रे खनन् मुद्रा 23. पेंग्-फ्रा-कैत् ततु मुद्रा 24. पेंग् हम्यत् मुद्रा 25. पेंग् पलेलै मुद्रा 26. पेंग्-हम्-फ्रा-काएँ-चन् मुद्रा 27. पेंग् नकवलोक मुद्रा 28. पेंग् नकवलोक मुद्रा 29. पेंग्-सोग्रुपुत्कंग मुद्रा 30. पेंग्-सोंग्-नम्-फोन् मुद्रा 31. पेंग् फ्रतोप्युन् मुद्रा 32. पेंग्-खोर्-फोन्-मुद्रा 33. पेंग-रम्-प्वेंग मुद्रा 34. पेंग्-संहलुप्नम्म मुअंग दुए बहद् मुद्रा 35. पेंग्-सोंग-पिचरनचरथम् मुद्रा 36. पेंग्-फ्रदित्थंरोय्-फ्रबुद्धबत्र मुद्रा 37. पेंग् प्रोंगह् युक्षन्खन् मुद्रा 38. पेंग्-रब्-फोल्म-म्वेंग मुद्रा 39. पेग्-खब्क्र वक्कलि मुद्रा 40. पेंग्-परिनिप्फर्न मुद्रा 41. पेंग्-सवोइ मथुपयस् मुद्रा 42. पेंग्-सेदेत्फुत्थ दन्नेर्न्पै मुद्रा 43. पेंग्-सोंखेम् मुद्रा 44. पेंग्-थोंग्-तंग्- एततक्क सतर्न मुद्रा 45. पेंग्-पेर्द्लोक मुद्रा।

अध्याय-3 : सप्तरत्न सम्बन्धी मुद्राओं का सोद्देश्य स्वरूप 96-107

1. चक्ररत्न मुद्रा 2. मणिरत्न मुद्रा 3. स्त्रीरत्न मुद्रा 4. पुरुषरत्न मुद्रा 5. हस्तिरत्न मुद्रा 6. अश्वरत्न मुद्रा 7. उपरत्न मुद्रा 8. खड्गरत्न मुद्रा

अध्याय-4 : अष्ट मंगल से सम्बन्धित मुद्राओं का स्वरूप एवं मूल्य 108-139

1. निधि घट मुद्रा 2. पद्म कुंजर मुद्रा 3. श्री वत्स्य मुद्रा 4. सितात पत्र मुद्रा 5. सुवर्ण चक्र मुद्रा 6. वज्र आलोक मुद्रा 7. वज्र दर्शे मुद्रा 8. वज्र धर्मे मुद्रा 9. वज्र धूपे मुद्रा 10. वज्र गंधे मुद्रा 11. वज्र गीते मुद्रा 12. वज्र हास्ये मुद्रा 13. वज्र लास्ये मुद्रा 14. वज्र मृदंगे मुद्रा 15. वज्र मुरजे मुद्रा 16. वज्र नृत्ये मुद्रा 17. वज्र रास्ये मुद्रा 18. वज्र पुष्पे मुद्रा 19. वज्र स्पर्शे मुद्रा 20. वज्र वंशे मुद्रा 21. वज्र वीने मुद्रा 22. कनक मत्स्ये मुद्रा 23. कुण्ड ध्वज मुद्रा 24. शंखावर्त्त मुद्रा।

अध्याय-5 : अठारह कर्त्तव्य सम्बन्धी मुद्राओं का सविधि विश्लेषण 140-153

1. बुत्सु बु-सम्मय-इन् मुद्रा 2. चतुर दिग् बंध मुद्रा 3. हयग्रीवा मुद्रा 4. क-इन् मुद्रा 5. कोंगो-मो-इन् मुद्रा 6. पुष्पमाला मुद्रा 7. रत्न वाहन मुद्रा 8. शौ-छ-सै-इन् मुद्रा 9. जौ-जु-म-को-कु इन् मुद्रा 10. महावज्र चक्र मुद्रा 11. वज्र बंध मुद्रा।

अध्याय-6 : बारह द्रव्य हाथ मिलन सम्बन्धी मुद्राओं का प्रभावी स्वरूप 154-166

1. बिहररै सत-गस्सहौ मुद्रा 2. बोद गस्सहौ मुद्रा 3. फुकुशु गस्सहौ मुद्रा 4. हरनम गस्सहौ मुद्रा 5. कुम्मर गस्सहौ मुद्रा 6. मिहरित गस्सहौ मुद्रा 7. नेबिन गस्सहौ मुद्रा 8. ओत्तनश गस्सहौ मुद्रा 9. संफुट गस्सहौ मुद्रा 10. तैरै गस्सहौ मुद्रा 11. अदर गस्सहौ मुद्रा।

अध्याय-7 : म-म-मडोस सम्बन्धी मुद्राओं का प्रयोग कब और क्यों? 167-175

1. सर्व धर्मः मुद्रा 2. सर्व तथा गतेभ्यो मुद्रा 3. वज्र अमृत कुण्डली मुद्रा 4. सर्व तथागत अवलोकिते मुद्रा 5. ज्ञान अवलोकिते मुद्रा 6. समन्त बुद्धनम् मुद्रा।

अध्याय-8 : जापानी बौद्ध में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक स्वरूप 176-272

1. अभिषेक गुह्य मुद्रा 2. अधिष्ठान मुद्रा 2. अग्निचक्र शमन मुद्रा-I 4. अग्निचक्र शमन मुद्रा-II 5. अग्नि ज्वाला मुद्रा 6. अग्नि शाला मुद्रा 7. आह्वान मुद्रा 8. अजण्ट-टेम्बोरिन्-इन् मुद्रा 9. अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा-I 10. अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा-II 11. अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा-III 12. अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा-IV 13. अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा-V 14. अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा-6 15. अन्-आय-इन् मुद्रा 16. अन्-आय-शोशु-इन् मुद्रा 17. अंजलि मुद्रा 18. अनुचित्त मुद्रा 19. अन्जन्-इन् मुद्रा 20. बसर-उन्-कोंगौ-इन् मुद्रा-1 21. बसर-उन्-कोंगौ-इन् मुद्रा-II 22. बुद्धालोचनी मुद्रा 23. बुद्धाश्रमण मुद्रा 24. बुप्पत्सु-इन् मुद्रा 25. चक्र मुद्रा 26. चक्रवर्ती मुद्रा 27. चि-केन-इन् मुद्रा-I 28. चि-केन-इन् मुद्रा-II 29. चिकु-चौ-शौ-इन् मुद्रा 30. गगनगंज मुद्रा-I 31. गगनगंज मुद्रा-II 32. गणधारन-टेम्बौरिन्-इन् मुद्रा 33. गंधर्वराज मुद्रा 34. गे-बकु-केन-इन् मुद्रा-I-II 35. गौ-बुकु-इन् मुद्रा 36. हयग्रीवा मुद्रा 37. हेमन्त मुद्रा 38. हौयूजि-टेम्बौरिन्-इन् मुद्रा 39. ईश्वर मुद्रा 40. ज्ञान मुद्रा 41. कन्शुकुन्देन्-इन् मुद्रा 42. कर्म-आकाशगर्भ मुद्रा 43. कटक मुद्रा 44. किचिजौ-इन् मुद्रा 45. किम्यौ-गस्सहौ मुद्रा 46. कोंगौ-गस्सहौ मुद्रा 47. कोंगौ-केन्-इन् मुद्रा-I-III 48. नैबकु-केन्-इन् मुद्रा-I-III 49. नीव-इन् मुद्रा 50. न्यारै-केन्-इन् मुद्रा 51. ओंग्यौ-इन् मुद्रा-I-III 52. पुष्पमाला मुद्रा 53. रागराज मुद्रा 54. रत्नघट मुद्रा 55. रत्नप्रभा आकाशगर्भ मुद्रा 56. रेंजे-केन्-इन् मुद्रा 57. रूप मुद्रा 58. सहस्त्रभुजा अवलोकितेश्वर मुद्रा 59. संकै-सै-शौ-इन् मुद्रा 60. सन्-कौ-छौ-इन् मुद्रा 61. सेगन्-सेमुइ-इन् मुद्रा 62. सेमुइ-

इन् मुद्रा 63. शब्द मुद्रा-I-II 64. शक्र मुद्रा 65. शाक्यमुनि मुद्रा 66. शुमि-सेन्-हौ-इन् मुद्रा 67. सम्मनिंग-सिन्स मुद्रा 68. सुप्रतिष्ठ मुद्रा 69. सूत्र मुद्रा 70. त्रैलोक्य विजय मुद्रा 71. वज्र मुद्रा-I-III 72. वज्र आकाशगर्भ मुद्रा 73. वज्रांजलि मुद्रा 74. वज्रकुल मुद्रा 75. वितर्क मुद्रा।

अध्याय-9 : भारतीय बौद्ध में प्रचलित मुद्राओं का स्वरूप एवं उनका महत्त्व 273-298

1. आलोक मुद्रा 2. अधर्म मुद्रा 2.बाम् मुद्रा 4. भूतडामर मुद्रा 5. धूप मुद्रा 6. गंध मुद्रा 12. होह् मुद्रा 8. हूम् मुद्रा 9. जह् मुद्रा 10. करन मुद्रा 11. क्षेपण मुद्रा 12. मंडल मुद्रा 13. नैवेद्य मुद्रा 14. पाद्यम् मुद्रा 15. पुष्पे मुद्रा 16. सर्व बुद्ध-बोधिसत्त्वानाम् मुद्रा 17. तोर्म मुद्रा 18. त्रिशरणा मुद्रा 19. विकसित पद्म मुद्रा।

अध्याय-10 : गर्भधातु-वज्रधातु मण्डल सम्बन्धी मुद्राओं की विधियाँ एवं तात्कालिक प्रभाव 299-449

1. अचल-अग्नि मुद्रा 2. अग्नि चक्र मुद्रा 3. अग्रज मुद्रा 4. अक्क-इन् मुद्रा 5. अंकुश मुद्रा 6. अनुज मुद्रा 7. अष्टदल पद्म मुद्रा 8. बाह्य बंध मुद्रा 9. बकु-जौ-इन् मुद्रा 10. बाण मुद्रा 11. बोन्-जिकि-इन् मुद्रा 12. बु-बोसत्सु-इन् मुद्रा 13. बू-मौ-इन् मुद्रा 14. बु-जौ-इन् मुद्रा 15. चकषुर मुद्रा 16. चिंतामणि मुद्रा 17. चित्त गुह्य मुद्रा 18. चौ-बुत्सु-फु-इन् मुद्रा 19. चौ-कोंगौ-रेंजे-इन् मुद्रा 20. चौ-नेन-जु-इन् मुद्रा 21. चौ-जइ-इन् मुद्रा 22. दै-कै-इन् मुद्रा 23. दै-ये-तो-नो-इन् मुद्रा 24. धारणी अवलोकितेश्वर मुद्रा 25. धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा 26. धर्मचक्र प्रवर्त्तन बोधिसत्त्व वर्ग मुद्रा 27. धर्म प्रवर्त्तन मुद्रा 28. धृतराष्ट्र मुद्रा 29. धूप मुद्रा 34. फु-कौ-इन् मुद्रा 35. फु-कु-यौ-इन् मुद्रा 36. फुन्नु-केन-इन् मुद्रा 37. फु-त्सु-कु-यौ-इन् मुद्रा 38. गे-बकु-गो-कौ मुद्रा 39. गे-इन्-मुद्रा-I-IV 40. गे-कै-इन् मुद्रा 41. घण्टा-वदना मुद्रा 42. गो-सन्-जे मुद्रा 43. हकु-शौ-इन् मुद्रा 44. हाय-कौ-इन् मुद्रा 45. होनजोन-बु-जौ-नो-इन् मुद्रा 46. होरनो-इन् मुद्रा 47. इस्सइ-हौ-ब्यो-दौ-कै-गो मुद्रा 48. जौ-रेंजे-इन् मुद्रा 49. ज्ञान श्री मुद्रा 50. जौ-प्यूदौ-इन् मुद्रा 51. जौ-इन् मुद्रा-I-VIII 52. जु-नि-कुशि-जि-शिन्-इन् मुद्रा 53. कै-मोन्-इन् मुद्रा

54. कै-शिन्-इन् मुद्रा 55. काजि-कौ-सुइ-इन् मुद्रा 56. कवच मुद्रा-1 57. कवच मुद्रा-2 58. कयेन शौ-इन् मुद्रा 59. के-बोसत्सु इन् मुद्रा 60. खड्ग मुद्रा-I-III 61. किम्बेइ-इन् मुद्रा 62. कौ-तकु मुद्रा 63. कोंगौ-रिन्-इन् मुद्रा 64. लोचन मुद्रा 65. महाआकाश गर्भ मुद्रा 66. महाज्ञान खड्ग मुद्रा 67. महाकाल मुद्रा 68. महाकर्म मुद्रा 69. मु-नो-शौ-शु-गौ-इन् मुद्रा 70. मुशोफुशि-इन् मुद्रा-I-III 71. नन्-कन्-निन्-इन् मुद्रा 72. न्योरै-होस्सौ-इन् मुद्रा 73. न्यारै-सकु-इन् मुद्रा 74. न्यारै-शिन्-इन् मुद्रा 75. न्यारै-जो-इन् मुद्रा 76. पाश मुद्रा 77. पोथी मुद्रा 78. पूर्ण मुद्रा 79. रत्न मुद्रा-I-II 80. रत्न कलश मुद्रा 81. रै-इन् मुद्रा 82. रेंजे-बु-शु-इन् मुद्रा 83. रेन्-रेंजे-इन् मुद्रा 84. स-इन् मुद्रा 85. सै-जै-इन् मुद्रा 86. सकु-इन् मुद्रा 87. सन-कौ-इन् मुद्रा-I,II 88. शंख मुद्रा-I,II 89. शै-कौ-इन् मुद्रा 90. सीमाबन्ध मुद्रा 91. सौ-कौ-शु-गौ-इन् मुद्रा 92. स्थिराबोधि मुद्रा 93. तथागत दंष्ट्र मुद्रा 94. तथागत कुक्षि मुद्रा 95. तथागत वचन मुद्रा 96. तेजस्-बोधिसत्त्व मुद्रा 97. तेम्बौरिन्-इन् मुद्रा 98. तौ-म्यो-इन् मुद्रा 99. त्रिशूल मुद्रा-I,II 100. उपकेशिनी मुद्रा 101. उपाय पारमिता मुद्रा 102. उष्णीय मुद्रा 103. वैश्रवण मुद्रा 104. वज्र-कश्यप मुद्रा-I-II 105. वज्र माला मुद्रा 106. वज्रमुष्टि मुद्रा-I,III 107. वज्रसत्त्व मुद्रा 108. वज्र श्री मुद्रा 109. वर-काय समय मुद्रा 110. वायु मुद्रा 111. विद्या मुद्रा 112. जेन-इन् मुद्रा 113. जू-कौ-इन् मुद्रा।

अध्याय-11 : बाह्य एवं अन्तरंग चिकित्सा में उपयोगी मुद्राएँ **450-465**

1. शारीरिक समस्याओं के निदान में प्रभावी मुद्राएँ 2. मानसिक समस्याओं के निदान में प्रभावी मुद्राएँ 3. आध्यात्मिक समस्याओं के निदान में प्रभावी मुद्राएँ।

सहायक ग्रन्थ सूची **466-469**

●

अध्याय-1

मुद्राओं से प्रभावित सप्त चक्रादि के विशिष्ट प्रभाव

मुद्रा एक ऐसी योग पद्धति है जिसके माध्यम से प्राचीन साधकों एवं दार्शनिकों के अनुभव, ज्ञान एवं साधना पद्धति को आधुनिक वैज्ञानिक संदर्भों में प्रतिपादित किया जा सकता है। यह प्राच्य विद्या वर्तमान युग को एक नई दिशा देने में सक्षम है। इसके द्वारा आज व्यक्तिगत स्तर पर उभर रही समस्याओं का ही नहीं अपितु सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय आदि अनेक समस्याओं का निवारण किया जा सकता है। मुद्रा दैनिक क्रियाओं में उपयोगी एक महत्त्वपूर्ण विधि है और इसका विधिवत नियमित प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों में निर्णायक भूमिका अदा कर सकता है।

हमारी शारीरिक संरचना एक जटिल मशीन के समान है। इसके विभिन्न पुर्जे (Parts) विविध कार्य करते हैं। मुद्रा प्रयोग के द्वारा उन सभी को एक साथ प्रभावित किया जा सकता है। इस योग के द्वारा शरीरस्थ मूलाधार आदि सप्त चक्रों को जागृत कर मानसिक, शारीरिक एवं भावनात्मक विकृतियों पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। इसी के साथ मुद्रा योग अन्त:स्त्रावी ग्रंथियाँ, चैतन्य केन्द्र एवं पंच तत्त्व आदि को संतुलित एवं नियंत्रित रखते हुए स्वस्थ, सुसंस्कृत एवं सुदृढ़ समाज के निर्माण में सहयोगी बनता है।

सप्त चक्रों पर मुद्रा के प्रभाव

किसी भी मुद्रा का प्रयोग एवं उसकी साधना जागरण का अभूतपूर्व माध्यम होता है। ये सात चक्र आध्यात्मिक जगत एवं भौतिक जगत को अनेक प्रकार से प्रभावित करते हैं। सात चक्रों के नाम इस प्रकार हैं–

1. मूलाधार चक्र 2. स्वाधिष्ठान चक्र 3. मणिपुर चक्र 4. अनाहत चक्र 5. विशुद्धि चक्र 6. आज्ञा चक्र और 7. सहस्रार चक्र।

1. मूलाधार चक्र

प्रथम मूलाधार चक्र गुप्तांग एवं गुदा के बीच पेरिनियम में स्थित है। इसे मूलाधार, मूल आधार अथवा प्रथम चक्र के रूप में जाना जाता है। मूलाधार चक्र प्रभावित होने से साधक पर निम्न प्रभाव देखे जा सकते हैं-

इस चक्र का मूल कार्य ऊर्जा का उत्पादन है। यही बलशाली आन्तरिक ऊर्जा व्यक्तित्व विकास करते हुए भावनात्मक सुरक्षा प्रदान करती है, आत्मविश्वास को सुदृढ़ बनाती है। यह ऊर्जा जागृत न हो तो व्यक्ति Over confident अथवा Low confident हो जाता है।

इस चक्र में रूकावट होने पर अथवा इसके सक्रिय न होने पर समस्त चक्रों पर दुष्प्रभाव पड़ता है, क्योंकि यह प्रथम चक्र होने से सभी का आधार चक्र है। इसके असंतुलन से व्यक्ति सुनता कम और बोलता ज्यादा है। वह परिस्थितियों को भी सहज स्वीकार नहीं कर पाता।

इस चक्र के जागृत होने से क्रोध, पागलपन, घृणा, वस्तु के प्रति अत्यधिक लगाव, अनियंत्रण, अवसाद, अहंकार, वैचारिक एवं भावनात्मक अस्थिरता, ईर्ष्या, आलस्य, अपेक्षा वृत्ति, बड़बड़ाना, (Depression) आत्महत्या के प्रयास आदि कई भावनात्मक समस्याएँ नियंत्रित होती हैं तथा दुष्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने में सहयोग मिलता है।

सुसंस्कारों के निर्माण में यह चक्र विशेष सहायक बनता है। घटती संवेदनाओं एवं पारिवारिक मूल्यों के पुनर्जागरण में इस चक्र का सक्रिय रहना आवश्यक है। यह चक्र कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करते हुए मृत्यु भय को दूर करता है। इससे साधक आत्मज्ञाता बनकर स्वस्वरूप को प्राप्त करते हुए अन्य कई आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करता है।

इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध प्रजनन तंत्र, गुर्दे एवं गुप्तांग से है। इसलिए तत्सम्बन्धी रोगों जैसे- पुरुष एवं स्त्री प्रजनन अंगों की समस्या, हस्त दोष, स्वप्न दोष, मासिक धर्म सम्बन्धी विकारों आदि का उपशमन होता है। इसी के साथ कैन्सर, कोष्ठबद्धता, फोड़े, सिरदर्द, हड्डी-जोड़ों आदि की समस्या, शारीरिक कमजोरी, बवासीर, गुर्दे, मांसपेशी आदि रोगों का भी निवारण होता है।

यह चक्र शक्ति केन्द्र एवं गोनाड्स ग्रन्थि के कार्य को प्रभावित करता है अतः इसका संतुलन अथवा असंतुलन शरीर की समस्त गतिविधियों को प्रभावित करता है।

2. स्वाधिष्ठान चक्र

दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र मूलाधार एवं नाभि के मध्य स्थित है। इसे सकराल, यौन, स्वाधिष्ठान एवं द्वितीय चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र में उत्पन्न ऊर्जा काम वासना एवं यौन उत्तेजना को नियंत्रित रखती है। दूसरों से प्रीतिपूर्ण व्यवहार रखने में यह चक्र सहायक बनता है।

स्वाधिष्ठान चक्र प्रभावित होने पर व्यक्ति के जीवन में निम्न प्रभाव देखें जा सकते हैं-

इस चक्र का मूल कार्य प्रजनन तंत्र एवं यौन इच्छाओं को नियंत्रित करना है। इससे सम्बन्धों में मधुरता एवं विश्वास की वृद्धि होती है। इसका असंतुलन या निष्क्रियता कामेच्छाओं को असंतुलित और सम्बन्धों में पारस्परिक अविश्वास की वृद्धि करता है।

प्रथम मूलाधार चक्र यदि सम्यक प्रकार से जागृत हो और साधक को व्यक्तित्त्व बोध अच्छे से हुआ हो तो ही व्यक्ति दूसरे चक्र की ऊर्जा का उपयोग सत्कार्यों में कर सकता है। अतः दूसरा चक्र मुख्य रूप से व्यावहारिक, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन को प्रेम एवं सौहार्द पूर्ण बनाने में सहायक बनता है।

इस चक्र की सक्रियता से भावनात्मक समस्याएँ जैसे- भय, लालसा, असृजनशीलता, अविश्वास, निष्क्रियता, अनाकर्षक व्यवहार, अत्यधिक कामवृत्ति, अकेलापन, नशे की आदत, मानसिक अशांति एवं भावनात्मक अस्थिरता आदि का निवारण होता है।

यह चक्र आत्मा की आन्तरिक शक्तियों एवं गुणों को जागृत करते हुए जीव को निर्भय बनाता है। क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि दुष्वृत्तियों का क्षय करता है। व्यक्तित्व हिमालय की भाँति धवल एवं वाणी प्रभावशाली बनती है। अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है। साधक को आध्यात्मिक उच्चता प्राप्त होती है।

शारीरिक स्तर पर यह चक्र मुख्य रूप से प्रजनन अंग, दोनों पैर एवं गुर्दे आदि को विशेष प्रभावित करता है। इन अंगों से सम्बन्धित रोग जैसे कि पैरों में दर्द, सुजन, गुर्दे के रोग, प्रजनन समस्याएँ, अंडाशय, गर्भाशय की समस्या, यौनी विकार, यौन रोग आदि का शमन होता है। इसी के साथ यह खून की कमी, सूखी त्वचा, खसरा, हर्निया, दाद-खाज आदि चर्म समस्याएँ, नपुंसकता, मासिक धर्म सम्बन्धी विकार, रक्त कैन्सर आदि का भी शमन करता है।

इस चक्र के जागृत होने से स्वास्थ्य केन्द्र एवं प्रजनन ग्रन्थियाँ प्रभावित होती हैं। जिसके द्वारा काम विकार एवं भावनाओं पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

3. मणिपुर चक्र

तीसरा मणिपुर चक्र नाभि में स्थित है। इसे नाभि चक्र या तृतीय चक्र के नाम से भी जाना जाता है। मणिपुर एक ऊर्जा चक्र है। यह साधक को सक्रिय, गतिशील एवं उत्साही बनाता है। इससे साधक आत्मविश्वासी एवं दृढ़ संकल्पी बनता है।

इस चक्र के जागृत होने पर साधक के मनोबल, संकल्पबल एवं आत्मविश्वास में वृद्धि होती है तथा इस चक्र के विकार युक्त होने पर व्यक्ति असक्षम एवं असृजनशील बन जाता है और उसके मनोविकार बढ़ने लगते हैं।

यह तृतीय चक्र व्यक्ति को सामाजिक कर्तव्यों एवं दायित्वों के विषय में जागृत करता है। प्रथम चक्र स्वयं को स्वयं से, द्वितीय चक्र दो व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार से और तृतीय चक्र समूह से जोड़ता है। यह उर्ध्वगमन में भी सहायक बनता है।

इस चक्र के जागरण से क्रोध, भय, अनैकाग्रता, अविश्वास, शंकालु वृत्ति, अखुशहाल जीवन, अविषाद, लालच, अत्यधिक कामवृत्ति आदि भावनात्मक समस्याएँ नियंत्रित होती हैं।

इस चक्र के ध्यान से कई आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होते हैं जैसे कि व्यक्ति अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, क्षमा आदि को स्वीकार कर उत्तरोत्तर प्रगति करता है। अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ और नैसर्प आदि नौ निधियों की शक्ति प्राप्त होती है तथा परोपकार एवं परमार्थ आदि की रूचि में वृद्धि होती है।

मणिपुर चक्र का मुख्य प्रभाव उदर भाग स्थित पाचनतंत्र, यकृत (लीवर), पित्ताशय तिल्ली आदि पर पड़ता है। जब यह चक्र प्रभावित होता है तब पाचन संबंधी समस्याएँ मधुमेह, अल्सर, पित्ताशय, लीवर, उदर आदि के रोगों में निश्चित रूप से फायदा होता है। इसी प्रकार यह चक्र रक्त विकार, हृदय विकार, मानसिक विकार, शरीर एवं श्वास की दुर्गंध, वायु विकार, आँखों की समस्या आदि अनेक रोगों का निवारण करता है।

इस चक्र के प्रभावित होने से एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थियाँ विकार मुक्त होती है तथा तैजस् केन्द्र सक्रिय बनता है। ऐसी स्थिति में उदर प्रदेश एवं पाचन तंत्र सम्बन्धी कार्य सुचारू रूप से होते हैं।

4. अनाहत चक्र

अनाहत सप्त चक्रों में चौथा चक्र है। इसका स्थान हृदय प्रदेश माना गया है। इसे अनहत, हृदय अथवा चतुर्थ चक्र के नाम से भी जाना जाता है। अनाहत चक्र की शक्ति प्रेम, परोपकार, दयालुता, उदारता, सहकारिता, कर्तव्यपरायणता, विश्वमैत्री की भावना को उत्पन्न करती हैं। अनाहत चक्र के प्रभावित होने पर व्यक्ति में निम्न प्रभाव परिलक्षित होते हैं।

यह चक्र मुख्य रूप से वक्षःस्थल, हृदय, रक्तवाहिनियों एवं श्वसन संस्थान सम्बन्धी कार्यों को प्रभावित करता है। इसे भाव संस्थान भी माना गया है। कलात्मक उमंगे, रसानुभूति एवं कोमल संवेदनाओं के उत्पादन का स्रोत यही चक्र है।

अनाहत चक्र के जागृत होने पर व्यक्ति हृदयगत भावों को सम्यक् रूप से अभिव्यक्त करने में सक्षम बनता है। कलात्मक एवं सृजनात्मक कार्य जैसे चित्रकला, नृत्य, संगीत, कविता आदि की अभिरूचि में वृद्धि होती है।

भावनात्मक विकार जैसे कि उत्तेजना, चिल्लाना, गाली देना, अनुत्साह, असन्तुष्टि, दुखीपन, धुम्रपान, निर्ममता, कौटुम्बिक समस्या, आत्मसम्मान की कमी आदि अनेक नकारात्मक शक्तियों का निर्गमन इस चक्र की साधना से हो सकता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से करूणा, क्षमा, विवेक, आत्मिक आनंद, उदारता, प्रेम, सौहार्द, वसुधैव कुटुम्बकम् आदि के भाव विकसित होते हैं तथा सभी के प्रति मैत्री एवं समत्त्व वृत्ति का विकास होता है।

जब किसी मुद्रा का प्रभाव अनाहत चक्र पर पड़ता है तो दैहिक स्तर पर हृदय, रक्त संचरण एवं श्वसन क्रिया प्रभावित होती है। जिससे हृदय रोग, दमा, छाती में दर्द, रक्तवाहिनियों में रूकावट या Blotting आ जाना आदि रोगों में विशेष रूप से लाभ प्राप्त होता है। इससे एलर्जी, Anxiety disorder सुस्ती, फेफड़ों के रोग, प्रतिरोधात्मक तंत्र के विकार आदि शारीरिक समस्याएँ भी दूर होती हैं।

थायमस ग्रन्थि एवं आनंद केन्द्र के सम्यक संचालन हेतु इस केन्द्र का सक्रिय होना बहुत आवश्यक है। भावना शुद्धि, सौहार्द एवं सामंजस्य की स्थापना में यह चक्र विशेष सहयोगी है।

5. विशुद्धि चक्र

सात चक्रों में पांचवाँ विशुद्धि चक्र कण्ठ प्रदेश में स्थित है। इसे विशुद्ध, कण्ठ अथवा पंचम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। पंचम चक्र की ऊर्जा के प्रभाव से साधक अपने आत्म भावों को वाणी के द्वारा अच्छी प्रकार से अभिव्यक्त कर पाता है। इस चक्र के प्रभाव से साधक के वैयक्तिक, व्यवहारिक एवं आध्यात्मिक जीवन में निम्न लाभ देखे जा सकते हैं-

यह विशुद्धि चक्र संचार केन्द्र है और स्वयं को व्यक्त करने में मुख्य रूप से सहायक बनता है। विपरित परिस्थितियों में समत्व स्थिति एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार में भी विशेष उपयोगी बनता है। अचेतन मन एवं चित्त संस्थान को प्रभावित करते हुए दायें मस्तिष्क के Silent area को जगाने में भी यह चक्र प्राथमिक भूमिका निभाता है।

इस चक्र के सक्रिय न होने पर भावनाओं की अभिव्यक्ति एवं अन्य संचरण कार्यों में रूकावट आ जाती है। इसी के साथ स्मरण शक्ति का ह्रास, कई प्रकार की मानसिक विकृतियाँ एवं कंठ विकार उत्पन्न होते हैं।

चक्र के सक्रिय होने पर भावनात्मक समस्याएँ जैसे अनियंत्रित व्यवहार, भावनाओं में रूकावट, आंतरिक चिंता, अनुशासन की कमी, स्मृति खोना, आत्महीनता, घबराहट, निष्क्रियता, अहंकार आदि अवरोधों के निवारण में विशेष सहायता प्राप्त होती है।

पाँचवें चक्र का ध्यान करने पर साधक भूख प्यास को नियंत्रित कर सकता है। इससे अतिन्द्रिय क्षमता के प्रसुप्त बीजांकुर फुट पड़ते हैं। आंतरिक शक्ति

का जागरण होता है। शारीरिक, मानसिक, वैचारिक एवं भावनात्मक स्थिरता एवं दृढ़ता बढ़ती है। साधक चिंतन शक्ति का विकास करते हुए दार्शनिक या आत्मचिंतक बनता है। कंठ प्रदेश में स्रावित होने वाले अमृत रस के पान से साधक कांतिवान एवं तेजस्वी बनता है तथा अन्य भी कई आध्यात्मिक लाभों को प्राप्त करता है।

शारीरिक स्तर पर विशुद्धि चक्र के जागरण एवं संतुलन से स्वर तंत्र, कंठ एवं कर्ण प्रदेश पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इससे तत्सम्बन्धी रोगों थायरॉइड, बहरापन, कम सुनना, Vocal cord एवं स्वर तंत्र के विकार आदि से राहत मिलती है।

विशुद्धि चक्र के रोग मुक्त होने से विशुद्धि केन्द्र, थायरॉइड और पेराथायरॉईड ग्रंथियाँ प्रभावित होती हैं। इससे वाणी प्रखर एवं प्रभावशाली बनती है।

6. आज्ञा चक्र

इस चक्र का स्थान दोनों भौहों के बीच है। इसे तीसरी आँख या षष्टम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र से प्राप्त ऊर्जा अन्तर्ज्ञान, एकाग्रता एवं अतिन्द्रिय शक्तियों में वृद्धि करती है। आध्यात्मिक उत्थान में यह चक्र विशेष सहायक माना गया है। इसके गतिशील होने पर साधक के जीवन में निम्न लाभ देखे जाते हैं-

इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध हमारे अन्तर्ज्ञान एवं अवचेतन मन में घटित घटनाओं से है। यह ईडा, पिंगला एवं सुषुम्ना का संगम स्थल है। इस चक्र की साधना से व्यष्टि सत्ता समष्टि चेतना से सम्बन्ध जोड़ने में सक्षम हो जाती है।

आज्ञा चक्र के जागरण से साधक दिव्य ज्ञानी, दार्शनिक, दूसरों के मनोभावों को समझने वाला बनता है। भूत एवं भविष्य का ज्ञान और विचार संप्रेषण में दक्षता प्राप्त कर लेता है। मन, बुद्धि एवं विचारों की एकाग्रता सधती है जिससे आत्मनियंत्रण की विशिष्ट शक्ति का जागरण होता है।

इस चक्र के प्रभावित होने पर उन्मत्तता, अवषाद, ज्ञान की कमी, चालाकी, स्मृति समस्याएँ, मानसिक विकार, अनिश्चिय, पागलपन, चंचलता, वैचारिक अस्थिरता आदि भावनात्मक समस्याओं का समाधान होता है।

आत्मनियंत्रण में यह चक्र विशेष सहायक है। बौद्धिक सूक्ष्मता एवं प्रखरता में वृद्धि करते हुए यह आन्तरिक ज्ञान चेतना को भी जागृत करता है। इस चक्र को आत्मा का उत्थान द्वार माना गया है। इससे साधक काम वासना आदि पर विजय प्राप्त कर आत्मानंद की प्राप्ति करता है तथा मस्तिष्किय रहस्यों एवं आत्मज्ञान को उपलब्ध करता है।

छठे आज्ञा चक्र के जागृत होने पर शरीरस्थ पीयूष ग्रन्थि एवं छोटा मस्तिष्क विशेष प्रभावित होता है। इनके स्वस्थ रहने से अनिद्रा, सिरदर्द, ब्रेनट्युमर, मिरगी एवं मस्तिष्क संबंधी रोगों का निवारण होता है। इसी के साथ पुरानी थकान, पागलपन, पीयुष ग्रन्थि की समस्या, बौद्धिक दुर्बलता आदि भी दूर होती हैं।

बौद्धिक स्तर पर यह चक्र एकाग्रता को बढ़ाता है। विचारों को स्थिर करता है। बौद्धिक दुर्बलता एवं अस्थिरता को दूर करता है। सूक्ष्म बुद्धि विकसित होने से समझ शक्ति तथा स्मृति बल में अभिवृद्धि होती है।

आज्ञा चक्र आन्तरिक दिव्य ज्ञान को जागृत करने एवं आत्मनियंत्रण में विशेष लाभदायी है। इस चक्र के संतुलित रहने से दर्शन केन्द्र एवं पीयूष ग्रन्थि नियन्त्रित रहती हैं।

7. सहस्रार चक्र

सहस्रार चक्र सिर के ऊपरी भाग में अवस्थित उच्चतम चेतना का केन्द्र है। इसे ताज या सप्तम चक्र के नाम से भी जाना जाता है। इस चक्र का सम्बन्ध सम्पूर्णतया आध्यात्मिक जगत से है। इस चक्र में प्रवाहित ऊर्जा आत्मा और परमात्मा के बीच तादात्म्य स्थापित कर शाश्वत सत्य का अनुभव करवाती है।

यह चक्र अमरत्व का प्रतीक है। इस चक्र का मुख्य सम्बन्ध ऊपरी मस्तिष्क से है। यह साधक के ज्ञानार्जन में सहायक बनता है और उसे निर्विकल्प एवं निर्विकारी बनाता है।

सहस्रार चक्र के जागृत होने पर साधक की मनोदशा संसार के भौतिक प्रपंचों से मुक्त होकर आध्यात्मिक जगत में स्थिर होती है। इससे असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था प्राप्त होती है। यह चक्र साधना के उच्चतम प्रतिफल की अनुभूति करवाता है।

भावनात्मक समस्याएँ जैसे कि उन्मत्तता, अवषाद, मृत्यु भय, निराशा, नादानी, पागलपन, अनुत्साह , अन्तरप्रेरणा की कमी, खुश नहीं रहना, निर्णय आदि लेने में कठिनाई होना, मानसिक एवं वैचारिक अस्थिरता आदि के निवारण में विशेष भूमिका निभाता है।

इस चक्र की साधना से साधक को दिव्य ज्ञान की अनुभूति होती है तथा परमोच्च सिद्ध अवस्था की प्राप्ति होती है।

दैहिक स्तर पर यह चक्र मुख्य रूप से ऊपरी मस्तिष्क को संतुलित रखता है। मस्तिष्क कैन्सर, मानसिक एवं बौद्धिक समस्याएँ , कामासक्ति, सिरदर्द, मिरगी आदि में इस चक्र की सक्रियता फायदा करती है। इससे पार्किंसंस रोग, अन्त:स्रावी ग्रन्थियों की समस्या, ऊर्जा की कमी, पुरानी बिमारी, कामेच्छाओं के असंतुलन आदि दूर होते हैं।

पिनियल ग्रन्थि एवं ज्योति केन्द्र सम्बन्धी असंतुलन के नियंत्रण में यह चक्र सहायक बनता है। इस चक्र के विकार ग्रस्त होने पर व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक अवस्था का ज्ञान नहीं रहता।

ग्रन्थि तंत्रों पर मुद्रा के प्रभाव

आधुनिक विज्ञान के अनुसार व्यक्ति की विविध शारीरिक क्रियाओं के संचालन हेतु अनेक ग्रन्थियाँ एक टीम के रूप में कार्य करती हैं, जिसे तन्त्र कहा जाता है। शरीर के नियंत्रक एवं संयोजक के रूप में मुख्य दो तन्त्र हैं– नाड़ी तन्त्र एवं अन्त:स्रावी ग्रन्थि तन्त्र।

अन्त:स्रावी ग्रन्थियों की रचना हमारे शरीर के नियामक एवं रक्षक तंत्र के रूप में की गई है। यह अपने प्रभावों का निष्पादन रासायनिक स्रावों के माध्यम से करता है जिसे हार्मोन (Harmone) कहते हैं, यह हार्मोन्स रक्त में घुल-मिलकर शरीर के गठन एवं उसके स्वस्थ रहने में सहयोगी बनते हैं तथा मुनष्य की मानसिक दशा, स्वभाव, व्यवहार आदि पर भी गहरा प्रभाव डालते हैं। मुनष्य के भीतर रहे हुए आवेग, वासना, घृणा, कामना आदि को नियंत्रित करने में यह एक प्रमुख स्रोत है। योगाचार्यों के अनुसार ग्रन्थियाँ मन और चारित्र का निर्माण करती हैं।

मुद्रा प्रयोग के द्वारा पेडु के ईद-गिर्द और नीचे स्थित विद्युत एवं ऊर्जा का उर्ध्वारोहण किया जा सकता है। इससे अन्त:स्रावी ग्रन्थियों की शक्ति को

कई गुणा बढ़ाकर उत्तम चारित्रिक विकास भी संभव है। इन स्रावों के असंतुलन से शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकृतियाँ उत्पन्न होती है। भारतीय योगी साधकों ने हजारों वर्ष पूर्व इन ग्रन्थियों का वर्णन चक्र अथवा कमल के रूप में किया है। ग्रन्थियों एवं चक्रों की तुलना करने पर उनमें कोई विशेष अंतर परिलक्षित नहीं होता।

जिस प्रकार मधुमक्खी सिंचित फलों के रस में अपना स्राव मिलाकर मधु बनाती है उसी प्रकार ग्रन्थियाँ शरीर में से आवश्यक तत्त्व ग्रहण करके उनमें अपना रस मिलाकर रासायनिक कारखानों की भाँति शक्तिशाली हार्मोन्स का निर्माण करती हैं। ये हार्मोन्स हमारे शरीर में प्रतिक्षण मृतप्राय: कोशिकाओं (Cells) को पुनर्जीवित कर क्रियाशील बनाने का कार्य करते हैं। इससे शारीरिक क्रियाएँ व्यवस्थित रूप से चलती रहती है। कई बार जब ग्रन्थियों में विकृति आ जाती है तो उन्हें संतुलित करना अत्यावश्यक हो जाता है, अन्यथा कई असाध्य रोग उत्पन्न हो सकते हैं। समस्त शारीरिक एवं मानसिक रोगों का मूल कारण अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का असंतुलन ही है।

पंच महाभूतों का नियमन कर शरीर के संगठन (Melabolism of the body) को मजबूत रखना ग्रन्थियों का मुख्य कार्य है। मस्तिष्क और शरीर के प्रत्येक अवयव का संतुलन एवं रोगों से सुरक्षित रखने का कार्य ग्रन्थियाँ ही करती हैं। इस तरह ग्रन्थियाँ हमारे शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं वैयक्तिक निर्माण एवं विकास में सहायक बनती हैं। इन ग्रन्थियों के असंतुलन का प्रभाव व्यक्ति के स्वभाव एवं व्यवहार पर परिलक्षित होता है जैसे कि यदि एंड्रिनल ग्रन्थि सही रूप से कार्यरत न हो तो लीवर बराबर काम नहीं करता तथा व्यक्ति डरा हुआ एवं चिडचिड़ा बन जाता है। यौन ग्रन्थियों के अधिक सक्रिय होने पर वासना बढ़ती है और व्यक्ति स्वार्थी बनता है। यदि थायमस ग्रन्थि अंसतुलित हो तो स्वभाव में छिछोरापन और दुष्टता आती है। पिच्युटरी ग्रन्थि के बराबर काम नहीं करने पर व्यक्ति निर्दयी और कठोर बन जाता है तथा अपराध कार्यों में उसकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है। इसलिए अंत:स्रावी ग्रन्थियों को संतुलित रखना परम आवश्यक है। ये समस्त ग्रन्थियाँ परस्पर एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं क्योंकि एक ग्रंथि में उत्पन्न विकार समस्त ग्रन्थियों को प्रभावित

करता है। मुद्रा प्रयोग के माध्यम से अंत:स्रावी ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित किया जा सकता है। हमारे शरीर में मुख्यतया निम्न आठ ग्रन्थियाँ हैं-

1. पिनीयल ग्रन्थि (Pineal Gland)

पिनीयल ग्रन्थि मस्तिष्क के मध्य पिछले हिस्से में स्थित है। इसका आकार गेहूं के दाने से भी छोटा होता है। यह ग्रन्थि मुख्य सचिव की भाँति शरीर की व्यवस्था एवं गतिविधियों का संचालन करती है। इसे तीसरी आंख भी कहते हैं।

पिनीयल ग्रन्थि सभी ग्रन्थियों का विधिवत विकास एवं संचालन करती है, शैशव अवस्था में कामवृत्तियों को नियंत्रित रखती है तथा संकट के समय में शारीरिक तन्त्रों को आवश्यक निर्देश देने एवं उन्हें क्रियान्वित करने का कार्य करती है। इससे नियंत्रण एवं नेतृत्व शक्ति का विकास होता है। अत: इस ग्रन्थि का सक्रिय एवं संतुलित रहना अनिवार्य है।

शारीरिक स्तर पर इस ग्रन्थि के विधिवत् कार्य न करने पर उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure) एवं समय से पूर्व काम वासना जागृत हो जाती है। शरीरस्थ सोडियम, पोटैशियम और जल की मात्रा का संतुलन यही ग्रन्थि करती है। जिन लोगों की यह ग्रन्थि ठीक से काम नहीं करती उनके शरीर में पानी का जमाव होने से शरीर फुग्गे की तरह फूल जाता है और किडनी के रोगों की संभावना बढ़ जाती है।

यदि यह ग्रन्थि जागृत होकर सम्यक रूप से कार्य करे तो मनुष्य में अनेक दिव्य गुणों का उद्भव हो सकता है। इससे साधक में सज्जनता, साधुता, समझदारी आती है तथा हृदय की सुकुमारता एवं मनोबल दृढ़ होता है।

2. पीयूष ग्रन्थि (Pituitary Gland)

पीयूष ग्रन्थि का स्थान मस्तिष्क के निचले छोर तथा नाक के मूल भाग के पीछे की ओर है। इस ग्रन्थि का आकार मटर के दाने के जितना है। यह ग्रन्थि सब ग्रन्थियों की रानी है तथा अन्य ग्रन्थियों को काम का आदेश देती है। इसे ग्रन्थियों को नेता (Master Gland) भी कहा जाता है।

यह ग्रन्थि कम से कम नौ प्रकार के विभिन्न हार्मोनों का स्राव करती है जिससे जीवन के कई महत्त्वपूर्ण क्रियाकलापों पर प्रभाव पड़ता है। यह हमारे मनोबल, निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति एवं देखने-सुनने की शक्ति का

नियमन करती है। इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने से व्यक्ति बुद्धिशाली, प्रसिद्ध लेखक, कवि, वैज्ञानिक, तत्त्वज्ञानी और मानव जाति का प्रेमी बनता है।

इस ग्रन्थि का स्राव शरीर की आन्तरिक हलन-चलन, स्फुर्ति, हृदय की धड़कन, शरीर तापक्रम, रक्त शर्करा आदि को नियंत्रित रखता है। यह ग्रन्थि व्यक्ति की लम्बाई, सिर के बाल एवं हड्डियों के विकास को भी संचालित करती है।

इस ग्रन्थि के असंतुलित होने पर से शरीर दुर्बल अथवा अत्यधिक मोटा हो जाता है। यह मस्तिष्क का भी नियंत्रण करती है। अत्यधिक डरने, चोट लगने अथवा गर्भावस्था में अधिक चिंता करने से गर्भस्थ शिशु की पीयूष ग्रन्थि प्रभावित होती है जिसके परिणामस्वरूप अल्प विकसित मस्तिष्क वाले बच्चे (Retarded child) का जन्म होता है। ऐसे बच्चे हीन वृत्तिवाले, भावनाशून्य, शरारती एवं स्वच्छंदी होते हैं। पीयूष ग्रन्थि को मुद्रा प्रयोग द्वारा प्रभावित करने से इन सब समस्याओं में विस्मयकारी समाधान देखा जा सकता है।

इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने से बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास में सहायता प्राप्त हो सकती है। यह ग्रन्थि तनावमुक्त, प्रसन्नता, सहिष्णुता, मैत्री भावना आदि गुणों से युक्त जीवन जीने में सहयोग करती है तथा वाचालता, अस्थिरता, अत्यधिक संवेदनशीलता, शारीरिक उष्णता आदि को न्यून करती है।

3. थाइरॉइड-पेराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ (Thyroid and Para thyroid Gland)

थाइरॉइड एवं पेराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ स्वर यंत्र के समीप श्वासनली के ऊपरी छोर पर स्थित हैं। इन्हें अवटु एवं परावटु ग्रन्थि भी कहा जाता है। यह ग्रन्थि विपुल मात्रा में रक्त की आपूर्ति करती है और बालकों के विकास में विशेष सहायक बनती है।

थाइरॉइड ग्रन्थि शरीर में ऊर्जा उत्पादन का मुख्य अवयव है। चयापचय की मात्रा और व्यक्ति की जल्दबाजी को निर्धारित करने का मुख्य कार्य यही ग्रन्थि करती है। इस ग्रन्थि की सक्रियता से सद्भाव, उच्च विचारशक्ति, एकाग्रता, आत्मसंयम, संतुलित स्वभाव, पवित्रता, परोपकार आदि गुणों का जन्म होता है।

शारीरिक स्तर पर यह ग्रन्थि शरीरस्थ चूने एवं गंधक तत्त्व (Calcium and Phosphorus) का पाचन करती है। शरीर में रहे विजातिय तत्त्वों को दूर करती है। गर्मी को संतुलित रखती है। पाचन एवं प्रजनन अंगों से सीधा सम्बन्ध होने के कारण यह भोजन को रक्त, मांस, मज्जा, हड्डी एवं वीर्य में परिवर्तित करने में सहायक बनती है। कामेच्छा को गति देने, प्रजनन अंगों को स्वच्छ रखने एवं मासिक धर्म को नियंत्रित रखने में भी इस ग्रन्थि की मुख्य भूमिका है।

इस ग्रन्थि के असंतुलित रहने पर शरीर में थकान महसूस होती है। शरीर का सूखना (Rickets), हिचकी (Convulsion), स्नायुओं का ऐंठन आदि रोग होते हैं। बालकों का विकास अवरूद्ध हो जाता है। पथरी, मोटापा, रियुमेटिजम, आर्थराईटिस, कोलेस्ट्रॉल आदि की समस्या बढ़ जाती है तथा अस्वस्थता, वाचालता, मुखरता, कृतघ्नता आदि दुर्गुणों की वृद्धि होती है।

इस ग्रन्थि की संतुलित अवस्था में वायु तत्त्व, केलशियम, आयोडिन और कोलेस्ट्रॉल नियन्त्रित रखते हैं। मस्तिष्क को संतुलित रखते हुए यह शरीर में होने वाले वसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट की चयापचय क्रिया को भी नियंत्रित रखती है।

इस ग्रन्थि के जागृत रहने पर सुख और स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है, कामेच्छा नियंत्रित रहती है और बालकों में सुसंस्कारों एवं सद्गुणों का विकास होता है।

4. थायमस ग्रन्थि (Thymus Gland)

थायमस ग्रन्थि गर्दन के नीचे एवं हृदय के कुछ ऊपर सीने के मध्य स्थित है। इसे धायमाता कहा जाता है। इसका प्रमुख कार्य बालकों की रोग से रक्षा करना है। शैशव अवस्था में इस ग्रन्थि की वृद्धि बहुत तेजी से होती है और बीस वर्ष की आयु के बाद यह सिकुड़ जाती है।

इस ग्रन्थि से शैशव अवस्था में शारीरिक विकास का नियमन होता है। विशेष रूप से गोनाड्स (काम ग्रन्थियों) को सक्रिय नहीं होने देती। यौवन अवस्था में उन्मादों का निरोध करती है। मस्तिष्क का सम्यक नियोजन करते हुए लसिका-कोशिकाओं के विकास में अपने स्राव (T-cells) द्वारा सहयोग कर रोग निरोधक कार्यवाही में योगदान करती है। इस प्रकार बालकों के शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास में यह विशेष सहयोगी बनती है।

5. एड्रीनल ग्रन्थि (Adrenal Gland)

एड्रीनल ग्रन्थि गुर्दे के ऊपरी भाग में युगल रूप में रहती है। यह टोपी जैसी त्रिकोणाकार होती है। इस ग्रन्थि के द्वारा ग्रन्थि शारीरिक गतिविधियों जैसे– हलन-चलन, श्वसन, रक्त संचरण, पाचन, मांसपेशी संकुचन, पानी आदि अनावश्यक पदार्थों के निष्कासन में विशेष सहयोग प्राप्त होता है।

यह ग्रन्थि तीन दर्जन से भी अधिक प्रकार के स्रावों को उत्पन्न करती है। ये स्राव मस्तिष्क एवं प्रजनन अवयवों के स्वस्थ विकास में सहायक बनते हैं तथा मानसिक एकाग्रता एवं शारीरिक सहनशीलता को बढ़ाते हैं। इन स्रावों के प्रभाव से शरीर की स्नायविक और मांसपेशीय संरचना स्वस्थ एवं बलवान रहती है। रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करते हुए शरीर के लिए आवश्यक रसायनों एवं औषधियों के निर्माण में भी यह सहायक बनती है। शरीरस्थ अग्नितत्त्व का नियमन करते हुए यह ग्रन्थि यकृत, लीवर, गोल ब्लेडर, पाचक रस एवं पित्त उत्पादन कार्य का संतुलन करती है।

इस ग्रन्थि के सक्रिय एवं संतुलित रहने से तीव्र परख शक्ति, अथक कार्य शक्ति, आंतरिक साहस, निर्भयता, आशावादिता, आत्मविश्वास आदि सकारात्मक गुणों की वृद्धि होती है। इसके एपीनेफ्रीन और नोर-एपीनेफ्रिन नामक हार्मोनों के स्राव दर्द, शीत प्रकोप, अल्प रक्तचाप, भावनात्मक उद्वेग, क्रोध, उत्तेजना आदि का शमन करने में विशेष सहयोगी बनते हैं।

6. पेन्क्रियाज ग्रन्थि (Pancreas Gland)

यह ग्रन्थि पेट में 6इंच से 8 इंच लम्बी स्थित है। इस ग्रन्थि में उत्पन्न रस क्षारीय स्वभाव का होने से शरीर के आम्लिय तत्त्वों को नियंत्रित रखता है। इन्हीं रसों में से एक इंसुलिन नामक रस रक्त शर्करा को पचाने में महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। यही रस शरीर में ऊर्जा का भी उत्पादन करता है।

वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधानों के अनुसार पेन्क्रियाज के अधिक क्रियाशील रहने पर शरीरस्थ रक्त शर्करा कम हो जाती है जिससे लो ब्लड प्रेशर, आधासीसी आदि रोगों की संभावना बढ़ जाती है और वहीं इसकी निष्क्रियता मधुमेह आदि रोगों को बढ़ाती है।

इस ग्रन्थि से जागृत रहने पर भूख, पसीना, रक्तचाप आदि नियंत्रित रहते हैं तथा सिरदर्द, तनाव, कमजोरी, लो ब्लड प्रेशर, मधुमेह आदि रोगों का

निवारण होता है। यह ग्रन्थि अनिर्णायकता, चिंतातुरता, अतिसंवेदनशीलता आदि समस्याओं का भी निवारण करती है।

7. प्रजनन ग्रन्थियाँ (गोनाड्स)

रजपिंड एवं शुक्रपिंड (Overies and Testies) के रूप में काम ग्रन्थियाँ मनुष्य के शरीर में पेडु एवं पृष्ठ रज्जु के नीचे के छोर के पास स्थित हैं। स्त्रियों में डिम्बाशय एवं पुरुषों में वृषण प्रजनन ग्रन्थि का कार्य करते हैं। यह ग्रन्थि प्रजनन की अटूट श्रृंखला को चालु रखती है।

गोनाड्स या काम ग्रन्थियाँ मुख्य रूप से कामेच्छा को नियन्त्रित कर विपरित लिंग के प्रति आकर्षण उत्पन्न करती हैं। इससे निःसृत स्राव के द्वारा स्त्रियाँ स्त्रियोचित व्यक्तित्व को और पुरुष पुरुषत्व को प्राप्त करते हैं। ग्रन्थियाँ देह में स्थित जलतत्त्व का संतुलन करते हुए ज्ञानतंतुओं, मज्जा कोष, मांस, हड्डी, बोन-मेरो एवं वीर्य रज का नियमन करती हैं तथा अन्य अवयव एवं उनके क्रियाकलापों पर भी गहरा प्रभाव डालती है।

यदि काम ग्रन्थियाँ सुचारू रूप से कार्य न करें तो कन्याओं की मासिक धर्म (Menstural Periods) सम्बन्धी गड़बड़ियाँ, मुहाँसे, पांडुरोग (Anemia) आदि तथा लड़कों में हस्तदोष-स्वप्नदोष आदि समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इस ग्रन्थि के सक्रिय रहने पर शरीर की गर्मी संतुलित रहती है। इससे युवक-युवतियों का स्वभाव मिलनसार बनता है। यह मनुष्य के व्यवहार एवं वाणी को लोकप्रिय बनाती है।

चैतन्य केन्द्रों पर मुद्रा का प्रभाव

भगवतीसूत्र में बतलाया गया है 'सव्वेणं सव्वे' हमारी चेतना के असंख्य प्रदेश हैं और वे सब चैतन्य केन्द्र हैं। कुछ स्थान या केन्द्र ऐसे होते हैं जिनके द्वारा हम शरीर एवं भावों को अधिक प्रभावित कर सकते हैं। हमारे शरीर के संचालन में चैतन्य केन्द्रों की विशेष भूमिका होती है। चेतना का आन्तरिक स्तर मन नहीं है अपितु चेतन मन में उठने वाले आवेग क्रोध, अभिमान, ईर्ष्या, लालच आदि वृत्तियाँ हैं।

यद्यपि प्रत्येक मनुष्य में विवेक चेतना अन्तर्निहित होती है। इस विवेक चेतना एवं विवेक पूर्ण निर्णायक शक्ति का सम्यग विकास ही हमारे भीतर रही पाशवी वृत्तियों, रूढ़िगत परम्पराओं, मानसिक विकारों एवं भावनात्मक

अस्थिरता आदि को दूर कर सकती है। विवेक चेतना के जागरण के लिए चैतन्य केन्द्रों का स्वस्थ एवं विकार रहित रहना परमावश्यक है। चित्त का यह स्वभाव है कि वह सिर से लेकर पैर तक घुमता रहता है। कभी ऊपर तो कभी नीचे, कभी अच्छे विचारों में तो कभी बुरे विचारों में, कभी उत्कृष्ट भावों में तो कभी गहन पतन के मार्ग पर। इन सब पर नियंत्रण करने हेतु चैतन्य केन्द्रों का संतुलित एवं जागृत रहना आवश्यक है। मुद्रा प्रयोग के माध्यम से यह कार्य सहज संभव होता है।

वैज्ञानिक शोधों के अनुसार हमारा सम्पूर्ण शरीर विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र (Electro Magnetic Field) है, किन्तु कुछ विशेष स्थानों में विद्युत क्षेत्र की तीव्रता अन्य स्थानों की तुलना में कई गुणा अधिक होती है। हमारा मस्तिष्क, इन्द्रियाँ, अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ आदि कुछ ऐसे ही क्षेत्र हैं। आयुर्वेद की भाषा में इन्हें मर्म स्थान कहा गया है। आयुर्वेदाचार्यों ने 107 मर्म स्थानों का उल्लेख किया है जहाँ पर प्राणों का केन्द्रीकरण होता है। इन रहस्यमय स्थानों में चेतना विशेष प्रकार से अभिव्यक्त होती है। युवाचार्य महाप्रज्ञजी ने तेरह चैतन्य केन्द्रों की चर्चा की है।

1. शक्ति केन्द्र 2. स्वास्थ्य केन्द्र 3. तैजस केन्द्र 4. आनंद केन्द्र, 5. विशुद्धि केन्द्र 6. ब्रह्म केन्द्र 7. प्राण केन्द्र 8. चाक्षुष केन्द्र 9. अप्रमाद केन्द्र 10. दर्शन केन्द्र 11. ज्योति केन्द्र 12. शांति केन्द्र और 13. ज्ञान केन्द्र।

ये चैतन्य केन्द्र समस्त अवयवों में सक्रियता उत्पन्न करते हैं तथा इन्द्रियों एवं मन को भी संचालित करते हैं। इन्द्रियों पर नियन्त्रण पाना साधना का मुख्य लक्ष्य होता है। मुद्रा साधना इसमें सहायक बनती है।

1-2. शक्ति केन्द्र एवं स्वास्थ्य केन्द्र

शक्ति केन्द्र मूलाधार के स्थान पर अर्थात् पृष्ठ रज्जु के नीचे स्थित है। यह स्थान हमारी समस्त शारीरिक ऊर्जा एवं जैविक विद्युत (Bio-electricity) का संचयगृह है। यहीं से विद्युत का उत्पादन एवं प्रसरण होता है। इस केन्द्र के जागृत होने से अधोगामी विद्युत प्रवाह ऊर्ध्वगामी बनता है। इससे साधक की सभी क्रियाएँ सकारात्मक एवं ऊर्ध्वगामी बनती है। शक्ति केन्द्र कुण्डलिनी का स्थान है अतः इसके जागृत होने से साधना चरम लक्ष्य तक अवश्य पहुँचती है।

पेडु के नीचे जननेन्द्रिय का अधोवर्ती स्थान स्वास्थ्य केन्द्र है। यह काम ग्रन्थियों का प्रभावी क्षेत्र है इसलिए काम-वासना आदि की उत्पत्ति यहीं से होती है और हमारे समग्र स्वास्थ्य का नियंत्रण भी यहीं से होता है। स्वास्थ्य केन्द्र के स्वस्थ, सक्रिय एवं संतुलित रहने पर व्यक्ति स्वस्थ चित्त का अनुभव करता है। मानसिक एवं भावनात्मक स्वस्थता एवं विकार रहितता में भी यह केन्द्र सहायक बनता है। आत्मनियंत्रण की कला भी इसी केन्द्र से विकसित होती है।

शक्ति केन्द्र और स्वास्थ्य केन्द्र की निर्दोषता से सम्पूर्ण विकास सहज एवं सरल हो जाता है। ये दोनों मूल केन्द्र होने से यदि इनमें विकार हो जायें तो समस्त केन्द्र विकार ग्रस्त हो जाते हैं। यह केन्द्र संतुलित रहने से वृत्तियों का उभार ही नहीं होता, कामेच्छा आदि संतुलित रहती हैं तथा आन्तरिक ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण होता है।

3. तैजस केन्द्र

तैजस् केन्द्र नाभि के स्थान पर होता है। इस केन्द्र का सम्बन्ध एड्रीनल-पैन्क्रियाज ग्रंथि एवं मणिपुर चक्र से है। यह केन्द्र ग्रन्थियों एवं चक्रों के कार्य वहन में सहायक बनता है। योगाचार्यों के अनुसार इस केन्द्र के असंतुलन से क्रोध, लोभ, भय आदि वृत्तियाँ अभिव्यक्त होती हैं। इसके जागरण एवं संतुलन के द्वारा विकृत भावों को रोका जा सकता है। इसके माध्यम से ईर्ष्या, घृणा, भय, संघर्ष, तृष्णा आदि कुवृत्तियों को भी नियंत्रित रखा जा सकता है।

तैजस् केन्द्र अग्नि तत्त्व का स्थान है। इसके अधिक सक्रिय होने पर काम-वासना आदि वृत्तियों में उभार आ जाता है अत: इसको नियन्त्रित रखने से तेजस्विता बढ़ती है, शक्ति का संचय होता है तथा आवेगात्मक वृत्तियाँ शांत रहती हैं।

4. आनंद केन्द्र

आनंद केन्द्र का स्थान फुफ्फुस के नीचे हृदय के निकट में है। थायमस ग्रन्थि को प्रभावित करने हेतु यह एक महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। आनंद केन्द्र के जागृत होने से साधक बाह्य जगत से मुक्त होकर भीतरी जगत में प्रवेश करता है। काम-वासना के परिशोधन में भी यह सहायक बनता है।

जब आनंद केन्द्र संतुलित रहता है तब काम वासना आदि वृत्तियाँ संतुलित रहती हैं, अध्यात्म की ओर रूझान बढ़ता है और हृदय सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है।

आनंद केन्द्र के विकृत होने पर कामवृत्तियों की उग्रता बढ़ जाती है जिससे आलस, शुष्कता, निष्क्रियता आदि में वृद्धि होती है एवं अन्य कई विकार उत्पन्न होते हैं।

5. विशुद्धि केन्द्र

विशुद्धि केन्द्र का स्थान कंठ है। यह थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि का मुख्य क्षेत्र है। इस केन्द्र के प्रभावित होने से वाणी पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यह उच्चतर चेतना एवं आत्मिक शक्तियों का विकास करता है। इसका मन के साथ गहरा सम्बन्ध है।

इस केन्द्र के जागृत होने पर जीवन की गति नियंत्रित रहती है। इससे जैविक क्षमता में अभिवृद्धि भी होती है तथा यह भावों के उदात्तीकरण एवं निर्मलीकरण में सहायक बनता है। इस केन्द्र की विशुद्धि से चित्त की एकाग्रता, स्थिरता एवं समाधि को प्राप्त किया जा सकता है।

विशुद्धि केन्द्र का असंतुलन जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में अरुचि उत्पन्न करता है। इससे मानसिक एवं आध्यात्मिक चेतना समाप्त हो जाती है। शारीरिक स्तर पर चयापचय, पाचन आदि की क्रिया असंतुलित रहती है।

इस केन्द्र के नियोजन से शारीरिक क्रियाएँ सुचारू रूप से चलती है। आध्यात्मिक एवं मानसिक जगत सुंदर बनता है।

6. ब्रह्म केन्द्र

ब्रह्म केन्द्र का स्थान जिह्वा का अग्रभाग है। इस केन्द्र की जागृति एवं साधना ब्रह्मचर्य को पुष्ट करती है। हमारे ज्ञानेन्द्रियों का कामेन्द्रियों के साथ सम्बन्ध होता है। जिह्वा का सम्बन्ध जननेन्द्रिय एवं जल तत्त्व से है अत: जब जिह्वा को अधिक रस मिलता है तो कामुकता बढ़ती है।

ब्रह्म केन्द्र के संतुलित अथवा नियंत्रित रहने से संयम एवं ब्रह्मचर्य में वृद्धि होती है। जीभ पर रखा गया संयम काया-वासनाओं को शिथिल करता है। ब्रह्म केन्द्र पर नियंत्रण प्राप्त करने से मनवांछित कार्य की सिद्धि होती है।

इस केन्द्र का असंतुलन काम वासनाओं को उत्तेजित एवं वाणी को अनियंत्रित करता है।

7. प्राण केन्द्र

प्राण केन्द्र का स्थान नासाग्र है। यह अंग प्राण का मुख्य केन्द्र है और इसकी साधना से प्राण का ऊर्ध्वीकरण होता है।

प्राण केन्द्र की साधना से प्रकाश दर्शन, पूर्वाभास, दूराभास आदि हो सकता है। एकाग्रता की सिद्धि में यह केन्द्र अत्यन्त उपयोगी है। इससे संकल्प शक्ति, मनोबल एवं आत्मविश्वास की वृद्धि होती है।

इस केन्द्र के निष्क्रिय होने पर प्राण बल कमजोर होता है जिससे जीवन का समग्र विकास अवरुद्ध हो जाता है।

8. चाक्षुष केन्द्र

चाक्षुष केन्द्र का स्थान चक्षु है। चित्त की एकाग्रता के लिए यह बहुत प्रभावशली केन्द्र है। इसके माध्यम से मस्तिष्किय विद्युत् से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। यह जीवनशक्ति का केन्द्र है अत: इसके दीर्घकालीन अभ्यास से दीर्घायु की प्राप्ति हो सकती है।

9. अप्रमाद केन्द्र

अप्रमाद केन्द्र का स्थान कान और उसके आस-पास कनपट्टि का स्थान है। इस केन्द्र की साधना व्यसन मुक्ति में परम उपयोगी है।

रूस के वैज्ञानिकों के अनुसार अप्रमाद केन्द्र पर विद्युत् प्रवाह के प्रयोग से व्यसन मुक्ति में सफलता प्राप्त हो सकती है। इस केन्द्र पर नियंत्रण प्राप्त करने से अनेक बुराईयों का शमन होता है। स्नायुतंत्र चैतन्यशील बनता है तथा स्मृति का विकास होता है। इससे मूर्छा एवं भ्रम की स्थिति दूर होती है।

अप्रमाद केन्द्र की असक्रियता अथवा अतिसक्रियता व्यक्ति को सुस्त, आलसी एवं प्रमादी बनाती है।

10. दर्शन केन्द्र

दर्शन केन्द्र का स्थान हमारी दोनों भृकुटियों के बीच है। यह अति महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। शरीर शास्त्रियों के अनुसार यह वीतराग प्राप्ति का सूचक केन्द्र है। इसे आज्ञा चक्र एवं तृतीय नेत्र भी कहा जाता है।

इस केन्द्र की सक्रियता से चैतन्य जागरण का मार्ग प्रशस्त होता है। चंचल वृत्तियाँ समाप्त होती हैं। मानसिक, वाचिक एवं भावनात्मक स्थिरता और एकाग्रता का विकास होता है। पूर्णाभास, अन्तर्दृष्टि एवं अतिन्द्रिय क्षमताओं का वर्धन होता है। विचार सकारात्मक, उच्च एवं आध्यात्मिक बनते हैं।

दर्शन केन्द्र का असंतुलन व्यक्ति को मानसिक एवं बौद्धिक रूप से विक्षिप्त और असंतुलित कर मस्तिष्क सम्बन्धी विकारों एवं रोगों को उत्पन्न करता है तथा पीयूष ग्रन्थि के कार्यों को भी प्रभावित करता है।

11. ज्योति केन्द्र

ज्योति केन्द्र ललाट के मध्य भाग में स्थित है। इस केन्द्र का सम्बन्ध पिनीयल ग्रन्थि से है। यह केन्द्र कषाय, नोकषाय, काम वासना, असंयम, आसक्ति आदि संज्ञाओं के उपशमन में विशेष सहायक बनता है।

ज्योति केन्द्र को नियंत्रित करने से क्रोधादि आवेश एवं आवेग शांत हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य की साधना ऊर्ध्वता को प्राप्त करती है। पिच्युटरी एवं पिनीयल ग्रन्थि की सक्रियता बढ़ जाती है। एड्रीनल एवं गोनाड्स ग्रन्थियों पर नियंत्रण प्राप्त होता है। कामवृत्तियाँ अनुशासित होने से आन्तरिक आनंद की अनुभूति होती है।

इस केन्द्र के सुप्त रहने पर अपराधी मनोवृत्तियों को बल मिलता है। इससे काम, क्रोध, भय आदि संज्ञाएँ उत्पन्न होती हैं तथा मानसिक एवं भावनात्मक विकृतियाँ बढ़ती है।

इस केन्द्र की साधना करने वाला शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त कर कामी से अकामी बन जाता है।

12. शांति केन्द्र

शांति केन्द्र का स्थान मस्तिष्क का अग्रभाग माना गया है। यह चित्त शक्ति का भी एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इसका सम्बन्ध भावधारा से है। सूक्ष्म शरीर से प्रवाहमान भावधारा मस्तिष्क के इसी भाग में आकर जुड़ती है।

आयुर्वेदाचार्यों ने इसे अधिपति मर्म स्थान कहा है। हठयोग के अनुसार यह ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रार चक्र का स्थान है। इसके जागृत होने से परमोच्च अवस्था एवं आत्मानंद की प्राप्ति होती है तथा चैतन्य केन्द्रों का जागरण एवं हृदय परिवर्तन होता है।

शांति केन्द्र की असक्रियता अवचेतन मन में एवं अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में विकार उत्पन्न करती है। इससे नाड़ी संस्थान के कार्यों में भी बाधा पहुँचती है।

13. ज्ञान केन्द्र

सिर का ऊपरी भाग (चोटी का स्थान) ज्ञान केन्द्र माना गया है। यह मानसिक ज्ञान का चैतन्य केन्द्र है। मन की सारी मनोवृत्तियाँ इसके विभिन्न कोष्ठों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। यही स्थान बुद्धि, स्मृति, चिन्तनशक्ति आदि का मुख्य केन्द्र है।

ज्ञान केन्द्र के जागरण से मस्तिष्क विकसित होता है। चैतन्य शक्ति प्रबल बनती है। दिव्य ज्ञान का जागरण होता है। अतिन्द्रिय क्षमता का विकास होता है। पूर्वजन्म स्मृति, प्राण-अवबोध (Pre-cognition) आदि विशेष शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

पाँच तत्त्वों पर मुद्रा के प्रभाव

हमारा शरीर मुख्य रूप से पंच महाभूतों का पिण्ड है। ये पाँच तत्त्व मिलकर हमारी समस्त क्रियाओं का संयोजन करते हैं। इनका भिन्न-भिन्न संयोजन शरीर की प्रकृति को निश्चित करता है। जब पाँच तत्त्व उचित मात्रा में बने रहते हैं तो शरीर की चयापचय क्रियाएँ भी सम्यक् प्रकार से होती है तथा शरीर स्वस्थ एवं तंदूरूस्त रहता है।

पारिवारिक संस्कारों, वंशानुगत परम्परा, आहारचर्या, जीवनशैली, वातावरण आदि के कारण तत्त्वों की मूल अवस्था में परिवर्तन होता रहता है। इससे शारीरिक क्रियाओं में विक्षेप एवं विकृति आ जाती है और तत्त्वों की स्वभाव च्युति शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक गतिविधियों को प्रभावित करती है। इन तत्त्वों के मूलस्थिति में रहने पर शरीर विशिष्ट शक्ति प्राप्त करता है एवं मस्तिष्क व्यवस्थित रूप में कार्य करता है।

मुद्रा प्रयोग के द्वारा शरीरस्थ पाँचों तत्त्वों का संतुलन किया जा सकता है। शरीरशास्त्रियों एवं आयुर्वेदाचार्यों ने पाँच अंगुलियों में पाँचों तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। जिसके शरीर में जिस तत्त्व की कमी या असंतुलन हो वह उस तत्त्व से सम्बन्धित मुद्रा का प्रयोग करके उस कमी की परिपूर्ति कर सकता है।

पृथ्वी आदि पाँचों तत्त्व हमारे शरीर की विद्युत शक्ति का नियंत्रण करते हैं। पश्चिमी वैज्ञानिकों ने भी इस विद्युत को जीव विद्युत् (Bioelectricity) अथवा जीवन शक्ति (Bioenergy) के रूप में स्वीकृत किया है। यह प्राण शक्ति

जीवन बैटरी के रूप में हमारे शरीर में गर्भाधान के समय स्थापित हो जाती है जो चैतन्य रूपी विद्युत् प्रवाह को उत्पन्न करती है। मुद्रा आदि यौगिक साधनाओं के द्वारा यह विद्युत् प्रवाह सक्रिय रहता है।

मनुष्य की शारीरिक क्रियाओं में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश ये पाँचों तत्त्व निम्न प्रकार से सहायक बनते हैं-

1. पृथ्वी तत्त्व

शरीर का स्थूल ढांचा, अस्थि, मांसपिण्ड आदि पृथ्वी तत्त्व का रूप है। इस तत्त्व की कमी से शरीर के सभी जैविक बल निष्क्रिय हो जाते हैं। उन सभी को सक्रिय रखने के लिए अधिक शक्ति की जरूरत पड़ती है जो कि पृथ्वी तत्त्व से प्राप्त होती है। अधिक वजन वाले, मांसल, चरबीयुक्त व्यक्ति इस तत्त्व के आधिपत्य के उदाहरण हैं। ऐसे लोग निश्चिन्त स्वभाव वाले होते हैं। कुछ हासिल करने की उत्सुकता उनमें नहीं रहती, वे संघर्ष से दूर भागते हैं तथा सुस्त एवं आलसी प्रवृत्ति वाले होते हैं।

इस तत्त्व के त्रुटिपूर्ण रहने से व्यक्ति स्वार्थी बनता है तथा उसके विचारों आदि में शुष्कता एवं आग्रह बढ़ जाता है।

पृथ्वी एक तटस्थ तत्त्व है। इसके संतुलित रहने से व्यक्ति तटस्थ विचारों वाला होता है और उसकी विचलित अवस्था दूर होती है। इस तत्त्व के नियमन से शरीर की स्थूलता, हड्डी, मांस, आदि नियंत्रित रहते हैं।

2. जल तत्त्व

जल जीवन तत्त्व है। हमारे शरीर में 70% से अधिक जल तत्त्व का परिमाण है। यह तत्त्व अपने स्वभाव के अनुसार ही शीतलता प्रदान करता है तथा जीवन प्रवाह को सुरक्षित रखता है। शरीर के तापमान को नियंत्रित एवं रूधिर आदि की कार्य पद्धति को संतुलित रखने में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

इस तत्त्व के संतुलित रहने से मूत्रपिंड, प्रजनन अंग, लसिका ग्रन्थियों आदि का स्राव संतुलित रहता है। यह प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करता है। यौन ग्रन्थियों, चेताकोषों, रजवीर्य, अस्थिमज्जा आदि को उत्पन्न करता है तथा शरीर को स्वस्थ रखने में मुख्य सहयोगी बनता है। इस तत्त्व के असंतुलन से शरीर में जल तत्त्व की कमी आदि हो जाती है जिससे रक्त वाहिनियों,

मूत्राशय आदि में विकार उत्पन्न हो सकते हैं। भावों के प्रवाह में भी यह रूकावट उत्पन्न करता है।

3. अग्नि तत्त्व

यह तत्त्व शरीर में उत्पन्न अग्नि द्वारा आहार का पाचन कर शरीर को शक्ति प्रदान करता है। इसके जठर, तिल्ली, यकृत, स्वादुपिंड, एड्रीनल आदि मुख्य केन्द्र हैं। अग्नि तत्त्व संतुलित एवं सक्रिय रहने पर शरीर में अग्निरस, पित्तरस, पाचकरस आदि की उत्पत्ति होती है। यह शरीर के तापमान को बनाए रखते हुए सभी अंगों को सक्रिय रखता है। इससे रूधिर, मांस, चर्बी, अस्थि आदि के निर्माण में सहायता प्राप्त होती है। यह स्नायुतंत्र को स्वस्थ एवं चेहरे को सुंदरता प्रदान करता हुआ रोग प्रतिरोधक तत्त्वों को उत्पन्न करने में भी सहायता प्रदान करता है।

इस तत्त्व का असंतुलन पाचन सम्बन्धी विकारों का मूलभूत कारण है। इससे एनीमिया, पीलिया, बेहोशी, मस्तिष्क सम्बन्धी अव्यवस्था, दृष्टि विकार, मोतिया बिंद, एसिडिटी आदि शारीरिक समस्याएँ उत्पन्न होती है और आन्तरिक बल घटता है।

यह तत्त्व विचार शक्ति में सहायक एवं मस्तिष्क शक्ति को विकसित करता है। इससे शारीरिक तेज एवं कांति में वृद्धि होती है तथा यह ऊर्जा के जागरण एवं ऊर्ध्वीकरण में सहायक बनता है।

4. वायु तत्त्व

वायु तत्त्व को जीवन कहा गया है। यह एक ऐसी शक्ति है जो शरीर के प्रत्येक भाग का संचालन करती है। इसके छाती, फेफड़े, हृदय, थायमस ग्रन्थि आदि मुख्य केन्द्र हैं।

वायु तत्त्व शरीर के प्रमुख सहकारी एवं संरक्षक बल को उत्पन्न करने में सहयोगी बनता है। यह हृदय एवं रूधिर अभिसरण की क्रिया को नियंत्रित और शरीर को संतुलित बनाए रखता है। इससे श्वसन एवं मलमूत्र की गति में भी मदद मिलती है।

इस तत्त्व के समस्थिति में रहने पर वचन शक्ति, मानसिक शक्ति एवं स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है। इससे स्व नियंत्रण में भी विशेष सहयोग प्राप्त होता है।

इसके असंतुलन से हृदय रोग, वायु विकार, फेफड़ें आदि के विकार उत्पन्न होते हैं तथा विचारों में संकीर्णता एवं असहकारिता आदि भावों का जन्म होता है।

5. आकाश तत्त्व

यह तत्त्व सम्पूर्ण शरीर में हवा, रक्त, जल आदि तत्त्वों के वहन या संचरण में सहयोग करता है। इस तत्त्व के संतुलित रहने से शरीरस्थ विष द्रव्यों का निष्कासन सहजतया हो जाता है जिससे शरीर स्वस्थ एवं तंदुरुस्त रहने के साथ-साथ थाइरॉईड, पेराथाइरॉईड, टान्सिल, लार रस आदि पर नियंत्रण रहता है। इससे मस्तिष्क सम्बन्धी विकार भी दूर होते हैं।

इस तत्त्व के असंतुलन से हार्टअटैक, लकवा, मूर्च्छा आदि अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न होती है। पीयूष ग्रन्थि एवं पीनियल ग्रन्थि के विकारों का मुख्य कारण इसी तत्त्व का असंतुलन है। यह तत्त्व सम्यक् दिशा में गतिशील हो तो मानसिक शक्तियों का पोषण होता है तथा अध्यात्म मार्ग की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से यह सुस्पष्ट है कि प्रत्येक मुद्रा शरीर के किसी न किसी शक्तिमान चक्रों एवं केन्द्रों आदि को निश्चित रूप से प्रभावित कर उन्हें संतुलित करती है। इससे तद्स्थानीय रोगों का शमन एवं तज्जनित गुणों का प्रगटन होता है।

मुद्रा प्रयोग के नियम-उपनियम

यहाँ मुद्रा का तात्पर्य हाथ की विभिन्न आकृतियों से है क्योंकि प्रायः मुद्राएँ हाथों द्वारा ही की जाती है। कहा जाता है जैसे ब्रह्माण्ड पाँच तत्त्वों से निर्मित है वैसे ही प्राणवान शरीर भी पाँच तत्त्वों से बना हुआ है। इन पाँच महाभूत तत्त्वों में अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी और जल की गणना होती है। यौगिक पुरुषों के अनुसार हमारी पाँचों अंगुलियाँ इन तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

स्पष्ट है कि हाथ की अंगुलियों से की जाने वाली मुद्राओं के माध्यम से शरीर के आवश्यक तत्त्वों का प्रभाव घटा-बढ़ा सकते हैं। जिससे शरीर में इन तत्त्वों का संतुलन बना रहता है तथा शरीर के साथ-साथ बुद्धि, मन एवं चेतना के दोषों का परिहार और गुणों का उत्सर्जन होता है।

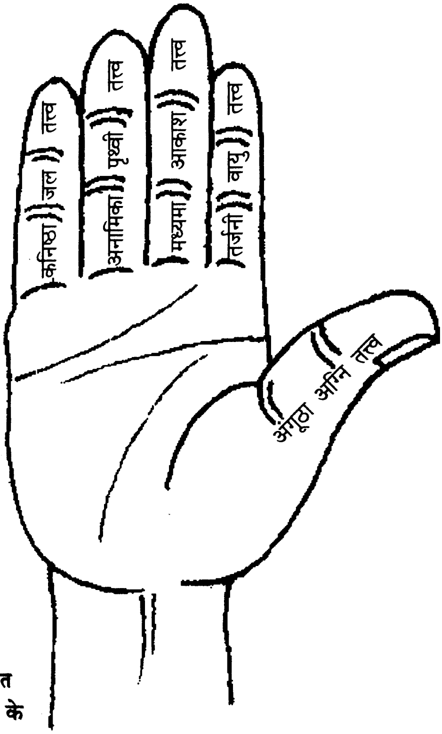

प्रचलित मान्यता के अनुसार

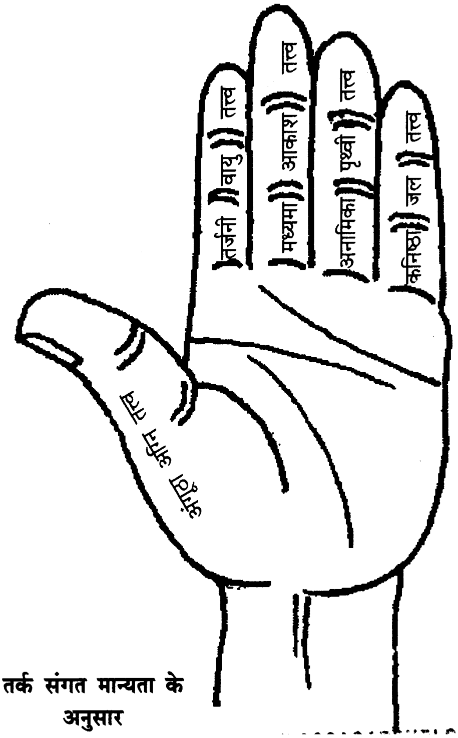

तर्क संगत मान्यता के अनुसार

अंगुलियों के नाम	तत्त्वों के नाम
अंगूठा (Thumb)	अग्नि तत्त्व (Fire-sun)
तर्जनी (Index)	वायु तत्त्व (Air-wind)
मध्यमा (Middle)	आकाश तत्त्व (Ether-space)
अनामिका (Ring)	पृथ्वी तत्त्व (Earth)
कनिष्ठिका (Little)	जल तत्त्व (Water)

मुद्रा की आवश्यक जानकारी

1. सामान्यतया मनुष्य पाँच तत्त्वों के संतुलन से स्वस्थ रह सकता है। ऋषि-महर्षियों द्वारा निर्दिष्ट एवं अनुभवियों द्वारा उपदर्शित मुद्राएँ बौद्धिक, मानसिक एवं दैहिक संतुलन की अपेक्षा से है अतः इन मुद्राओं का प्रयोग करने से पूर्व उसके प्रति दृढ़ विश्वास एवं अटूट श्रद्धा अवश्य होनी चाहिए।
2. शारीरिक संरचना के अनुसार अंगूठे के अग्रभाग पर दूसरी अंगुली के अग्रभाग को दबाने से, उस अंगुली का जो तत्त्व है वह बढ़ जाता है तथा अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के मूल पर लगाने/दबाने से उस अंगुली का जो तत्त्व है उसमें कमी आ जाती है।
3. मुद्रा करते समय अंगुली और अंगूठे का स्पर्श सहज होना चाहिए। अंगूठे से अंगुली को सहज दबाव देना चाहिए और शेष अंगुलियाँ अमुक-अमुक मुद्रा के नियमानुसार सीधी या एक-दूसरे से सटी रहनी चाहिए। हथेली का भाग मुद्रा नियम के अनुरूप रहना चाहिए। यदि अंगुलियाँ पहली बार में सही रूप से सीधी-टेढ़ी या सटी हुई न रह पायें तो आरामपूर्वक जितना बन सके, मुद्रा को यथारूप बनाने की कोशिश करें। तदनन्तर अभ्यास द्वारा धीरे-धीरे सही मुद्रा भी बन जाती है।
4. मुद्रा प्रयोग दोनों हाथों से करें, क्योंकि दायें हाथ की मुद्रा करने से शरीर के बाएँ भाग पर असर होता है और बाएँ हाथ की मुद्रा करने से शरीर के दायें भाग पर असर होता है। इस तरह शरीर और मन हर तरह से संतुलित रहता है।
5. हर कोई स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, रोगी-निरोगी मुद्राओं का प्रयोग कर सकता है।

6. प्रत्येक व्यक्ति के स्वयं के लिए जो भी मुद्रा उपयोगी हो, उस मुद्रा का प्रयोग नियमत: 48 मिनट तक करना चाहिए। अभ्यास के द्वारा समय मर्यादा बढ़ाई जा सकती है। यदि कोई मुद्रा लंबे समय तक एक साथ न हो सके तो सुबह-शाम 15-15 मिनट करके 30 मिनट तक तो अवश्य करनी चाहिए।
7. भोजन के तुरन्त बाद 30 मिनट तक किसी भी मुद्रा को नहीं करें। केवल गैस या अफरा दूर करने के लिए वायु मुद्रा की जा सकती है।
8. प्राण मुद्रा, अपान मुद्रा, पृथ्वी मुद्रा और ज्ञान मुद्रा को साधक इच्छानुसार दीर्घ समय तक कर सकते हैं, किन्तु वायु मुद्रा, शून्य मुद्रा, लिंग मुद्रा वगैरह अन्य मुद्राएँ व्याधि दूर न हों तब तक ही करनी चाहिए।
9. कोई अन्य चिकित्सा या औषधि का सेवन कर रहे हों, तो उस समय भी मुद्रा चिकित्सा का प्रयोग कर सकते हैं।
10. मुद्राओं में अपानवायु रोग मुक्ति के लिए श्रेष्ठकारी है। इस मुद्रा को हृदय पर स्पर्शित करते ही किसी भी रोग में तत्काल फायदा होता है इसलिए डाक्टरों/वैद्यों के पास जाने से पूर्व रोगी को यह मुद्रा अवश्य कर लेनी चाहिए। उसे तात्कालिक राहत का अहसास होता है।
11. शरीर, मन और चेतना को स्वस्थ रखने के लिए प्राणवायु एवं अपानवायु को संतुलित रखना अत्यन्त जरूरी है। यह संतुलन प्राण मुद्रा एवं अपानमुद्रा के प्रयोग से ही संभव है। इन मुद्राओं के प्रयोग से नाड़ी शुद्धि और शरीर रोग रहित बनता है इसलिए ये मुद्राएँ निश्चित करनी चाहिए।
12. अनेकों मुद्राएँ चैतसिक, मानसिक, आध्यात्मिक और भावनात्मक विकास के उद्देश्य से की जाती हैं। इन मुद्राओं को निर्धारित दिशा, आसन, मंत्र एवं समयानुसार करने पर अधिक लाभदायी होती हैं।
13. मुद्रा प्रयोग से पंच तत्त्वों में परिवर्तन, विघटन, प्रत्यावर्तन, अभिवर्धन होता रहता है परिणामत: तत्त्वों में सामंजस्य बना रहता है।
14. कुछ मुद्राएँ निश्चित यौगिक आसन में बैठकर की जाती हैं। इनमें हठयोग सम्बन्धी मुद्राएँ एवं पूजोपासना सम्बन्धी मुद्राएँ मुख्य हैं।

रोग शमन में उपयोगी योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की बहुत सी मुद्राएँ चलते-फिरते, सोते-जागते किसी भी स्थिति में की जा सकती हैं।

अधिकांश मुद्राओं का प्रयोग आवश्यक होने पर 45 से 48 मिनट करना चाहिए। यदि किसी मुद्रा को एक साथ न कर पायें तो 15-15 मिनट या 16-16 मिनट में विभाजित कर तीन बार में पूर्ण कर सकते हैं।

15. मुद्राएँ भिन्न-भिन्न हेतुओं से विभिन्न आसनों में की जाती है। हठयोग की मुद्राएँ बैठकर की जाती हैं किन्तु कुछ मुद्राओं में लेटना भी पड़ता है। हठयोग की मुद्राओं को नियमित रूप में कम से कम एक मिनिट से तीस मिनिट तक कर सकते हैं।

नाट्य परम्परा की मुद्राएँ अधिकांशत: भाव प्रदर्शन के उद्देश्य से प्रयुक्त होती हैं अत: विधि नियम के अनुसार बैठकर या खड़े होकर की जाती है। इनमें समय की कोई निश्चित अवधि नहीं है।

योग तत्त्व मुद्रा विज्ञान की मुद्राएँ अनन्त हैं। इस श्रेणि की मुद्राएँ प्राय: हाथ की पाँच अंगुलियों से ही बनती हैं किन्तु कुछ मुद्राओं में दोनों हाथों के साथ-साथ सम्पूर्ण शरीर का प्रयोग भी किया जाता है। जैसे ज्ञान मुद्रा, वैराग्य मुद्रा, अभय मुद्रा, ध्यान मुद्रा आदि में समग्र शरीर का उपयोग होता है। साधारण ज्ञान मुद्रा चलते-फिरते, उठते-बैठते अथवा विभिन्न कार्य करते हुए एक हाथ से या दोनों हाथों से भी की जा सकती है किन्तु मुख्य ज्ञान मुद्रा किसी आसन में बैठकर ही की जाती है।

रोग निवारक मुद्राएँ एक साथ दो, तीन, चार भी लगातर की जा सकती है। चाहें तो हर सैकेण्ड के बाद मुद्रा परिवर्तित कर सकते हैं। आवश्यकता होने पर बार-बार बदलते हुए कुछ अधिक समय भी मुद्राएँ कर सकते हैं।

रोग दूर करने वाली साधारण मुद्राओं में किसी मुद्रा को पहले तथा बाद में करने का कोई नियम नहीं है। जिस मुद्रा की आवश्यकता पहले समझें उसे इच्छानुसार कर सकते हैं।

हिन्दु उपासना में गायत्री मुद्राओं का प्रमुख स्थान माना गया है। इन मुद्राओं को त्रिकाल सन्ध्या में करने का प्रावधान है। इन्हें धीरे-धीरे भी कर सकते हैं और शीघ्रता के साथ भी इनका प्रयोग किया जा सकता है।

मुद्रा अभ्यासी साधकों के लिए आवश्यक है कि वे साधना काल के दौरान आत्मा, मन और शरीर से पूरी तरह शान्त और पवित्र हों। ऐसी स्थिति में मुद्राओं का पूर्ण लाभ प्राप्त होता है।

मुद्राएँ करते समय अतिरिक्त अन्य अंगुलियों को सीधा रखना चाहिए। मुद्राएँ उचित प्रकार से करने पर ही अपना प्रभाव दिखाती हैं।

मुद्रा चिकित्सा को अन्य चिकित्सा प्रणालियों जैसे ऐलोपैथी या होम्योपैथी के साथ भी किया जा सकता है। इससे अन्य चिकित्सा प्रणालियों में किसी भी प्रकार से बाधा नहीं पहुँचती वरन् लाभ ही होता है।

प्राय: मुद्राओं का प्रभाव अतिशीघ्र होता है परन्तु पुराने रोगों के निवारण हेतु मुद्राएँ लम्बे समय तक करनी चाहिए।

किसी भी क्रिया को करने से पूर्व उसके लाभ-हानि, विधि-अविधि के विषय में सम्यक जानकारी हो तो उसका प्रयोग शीघ्र परिणामी होता है। मुद्रा साधना यद्यपि एक शारीरिक क्रिया है परन्तु इसका प्रभाव साधक मनुष्य की सूक्ष्म तन्त्र प्रणालियों पर भी देखा जाता है। यही तन्त्र मनुष्य के स्वभाव, आचरण एवं भावजगत को संतुलित रखते हैं। इस अध्याय के माध्यम से साधक को मुद्रा साधना के उन्हीं पक्षों से परिचित करवाते हुए मुद्रा प्रयोग में अधिक जागरूक एवं सक्रिय बनाने का प्रयास किया है। इससे साधक स्वयं अपने रोगों के लक्षण जानकर किस चक्र या ग्रन्थि को नियंत्रित करना है यह जान सकेगा एवं तत्सम्बन्धी मुद्राओं सम्यक विधिपूर्वक उपयोग करके उनके सुपरिणाम प्राप्त कर सकेगा।

●

अध्याय-2

भगवान बुद्ध की मुख्य 5 एवं सामान्य 40 मुद्राओं की रहस्यपूर्ण विधियाँ

इस विश्व में प्रचलित धर्म-परम्पराओं में बौद्ध धर्म का अपना गरिमामय स्थान है। आज एक बड़ा तबका बौद्ध धर्म का अनुयायी माना जा सकता है। भारत में प्रचलित श्रमण संस्कृति जैन और बौद्ध इन द्विविध परम्पराओं में विभक्त हैं। बौद्ध धर्म का उद्भव यद्यपि भारत में हुआ है, किन्तु इस वर्ग के अनुयायी अन्य देशों में भी देखे जाते हैं। जैन धर्म की भाँति इसकी शिक्षा भी व्यक्ति को अध्यात्म की ओर ऊर्ध्वारोहित करती है।

बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि–बौद्ध संघ का मूल मन्त्र है। इस धर्म परम्परा में भगवान बुद्ध, उनके द्वारा प्रस्थापित धर्म और धर्म संघ इन तीनों की प्राप्ति होने को पुण्य माना गया है। भारत देश में लगभग मनुष्य जाति का एक तिहाई वर्ग बुद्ध के विचारों का समर्थक और अनुपालक है।

बौद्ध धर्म के संस्थापक भगवान बुद्ध का जन्म संभवत: ईसा पूर्व छठवीं शती के अन्त में हुआ था। महाराजा शुद्धोदन और महारानी माया के पुत्र आपका नाम सिद्धार्थ था। राजा शुद्धोदन गौतम गौत्रीय एवं शाक्य जाति के थे अत: सिद्धार्थ भी गौतम और शाक्य मुनि कहलाए।

बौद्ध साहित्य के अनुसार शाक्य मुनि (बुद्ध) का जीवन चित्रण कहीं भी उपलब्ध नहीं होता, उसे जातक कथाओं आदि के आधार पर द्वादश भागों में विभाजित किया गया है वह संक्षिप्त शब्दों में इस प्रकार है– 1. बुद्ध का स्वर्ग से धरती पर श्वेत हाथी के रूप में अवतरण 2. रानी माया के गर्भ में उसका प्रवेश 3. बुद्ध का जन्म 4. जन्म अवसर पर ब्रह्मा, इन्द्र एवं अन्य देव–देवियों द्वारा उनका अभिवादन 5. भगवान बुद्ध का अतिन्द्रिय ज्ञान 6. संसार विरक्ति

7. उदासीनता 8. यशोदा संग परिणय बंधन 8. पुत्र राहुल का जन्म 10. विषय भोगों के प्रति वैराग्य 11. संसार त्याग और 12. छः वर्ष की कठोर साधना के अनन्तर बोधि वृक्ष के नीचे परम ज्ञान की प्राप्ति। शाक्य मुनि को जिस दिन आत्म ज्ञान की प्राप्ति हुई उसके बाद से ही वे बुद्ध कहलाने लगे।

बुद्ध की शिक्षाएँ मौखिक रूप में थी अत: उनके कोई भी लिखित अवशेष नहीं मिलते। उनकी प्ररूपणा संसार, पुनर्जन्म और कर्म पर आधारित थी। चार आर्यसत्य, आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग, प्रतीत्यसमुत्पाद (दु:ख परम्परा) के 12 कारण आदि बुद्ध के मूलभूत सिद्धान्त और उपदेश थे। चार आर्यसत्य बौद्धधर्म की नींव हैं, इन एक-एक आर्यसत्य पर एक-एक स्वतन्त्र प्रबन्ध लिखा जा सकता है।

चार आर्यसत्य ये हैं– 1. दु:ख 2. दु:ख समुदय (तृष्णा) 3. दु:ख निरोध (निर्वाण) और 4. दु:ख निरोधगामिनी प्रतिपद् (आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग)।

अष्टाङ्गिकमार्ग के नाम ये हैं– 1. सम्यग्दृष्टि 2. सम्यक संकल्प 3. सम्यक वाक् 4. सम्यक कर्मान्त 5. सम्यक आजीव 6. सम्यक व्यायाम 7. सम्यक स्मृति और 8. सम्यक समाधि।

उक्त अष्ट मार्ग भी अनेक भेद-प्रभेदों के साथ कहे गये हैं।

प्रतीत्य समुत्पाद के 12 कारण निम्न हैं– 1. अविद्या 2. संस्कार 3. विज्ञान 4. नामरूप 5. षडायतन 6. स्पर्श 7. वेदना 8. तृष्णा 9. उपादान 10. भव 11. जाति और 12. जन्म-मरण।

इसके अतिरिक्त भगवान बुद्ध ने ध्यान, विपश्यना, निर्वाण आदि कई विषयों पर व्याख्याएँ प्रस्तुत की।

बौद्ध धर्म कई सम्प्रदायों में विभाजित है जिसमें हीनयान एवं महायान मुख्य हैं। इन दोनों परम्पराओं में आज भी प्रचुर मात्रा में कर्मकाण्ड प्रधान क्रियाएँ होती है। उन क्रियाओं के अन्तर्गत पूजोपासना करते समय अल्तर नाम की एक टेबल रखी जाती है, जिस पर सम्पूर्ण पूजा सामग्री रखते हैं। इस अल्तर के ऊपर सबसे पहले काष्ठ या धातु से निर्मित अष्टमंगल रखते हैं, अष्टमंगल के पीछे अथवा Side में सप्तरत्न रखे जाते हैं। इनके अग्रभाग में रजत या पीतल के सात प्यालों में चढ़ाने योग्य पूजा सामग्री रखी जाती है। प्रथम दो प्यालों में पानी, तीसरे में पुष्प, चौथे में सुगंधित धूप आदि द्रव्य, पाँचवें में

दीपक, छठवें में पानी और सातवें में नैवेद्य रखते हैं। प्रथम प्याले का पानी पद्यम के लिए, दूसरे प्याले का पानी चेहरे के लिए, पुष्प और धूप वातावरण को मनोरम एवं हर्ष अभिव्यक्ति के लिए, दीपक प्रकाश के लिए तथा जल और नैवेद्य अर्पण के लिए प्रयुक्त होते हैं।

कई वैधानिक क्रियाओं में आठ यशस्वी आहूतियाँ भी दी जाती है जो किसी समय स्वयं शाक्य मुनि को अर्पित की गई थी। कुछ विधानों में पाँच इन्द्रिय विषयों के प्रतीक रूप में दर्पण (रूप), शंख (शब्द), जायफल (गंध), शक्कर (रस) और रेशमी पीला वस्त्र (स्पर्श) रखा जाता है।

बौद्ध धर्म में लगभग 500 देवी-देवता हैं जिनके विषय में सामान्य वर्णन भी प्राप्त होता है। इन्हें मुख्यतया छः भागों में बांटा गया है- 1. बुद्ध 2. बोधिसत्त्व 3. देवी-देवता 4. रक्षक देव 5. सत्य के रक्षक देव और 6. निम्न स्तर के देव।

उपर्युक्त देवी-देवताओं को प्रसन्न रखने हेतु मण्डल एवं होमादि क्रियाएँ की जाती हैं जो अनेक तरह की मुद्राओं के द्वारा सम्पूर्ण होती हैं।

भगवान बुद्ध की मूर्तियों में मुख्य रूप से पाँच मुद्राएँ उपलब्ध होती है- 1. ध्यान मुद्रा 2. व्याख्यान मुद्रा 3. अभय मुद्रा 4. धर्मचक्र मुद्रा और 5. भूमिस्पर्श मुद्रा।

भगवान बुद्ध से सम्बन्धित 40 मुद्राओं का वर्णन भी उपलब्ध होता है। इन मुद्राओं की खोज राजा राम- III फ्रा बुद्ध योट फ्रा (राम-I) के वंशज ने की थी। इसी के साथ सप्तरत्न, अष्टमंगल, अठारह कर्त्तव्य, बारह द्रव्य हाथ मिलन, म-म मडोस् आदि की विशेष मुद्राएँ, विभिन्न देवी-देवता संबंधित मुद्राएँ तथा गर्भधातुमण्डल, वज्रधातुमण्डल, होम आदि में प्रयुक्त मुद्राएँ भी प्राप्त होती हैं।

उक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि बौद्ध परम्परा में मुद्राओं का प्रचलन आदिम युग से रहा है। उनके प्राचीन साहित्य में तत्सम्बन्धी आलेख स्पष्टत: प्राप्त होते हैं।

भगवान बुद्ध की पाँच मुद्राएँ

भगवान बुद्ध ने अपने जीवन में अनेक मुद्राओं की शोधनी की थी, उनमें पाँच मुख्य कही जाती है क्योंकि इन मुद्राओं को उन्होंने स्व-पर कल्याणार्थ कई बार धारण किया था। उन मुद्राओं की प्रयोग विधि इस प्रकार है–

1. अभय मुद्रा

जिस मुद्रा को दर्शाने से भय का वातावरण समाप्त हो जाता है उसे अभय मुद्रा कहते हैं। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार भगवान बुद्ध ने इस मुद्रा को धारण किया था तथा भगवान बुद्ध की 40 मुद्राओं में से यह 14वीं मुद्रा हैं। आज यह मुद्रा थेरपद बौद्ध परम्परा में थायलैण्ड में धारण की जाती है। दर्शाये चित्र के अनुसार यह पानी को रोकने की सूचक मुद्रा है। यह संयुक्त मुद्रा दोनों हाथों से प्रयुक्त होती है।

विधि

हथेलियों को शिथिल रखते हुए दोनों हाथों को छाती या कंधे के स्तर पर धारण करें तथा अंगुलियों और अंगूठों को परस्पर स्पर्शित एवं ऊर्ध्वप्रसरित रखने पर अभय मुद्रा बनती है।

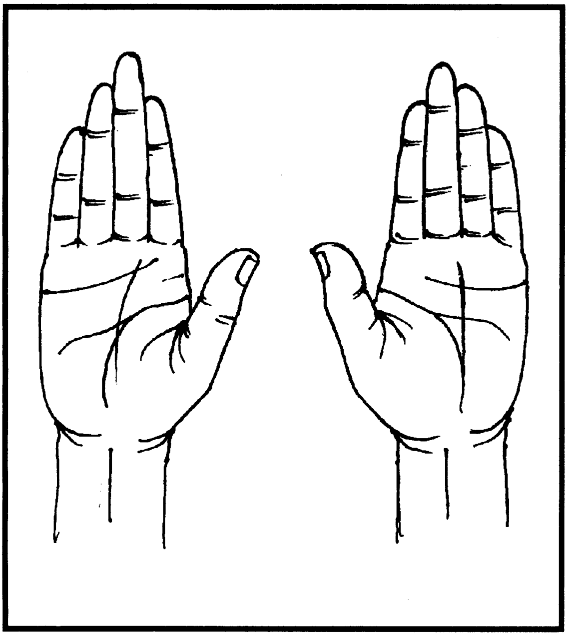

अभय मुद्रा

यह मुद्रा खड़े रहकर की जाती है।

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के द्वारा आकाश तत्त्व संतुलित होता है। हृदय सम्बन्धी विकारों को दूर करने में तथा आन्तरिक आनंद की अनुभूति में यह लाभदायी है। • आज्ञा चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा बुद्धि को कुशाग्र एवं मानसिक शान्ति प्रदान करती है। • इस मुद्रा के द्वारा हृदय सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है। पिनियल एवं पीयूष ग्रन्थि के स्राव को नियमित कर यह मुद्रा मानसिक तनावों से मुक्त करती है।

2. ध्यान मुद्रा

विशेष रूप से सूक्ष्म चिंतन, चित्त की एकाग्रता अथवा धार्मिक मनन ध्यान कहलाता है। इस मुद्रा के अन्य नाम ध्यान हस्त मुद्रा, समाधि मुद्रा, योग मुद्रा आदि है। चीन में यह मुद्रा टिंग-यिन, जापान में जो- इन, थायलैंड में पेंग-फ्रा-नेंग और तिब्बत में ग्तान-फ्याग्रग्या मुद्रा के नाम से पहचानी जाती है।

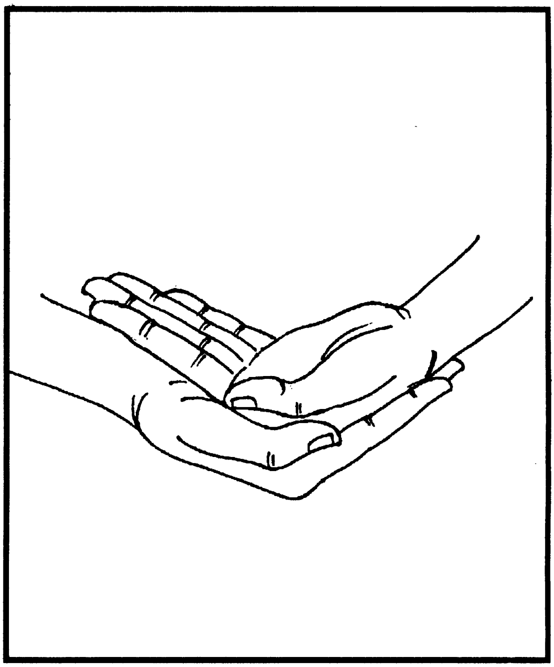

ध्यान मुद्रा

बौद्ध पिटकों के अनुसार बुद्ध ने इस मुद्रा को कई बार प्रयुक्त किया था। यह बुद्ध की 40 मुद्राओं में से एक है। यह संयुक्त मुद्रा सामान्यत: हिन्दू और बौद्ध दोनों परम्पराओं में देवी-देवता, बोधिसत्त्व, अर्हत भक्त आदि के द्वारा धारण की जाती है।

चित्र के अनुसार यह ध्यान की एक अवस्था या एकाग्रता की सूचक है।

विधि

दोनों हथेलियों को शिथिल रूप में ऊपर की ओर अभिमुख करते हुए दायें हाथ को बायें हाथ पर रखने से ध्यान मुद्रा बनती है।

इसमें दोनों हाथ गोद में रहते हैं। यह मुद्रा एक हाथ से भी की जा सकती है, उस समय अधिकतर बायां हाथ अंक में रहता है।[2]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा करने से अग्नि एवं वायु तत्त्व संतुलित हो जाते हैं। इनका संयोग होने से वायु सम्बन्धी विकृतियाँ, सिरदर्द, अनिद्रा आदि रोग उपशान्त होते हैं। • मणिपुर एवं अनाहत चक्र को प्रभावित करते हुए यह मनोबल एवं आत्मबल का वर्धन करती है। इसी के साथ यह वाक् शक्ति एवं कवित्व शक्ति का विकास करती हैं। • यह मुद्रा करने से थायमस, एड्रिनल एवं पेन्क्रियाज़ का स्राव संतुलित रहता है जिससे विचारधारा निर्मल एवं एकाग्र बनती है।

3. भूमिस्पर्श मुद्रा

इस मुद्रा में एक हाथ भूमि को स्पर्श करता हुआ रहने से यह भूमिस्पर्श मुद्रा कही जाती है।

भारत में इस मुद्रा को भास्पर्श, भूमिस्पर्श, भूस्पर्श, माखीजया मुद्रा भी कहा जाता है। चीन में यह मुद्रा अन-शन-यिन और चु-टि-यिन, इग्लैण्ड में एडेमेटाइन, जापान में अंजाम इन, सौकुची इन, मानवी छाई, पेंग मानवी छाई और सदुंग मेन के नाम से जानी जाती है।

भगवान बुद्ध ने भूमि को साक्षी रूप में रखते हुए पापों को एवं बुराईयों को हटाने के लिए यह मुद्रा धारण की थी। इस मुद्रा सम्बन्धी प्राचीनतम अनेक चित्र प्राप्त होते हैं उससे सूचित होता है कि भगवान बुद्ध की यह प्रिय मुद्रा थी।

भगवान बुद्ध द्वारा धारण की जाती 40 मुद्राओं में से यह पांचवी मुद्रा है। मुद्रा चित्र को गहराई से देखने पर ज्ञात होता है कि जब बुद्ध ध्यान अवस्था में

बैठते थे, तब यह मुद्रा करते थे।

आज यह मुद्रा थेरपद बौद्ध थायलैण्ड, म्यनमार और श्रीलंका में अधिक प्रचलित है।

विधि

दायें हाथ को शिथिलता पूर्वक दायें जांघ पर रखें, अंगुलियाँ नीचे की तरफ भूमि का किंचित स्पर्श करती हुई रहें। बायां हाथ शिथिल तथा बायीं हथेली ऊपर की ओर अभिमुख जैसे ध्यान मुद्रा में रहती हैं उस तरह रखने पर भूमिस्पर्श मुद्रा बनती है।[3]

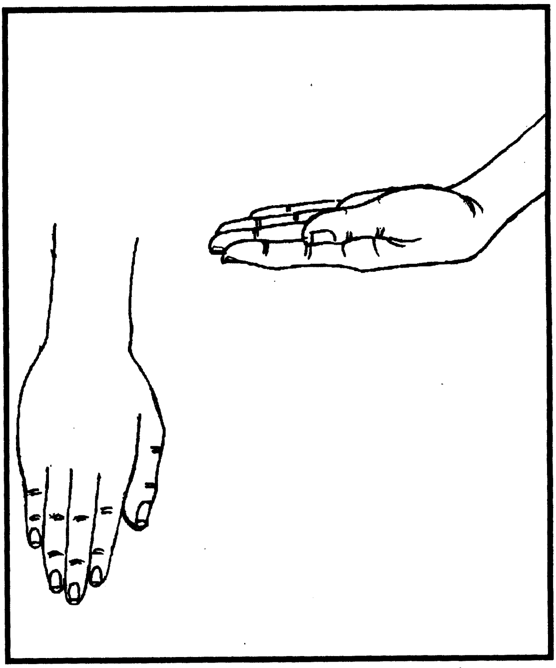

भूमिस्पर्श मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी, जल एवं आकाश **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** शक्ति, स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरुदण्ड, गुर्दे, पाँव, मलमूत्र अंग, प्रजनन अंग, निचला मस्तिष्क एवं स्नायु तंत्र।

4. व्याख्यान मुद्रा

सामान्य जनता को धर्मोपदेश देना व्याख्यान कहलाता है। भगवान बुद्ध ने बोधि प्राप्ति के पश्चात जिस मुद्रा में धर्मोपदेश दिया वह व्याख्यान मुद्रा कही जाती है। इसे धर्मचक्र मुद्रा, चिन मुद्रा, वितर्क मुद्रा एवं संदर्शन मुद्रा के नाम से भी जाना जाता है।

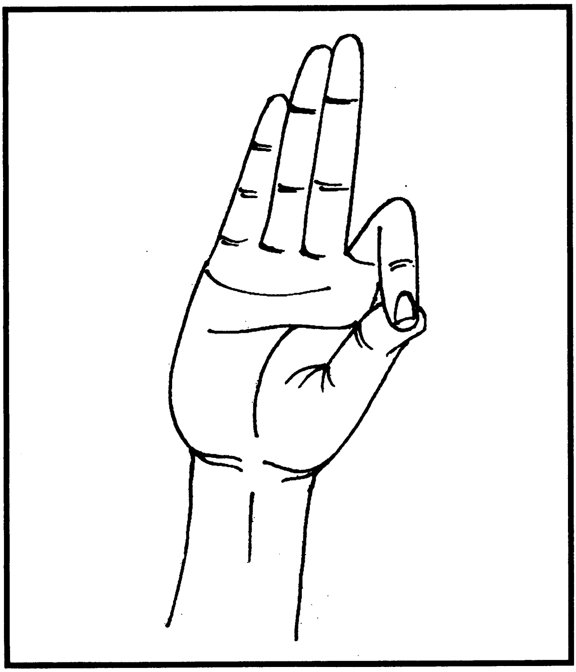

व्याख्यान मुद्रा

विधि

दायां हाथ ऊपर सामने की तरफ रखते हुए अंगूठे और तर्जनी के अग्रभाग को स्पर्श करें तथा शेष अंगुलियों को सीधा हल्का सा झुका हुआ रखना व्याख्यान मुद्रा है।

सुपरिणाम

• व्याख्यान मुद्रा आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए हृदय सम्बन्धी विकारों को दूर करती है। यह भावधारा को निर्मल करते हुए आन्तरिक आनंद को प्रकट करती है। • इसको करने से विशुद्धि चक्र जागृत होता है जो कि व्यक्ति के आन्तरिक ज्ञान विकास, मानसिक स्थिरता एवं शान्ति, आरोग्य एवं

दीर्घ जीवन में सहायक होता है। • यह मुद्रा थायराइड एवं पेराथायराइड ग्रन्थियों को प्रभावित करते हुए कण्ठ को मधुर बनाता है साथ ही जीवन को उदात्त एवं निर्मल बनाता है। इससे अध्यात्म मार्ग में व्यक्ति की प्रगति होती है।

5. धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा

भगवान बुद्ध ने धर्मनीति का प्रवर्त्तन करते समय जो मुद्रा अंगीकार की थी उसे धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा कहा जाता है। इस मुद्रा का अपर नाम व्याख्यान मुद्रा है। इससे बोध होता है कि भगवान बुद्ध जब प्रवचन करते थे तब इसी मुद्रा को धारण करते थे।

चीन में यह मुद्रा चुआं-फा-लुं-यिन, जापान में टेम्बो-रिन-यिन, तिब्बत में चोस-हकोर-फ्याग्रया के नाम से कही जाती है।

बौद्ध परम्परा की यह मुद्रा धर्मचक्र के प्रवर्त्तन की सूचक है। विद्वज्ञों के अनुसार प्रस्तुत मुद्रा भगवान बुद्ध के वैरोचन और मैत्रेय देव से सम्बन्धित है।

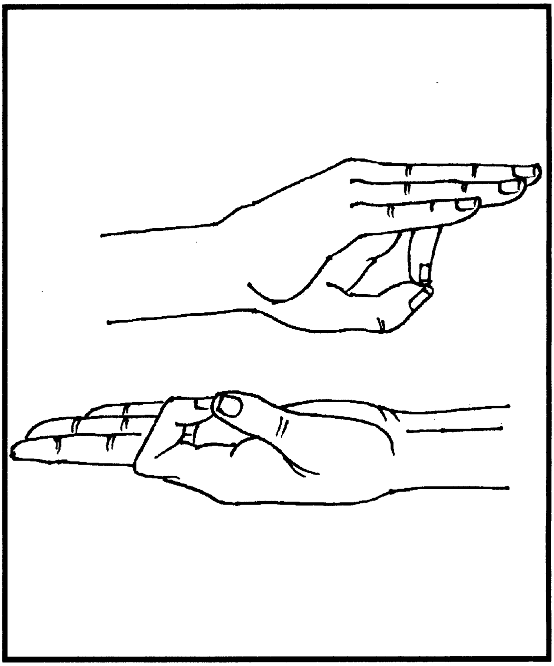

धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा

विधि

इसमें दोनों हाथों की मुद्रा समान होती है, किन्तु हाथों को रखने की स्थिति भिन्न-भिन्न हैं। दोनों हथेलियों को एक दूसरे के अभिमुख करते हुए बायीं हथेली को मध्य भाग में थोड़ी नीचे की तरफ रखें और दायीं हथेली को सामने की ओर छाती के स्तर पर धारण करें। तदनन्तर युगल हाथों के अंगूठे एवं तर्जनी का अग्रभाग एक-दूसरे को स्पर्श करता हुआ तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका ऊपर की ओर फैले हुए रहने पर धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा बनती है।[4]

सुपरिणाम

• धर्मचक्र मुद्रा का नियमित प्रयोग करने से शरीरगत पृथ्वी एवं जल तत्त्व संतुलित रहते हैं। इनका सहयोग व्यक्तित्व का संतुलित विकास करता है। यह मुद्रा शरीर की हड्डियों को मजबूत एवं रक्त संचरण को नियमित करती है। • मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए आन्तरिक शक्ति को उर्ध्वारोहित करती है तथा काम ग्रन्थियों को नियंत्रित कर ब्रह्म शक्ति को विकसित करती है।

भगवान बुद्ध की 40 मुद्राएँ

भगवान बुद्ध ने भिन्न-भिन्न स्थितियों को दर्शाने हेतु कई मुद्राओं का प्रयोग किया था, उनमें मुख्य 40 मुद्राओं का वर्णन प्राप्त होता है वह संक्षेप में अनुक्रमशः इस प्रकार है–

1. पेंग्-तुक्कर किरिय मुद्रा (तपस्या मुद्रा)

यह मुद्रा जापान में पेंग तुक्कर के नाम से तथा भारत में ज्ञान मुद्रा के नाम से पहचानी जाती है। बुद्ध द्वारा धारण की गई 40 मुद्राओं में से यह पहली मुद्रा है। भगवान बुद्ध ने इस मुद्रा के माध्यम से तपः साधना की थी अतः यह तपश्चर्या करने की सूचक है। आज इस मुद्रा का प्रचलन थाई बौद्ध परम्परा में है। यह संयुक्त मुद्रा वीरासन या वज्रासन में धारण की जाती है।

विधि

दायीं हथेली मध्यभाग की तरफ मुड़ी हुई, अंगूठा और तर्जनी के अग्रभाग स्पर्श करते हुए और शेष अंगुलियाँ शिथिल रूप से बायीं तरफ फैली हुई रहें।

बायीं हथेली मध्यभाग की ओर अभिमुख, अंगूठा और तर्जनी के अग्रभाग

परस्पर स्पर्श करते हुए और शेष अंगुलियाँ शिथिल रूप से दायीं तरफ फैली हुई रहें।

तत्पश्चात बायाँ हाथ दाएँ हाथ को Cross करता हुआ रहने पर पेंग् तुक्कर किरिय मुद्रा निर्मित होती है।[5]

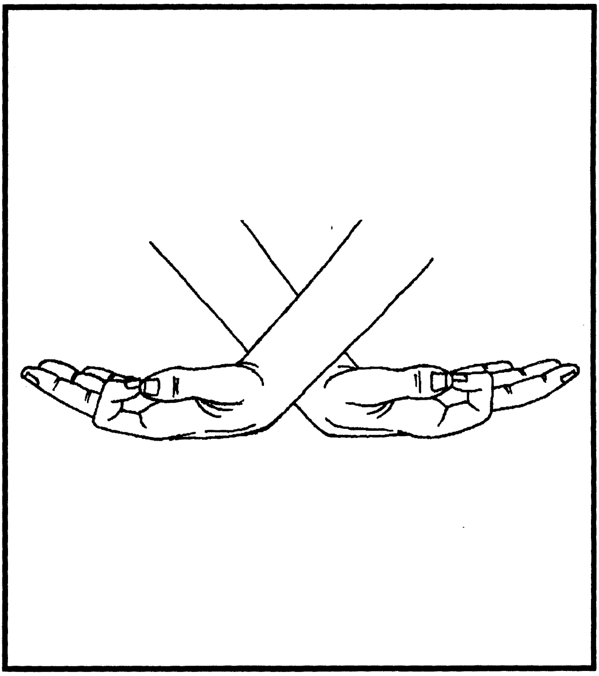

पेंग्-तुक्कर किरिय मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं वायु तत्त्व को प्रभावित करती है। इन दोनों के संयोग से रक्त विकार, वायु सम्बन्धी दोष, शारीरिक रूखापन, कुपित वायु आदि का निवारण होता है। • यह मुद्रा स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र के कार्यों का नियमन करती है जिससे पेट के परदे के नीचे स्थित सभी अवयवों का कार्य सुचारू रूप से होता है। • यह मुद्रा थायरॉइड एवं गोनाडस् (कामग्रंथियों) को प्रभावित करती है इससे वायु तत्त्व, फेफड़ें और हृदय का नियमन होता है। शक्ति का उत्पादन होता है, ज्ञान ग्रंथियाँ जागृत होती है तथा शारीरिक गर्मी का संतुलन होता है। • एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार इससे नाभि चक्र सम्बन्धी रोग जैसे-

नाभि खिसकना आदि में लाभ होता है। थायरॉइड और पेराथायरॉइड ग्रंथियों को प्रभावित करते हुए यह बालक का विकास करती है तथा शरीरस्थ विष एवं विजातीय तत्त्वों को दूर करती है।

2.पेंग् सुंग् रब्मथुपयस् मुद्रा (अर्पित चावल दलिया ग्रहण की मुद्रा)

यह मुद्रा जापान में पेंग् सुंग् और भारत में अंचित-अंचित मुद्रा के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान बुद्ध के द्वारा धारण की गई 40 मुद्राओं में से यह दूसरी मुद्रा है। कहा जाता है कि बुद्ध ने दीर्घ तपस्या के पश्चात आहार के लिए चावल का दलिया ग्रहण किया था, यह उस सामान्य आहार की सूचक है। आज यह मुद्रा थेरपद बौद्ध परम्परा में प्रचलित है।

यह मुद्रा प्रलम्ब पदासन में की जाती है।

विधि

इस संयुक्त मुद्रा में हथेलियों को घुटनों पर ऊर्ध्वमुख रखते हुए अंगुलियों और अंगूठों को किंचित झुकाने पर पेंग् सुंग् रब्मथुपयस् मुद्रा बनती है।[6]

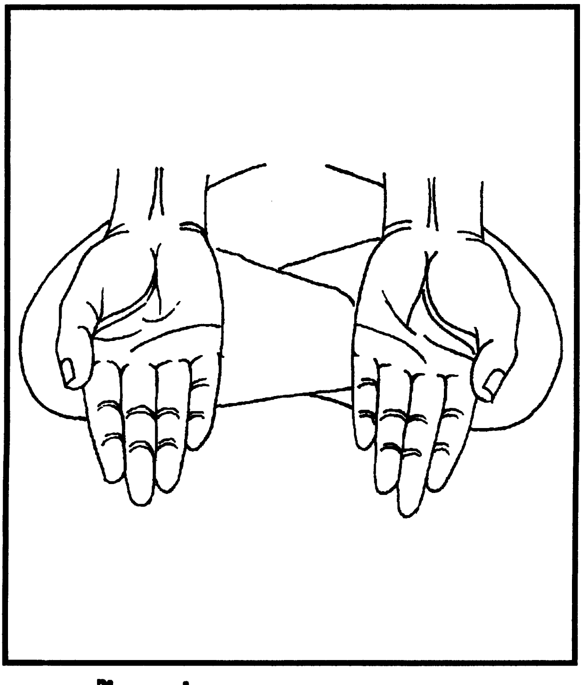

पेंग् सुंग् रब्मथुपयस् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा शरीरगत आकाश तत्त्व को प्रभावित करती है। इसके संतुलन से शरीर में रहे विषद्रव्यों का परिहार होता है, शरीर तंदुरूस्त एवं मजबूत बनता है तथा काम क्रोधादि कषाय दूर होते हैं। • इस मुद्रा का प्रभाव आज्ञा चक्र एवं ललाट चक्र पर पड़ता है। यह शारीरिक विकास के साथ मस्तिष्क और स्मरण शक्ति का संतुलन करती है और आंतरिक अनुभूतियों में वृद्धि करती है। • दर्शन एवं ज्योति केन्द्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा कषायों पर नियंत्रण करती है। इसके जागरण से व्यक्ति बुद्धिशाली, प्रसिद्ध लेखक, कवि, वैज्ञानिक, तत्त्वज्ञानी और मानव जाति का प्रेमी बनता है। • एक्युप्रेशर प्रणाली के अनुसार यह मुद्रा मनोबल, निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति एवं देखने-सुनने की शक्ति का नियमन करती है। इसका प्रभाव पिच्युटरी एवं पिनियल ग्रंथि से सम्बन्धित कार्यों पर पड़ता है तथा अन्य ग्रन्थियों के संचालन में भी सहायक बनती है।

3. पेंग् लोय् तर्ड मुद्रा (भिक्षा पात्र को अधर धारण करने की मुद्रा)

यह मुद्रा थायलैण्ड में पेंग् लोय् और भारत में अंचित कट्यवलंबित नाम से प्रचलित है। भगवान बुद्ध की 40 मुद्राओं में से यह तीसरी मुद्रा है। भगवान बुद्ध भिक्षा काल में आहार पात्र को बिना किसी अवलंबन के धारण करते थे, यह उसकी प्रतीक मुद्रा है।

बौद्ध परम्परा में यह मुद्रा आज भी धारण की जाती है।

विधि

किसी प्लेट या पात्र को पकड़ते समय हाथों की जो स्थिति बनती है इस मुद्रा में वैसा ही किया जाता है। दायीं हथेली ऊपर की तरफ, अंगुलियाँ किंचित झुकी हुई, अंगूठा हल्का सा अंगुलियों के अग्रभाग की तरफ झुका हुआ रहें। बायां हाथ जंघा पर, अंगुलियाँ आगे की ओर तथा अंगूठा पीछे की तरफ अथवा अंगुलियों के पार्श्व में रखने पर पेंग् लोय् तार्ड मुद्रा बनती है।[7]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग अग्नि तत्त्व को प्रभावित करता है। यह आहार का पाचन कर शरीर को शक्ति प्रदान करती है, स्नायुओं की स्थिति स्थापकता बनाए रखती है एवं चेहरे को सुंदरता प्रदान करती है। एनीमिया, पीलिया,

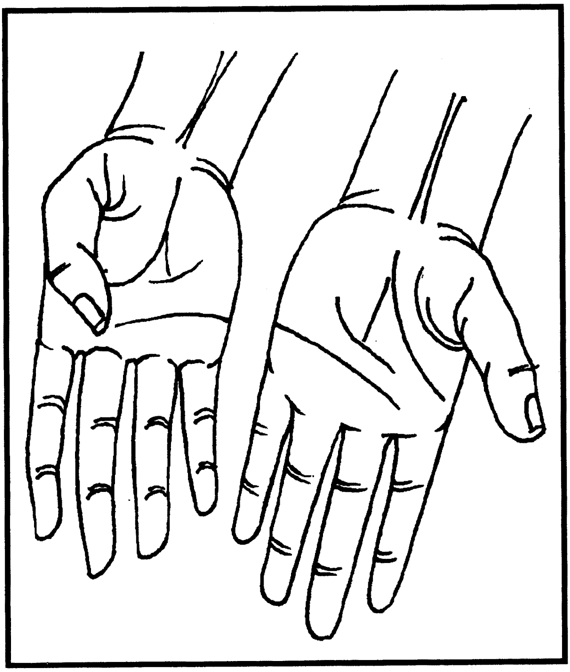

पेंग् लोय् तई मुद्रा

पाचन, कमजोरी आदि रोगों का निवारण भी करती है। • मणिपुर चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा पाचक रसों के उत्पादन, शरीर में जल एवं सोडियम का नियंत्रण और सम्यक चारित्र का विकास करती है। • इस मुद्रा के प्रयोग से एड्रिनल एवं पेन्क्रियाज पर प्रभाव पड़ता है जिससे यकृत, लीवर, गाल ब्लेडर, पाचक रस एवं पित्त उत्पादन का कार्य संतुलित होता है। इससे तीव्र परखशक्ति, आंतरिक शक्ति एवं साहस में वृद्धि होती है। • एक्युप्रेशर के अनुसार यह शरीर में रक्त परिभ्रमण, प्राणवायु संचार आदि को नियमित करती है तथा नेतृत्व गुण में विकास कर सामाजिक कार्यों में रूचि बढ़ाती है।

4. पेंग् सुंग् रब्यक् मुद्रा (घास का ढेर ग्रहण करने की मुद्रा)

यह मुद्रा थायलैण्ड में पेंग् सुंग् रब्यक् और भारत में अंचित लोलहस्त नाम से प्रसिद्ध है। भगवान बुद्ध द्वारा धारण की गई 40 मुद्राओं में से चौथी है। इस मुद्रा के द्वारा बुद्ध भगवान रात्रि विश्रमणार्थ घास पुंज को ग्रहण करते थे

अत: यह तृण आदान की सूचक मुद्रा है। यह संयुक्त मुद्रा थाई बौद्ध परम्परा में अधिक प्रचलित है। भगवान बुद्ध इस मुद्रा को खड़े-खड़े करते थे।

विधि

दायाँ हाथ फैलाया हुआ, हथेली ऊर्ध्वाभिमुख, अंगुलियाँ और अंगूठा बाहर की तरफ फैले हुए कमर के स्तर पर रखें। बायाँ हाथ नीचे की तरफ लटकता हुआ पार्श्वभाग में रहे। इस तरह पैंग् सुंग् रब्यक् मुद्रा बनती है।[8]

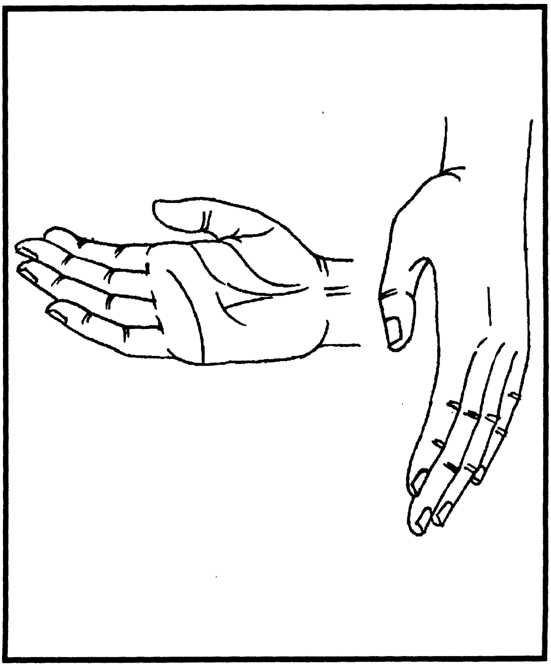

पैंग्-सुंग् रब्यक् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा शरीरगत अग्नि एवं जल तत्त्व को प्रभावित करती है। इनके संयोग से पित्त से उभरने वाली बीमारियाँ, मूत्रदोष, गुर्दे आदि से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान होता है। शारीरिक कान्ति एवं तेज बढ़ता है। • मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा तनाव पर नियंत्रण कर विशेष कार्य शक्ति एवं ऊर्जा प्रदान करती है। नाभि के नीचे के अवयवों का नियमन करती है तथा इससे वचनसिद्धि होती है। • तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र

को संतुलित करते हुए यह शरीर में शर्करा, पाचन, पित्ताशय, लीवर, रक्त परिभ्रमण, रक्तचाप आदि का संतुलन एवं चारित्र गठन करती है।

5. भूमिस्पर्श मुद्रा

इस मुद्रा का वर्णन बुद्ध की मुख्य पाँच मुद्राओं के अन्तर्गत कर दिया गया है।

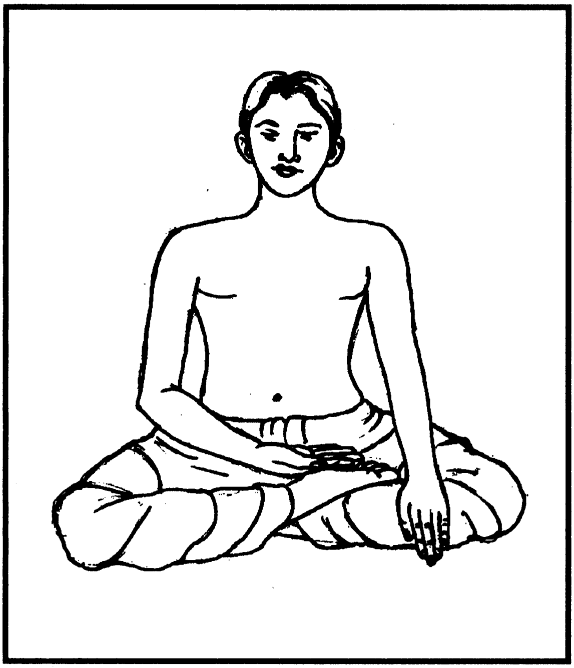

भूमि स्पर्श मुद्रा

6. पेंग् लिला मुद्रा (चलने की मुद्रा)

यह मुद्रा थायलैण्ड में पेंग् लिला और भारत में लोलहस्त अभय मुद्रा के नाम से पहचानी जाती है। भगवान बुद्ध के द्वारा धारण की गई 40 मुद्राओं में से छठवीं मुद्रा है। बुद्ध भगवान जब चलते थे तब उनके पैरों की जो स्थिति बनती थी उसे ही हस्त मुद्रा के द्वारा दर्शाया गया है। यह भगवान बुद्ध के गमन की सूचक मुद्रा है।

विधि

बायाँ हाथ ऊपर उठा हुआ, अंगुलियाँ और अंगूठें शिथिल रूप से ऊपर उठे हुए एवं हल्के से झुके हुए, हथेली बाहर की ओर छाती के स्तर पर धारण की हुई रहे, दायें हाथ की अंगुलियाँ नीचे की तरफ पार्श्वभाग में झुकी हुई रहें, इस भाँति पेंग् लिला मुद्रा बनती है।[9]

चलते समय जिस तरह बायाँ पैर उठा हुआ और दायाँ पैर नीचे की तरफ रहता है उसी तरह इस मुद्रा में पाँवों के प्रतीक रूप में बायाँ हाथ उठा हुआ और दायाँ हाथ नीचे की ओर रहता है।

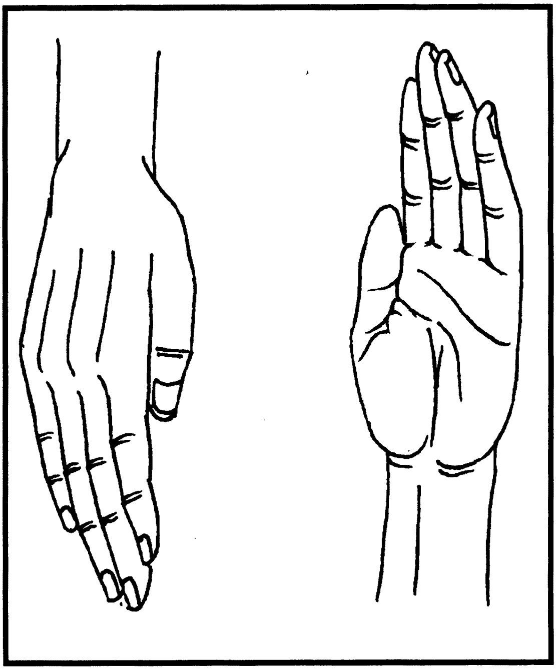

पेंग्-लिला मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं आकाश तत्त्व को प्रभावित करती है। ये दोनों जीवन तत्त्व है। अग्नि तत्त्व शरीर रूपी गाड़ी का स्टार्टर है। यह बेहोशी, मस्तिष्क सम्बन्धी अव्यवस्था, तनाव, आँखों की कमजोरी, एसिडिटी की तकलीफों का शमन करती है। इसी के साथ स्मरण शक्ति का पोषण तथा शरीर के प्रत्येक भाग

का संचालन करती है। • मणिपुर एवं आज्ञा चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा ज्ञान ग्रंथियों को सक्रिय कर तीव्र बुद्धि, स्मरणशक्ति, शरीर एवं मस्तिष्क का विकास करती है। इससे मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस आदि समस्याओं का समाधान भी होता है। • यह मुद्रा तैजस एवं दर्शन केन्द्र को प्रभावित करते हुए। इससे आध्यात्मिक, शारीरिक एवं मानसिक प्रगति में सहयोग, क्रोधादि कषायों का नियंत्रण एवं वासना भाव का उपशमन होता है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह मुद्रा रक्तचाप, शर्करा आदि का संतुलन करती है। यह अनैतिक वृत्तियों का नियंत्रण करके कवित्व, लेखन, करुणा आदि गुणों के निर्माण में भी सहयोग प्रदान करती है।

7. पेंग् तवैनेत्र मुद्रा (बोधिवृक्ष को एकटक देखने की मुद्रा)

थायलैण्ड में यह मुद्रा 'पेंग् तवैनेत्र' के नाम से कही जाती है। भगवान बुद्ध के द्वारा धारण की गई 40 मुद्राओं में से यह सातवीं मुद्रा है। भगवान बुद्ध ने बोधिवृक्ष को देखने हेतु अथवा देखते समय इस मुद्रा का उपयोग किया था इसलिए यह बोधिवृक्ष दर्शन की सूचक है। यह संयुक्त मुद्रा खड़े होकर की जाती है।

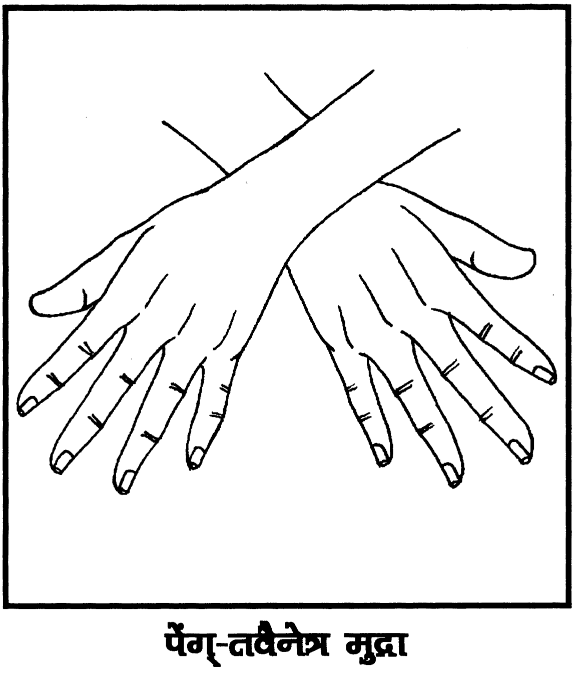

पेंग्-तवैनेत्र मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को मध्य भाग में रखते हुए अंगुलियों और अंगूठों को नीचे की तरफ फैलायें, हाथों को उरू मूल के स्तर पर धारण करें तथा दायाँ हाथ बायें को cross करता हुआ रहे, इस तरह पैंग् तवैनेत्र मुद्रा बनती है।[10]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा की साधना पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व में संतुलन स्थापित करती है। इससे शरीर-नाड़ी शुद्धि, कब्ज एवं पेट सम्बन्धी गड़बड़ियों पर नियंत्रण, हार्ट अटैक, लकवा, मूर्च्छा आदि में लाभ होता है। • यह मुद्रा मूलाधार एवं आज्ञा चक्र को प्रभावित करती है इससे शारीरिक आरोग्य, मानसिक शांति, कार्य दक्षता एवं सूक्ष्म बुद्धि प्राप्त होती है. तथा स्वभाव शांत एवं मधुर बनता है। • इसकी साधना से गोनाड्स 'यौन ग्रन्थियाँ' एवं पिच्युटरी पर प्रभाव पड़ता है। यह हस्तदोष, स्वप्नदोष, मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याओं का समाधान तथा हीन वृत्ति, भाव शून्यता, स्वच्छंदता आदि को नियंत्रित करती है।

• एक्युप्रेशर प्रणाली के अनुसार वंध्यत्व निवारण, शरीर में गर्मी का संतुलन एवं प्रजनन को सुगम बनाती है।

8. पेंग्-छोंग्-क्रोम्-केडव् मुद्रा (रत्नमय मार्ग की मुद्रा)

थायलैण्ड में इस मुद्रा को पेंग्-छोंग् तथा भारत में हस्तस्वस्तिक मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा थाई बौद्ध परंपरा द्वारा मान्य भगवान बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित 40 मुद्राओं एवं आसनों में से आठवीं मुद्रा है। अनुमानत: जब भगवान बुद्ध एक गाँव से दूसरे गाँव की ओर प्रयाण करते थे, उस समय सम्पूर्ण मार्ग रत्न की भाँति प्रकाशित हो उठता था अत: इसे रत्नमय मार्ग की सूचक मुद्रा कहा गया है। यह संयुक्त मुद्रा है।

विधि

दोनों हथेलियाँ नीचे की तरफ, अंगुलियाँ और अंगूठे बाहर की तरफ फैले हुए तथा दायां हाथ बायें हाथ की कलाई पर Cross करता हुआ रहे, इस भाँति पेंग्-छोंग् क्रोम् केडव् मुद्रा बनती है।[11]

• यह मुद्रा जंघा के आगे धारण की जाती है।

• मुद्रा धारण किया हुआ व्यक्ति दाहिने पैर पर खड़ा हुआ और बायां पैर उठा हुआ जैसे चल रहा हो, ऐसा प्रतीत होता है।

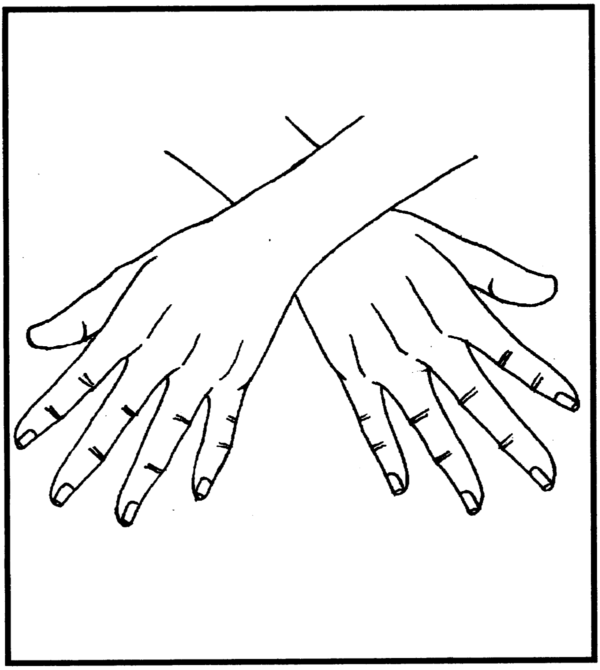

पेंग्-छोंग्-क्रोम्-केडव् मुद्रा

सुपरिणाम

● यह मुद्रा अग्नि एवं जल तत्त्व को संतुलित करते हुए आहार का पाचन, स्नायुओं की स्थिति स्थापकता और रोग प्रतिरोधात्मक शाक्ति का विकास करती है। रूधिर आदि की कार्यपद्धति में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। ● इस मुद्रा का प्रभाव मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र पर पड़ता है। यह शरीर में रक्त, शर्करा, जल तत्त्व और सोडियम को नियंत्रित करती है। ● यह मुद्रा एड्रिनल एवं गोनाड्स को प्रभावित करती हैं। इससे जल तत्त्व संतुलित होता है और कामेच्छा नियंत्रित होती है। यह ज्ञानतंतु, मज्जा, मांस, हड्डियाँ, बोनमेरो आदि का नियमन भी करती है।

9. पेंग् फ्रसन्भॆत्र मुद्रा (चार भिक्षा पात्र को युगपद् धारण करने की मुद्रा)

पेंग् फ्रसन्भॆत्र नाम से यह मुद्रा थायलैण्ड में प्रसिद्ध है। भारत में इस मुद्रा को बुद्ध श्रमण ध्यान मुद्रा कहा जाता है। भगवान बुद्ध ने मुख्य रूप से 40 मुद्राएँ धारण की थी उनमें यह नौवीं मुद्रा है।

सन्दर्भित ग्रन्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि बुद्ध भिक्षाकाल में चार पात्रों को एक साथ धारण करते थे यह उसकी सूचक मुद्रा है। इस मुद्रा में चार भिक्षा पात्रों को युगपद् दर्शाया जाता है। यह मुद्रा वीरासन अथवा वज्रासन में धारण की जाती है।

विधि

दायीं हथेली हृदय के आगे अधोमुख, अंगुलियाँ हल्की सी मुड़ी हुई और शरीर से दूर जैसे किसी पात्र को स्पर्श कर रही हो, उस भाँति रहें।

बायीं हथेली शिथिल रूप से ऊर्ध्वाभिमुख एवं गोद में पात्र को धारण करती हुई दिखाई देने पर पेंग्-फ्रसन्र्भत्र मुद्रा बनती है।[12]

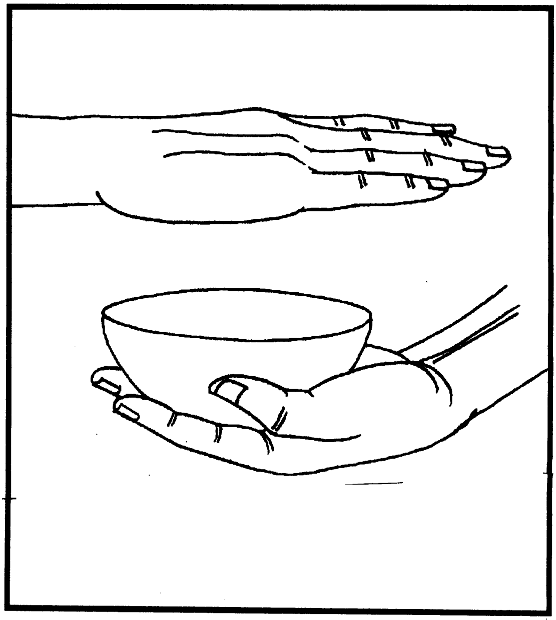

पेंग्-फ्रसन्र्भत्र मुद्रा

सुपरिणाम

यह मुद्रा करने से वायु एवं आकाश तत्त्व प्रभावित होते हैं इससे हृदय की क्रिया एवं रूधिराभिसंचरण का नियंत्रण होता है। श्वसन एवं मल-मूत्र की गति में मदद मिलती है। शरीर में हवा का संतुलन होता है जिससे हार्ट अटैक, लकवा, मूर्च्छा, वायुविकार आदि नष्ट होते हैं। • यह मुद्रा अनाहत एवं विशुद्धि

चक्र पर प्रभाव डालती है। यह साधक को शांत, प्रेमल, सहिष्णु एवं सेवाभावी बनाती है तथा दीर्घजीवन में सहायक बनती है। • यह मुद्रा थायमस एवं थायरॉइड ग्रंथियों को प्रभावित करती है। • एक्युप्रेशर के अनुसार यह मुख्य रूप से बालकों की रोगों से रक्षा करती है तथा मानसिक एवं शारीरिक संतुलन बनाए रखती है। यह कैल्शियम, फास्फोरस का संतुलन कर विजातीय द्रव्यों को शरीर से निष्कासित भी करती है।

10. पेंग्-छन्-समोर मुद्रा (फल सेवन की मुद्रा)

थायलैण्ड में 'पेंग्-छन् समोर्' नाम से प्रसिद्ध यह मुद्रा भारत में 'अंचित-ध्यान' मुद्रा नाम से पहचानी जाती है। यह बुद्ध के जीवन काल का वर्णन करने वाली 40 मुद्राओं और आसनों में से दसवीं मुद्रा है। इस मुद्रा के विषय में कहा जाता है कि भगवान बुद्ध दर्शायी मुद्रा के अनुसार हरीतकी, आँवला, बहेड़ा आदि इस प्रकार के फल का आसेवन करते थे अत: यह उसकी प्रतीक मुद्रा है।

यह मुद्रा थायलैण्ड की बौद्ध परम्परा में प्रचलित है। इसे वीरासन या वज्रासन में बैठकर करते हैं।

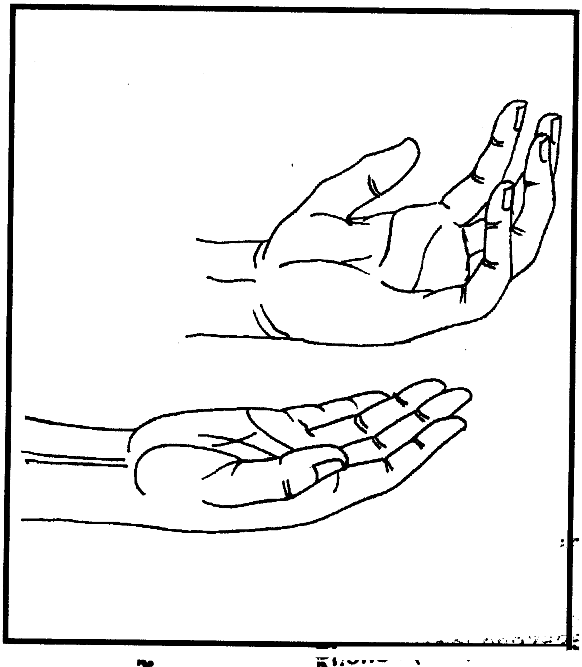

पेंग्-छन्-समोर मुद्रा

विधि

बायीं हथेली ऊर्ध्वमुख और बाहर की तरफ प्रसरित हुई, अंगुलियाँ हल्की सी मुड़ी हुई, अंगूठा हल्का सा अंगुलियों के अग्रभाग की तरफ मुड़ा हुआ एवं फल विशेष को धारण करता हुआ दिखाई दें तथा हथेली गोद में रहें। दायीं हथेली ऊपर की तरफ एवं अंगुलियाँ फैलती हुई रहें, इस तरह पैंग्-छन्-समोर् मुद्रा बनती है।[13]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा शरीरगत अग्नि तत्त्व को प्रभावित करती है इससे मुद्रा धारक में स्फूर्ति, जोश, उष्णता बढ़ती है तथा निद्रा, आलस्य एवं पाचन सम्बन्धी विकार दूर होते है। • इस मुद्रा की साधना से मणिपुर चक्र जागृत होता है जो आध्यात्मिक और भौतिक व्यक्तित्व को उच्चता प्रदान करता है। • इससे तैजस केन्द्र सक्रिय होता है जिससे पाचन कार्यों में सहयोग प्राप्त होता है तथा शारीरिक तेज में वृद्धि होती है। • एक्युप्रेशर प्रणाली के अनुसार इसके द्वारा आत्मनियंत्रण, नेतृत्व क्षमता, तीव्र परखशक्ति, अनुपम कार्यशक्ति का वर्धन होता है।

11. पेंग् लिला मुद्रा (गमनागमन की मुद्रा)

यह मुद्रा भारत में लोलहस्त वितर्क मुद्रा के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान बुद्ध के जीवन वृत्त पर प्रकाश डालने सम्बन्धी 40 मुद्राओं और आसनों में से यह 11वीं मुद्रा है। पूर्वकथित पेंग् लिला नामक (छठवीं) मुद्रा का ही यह प्रकारान्तर है। उस मुद्रा में बायां हाथ उठा हुआ और दायां हाथ नीचे की तरफ रहता है जबकि इस मुद्रा में दाहिना हाथ उठा हुआ और बायां हाथ नीचे की तरफ रहता है। पाँवों की स्थिति दोनों प्रकारों में समान रहती है। मूलत: यह मुद्रा भगवान बुद्ध की हलन-चलन क्रिया को दर्शाती है।

विधि

दायां हाथ उठा हुआ, अंगुलियाँ और अंगूठे शिथिल रूप से ऊर्ध्व प्रसरित एवं हल्के से झुके हुए तथा हथेली छाती के स्तर पर रहें। बायीं हथेली मध्यभाग में, अंगुलियाँ नीचे की तरफ फैली हुई पार्श्वभाग में स्थिर रहें, इस भाँति पेंग् लिला मुद्रा बनती है।[14]

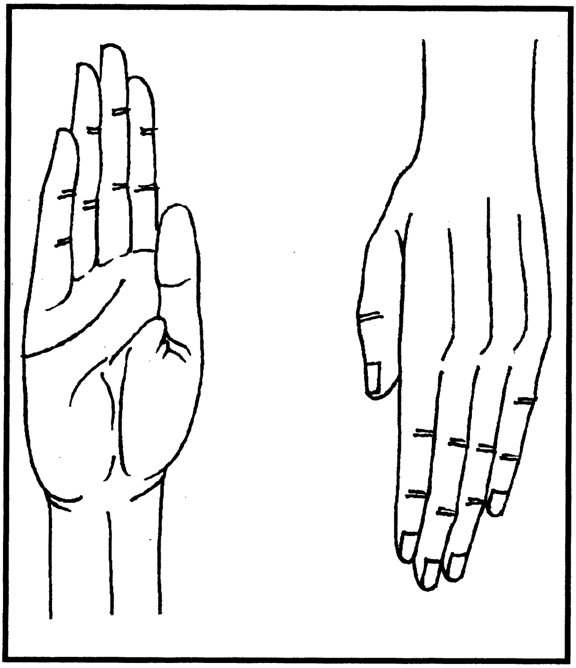

पेंग् लिला मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं वायु तत्त्व में संतुलन स्थापित करती है। इससे शरीर एवं जीवन प्रवाह सुरक्षित रहते हैं। यह शारीरिक कार्य प्रणालियों को संतुलित करते हुए सुप्त शक्तियों को जागृत करती है। • स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा जिह्वा पर सरस्वती का वास एवं अपूर्व शक्तियों का विकास करती है। इसी के साथ वक्तृत्व, कवित्व, इन्द्रिय निग्रह आदि गुणों में वर्धन होता है। • स्वास्थ्य एवं आनन्द केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा भावनाओं को निर्मल एवं परिष्कृत बनाती है तथा कामेच्छाओं का नियंत्रण करती है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार बालिकाओं के मानसिक, शारीरिक एवं बौद्धिक विकास में तथा प्रजनन एवं मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करती है।

12. पेंग् फ्रातर्न एहि भिक्खु मुद्रा (अभिषेक मुद्रा)

यह मुद्रा थायलैण्ड में उपर्युक्त नाम से एवं भारत में 'अहायवरद ध्यान' मुद्रा नाम से प्रचलित है। थाई बौद्ध परम्परा में प्रवर्त्तित भगवान बुद्ध की 40 मुद्राओं में से यह बारहवीं मुद्रा है।

विद्वानों के अनुसार यह भगवान बुद्ध की अभिषेक मुद्रा है। इस मुद्रा को ध्यानासन या वीरासन में किया जाता है।

विधि

दाहिने हाथ की अंगुलियाँ और अंगूठा एक साथ ऊपर की तरफ फैले हुए और हल्का सा झुककर शरीर से 45^0 कोण बनाते हुए हथेली छाती के स्तर पर धारण की हुई रहे। बायीं हथेली ऊर्ध्वाभिमुख एवं अंगुलियाँ मध्यभाग की तरफ प्रसरित गोद में रखने पर पेंग् फातर्न मुद्रा बनती है।[15]

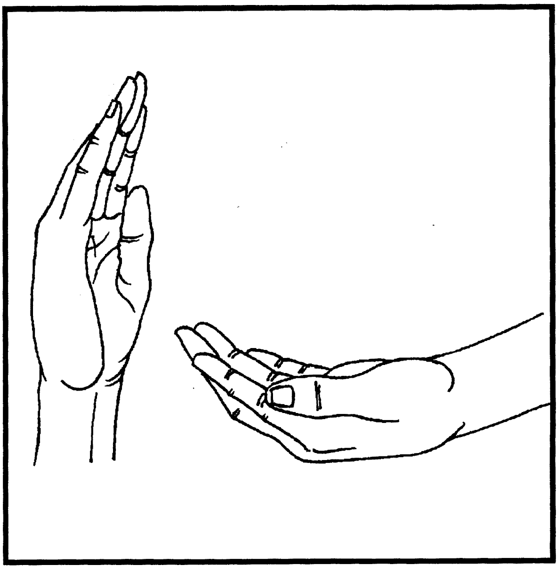

पेंग्-फ्रातर्न एहि भिक्खु मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के प्रयोग से अग्नि एवं वायु तत्व संतुलित रहते हैं। इससे तिल्ली, जठर, यकृत, स्वाद तंत्र आदि स्वस्थ रहते हैं। शरीर का प्रमुख संरक्षण एवं सहकारी बल उत्पन्न होता है। • यह मुद्रा मणिपुर एवं अनाहत चक्र को

जागृत करते हुए शरीरगत रक्त, शर्करा, जल, सोडियम आदि का संतुलन करती है। हृदय में अनहद आनंद को उत्पन्न कर सद्भावों का निर्माण करती है।

• यह मुद्रा थायमस एवं एड्रिनल ग्रंथि पर दबाव डालती है जिससे मंदता, आलस्य, एसिडिटी, उल्टी आदि का निवारण होता है एवं बालकों की रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास होता है।

13. पेंग्-प्लोंग-अर्यु-संग्खर्न मुद्रा (संसार स्वरूप की चिंतन मुद्रा)

यह मुद्रा थायलैण्ड में उक्त नाम से एवं भारत में ज्ञान निद्रातहस्त मुद्रा नाम से व्यवहृत है। यह थाई बौद्ध परंपरा में प्रचलित भगवान बुद्ध की 40 मुद्राओं में से तेरहवीं मुद्रा है। माना जाता है कि भगवान बुद्ध इस मुद्रा में अवस्थित हो मृत देह को देखकर शरीर की नश्वरता एवं संसार की अस्थिरता आदि का चिंतन किया करते थे, इसलिए इसे भगवान बुद्ध की चिंतन मुद्रा कहा गया है।

इस संयुक्त मुद्रा की रचना विधि निम्न है-

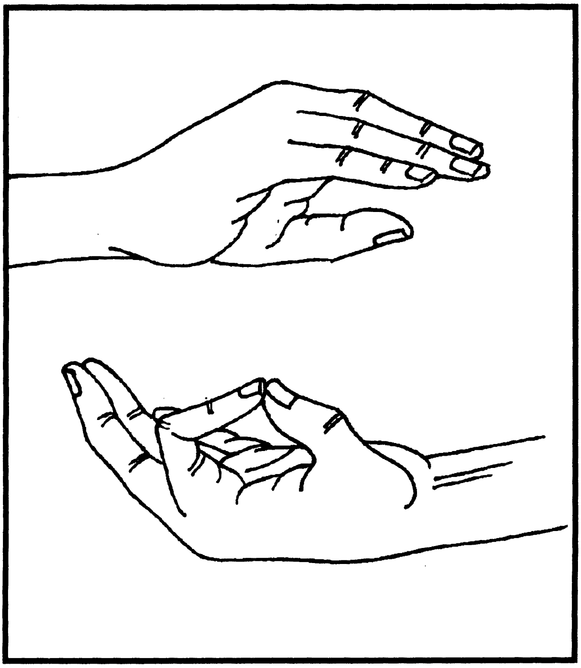

पेंग्-प्लोंग-अर्यु-संग्खर्न मुद्रा

विधि

दायीं हथेली कुछ ऊपर उठी हुई, अंगुलियाँ किंचित मुड़ी हुई, अंगूठा हल्के से अंगुलियों के अग्रभाग की तरफ झुका हुआ और हथेली धड़ से कुछ दूरी पर रहें।

बायीं हथेली मध्य भाग में, अंगुलियाँ भीतर तरफ मुड़ी हुई तथा अंगूठे का अग्रभाग तर्जनी के अग्रभाग का स्पर्श करता हुआ रहे। इस भाँति पेंग् प्लोंग-अर्यु-संग्खर्न मुद्रा बनती है।[16]

इस मुद्रा का एक अन्य प्रकारान्तर भी है जिसका नाम पेंग्-फ्लोंग्-कमत्थन् मुद्रा है। भारत में इसे अहायवरद ज्ञान मुद्रा या अहायवरद कटक मुद्रा कहते हैं। प्रस्तुत मुद्रा की रचना एवं प्रयोजन भगवान बुद्ध की 13वीं मुद्रा के समरूप ही है केवल हाथों को रखने की स्थिति में भिन्नता है।

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्वों को संतुलित करते हुए शरीर के तेज एवं कान्ति में वृद्धि करती है। • यह मुद्रा मूलाधार एवं मणिपुर चक्र को सक्रिय रखती है तथा शरीरगत जल, फासफोरस, सोडियम, अग्नि आदि तत्वों का संतुलन करती है। • शक्ति एवं तैजस केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा क्रोधादि कषायों एवं काम-वासनाओं को शान्त करती है। आध्यात्मिक उच्चता एवं जागृति देती है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार इस मुद्रा से शरीर की गर्मी संतुलित रहती है और वंध्यत्व, मोटापा, प्रसूति पीड़ा आदि में कमी होती है।

14. अभय मुद्रा

इस मुद्रा का वर्णन भगवान बुद्ध की मुख्य पाँच मुद्राओं के अन्तर्गत कर चुके हैं।

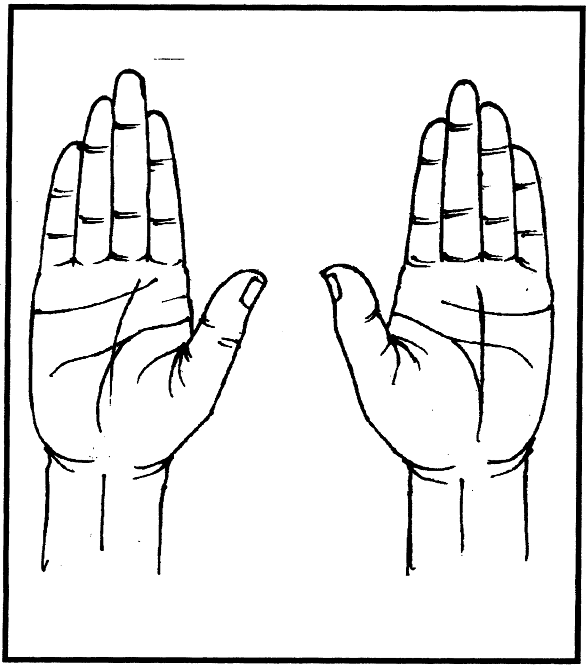

अभय मुद्रा

15. पेंग्-उह्म भत्र मुद्रा (भिक्षा ग्रहण मुद्रा)

थायलैण्ड में प्रचलित यह मुद्रा भारत में अंचिता-अंचिता मुद्रा नाम से जानी जाती है। यह भगवान बुद्ध की 40 मुद्राओं में से 15वीं मुद्रा है। कहते हैं कि भगवान बुद्ध दूरवर्ती प्रदेशों में भ्रमण करते समय इसी मुद्रा में आहार किया करते थे इसलिए यह पात्र द्वारा भिक्षा ग्रहण की सूचक है। इस मुद्रा में दोनों हाथ पात्र को पकड़े हुए के समान दिखते हैं।

विधि

दोनों हथेलियाँ ऊपर की ओर मुख की हुई, अंगुलियाँ और अंगूठे फैले हुए एवं किंचित झुके हुए तथा कमर के स्तर पर भिक्षा पात्र को ग्रहण किये हुए रहने पर पेंग्-उह्म–भत्र मुद्रा बनती है।[17]

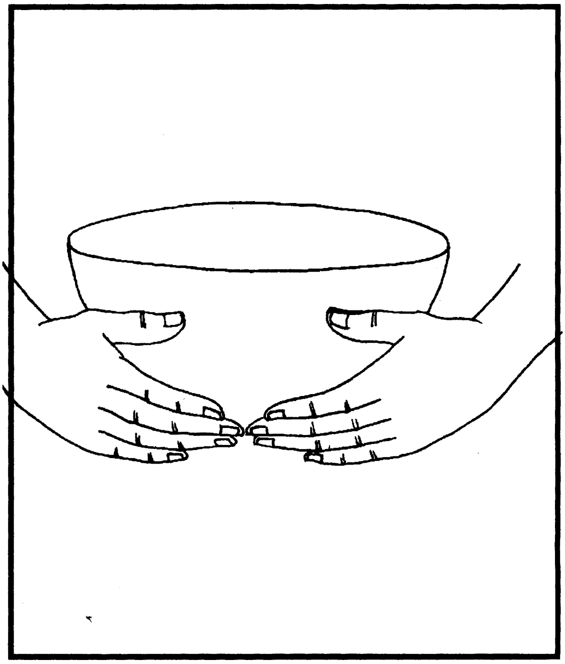

पेंग्-उह्म भत्र मुद्रा

सुपरिणाम

● यह मुद्रा शरीरगत वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करती है। इससे क्रोधादि कषायों का शमन, दु:ख-चिंता आदि का निरोध, प्राण वायु का स्थिरीकरण तथा वायु एवं हृदय सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है। ● इस मुद्रा से अनाहत एवं विशुद्धि चक्र पर प्रभाव पड़ता है। इससे शरीर तापमान, कैल्शियम संतुलन, शक्ति उत्पादन तथा ज्ञान तंतुओं का जागरण होता है। निर्मल भावधारा एवं आत्मिक शक्ति की उपलब्धि होती है। ● इस मुद्रा का प्रभाव थायमस, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रंथियों पर पड़ता है। यह बालकों में सुस्ती, जड़ता, प्रमाद आदि को दूर कर activeness फुर्तिलापन एवं जोश पैदा करती है। इसी के साथ सद्भाव, प्रेम, उच्च विचार, एकाग्रता आदि अनेक गुणों का विकास करती है।

16. पेंग् पत्तकित् मुद्रा (प्राप्त भिक्षा विभाजित करने की मुद्रा)

बौद्ध परम्परा में प्रचलित यह मुद्रा भारत देश में वरद-ध्यान मुद्रा के नाम से विख्यात है। यह बुद्ध के जीवन वृत्तान्त से सम्बन्धित 40 मुद्राओं में से सोलहवीं मुद्रा है। दर्शाये चित्र के अनुसार इस मुद्रा में दाहिना हाथ पात्र को स्पर्श करता हुआ दिखता है जो भोजन को सहवर्ती शिष्यों में अथवा स्वयं के लिए ग्रास रूप में बांटने का सूचक है। यह संयुक्त मुद्रा वीरासन अथवा वज्रासन में धारण की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को सामने की तरफ रखें, अंगुलियों एवं अंगूठे को नीचे की तरफ इस भाँति फैलायें जैसे वह किसी प्याले को छू रहा हो। बायीं हथेली को इस भाँति ऊर्ध्वमुख रखें कि वह गोद में आराम करती हुई किसी प्याले को धारण की हुई हो। इस तरह पेंग् पत्तकित् मुद्रा बनती है।[18]

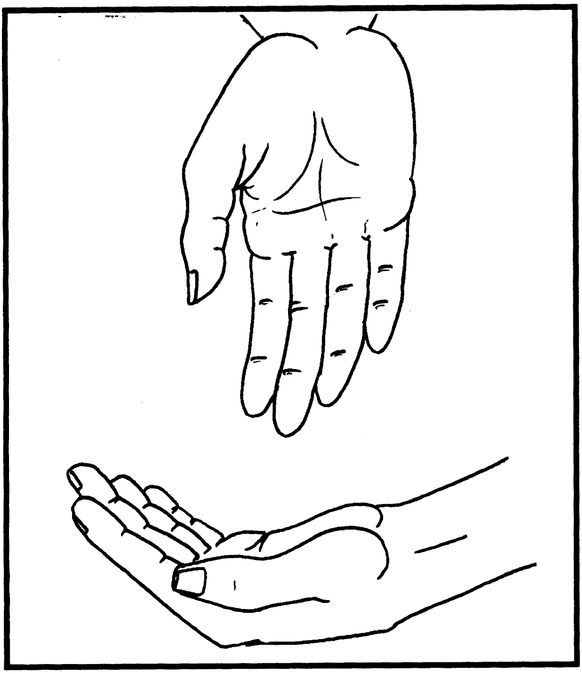

पेंग् पत्तकित् मुद्रा

सुपरिणाम

• पत्तकित् मुद्रा की साधना से मणिपुर एवं मूलाधार चक्र सक्रिय रहते हैं। इनके जागरण से विद्युत प्रवाह ऊर्ध्वगामी बनता है, मनोविकार घटते हैं एवं परमार्थ में रुचि बढ़ती है। • अग्नि एवं पृथ्वी को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीरस्थ चर्बी, मांस एवं हड्डियों को संतुलित रखती है। आहार का पाचन कर शरीर को शक्ति प्रदान करती है तथा अग्निरस, पाचक रस एवं पित्तरस को उत्पन्न करती है। • एड्रिनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह शरीर की प्रतिकारात्मक शक्ति का विकास करती है। शरीर को एलर्जी एवं रोगों से बचाती है। यह मुद्रा बाल बढ़ाने, स्वर सुधारने, शरीर के तापक्रम को संतुलित रखने में भी सहायक मुद्रा है।

17. पेंग्-फ्रा-कैत् ततु मुद्रा (केशों को उपहार रूप देने की मुद्रा)

थायलैण्ड की बौद्ध परम्परा में मान्य यह मुद्रा भारत में 'अर्धांजली ध्यान' मुद्रा के नाम से प्रसिद्ध है। भगवान बुद्ध की जीवन घटना को उजागर करने

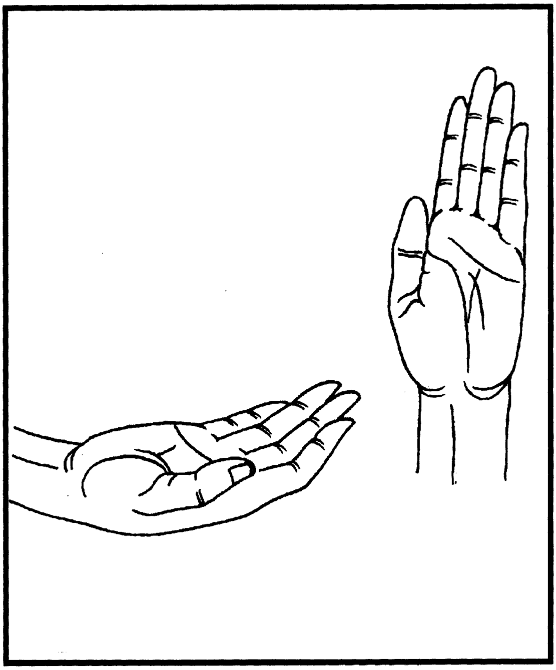

पेंग्-फ्रा-कैत् ततु मुद्रा

वाली 40 मुद्राओं में से यह सत्रहवीं मुद्रा है। इस मुद्रा में भगवान बुद्ध द्वारा अपने केश उपहार के रूप में प्रदान किये जाने का भाव सूचित किया गया है अत: इसे केश प्रदान मुद्रा कह सकते हैं।

यह मुद्रा वीरासन या वज्रासन में धारण की जाती है।

विधि

दायें हाथ की अंगुलियाँ ऊपर उठी हुई एवं हल्की सी झुकी हुई रहें तथा हथेली मध्यभाग में बालों का स्पर्श करती हुई रहें। बायां हाथ ऊर्ध्वाभिमुख रूप से गोद में रखा हुआ रहे, इस तरह 'पेंग्-फ्रा-कैत्-ततु' मुद्रा बनती है।[19]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश तत्त्व को संतुलित करती है। इससे हृदय सम्बन्धी बीमारियों में लाभ होता है तथा एकाग्रता, ध्यान सिद्धि और अनहद आनंद की अनुभूति होती है। • आज्ञा चक्र एवं ललाट चक्र को नियंत्रित करते हुए यह मुद्रा शान्त चित्ता, एकाग्रता, सौम्यता, स्वाभाविक मृदुता आदि गुणों का विकास करती है। • यह मुद्रा दर्शन एवं ज्योति केन्द्र को प्रभावित करती है इससे नेत्र ज्योति बढ़ती है, काम-वासनाओं एवं क्रोधादि कषायों पर नियंत्रण होता है। • पिच्युटरी एवं पिनियल ग्रंथि को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा दृढ़ मनोबल, निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति एवं देखने-सुनने की शक्ति में विकास करती हैं तथा अन्य ग्रंथियों की त्रुटियों को भी ठीक करती है।

18. पेंग् फ्रतब्रे खनन् मुद्रा (नाव द्वारा गमन करने की मुद्रा)

थायलैण्ड देश में उपरोक्त नाम से प्रसिद्ध इस मुद्रा को भारत में 'अभय कट्यावलम्बिता' मुद्रा कहते हैं। यह बुद्ध की जीवन घटना सम्बन्धी 40 मुद्राओं में से अठारहवीं मुद्रा है।

भगवान बुद्ध के द्वारा नाव से गमन करते समय जो स्थिति रहती थी वही इस मुद्रा में दर्शाने का प्रयास किया गया है। यह मुद्रा कुर्सी या सतह पर प्रलम्ब पदासन मुद्रा में धारण की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को बाहर की तरफ करते हुए उसे छाती के स्तर पर रखें, अंगुलियों एवं अंगूठे को ऊपर की तरफ सीधा और हल्के से झुकाते हुए रखें।

बायाँ हाथ शिथिल एवं अधोमुख रूप से गोद में रखा हुआ रहे, इस भाँति 'पेंग् फ्रतब्रे खनन् मुद्रा' बनती है।[20]

इस मुद्रा के दो प्रकार हैं। दूसरे प्रकार में दोनों हाथ आशीर्वाद के समान रहते हैं। भारत में इस प्रकार को कूर्पर-कूर्पर मुद्रा कहते हैं।[21]

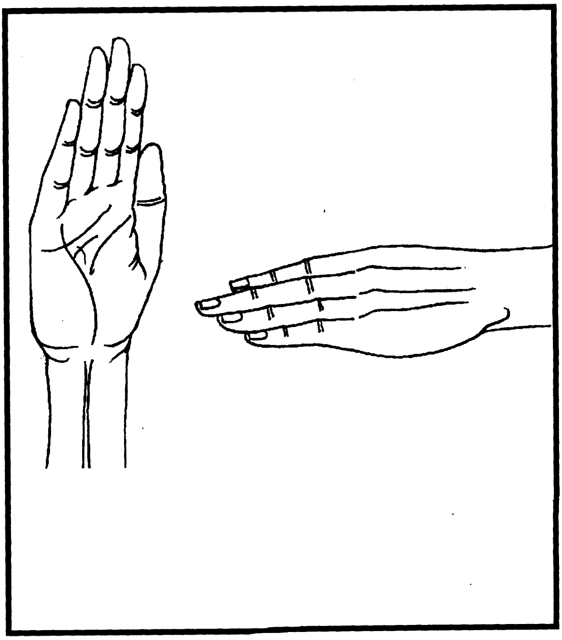

पेंग्-फ्रतब्रे खनन् मुद्रा

सुपरिणाम

• अग्नि तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा जोश, उत्साह एवं उल्लास भाव का वर्धन करती है। इसी के साथ बेहोशी, मस्तिष्क सम्बन्धी अव्यवस्था, तनाव, नेत्र दृष्टि की कमजोरी, मोतियाबिंद आदि तकलीफों को शांत रखती है। • मणिपुर चक्र को जागृत करते हुए यह शरीरगत रक्त, शर्करा, जल, सोडियम का नियंत्रण करती है • एक्युप्रेशर सिद्धान्त के अनुसार यह मुद्रा एड्रिनल एवं पेन्क्रियाज पर दबाव डालते हुए रक्तचाप, पित्त, एँसिडिटी, उल्टी, सिरदर्द, कमजोरी, शराब की लत छुड़वाने आदि में भी सहयोगी है।

19. पेंग् हम्यत् मुद्रा (स्वजन-कुटुम्बियों को नियंत्रित करने की मुद्रा)

यह मुद्रा थेरपद बौद्ध परम्परा (थायलैण्ड) में धारण की जाती है। इसे भारत में 'अभय लोलहस्त' मुद्रा कहते हैं। भगवान बुद्ध के जीवन चरित्र से सम्बन्धित 40 आसनों और मुद्राओं में से यह उन्नीसवीं मुद्रा है। भगवान बुद्ध इस मुद्रा के प्रयोग द्वारा पारिवारिक समस्याओं का निवारण करते थे। कुटुम्बियों को आत्मिक सुख का मार्ग बताते थे अत: इसे स्वजन नियन्त्रण की सूचक मुद्रा कहा गया है।

विधि

दायें हाथ को ऊपर उठाते हुए अंगुलियों को एक साथ ऊर्ध्व प्रसरित करें और हल्के से झुकायें तथा बायें हाथ को पार्श्व भाग में रखते हुए अंगुलियों एवं अंगूठे को नीचे की तरफ फैलाने पर पेंग् हम्यत् मुद्रा बनती है।[22]

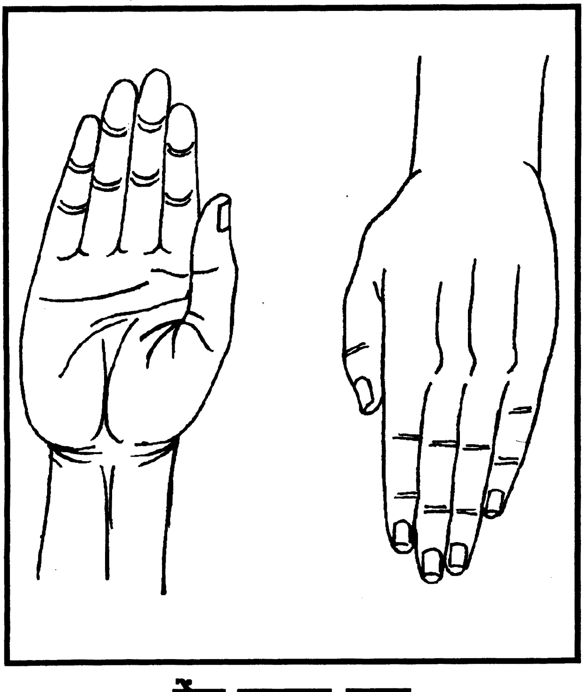

पेंग्-हम्यत् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं वायु तत्त्व का संतुलन करती है। रूधिर आदि तरल पदार्थों की सम्यक कार्य पद्धति में इसका विशेष सहयोग हो सकता है। हृदय में

रक्त संचरण का नियंत्रण करते हुए यह मुद्रा शारीरिक संतुलन बनाए रखने में भी विशेष उपयोगी है। • इसका प्रभाव स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र पर पड़ता है। इससे नाभि सम्बन्धी समस्याओं का समाधान, जिह्वा पर सरस्वती का वास तथा नियंत्रण शक्ति में विकास होता है। यह वक्तृत्व, कवित्व, इन्द्रिय नियंत्रण आदि का भी विकास करती है। • गोनाड्स एवं थायमस ग्रंथियों पर इस मुद्रा का विशेष प्रभाव पड़ता है। नाभि खिसकने पर, काम ग्रंथियों में गड़बड़ी होने पर, बालकों में जड़ता एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता की कमी होने पर यह मुद्रा लाभ पहुँचाती है।

20. पेंग् पलेलै मुद्रा (पलेलयक जंगल दर्शाने की मुद्रा)

थायलैण्ड निवासी बौद्ध परम्परा के अनुयायी इस मुद्रा को धारण करते हैं। भारत में इस मुद्रा का नाम अंचित निद्रातहस्त मुद्रा है। भगवान बुद्ध की जीवन घटना सम्बन्धी 40 मुद्राओं में से यह बीसवीं मुद्रा है। इसे पलेलयक जंगल की सूचक माना गया है। संभवत: भगवान बुद्ध ने अपनी जीवन साधना का अधिकांश समय पलेलयक अरण्य में बिताया होगा अथवा उन्होंने इस क्षेत्र में

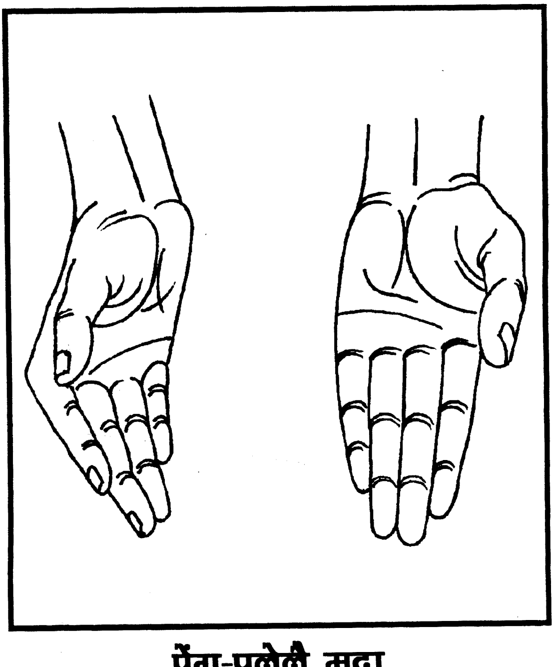

पेंग्-पलेलै मुद्रा

विशेष परिभ्रमण किया होगा इसलिए अमुक जंगल विशेष का सूचन किया गया है। यह संयुक्त मुद्रा प्रलम्ब पदासन मुद्रा में की जाती है।

विधि

दायीं हथेली ऊर्ध्वाभिमुख, अंगुलियाँ हल्की सी झुकी हुई, अंगूठा हल्के से अंगुलियों के अग्रभाग की तरफ मुड़ा हुआ और हाथ दाहिने घुटने पर रहे। बायां हाथ नीचे की तरफ और अंगुलियाँ फैली हुई रहने पर 'पेंग् पलेलै' मुद्रा बनती है।[23] इसमें बायां हाथ कुर्सी पर या गोद में सोया हुआ रहेगा।

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग अग्नि एवं जल तत्त्व का संतुलन करता है। इससे रक्त, वीर्य, लसिका, मल-मूत्र, पसीना, कफ आदि से संबंधित समस्याओं का समाधान होता है। इससे शारीरिक एवं स्वाभाविक रूखापन भी दूर होता है। • मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा अग्नि एवं जल तत्त्व का संतुलन करते हुए पाचन सम्बन्धी विकृतियों का शमन करती है तथा गैस, अपच, मधुमेह, कब्ज आदि को दूर कर पेट सम्बन्धी अवयवों के कार्य का नियमन करती है। • तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा रक्त परिसंचरण, रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास, भूख, पसीना, रक्तचाप, कमजोरी, शारीरिक एलर्जी आदि को दूर करती हैं। • एक्युप्रेशर प्रणाली के अनुसार यह मुद्रा पित्ताशय, लीवर, प्राणवायु के संतुलन, शर्करा, पाचन आदि में कार्यकारी होती है तथा नाभिचक्र सम्बन्धी समस्याएँ जैसे- दस्त, कब्ज, हर्निया आदि में लाभ पहुँचाती है।

21. पेंग्-हम्-फ्रा-काएँ-चन् मुद्रा (स्वर्ग से लौटने की मुद्रा)

यह मुद्रा भारत में 'लोलहस्त अभय' मुद्रा के नाम से धारण की जाती है। भगवान बुद्ध की 40 मुद्राओं में से यह इक्कीसवीं मुद्रा है। यह मुद्रा बुद्ध के तवतिमसा नामक स्वर्ग से लौटते समय एक चंदन की प्रतिभा से मिलने की सूचक है। इस मुद्रा वर्णन से यह ज्ञात होता है कि भगवान बुद्ध निश्चित रूप से स्वर्ग लोक में गये और वहाँ से पुनः मृत्युलोक में पधारे।

विधि

दाहिना हाथ नीचे की तरफ लटकता हुआ रहे तथा बायीं हथेली बाहर की तरफ ऊपर उठी हुई और अंगुलियाँ हल्की सी झुकी हुई रहने पर 'पेंग्-हम्-फ्रा-काएँ-चन्' मुद्रा बनती है।[24]

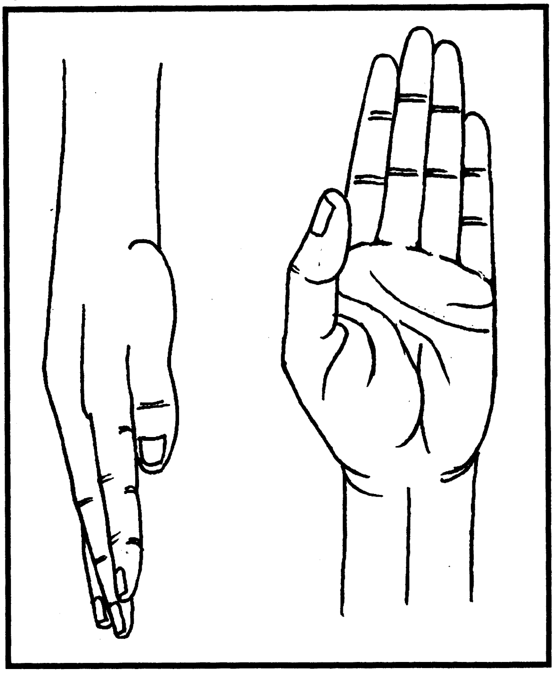

पेंग्-हम्-फ्रा-काएँ-चन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं आकाश तत्त्व का संतुलन करती है इससे शरीर-नाड़ी शुद्धि, कब्ज निवारण तथा पेट के विभिन्न अवयवों की क्षमता बढ़ती है। हृदय शक्तिशाली बनता है। • यह मुद्रा मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र को प्रभावित करते हुए साधक की ज्ञान रश्मियाँ जागृत करती है। इससे फेफड़ें और हृदय का नियमन और कैल्शियम, सोडियम, जल, रक्त, शर्करा आदि का संतुलन होता है। • विशुद्धि केन्द्र एवं तैजस केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा कण्ठ सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करती है तथा जीवन की क्षमता आदि गुणों में वृद्धि करती है। • एक्युप्रेशर सिद्धान्त के अनुसार यह मुद्रा बालक का विकास करती है। हिचकी, स्नायु में ऐंठन, प्रमाद-आलस्य एवं शरारतों को कम करती

है तथा ऍसिडिटी, रक्तचाप (B.P.), सिरदर्द, डायबिटीज आदि रोगों का निवारण करती है।

22. पेंग् नकलोक् मुद्रा (पीछे मुड़कर देखने की मुद्रा)

थायलैण्ड देश में यह बौद्ध मुद्रा 'पेंग् नकवलोक्' नाम से प्रसिद्ध है। इसे भारत में 'ज्ञान लोलहस्त' मुद्रा कहा गया है। भगवान बुद्ध द्वारा धारण की गई 40 मुद्राओं में से यह बाईसवीं मुद्रा है। 'द हेरिटेज ऑफ थाइ स्कल्प्चर' आदि पुस्तकों के अनुसार जब बुद्ध ने वैशाली ग्राम की तरफ पीछे मुड़कर देखा था यह उस समय की सूचक मुद्रा है। इस मुद्रा को दोनों हाथों से दिखाया जाता है।

विधि

दायीं हथेली को मध्य भाग में रखते हुए अंगूठा और तर्जनी के अग्रभाग को परस्पर मिलायें तथा शेष अंगुलियों को बायीं तरफ फैलायें। बायीं हथेली को अंदर की तरफ रखते हुए अंगुलियों को नीचे की ओर फैलाने पर 'पेंग् नकवलोक्' मुद्रा बनती है।[25] इसमें मस्तक को बायीं तरफ घुमाया जाता है।

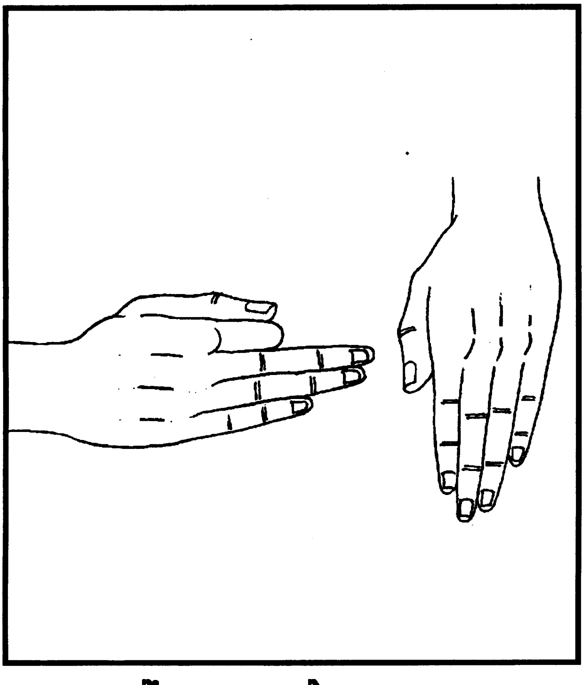

पेंग्-नकवलोक् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं जल तत्त्व को प्रभावित करते हुए यौन ग्रंथियों, चेताकोषों-मांस, रज, वीर्य, अस्थि, मज्जा को उत्पन्न कर शरीर को स्वस्थ बनाती है। इससे पाचन कार्यों में सहायता एवं शारीरिक कान्ति में वृद्धि होती है। • इस मुद्रा से मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र प्रभावित होते हैं जिससे आन्तरिक शक्ति एवं ऊर्जा में वर्धन होता है। मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस एवं पाचन विकृतियाँ दूर होती है तथा जिह्वा पर सरस्वती का वास होता है। • एड्रीनल एवं गोनाड्स को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा शारीरिक तंत्रों का नियमन, शारीरिक एलर्जी से बचाव तथा व्यक्ति में साहस, निर्भीकता, सहनशीलता एवं आशावादिता आदि स्वाभाविक गुणों को बढ़ाती है।

23. पेंग् नकवलोक् मुद्रा (हाथी देखने की मुद्रा)

थायलैण्ड के बौद्ध अनुयायियों द्वारा की जाती यह मुद्रा 'ज्ञान लोलहस्त' मुद्रा के नाम से भी उल्लिखित है।

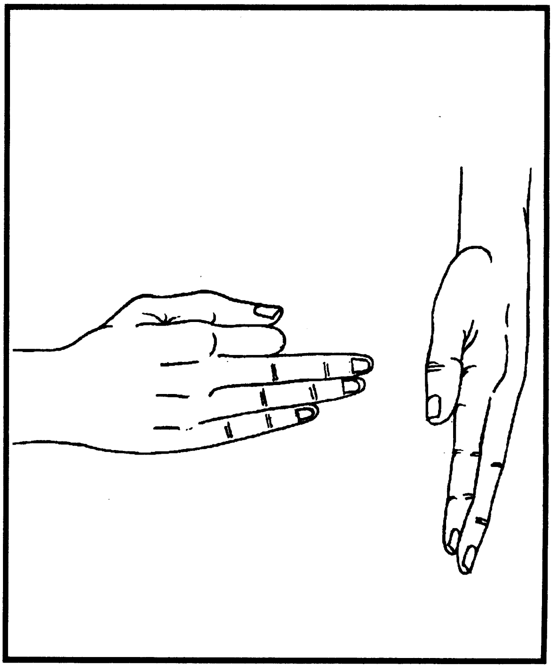

पेंग् नकवलोक् मुद्रा

यह भगवान बुद्ध की अलौकिक विशेषताओं से युक्त तेईसवीं मुद्रा है। इस मुद्रा प्रयोग से बुद्ध ने जंगली हाथी को एकटक देखते हुए उसे वश में किया था, अत: यह उसकी सूचक कही गई है।

विधि

दायीं हथेली को मध्य भाग में रखें, अंगूठा और तर्जनी के अग्रभाग को स्पर्श करवायें तथा शेष अंगुलियों को बायीं तरफ फैलायें। बायीं हथेली को भी मध्यभाग में रखते हुए अंगुलियों को नीचे की ओर प्रसरित करने पर 'पेंग् नकवलोक्' मुद्रा बनती है।[26] इस मुद्रा में भी मस्तक को बायीं तरफ घुमाया जाता है।

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं आकाश तत्त्वों में संतुलन स्थापित करती है। इससे थायरॉइड, पेराथायरॉइड, टान्सील, लाररस आदि पर नियंत्रण होता है तथा रूधिर, मांस, चरबी, अस्थि आदि के निर्माण में सहायता मिलती है। • इस मुद्रा के द्वारा साधक मणिपुर एवं सहस्रार चक्र को जागृत कर सकता है। इससे संकल्प-विकल्पों का नाश, सम्यक ज्ञान की प्राप्ति, तनावों की उपशान्ति तथा चारित्र विकास होता है। • ज्ञान एवं तेजस केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा बुद्धि, स्मृति एवं चिंतन शक्ति में वर्धन, पूर्व जन्म आदि का स्मरण तथा आन्तरिक एवं बाह्य तेज का प्रस्फुटन करती है। • एक्युप्रेशर के अनुसार इससे पिनियल ग्रंथि पर दबाव पड़ता है जो कि समस्त ग्रंथियों का विधिवत संचालन करती है। यह यौन ग्रंथियों और शरीर स्थित पानी का भी संतुलन करती है।

24. पेंग्-सोंग्रुपुत्कंग मुद्रा (चढ़ाये हुए जल को ग्रहण करने की मुद्रा)

भारत में इस मुद्रा का नाम 'ध्यान-निद्रातहस्त' मुद्रा है। यह मुद्रा थाई बौद्ध परंपरा में प्रचलित भगवान बुद्ध द्वारा धारण की गई 40 मुद्राओं में से चौबीसवीं मुद्रा है। उपलब्ध वर्णन के अनुसार बुद्ध ने इस मुद्रा के द्वारा अर्पित किया गया जल ग्रहण किया था। यहाँ जल ग्रहण का प्रयोजन उदर प्रक्षेप भी हो सकता है और शरीर अशुचि का निवारण करना भी हो सकता है। मूलत: यह मुद्रा पात्र में जल ग्रहण करने से सम्बन्धित है। यह संयुक्त मुद्रा वीरासन या वज्रासन में की जाती है।

विधि

दायीं हथेली शिथिल रूप से किंचित उठी हुई ऊर्ध्वाभिमुख एवं गोद के आश्रित रहें। बायीं हथेली की अंगुलियाँ नीचे की तरफ फैली हुई तथा हाथ घुटने पर रहें इस भाँति पेंग्-सोंग्रुपुत्कंग मुद्रा बनती है।[27]

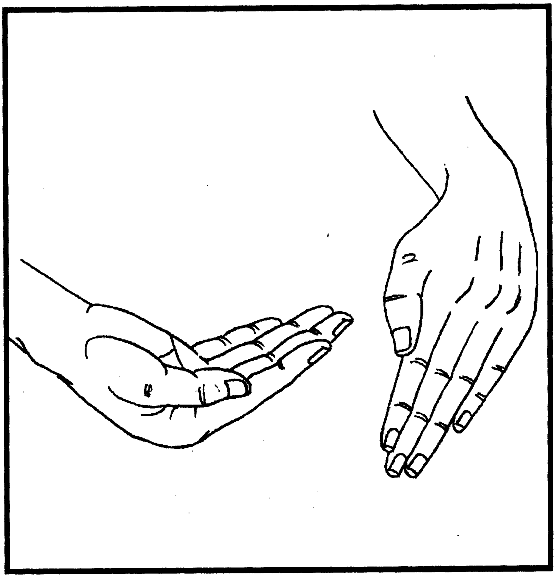

पेंग्-सोंग्रुपुत्कंग मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं वायु तत्त्व को संतुलित करती है। इनके संयोग से पित्त प्रकृति का संतुलन होता है। इससे मस्तिष्क की कार्यशक्ति, शरीर की गर्मी, आँख और लीवर में फायदा होता है तथा एसिडिटी, व्रण, त्वचा सम्बन्धी तकलीफों का उपशमन होता है। • यह मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र को प्रभावित करते हुए फेफड़ें और हृदय के कार्यों का नियमन, शरीर के तापमान का नियंत्रण और कैल्शियम का संतुलन करती है। पाचक रसों के उत्पादन, शरीरस्थ रक्त, शर्करा, जल और सोडियम को परिमाण युक्त रखती है। • यह मुद्रा एड्रिनल एवं थायरॉइड ग्रंथि का नियमन करते हुए पित्ताशय, लीवर, रक्त परिसंचरण, रक्तचाप, प्राणवायु का संतुलन करती है और शारीरिक विकास की देखभाल करती है।

25. पेंग्-सोंग्-नम्-फोन् मुद्रा (स्नान मुद्रा)

भारत में इस मुद्रा को 'ज्ञान लोलहस्त' मुद्रा कहते हैं। यह बौद्ध परंपरा में बुद्ध द्वारा स्वीकृत की गई 40 मुद्राओं में से पच्चीसवीं मुद्रा है। भगवान बुद्ध द्वारा स्नान क्रिया की सूचक यह मुद्रा खड़ी मुद्रा है। इसमें बायें कंधे पर Tawel आदि रखा गया है जो पूर्णत: स्नान हेतु उद्यत व्यक्ति की छवि दर्शाता है।

विधि

दायीं हथेली मध्य भाग की तरफ, अंगूठा और तर्जनी का अग्रभाग परस्पर में स्पर्श करता हुआ, शेष अंगुलियाँ छाती के मध्यभाग के विपरीत बायीं तरफ फैली हुई रहें तथा बायां हाथ पार्श्वभाग में नीचे लटकता हुआ रहने पर उक्त मुद्रा बनती है।

पेंग्-सोंग्-नम्-फोन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व का संतुलन करती है। इनके मिश्रण से शारीरिक दुर्बलता एवं मोटापा कम होता है। • यह मूलाधार एवं मणिपुर चक्र

को प्रभावित करती है जिससे आरोग्य, दक्षता, कार्य कुशलता की प्राप्ति होती है तथा विधेयात्मक ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन होता है। यह कब्ज, गैस, अपच, मधुमेह एवं पाचन तंत्र सम्बन्धी विकारों को भी दूर करती है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार इससे स्वप्नदोष, हस्तदोष, शारीरिक गर्मी आदि दूर होती हैं, कामेच्छा का शमन होता है तथा आधा सीसी, शराब की लत, B.P., एसिडिटी आदि नियंत्रित रहते हैं।

26. पेंग् फ्रतोप्युन् मुद्रा (खड़े रहने की मुद्रा)

यह मुद्रा थाई बौद्ध परम्परा में प्रचलित है। भारत में इस मुद्रा का नाम 'लोलहस्त-लोलहस्त' है। यह बुद्ध के द्वारा धारण की गई 40 मुद्रा-आसनों में से छब्बीसवीं मुद्रा है। दर्शाये चित्र के अनुसार यह भगवान बुद्ध के खड़े रहने की सूचक है। भगवान बुद्ध किस तरह खड़े-खड़े साधना करते थे वह इस मुद्रा से स्पष्ट होता है।

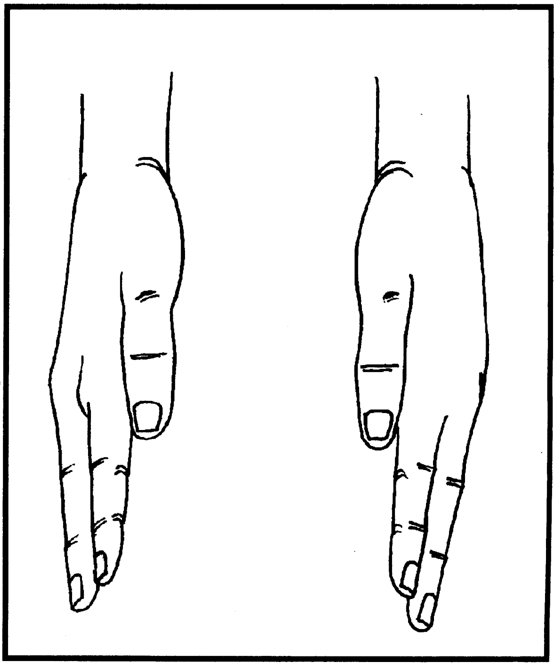

पेंग्-फ्रतोप्युन् मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को अन्दर की तरफ रखते हुए अंगुलियों को नीचे की तरफ फैलाने एवं हाथों को पार्श्वभाग में रखने पर बनती पेंग् फ्रतोप्युन् मुद्रा बनती है।[29]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं जल तत्त्व को संतुलित करती है। इनके संयोग से पित्त से उभरने वाली बीमारियाँ शांत होती हैं, मूत्र दोष का परिहार होता है तथा गुर्दा स्वस्थ बनता है। पाचन तंत्र सक्रिय एवं स्वस्थ रहने से शारीरिक स्वस्थता प्राप्त होती है। • इस मुद्रा से मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र प्रभावित होते हैं। जिससे आत्मशक्ति का ऊर्ध्वगमन होता है, जिह्वा पर सरस्वती का वास होता है और मधुमेह, कब्ज, अपच, नाभि चक्र सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। • यह मुद्रा गोनाड्स, एड्रिनल एवं पेन्क्रियाज पर प्रभाव डालती है जिससे मासिक धर्म सम्बन्धी अनियमितता, हस्त दोष, कपट वृत्ति आदि की समस्याएँ दूर होती है।

27. पेंग्-खोर्-फोन्-मुद्रा (वर्षा के आह्वान की मुद्रा)

यह मुद्रा थाईलैण्ड के बौद्ध अनुयायियों में अधिक प्रचलित है। वहाँ इसे पेंग्-खोर्-फोन् मुद्रा कहते हैं। भारत में इस मुद्रा के दो नाम हैं– 1. अंचित-अहायवरद और 2. गन्धाररत्थ।

यह बुद्ध की जीवन साधना से सम्बन्धित 40 मुद्राओं और आसनों में से सत्ताईसवीं मुद्रा है। भगवान बुद्ध द्वारा बारिश के लिए किये गये आह्वान की सूचक यह मुद्रा दोनों हाथों से की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को ऊर्ध्वाभिमुख रखते हुए अंगुलियों को थोड़ी सी मोड़ें, अंगूठे को अंगुलियों के अग्रभाग की तरफ झुकाया हुआ रखें तथा हथेली के पृष्ठभाग को घुटने या जंघे पर स्थिर करें।

बायें हाथ को अभय मुद्रा के समान रखते हुए अंगुलियों एवं अंगूठे को हल्के से झुकायें तथा हथेली बाहर की तरफ नीचे झुकी हुई शरीर से 45^0 कोण पर रहें। इस विधि पूर्वक पेंग्-खोर्-फैन् मुद्रा बनती है।[30]

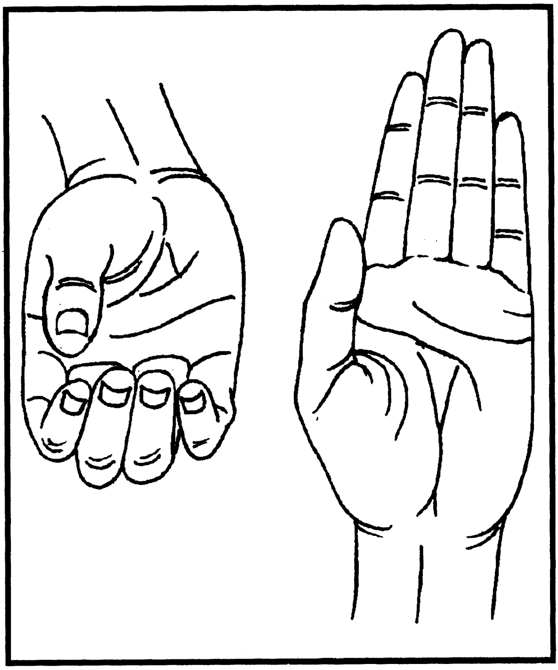

पेंग्-खोर्-फोन् मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से अग्नि एवं जल तत्त्व प्रभावित होते हैं। यह मुद्रा जठर, तिल्ली, यकृत आदि में अग्निरस एवं पाचकरस को उत्पन्न करती है। शरीर को स्वस्थता देती है तथा यौन ग्रंथियों, चेताकोषों, मांस, अस्थिमज्जा आदि को रोग मुक्त रखती है। • मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा रक्त, शर्करा, जल आदि का नियंत्रण करती है तथा पेट के परदे के नीचे स्थित सभी अवयवों के कार्यों का नियमन करती है। • ऐक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार इससे बी.पी., पित्त, एसिडिटी, सिरदर्द आदि में फायदा होता है। पित्ताशय, लीवर, रक्त संचरण, रक्तचाप, शर्करा आदि का संतुलन होता है। नाभि को अपने स्थान पर लाने में यह मुद्रा बहुत उपयोगी हो सकती है।

28. पेंग्-रम्-प्वेंग मुद्रा (परावर्तित मुद्रा)

थाई बौद्ध परम्परा में प्रचलित इस मुद्रा को भारत में ज्ञान-ज्ञान मुद्रा कहते हैं। यह संयुक्त मुद्रा भगवान बुद्ध द्वारा आचरित 40 मुद्राओं में से अट्ठाईसवीं मुद्रा है।

इस मुद्रा स्वरूप से यह अवगत होता है कि भगवान बुद्ध के आत्मज्ञान में जिस तरह के विचार उत्पन्न हुए, उन्होंने उसी तरह के विचारों को लोगों के समक्ष रखा और अपने भावों को उनमें प्रतिबिम्बित किया अतः यह परावर्तित मुद्रा की सूचक है।

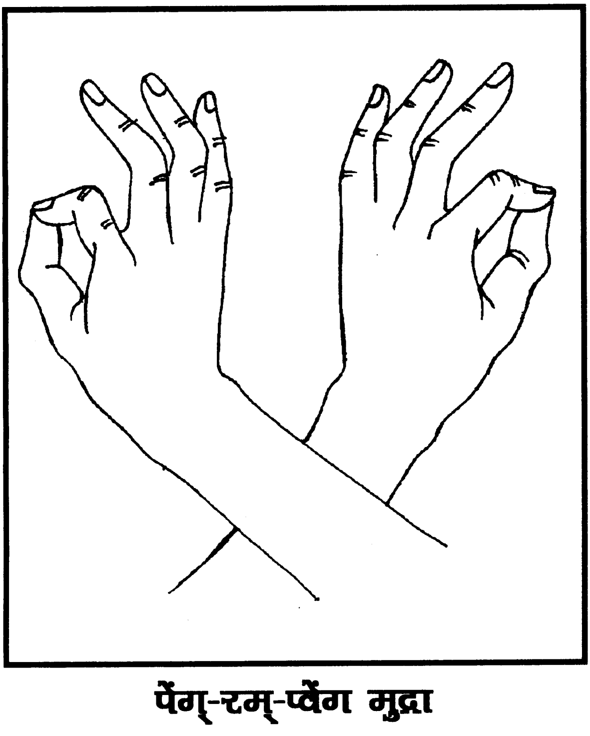

पेंग्-रम्-प्वेंग मुद्रा

विधि

दायें हाथ को बायें हाथ पर cross करता हुआ रखें, हथेलियों को अपने सम्मुख रखते हुए अंगूठे और तर्जनी के अग्रभाग को परस्पर मिलायें तथा शेष अंगुलियों को शिथिल रूप से ऊपर की ओर फैलाये रखने पर उपरोक्त मुद्रा बनती है।[31]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश एवं जल तत्त्व को प्रभावित करते हुए शरीर तापमान का नियमन, रूधिर आदि की कार्य पद्धति का सम्यक संचालन तथा हार्ट अटैक, लकवा, मूर्च्छा आदि के निवारण में सहयोग करती है। • आज्ञा एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा मानसिक, बौद्धिक एवं शारीरिक विकास में सहयोगी है। इससे बुद्धि कुशाग्र, तीव्रग्राही एवं स्मरण शक्ति तेज बनती है। • पिच्युटरी एवं गोनाड्स को सक्रिय एवं संतुलित करने में यह मुद्रा बहु उपयोगी है। मुख्य रूप से बालकों के जीवन निर्माण में इस मुद्रा का सर्वाधिक उपयोग है। यह कामवासनाओं पर नियंत्रण करके ऊर्जा को विधेयात्मक कार्यों में उपयोगी बनाती है।

29. पेंग्-संहलुप्नम्म मुअंग दुएबहद् मुद्रा (चढ़ाये गये जल स्वीकार की मुद्रा)

यह थायलैण्ड की बौद्ध परम्परा में प्रचलित बुद्ध की 40 मुद्राओं में से एक मुद्रा है। इसे भारत में ध्यान-निद्रातहस्त के नाम से जाना जाता है। यह संयुक्त

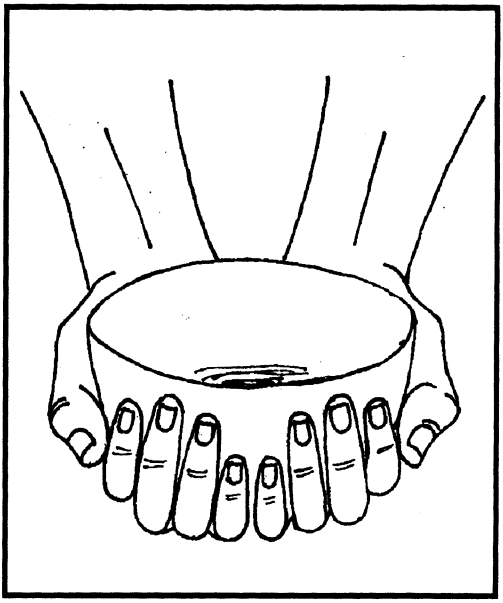

पेंग्-संहलुप्नम्म मुअंग दुएबहद् मुद्रा

मुद्रा भगवान बुद्ध द्वारा अर्पित जल स्वीकार करने की सूचक है। इस मुद्रा में पात्र के भीतर जल ग्रहण किये हुए का चित्र भी दर्शाया गया है।

इस मुद्रा को वीरासन या वज्रासन में बैठकर किया जाता है।

विधि

दोनों हथेलियों को इस भाँति रखें कि वह किसी प्याले या भिक्षा पात्र को उसकी सतह से धारण की हुई दर्शित हो तथा उसे दायें घुटने के ऊपर रखने पर उपरोक्त मुद्रा बनती है।[32]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश एवं पृथ्वी तत्त्व को संतुलित रखती है। इससे शरीर बलिष्ठ बनता है एवं भारीपन दूर होता है। इससे हृदय सम्बन्धी रोगों का भी शमन होता है। • इस मुद्रा के प्रभाव से मूलाधार एवं आज्ञा चक्र जागृत होते हैं। साधक को निरोगी अवस्था, कार्य दक्षता, बौद्धिक कुशाग्रता एवं एकाग्रता की प्राप्ति होती है। • शक्ति एवं दर्शन केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा विभाव दशा जैसे कि काम-क्रोध आदि का उपशमन करती है। जिससे एकाग्रता, शांति, स्वानुभूति आदि का वर्धन होता है।

30. पेंग्-सोंग्-पिचरनचरथम् मुद्रा (वृद्धावस्था सम्बन्धी उपदेश की सूचक)

भगवान बुद्ध के जीवन चरित्र को प्रस्तुत करने वाली 40 मुद्राओं में से यह तीसवीं मुद्रा है। यह थाई के बौद्ध वर्ग में सर्वाधिक स्वीकृत है। भारत में इसे निद्रातहस्त-निद्रातहस्त मुद्रा कहते हैं। मुद्रा वर्णन के निर्देशानुसार भगवान बुद्ध इस मुद्रा में विशेषकर बुढ़ापे की निर्बलता, जर्जरता, क्षणिकता का उपदेश दिया करते थे इसलिए यह मुद्रा उसी उपदेश की सूचक है। यह संयुक्त मुद्रा वीरासन या वज्रासन में की जाती है।

विधि

दोनों हाथों को शिथिल रखते हुए हथेलियों को अधोमुख रूप से घुटनों पर रखें तथा अंगुलियों को फैलायी हुई रखने पर उपरोक्त मुद्रा बनती है।[33]

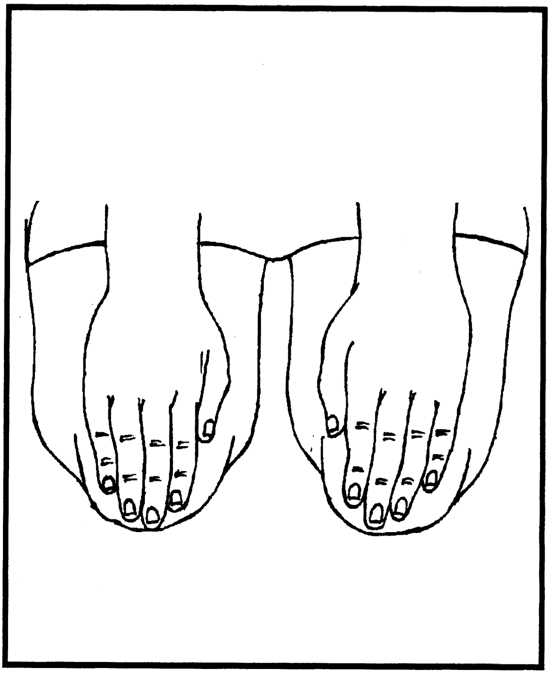

पेंग्-सोंग्-पिचरनचरथम् मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के द्वारा अग्नि एवं वायु तत्त्व का संतुलन होने से गैस की नाना विकृतियाँ तत्क्षण दूर होती है। मानसिक स्थिरता एवं एकाग्रता का विकास होता है। स्नायुतंत्र शक्तिशाली बनता है तथा सिरदर्द, अनिद्रा, वायु विकार आदि दूर होते हैं। • मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा कवित्व शक्ति, वक्तृत्व, लेखन आदि कलाओं का विकास करती है तथा शान्तचित्त एवं निरोगी अवस्था के साथ दीर्घ जीवन देती है। • तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र को जागृत कर यह मुद्रा व्यक्तित्व को प्रभावी एवं ओजस्वी बनाती है। • एक्युप्रेशर के अनुसार यह मुद्रा विजातीय तत्त्वों एवं रोग आदि से शरीर की रक्षा करती है। हिचकी, स्नायुओं की ऐंठन, थकान आदि को दूर करती है। यह असामाजिक वृत्तियों, अनियंत्रण, कपट वृत्ति आदि का भी उपशमन करती है।

31. पेंग्-फ्रदित्थंरोय्-फ्रबुद्धबत्र मुद्रा (पदचिह्न मुद्रा)

थाईलैण्ड के बौद्ध समाज में अनुसरण की जाने वाली यह मुद्रा 40 मुद्राओं में से 31वीं मुद्रा है। इस मुद्रा को भारत में हस्तस्वस्तिक मुद्रा कहते हैं। मुद्रा स्वरूप के आधार पर यह भगवान बुद्ध के पदचिह्नों को भूमि पर निर्मित करने की सूचक है। जब भगवान बुद्ध पदविहार करते थे उस समय उनके चरण युगल जहाँ भी पड़ते, वह पदचिह्न के रूप में अंकित हो जाते थे अथवा उनका भक्त वर्ग उन पदचिह्नों को अंकित कर देता था, यह मुद्रा उसी भाव को सूचित करती है।

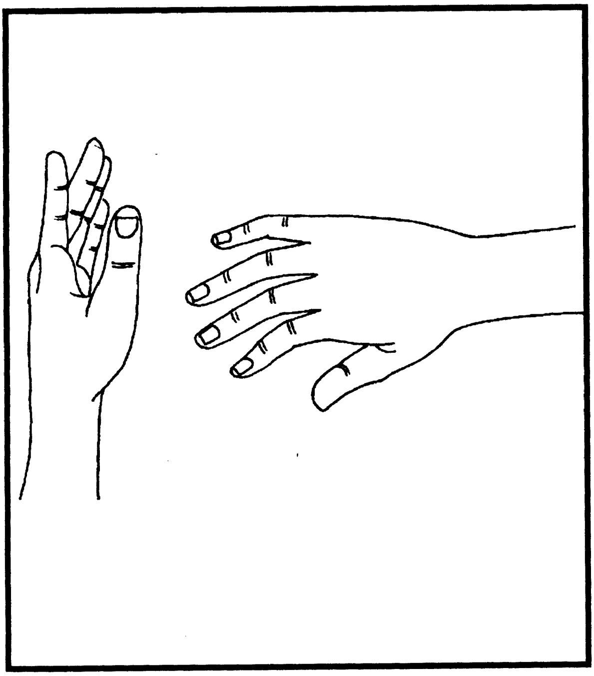

पेंग्-फ्रदित्थंरोय्-फ्रबुद्धबत्र मुद्रा

विधि

दायीं हथेली पीछे की तरफ छाती के मध्य भाग पर रहे, बायाँ हाथ पार्श्वभाग में नीचे लटकता हुआ रहे, अंगुलियाँ एवं अंगूठा भी नीचे की ओर प्रसरित रहें तथा बायां पैर उठा हुआ और दाहिना पैर नीचे स्थिर रहने पर 'पेंग् फ्रदित्थंरोय् फ्रबुद्धबत्र' मुद्रा बनती है।[34]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करता है। इससे हृदय एवं रक्ताभिसंचरण की क्रिया नियंत्रित होती है और शारीरिक संतुलन बना रहता है। श्वसन एवं मल-मूत्र की गति में मदद मिलती है। मानसिक शक्ति एवं स्मरण शक्ति का पोषण होता है। हार्ट अटैक, लकवा, मूर्च्छा आदि रोगों का निवारण होता है। • अनाहत एवं आज्ञा चक्र को जागरूक करते हुए यह मुद्रा वक्तृत्व, कवित्व, इन्द्रिय निग्रह आदि के गुण विकसित करती है। • आनन्द एवं दर्शन केन्द्र को प्रभावित करते हुए इससे निर्मल भावों का पोषण होता है तथा क्रोधादि वैभाविक दशाओं का उपशमन होता हैं। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह थायमस एवं पिच्युटरी ग्रंथि पर प्रभाव डालती है। यह बालकों के शारीरिक एवं मानसिक विकास में सहयोग देती है तथा दुष्प्रवृत्तियों के वर्धन को रोकती है।

32. पेंग् प्रोंगह्युक्षन्खन् मुद्रा (उपदेश मुद्रा)

बौद्ध परम्परा में प्रवर्तित यह मुद्रा भारतीय अनुयायियों द्वारा भी अनुसरण की जाती है। इसे भारत में निद्रातहस्त-वितर्क मुद्रा कहते हैं। भगवान बुद्ध द्वारा धारण की गई 40 मुद्राओं में से यह 32वीं मुद्रा है। यह भगवान बुद्ध के विशेष

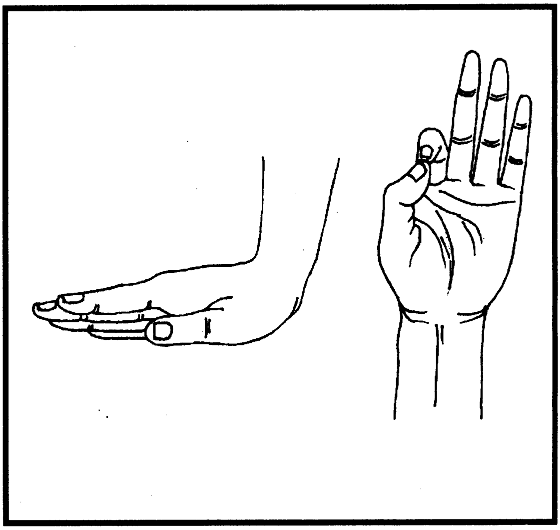

पेंग्-प्रोंगह्युक्षन्खन् मुद्रा

उपदेश की सूचक है। मुद्रा स्वरूप के अनुसार इस मुद्रा में भगवान बुद्ध संघटक पदार्थों का प्रतिपादन करते थे। यह संयुक्त मुद्रा वीरासन या वज्रासन में की जाती है।

विधि

दाएं हाथ की अंगुलियों को नीचे की तरफ फैलाते हुए उसे कुर्सी या घुटने पर रखें। बायीं हथेली को सामने की ओर करते हुए अंगूठा और तर्जनी के अग्रभाग को मिलायें, शेष अंगुलियों को शिथिल रूप से ऊपर की ओर प्रसरित करने पर उपरोक्त मुद्रा बनती है।[35]

बायां हाथ छाती के मध्यभाग के विपरीत रखा जाता है।

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व को संतुलित करती है। इससे हड्डियाँ, मांसपेशियाँ, त्वचा, नाखुन, बाल, पाचन आदि से सम्बन्धित समस्याओं का निवारण होता है और शरीर स्वस्थ, तंदुरूस्त, स्फुर्तियुक्त, ओजस्वी एवं कांतिमय बनता है। • मणिपुर एवं मूलाधार चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा जल, फास्फोरस, सोडियम, रक्त, शर्करा आदि का नियंत्रण करती है। • एड्रिनल, पेन्क्रियाज एवं यौन ग्रंथियों के ऊपर इस मुद्रा का विशेष प्रभाव पड़ता है। यह रक्तशर्करा का पाचन तथा रक्तचाप, सिरदर्द, कमजोरी, अपच आदि का शमन करती है।

33. पेंग् रब्-फोल्म-म्वेंग मुद्रा (आम ग्रहण की मुद्रा)

यह संयुक्त मुद्रा भारत में अंचित-निद्रातहस्त के नाम से प्रचलित है। मुख्य रूप से थायलैण्ड के बौद्ध समाज द्वारा यह प्रयुक्त होती है। भगवान बुद्ध की जीवन घटनाओं से सम्बन्धित 40 मुद्राओं में से यह 33वीं मुद्रा है। इसे बुद्ध द्वारा आम स्वीकार करने की सूचक मुद्रा बतलाया गया है। प्रस्तुत चित्र में एक हाथ में आम ग्रहण किया हुआ दर्शाया है।

यह मुद्रा वीरासन या वज्रासन में धारण की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को आम पकड़े हुए की स्थिति में रखें तथा बायीं हथेली को प्रसरित अंगुलियों सहित घुटने पर अधोमुख रखने से पेंग्-रब्-फोल्म-म्वेंग मुद्रा बनती है।[36]

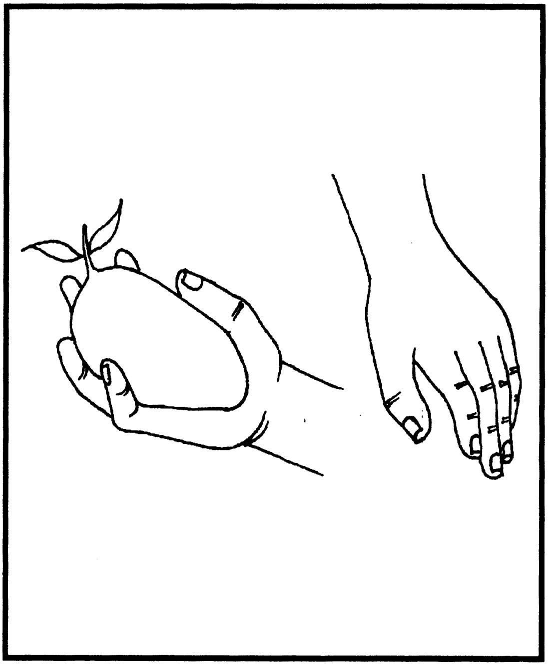

पेंग्-रब्-फोल्म-म्वेंग मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं जल तत्त्व को संतुलित करती है। इनके संयोग से पित्त से उभरने वाली बीमारियाँ उपशान्त होती है। मूत्रदोष का परिहार होता है, गुर्दा स्वस्थ बनता है तथा शरीर सुंदर, आकर्षक एवं स्निग्ध बनता है। • यह मुद्रा मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करती है। इससे कार्य शक्ति नियंत्रित रहती है। • एड्रिनल, पेन्क्रियाज एवं नाभि चक्र से सम्बन्धित दोषों का परिशोधन होता है। पाचक रसों के उत्पादन, रक्तशर्करा, जल एवं सोडियम आदि का संतुलन होता है। प्राण वायु स्थिर एवं संतुलित होती है। नाभि खिसकने से होने वाली समस्याएँ दूर होती है।

34. पेंग्-खब्क्रवक्कलि मुद्रा (चद्दर दूर करने की मुद्रा)

यह मुद्रा थायलैण्ड के बौद्धों में प्रचलित हैं। भारत में इसे पताका-ध्यान मुद्रा कहते है। भगवान बुद्ध द्वारा धारण की गई 40 मुद्राओं में से यह 34वीं मुद्रा है। यह पूजनीय वक्कली अर्थात ओढ़ी हुई चद्दर दूर करने की सूचक है। भगवान

बुद्ध अपने शरीर पर धारण की गई चद्दर किस तरह उतारते थे, वह इस मुद्रा से परिज्ञात होता है। यह संयुक्त मुद्रा वीरासन में की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को ऊर्ध्वाभिमुख करते हुए गोद में रखें और बायीं हथेली को स्वयं के सम्मुख करते हुए हृदय के निकट रखें तथा अंगुलियों एवं अंगूठे को बायीं तरफ प्रसरित करने पर पेंग्-खब्क्रवक्कलि मुद्रा बनती है।[37]

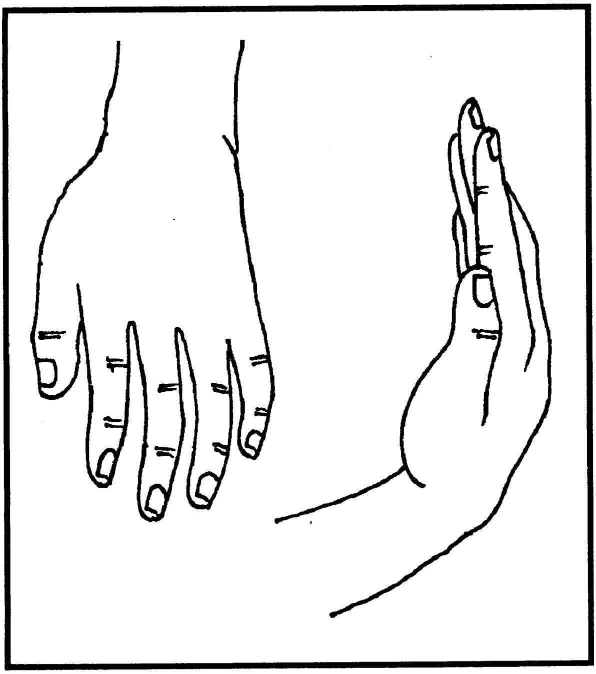

पेंग्-खब्क्रवक्कलि मुद्रा

सुपरिणाम

● यह मुद्रा वायु एवं आकाश तत्त्व का संतुलन करती है। इससे छाती, फेफड़ें, हृदय, गुर्दे आदि का संरक्षण होता है। ● इस मुद्रा को करने से अनाहत एवं सहस्रार चक्र जागृत होते हैं। परिणामस्वरूप संशय-विपर्यय, शंका-कुशंका आदि का निवारण, सम्यक ज्ञान की उपलब्धि तथा असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति होती है। ● यह मुद्रा आनंद एवं ज्योति केन्द्र को सक्रिय करती है। इनके जागरण से व्यक्ति आत्मगुणों में स्थिर होता है और उसकी भावधारा निर्मल एवं

परिष्कृत बनती है। इससे क्रोधादि कषायों पर नियंत्रण होता है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार बच्चों के विकास में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। यह बालकों में उत्साह वर्धन कर सुस्ती, जड़ता, अनुत्साह, निष्क्रियता आदि का निवारण करती है। पिनियल ग्रंथि पर दबाव पड़ने से समझदारी, मनोबल, हृदय की सुकुमारता आदि दिव्य गुणों की प्राप्ति होती है।

35. पेंग्-परिनिष्फर्न मुद्रा (निर्वाण प्राप्ति मुद्रा)

यह बौद्ध परंपरा की महत्त्वपूर्ण मुद्रा है क्योंकि इस मुद्रा में भगवान बुद्ध को निर्वाण पद की प्राप्ति हुई थी। भारत में इसका अपर नाम शयन मुद्रा है। इसमें भगवान बुद्ध को शयन करते हुए दिखलाया गया है। जो चिरकाल के लिए निद्राधीन हो जाता है वही निर्वाण कहलाता है। यहाँ निद्राधीन से तात्पर्य सदा के लिए बाह्य चक्षुओं को मीलित कर अन्तर्चक्षु को उद्घाटित करना है। भगवान बुद्ध द्वारा धारण की गई यह 35वीं मुद्रा है।

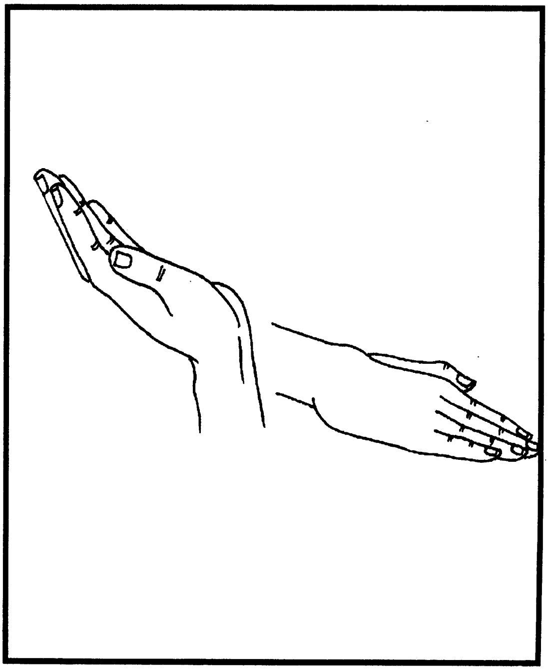

पेंग्-परिनिष्फर्न मुद्रा

विधि

दायें हाथ को मस्तक के नीचे सिरहाने के रूप में रखें तथा बायें हाथ को शरीर की बायीं जंघा पर रखने से निर्वाण सूचक पेंग् परिनिप्फर्न मुद्रा बनती है।[38]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से पृथ्वी एवं जल तत्त्व में संतुलन स्थापित होता है। इससे शरीर में रासायनिक परिवर्तनों में सहयोग मिलता है तथा व्यक्तित्व संतुलित बनता है। कान्ति एवं स्निग्धता में वृद्धि होती है। • मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा आरोग्य एवं कार्य कुशलता प्रदान करती है। • नाभि चक्र एवं यौन ग्रन्थियों को संतुलित करते हुए यह मुद्रा वंध्यत्व का निवारण ज्ञान तंतुओं, मज्जा कोष, हड्डियों, बोन-मेरो, वीर्य रज का नियमन तथा नाभि को सही स्थान पर लाती है। • एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार यह मासिक धर्म सम्बन्धी गड़बड़ियों, स्वप्नदोष, हस्तदोष, शारीरिक गर्मी, चर्बी आदि का संतुलन करती है।

36. पेंग्-सवोइमथुपयस् मुद्रा (चावल दलिया खाने की मुद्रा)

यह मुद्रा थाईलैण्ड की बौद्ध परम्परा में मान्य एवं बुद्ध के जीवन चरित्र को दर्शाने वाली 40 मुद्राओं में से 36वीं मुद्रा है। यह मुद्रा भगवान बुद्ध के द्वारा चावल का दलिया खाये जाने की सूचक है। इसे वीरासन या वज्रासन में संयुक्त हाथों से करते हैं।

विधि

दायीं हथेली को बाहर की तरफ करते हुए अंगुलियों को नीचे की ओर इस भाँति फैलायें कि वह किसी पात्र का स्पर्श कर रही हो तथा बायीं हथेली किसी पात्र को धारण की हुई गोद में रखी होने पर पेंग्-सवोइमथुपयस् मुद्रा बनती है।[39]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व को संतुलित रखती है। इससे पाचन तंत्र स्वस्थ रहता है। • इस मुद्रा का प्रभाव मूलाधार एवं मणिपुर चक्र पर पड़ता है। इससे आभ्यंतर एवं बाह्य शक्ति में वर्धन होता है। जल, फास्फोरस, सोडियम आदि तत्त्वों का संतुलन होता है। यह मुद्रा आरोग्य, कार्य दक्षता एवं ओजस्विता

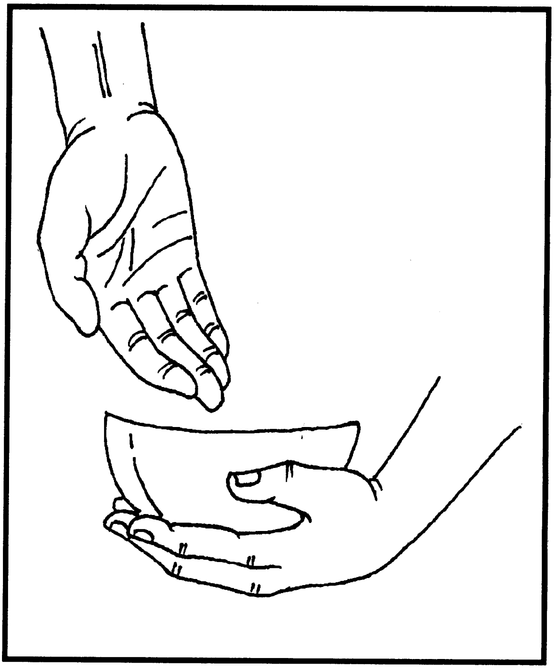

पेंग्-सवोइमथुपयस् मुद्रा

प्रदान करते हुए मधुमेह, कब्ज, अपच, एसिडिटी आदि रोगों का शमन करती है। • एड्रिनल एवं गोनाड्स को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास, शारीरिक तंत्रों का सम्यक संचालन, रक्तचाप, सिरदर्द, कमजोरी आदि में फायदा करती है।

37. पेंग्-सेदेत्फुत्थदन्नेन्यैं मुद्रा (गमन मुद्रा)

यह संयुक्त मुद्रा बुद्ध द्वारा सहज रूप से आचरित की गई 40 मुद्राओं में से 37वीं मुद्रा है। इस मुद्रा को भगवान बुद्ध के चलने की सूचक माना गया है। इस क्रिया से सम्बन्धित और भी मुद्राएँ बताई गई हैं जो बुद्ध के विचरण की भिन्न-भिन्न स्थिति को दर्शाती है। यह संयुक्त मुद्रा चलते वक्त की जाती है।

विधि

दाहिना हाथ ऊपर उठा हुआ, सामने की तरफ अभिमुख, अंगुलियाँ और अंगूठा शिथिल रूप से किंचित् झुका हुआ और छाती के स्तर पर रहें। बायां हाथ पार्श्वभाग में नीचे की ओर लटकता हुआ रहने पर पेंग्-मुद्रा बनती है।

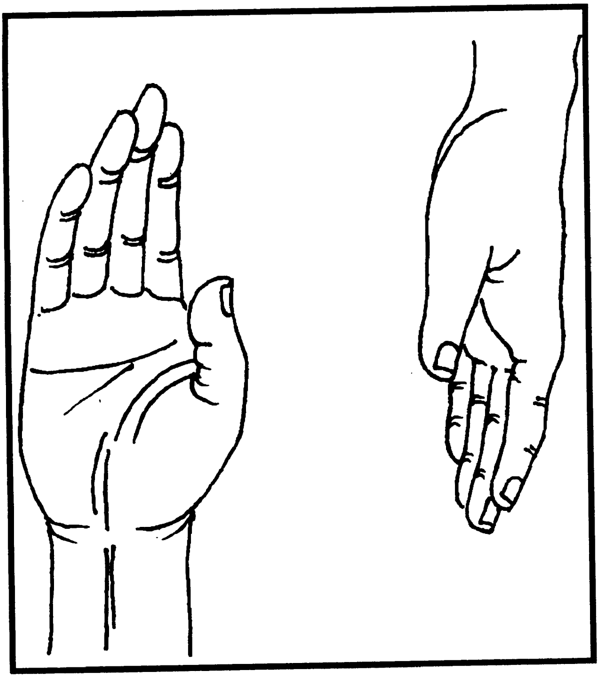

पेंग्-सेदेत्फुत्थदझेर्न्पे मुद्रा

इस मुद्रा में बायां पाँव उठा हुआ जैसे कदम आगे बढ़ाया जा रहा हो वैसे तथा दाहिना पाँव भूमि पर रहता है।[40]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश एवं अग्नि तत्त्व को प्रभावित करती है। इससे पेट के विभिन्न अवयवों की क्षमता बढ़ती है, हृदय शक्तिशाली बनता है, शरीर एवं नाड़ी शुद्धि होती है तथा विजातीय एवं विष तत्त्व शरीर से दूर होते हैं। • इस मुद्रा से सहस्रार एवं मणिपुर चक्र प्रभावित होते हैं। यह जीवन के आध्यात्मिक विकास में अत्यंत सहायक है। मस्तिष्क में मेरूजल का संचालन एवं कामेच्छा का नियमन करती है और असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त करवाती है। • ज्ञान एवं तैजस केन्द्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा बुद्धि, स्मरण शक्ति, चिन्तन शक्ति, पूर्वजन्म की स्मृति आदि को तीव्र करती है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह मुद्रा यौन ग्रंथियों एवं शरीर में स्थित पानी का संतुलन करती है, कामेच्छाओं का नियंत्रण रखती है तथा नेतृत्व शक्ति एवं निर्णयात्मक शक्ति का

विकास करती है। यह प्राण वायु के संतुलन, चारित्र गठन, पित्ताशय, लीवर, शर्करा संतुलन एवं रक्त परिसंचरण में भी सहायक है।

38. पेंग्-सोंखेम् मुद्रा (सुई पिरोने की मुद्रा)

थाई बौद्ध परम्परा में इस मुद्रा का अत्यधिक प्रभाव है। जापान में इसे 'तेम्बोरिन् इन्' मुद्रा कहा जाता है। यह संयुक्त मुद्रा बुद्ध की जीवन कथा सम्बन्धी 40 मुद्राओं में से 38वीं मुद्रा है। इस मुद्रा को सुई पिरोने का सूचक माना गया है। यहाँ सुई पिरोने का प्रतीकात्मक अर्थ यह है कि भगवान बुद्ध सूक्ष्म चिन्तन में निमग्न रहा करते थे। यह मुद्रा वीरासन या वज्रासन में धारण की जाती है।

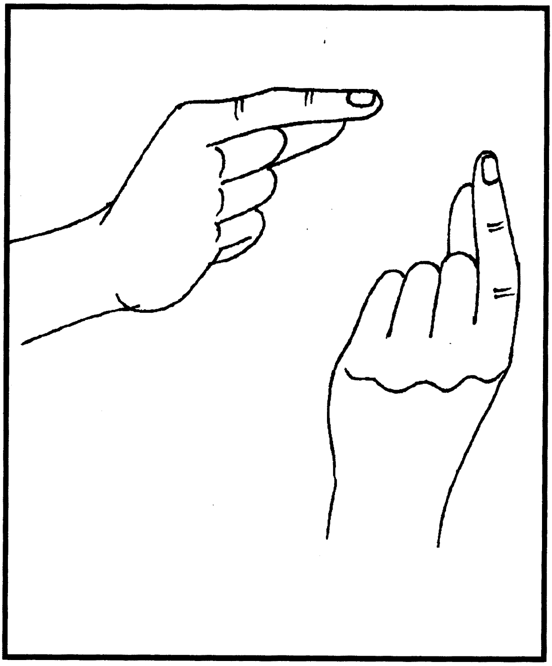

पेंग्-सोंखेम् मुद्रा

विधि

सुई में धागा पिरोते समय हाथों की जो स्थिति बनती है, उसी भाँति बायीं हथेली को ऊपर की तरफ और दायीं हथेली को कुछ नीचे की तरफ रखें तथा अंगूठा और तर्जनी के अग्रभाग परस्पर संयुक्त रहें जैसे कि सुई में धागा डाला जा रहा हो।[41]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि तत्त्व को संतुलित करती है। इससे स्नायु तंत्र की स्थितिस्थापकता, चेहरे की सुंदरता, रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति बढ़ती है तथा क्रोध, उग्रता, आलस्य, निद्रा आदि का उपशमन होता है। • मणिपुर चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा पाचक रसों का उत्पादन करती है। इससे रक्त, शर्करा, जल एवं सोडियम आदि की मात्रा का नियमन होता है। यह तनाव प्रबंधन एवं चारित्र विकास में भी सहायक बनती है। • एड्रिनल एवं पेन्क्रियाज को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा रक्तचाप (B.P.), पित्त, एसिडिटी, तेज सिरदर्द आदि का संतुलन एवं चारित्र गठन करती है।

39. पेंग्-थोंग्-तंग्- एततक्कसतर्न् मुद्रा (मुख्य शिष्य या अनुयायी चुनाव करने की मुद्रा)

यह थायलैण्ड की बौद्ध परम्परा में प्रचलित एवं भगवान बुद्ध द्वारा प्रवर्तित 40 मुद्राओं और आसनों में से 39वीं मुद्रा है। भारत में इस मुद्रा को 'तर्जनी-ध्यान' मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा भगवान बुद्ध द्वारा मुख्य शिष्य अथवा अनुयायी

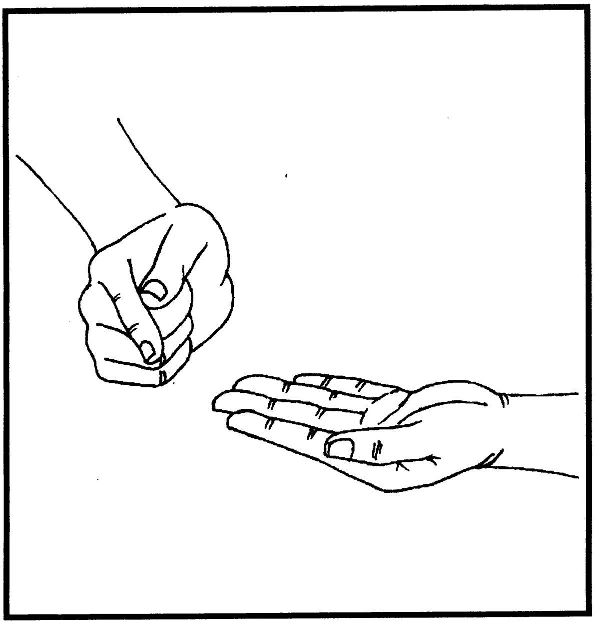

पेंग्-थोंग्-तंग्-एततक्कसतर्न् मुद्रा

का चुनाव किये जाने की सूचक मुद्रा है। बुद्ध ने इस मुद्रा के द्वारा मुख्य शिष्य का निर्वाचन किया था। यह मुद्रा वीरासन या वज्रासन में धारण की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को आगे की ओर बढ़ाते हुए तर्जनी को सामने की ओर फैलायें, शेष अंगुलियों को हथेली में मोड़े हुए रखें तथा अंगूठे का प्रथम पोर तर्जनी के दूसरे पोर का स्पर्श करें।

बायीं हथेली को ऊर्ध्वाभिमुख गोद के ऊपर रखने पर पेंग्-थोंग्-तंग् एततक्कसतर्न् मुद्रा बनती है।[42]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा वायु एवं जल तत्त्वों में संतुलन स्थापित करती है। वायु एवं जल यह जीवन के मुख्य तत्त्व होने से शरीर के प्रत्येक भाग का संचालन एवं संतुलन बनाए रखते हैं। श्वसन, मल-मूत्र, रक्ताभिसंचरण का नियंत्रण करते हैं तथा शरीर को कान्तियुक्त एवं स्वस्थ बनाते हैं। • अनाहत एवं स्वाधिष्ठान चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा हृदय में सहानुभूति आदि भावों का विकास एवं इन्द्रिय निग्रह आदि गुणों का वर्धन करती है। • यह मुद्रा थायमस एवं नाभिचक्र को प्रभावित करती है। इससे बालकों में रोग प्रतिरोधक शक्ति का विकास होता है तथा शरारत, झूठ बोलने की प्रवृत्ति, उद्दंडता आदि का शमन होता है।

40. पेंग्-पेर्द्लोक् मुद्रा (तीन लोक को प्रदर्शित करने की मुद्रा)

यह मुद्रा थायलैण्ड देश की बौद्ध परम्परा में अधिक प्रचलित है। वहाँ इस मुद्रा का नाम 'पेंग्-पेर्द्लोक्' मुद्रा है जबकि भारत में इस मुद्रा को 'सिंहकर्ण-सिंहकर्ण' मुद्रा कहा जाता है। भगवान बुद्ध द्वारा स्वाभाविक रूप से धारण की गई यह 40वीं मुद्रा है। जब भगवान बुद्ध को परम ज्ञान की प्राप्ति हुई, उसके अनन्तर उनके द्वारा तीन लोक को प्रकट करने अथवा उन्हें जानने-देखने की सूचक मुद्रा है।

विधि

दोनों हाथ नीचे की तरफ लटकते हुए, कलाई (मणिबन्ध) स्थान से मुड़ते हुए तथा अंगुलियाँ एवं अंगूठे अपनी-अपनी दिशा की ओर फैले हुए रहने पर पेंग्-पेर्द्लोक् मुद्रा बनती है।[43]

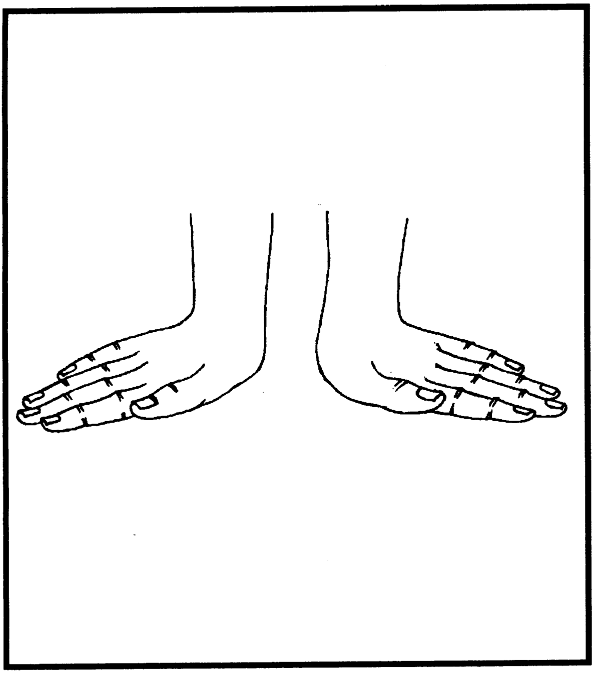

पेंग्-पेर्द्लोक् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं जल तत्त्व को संतुलित करते हुए स्वाभाविक उग्रता, रुक्षता आदि का निवारण करती है। शारीरिक दुर्बलता, मोटापा, उष्णता आदि को कम करती है तथा सहिष्णुता, साहस, कोमलता, निडरता आदि गुणों का विकास करती है। • मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए इस मुद्रा से तनाव नियंत्रण, शक्तिवर्धन एवं चारित्र विकास होता है। यह पेट के परदे के नीचे स्थित सभी अवयवों के कार्य का नियमन भी करती है। • एक्युप्रेशर के अनुसार यह पित्ताशय, लीवर, रक्त परिसंचरण तंत्र, रक्तचाप एवं प्राणवायु का संतुलन करती है तथा आधा सीसी, मधुमेह, नाभि खिसकने आदि में लाभ पहुँचाती है।

वर्णित अध्याय से यह सुसिद्ध हो जाता है कि वर्तमान प्रचलित परम्पराओं में सर्वाधिक मुद्राओं का उल्लेख बौद्ध परम्परा के सम्बन्ध में प्राप्त होता है। भगवान बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित 5 मुद्राएँ एवं 40 अन्य मुद्राएँ बुद्ध

प्रतिमाओं एवं प्राचीन चित्रों में प्राप्त होती है। इन मुद्राओं का आचरण कुछ रहस्यमयी तत्त्वों का द्योतक तो है ही साथ ही साथ यह भगवान के जीवन से Direct Connection भी जोड़ती है।

यह मुद्राएँ सद्भावों का वर्धन मानसिक शांति, शारीरिक तंदरूस्ती एवं रोग निदान में सहायक बने यही इस अध्याय का ध्येय है।

सन्दर्भ-सूची

1. *BBh-द इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी मेन्ली बेस्ड ऑन साधनामाला एण्ड अदर फोगनेट तान्त्रिक टेक्स्ट ऑफ रिचवलस, बेनोइटोश भट्टाचार्य, पृ. 189, कलकत्ता 1958*
2. *(क) BBH, पृ. 192*
   (ख) AKG - द आइकोनोग्राफी ऑफ तिब्बेतियन लामाइज्म, एन्टोइनेटे के. गोर्डन, दिल्ली 1978, पृ. 20
   (ग) BCO - मिस्टिक ऑफ एन्शियन्ट तिब्बत, ओल्श्चाक बलान्चे सी., लंदन 1988, पृ. 218
   (घ) ERJ - द बुक ऑफ हिन्दू इमेजरी, द बुक ऑफ बुद्धास्, जेन्सन एवा रूड़ी, पृ. 11, 23
3. *(क) BBH, पृ. 190* *(ख) AKG, पृ. 20*
   (ग) BCO, पृ. 214
   (घ) EDS, मुद्रा ए स्ट्डी ऑफ सिम्बोलिक गेश्चरस इन जेपनिज् बुद्धिस्ट स्कल्पचर, इ. डाले साउण्डर्स, पृ. 80
4. *(क) BBH, पृ. 192* *(ख) AKG, पृ. 20*
   (ग) BCO, पृ. 145
   (घ) RSG, आइकोनोग्राफी ऑफ द हिन्दूज़ बुद्धिस्ट एण्ड जैनस्, रमेश एस गुप्ते, बाम्बे 1972, पृ. 3
5. *(क) DRN, मोन्युमेन्ट्स ऑफ बुद्ध इन सी एम, डेमरोम राजानुभाव, पृ. 35*
   (ख) JBO, द हेरिटेज ऑफ थाइ स्कलचर, जीन बाइसेलियर, पृ. 204
6. *(क) JBO, पृ. 204*
   (ख) DRN, पृ. 35

(ग) *ODD, ड्यूडन पिक्चोरियल थाइ एण्ड इंग्लिश डिक्शनरी, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 680*

7\. (क) *DRN, पृ. 35* (ख) *JBO, पृ. 204*
(ग) *ODD, पृ. 680*

8\. (क) *DRN, पृ. 35* (ख) *JBO, पृ. 204*
(ग) *ODD, पृ. 680* (घ) *OFR, पृ. 7*

9\. (क) *DRN, पृ. 36* (ख) *JBO, पृ. 165*
(ग) *ODD, पृ. 680*

10\. (क) *DRN, पृ. 35* (ख) *JBO, पृ. 204*
(ग) *ODD, पृ. 680*

11\. (क) *DRN, पृ. 35* (ख) *JBO, पृ. 204*
(ग) *ODD, पृ. 680*

12\. (क) *DRN, पृ. 36* (ख) *JBO, पृ. 204*
(ग) *OFR, पृ. 14*

13\. (क) *DRN, पृ. 36* (ख) *JBO, पृ. 204*

14\. *JBO, पृ. 132*

15\. (क) *DRN, पृ. 36* (ख) *JBO, पृ. 204*
(ग) *ODD, पृ. 680*

16\. (क) *DRN, पृ. 36* (ख) *JBO, पृ. 204*
(ग) *ODD, पृ. 279*

17\. (क) *DRN, पृ. 36* (ख) *JBO, पृ. 205*
(ग) *ODD, पृ. 680*

18\. (क) *DRN, पृ. 36* (ख) *JBO, पृ. 205*
(ग) *ODD, पृ. 680*

19\. (क) *DRN, पृ. 36* (ख) *JBO, पृ. 205*
(ग) *ODD, पृ. 680* (घ) *OFR, पृ. 15*

20\. (क) *DRN, पृ. 36* (ख) *JBO, पृ. 205*
(ग) *ODD, पृ. 680*

21. (क) DRN, पृ. 36 (ख) ODD, पृ. 679
22. (क) DRN, पृ. 36 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 680
23. (क) DRN, पृ. 36 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 680
24. (क) DRN, पृ. 36 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 680
25. (क) OFR, पृ. 35
26. (क) DRN, पृ. 36 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 680 (घ) OFR, पृ. 35
27. (क) DRN, पृ. 36 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 672
28. (क) DRN, पृ. 36 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) OFR, पृ. 30
29. (क) DRN, पृ. 36 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 679
30. (क) DRN, पृ. 36 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 680
31. (क) DRN, पृ. 37 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 680
32. (क) DRN, पृ. 36 (ख) JBO, पृ. 278
(ग) OFR, पृ. 23
33. (क) DRN, पृ. 37 (ख) JBO, पृ. 205
34. (क) DRN, पृ. 37 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 780
35. (क) DRN, पृ. 37 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 680

36. (क) DRN, पृ. 37 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 680 (घ) OFR, पृ. 22

37. (क) DRN, पृ. 37 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 38

38. (क) DRN, पृ. 37 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 680

39. (क) DRN, पृ. 37 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 680

40. (क) DRN, पृ. 36 (ख) JBO, पृ. 165
(ग) OFR, पृ. 17

41. (क) DRN, पृ. 37 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 680 (घ) OFR, पृ. 36

42. (क) DRN, पृ. 37 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 680

43. (क) DRN, पृ. 36 (ख) JBO, पृ. 205
(ग) ODD, पृ. 680

●

अध्याय-3

सप्तरत्न सम्बन्धी मुद्राओं का सोद्देश्य स्वरूप

बौद्ध मान्यता के अनुसार सप्तरत्न विश्वसम्राट् के सात विशेष प्रतीक होते हैं और असाधारण गुणों में से विशिष्ट शक्ति के सूचक होते हैं। राजा सिद्धार्थ (भगवान बुद्ध) जब तक बुद्ध अवस्था को प्राप्त नहीं हुए थे तब तक उनके मुकुट के निचले हिस्से पर सात रत्न अंकित थे। गृहस्थ जीवन से विमुख होने के पश्चात रत्न संपदा का कोई औचित्य या उसकी मूल्यवत्ता नहीं रह पाती, अत: उन्होंने जान-बूझकर सप्तरत्न का उत्सर्ग कर दिया। सप्तरत्नों का सामान्य वर्णन इस प्रकार है–

1. **चक्ररत्न–** यह हजार आराओं (चक्रों) वाला विजयी चक्र होता है। इसे धर्म (नियमों) की सम्मति, संतुलन और सम्पूर्णता का द्योतक मानते हैं। यह सांची के पुराने स्तूप पर उपलब्ध है।
2. **मणिरत्न–** यह समग्र रत्नों में मातृरत्न है जो सकल इच्छाओं को पूर्ण करता है।
3. **स्त्रीरत्न–** सूर्य की दीप्ति के समान तेजस्विता युक्त नारी, जो अपने स्वामी को पंखी के द्वारा हवा डालती है और प्रतिक्षण सेवक की तरह उसके साथ रहती है वह स्त्रीरत्न कहलाता है।
4. **पुरुष रत्न–** राजा का मुख्य व्यक्ति, जो उसके व्यापार एवं राज्य के कार्यभार को संभालता है जैसे मंत्री, महामंत्री आदि पुरुषरत्न कहलाते हैं।
5. **हस्तिरत्न–** धरती को हिला देने वाला श्वेतवर्णी हाथी, जो विश्वव्यापी आधिपत्य का सूचक है वह हस्तिरत्न कहलाता है। इस रत्न में इन्द्र के ऐरावत हाथी को भी अन्तर्भूत किया जा सकता है।
6. **अश्वरत्न–** अपने मालिक की जहाँ इच्छा हो वहाँ ले जाने में समर्थ एवं अपने क्षेत्र में कभी अस्त नहीं होने वाला घोड़ा, अश्वरत्न कहलाता है। यह सूर्य रथ में जुते हुये अश्वों का प्रतीक है।

7. **उपरत्न–** यहाँ 'उप' शब्द सेनापति या क्षत्रिय अर्थ में है जो युद्ध में सभी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है वह उपरत्न कहलाता है।
8. **खड्ग रत्न–** यह रत्न सात वैयक्तिक रत्नों में से एक है इसे अपराजय का प्रतीक तथा जीवन और मृत्यु की शक्ति का सूचक माना गया है।[1]

जैन परम्परा में चक्रवर्ती (दिग्विजयी) राजा के चौदह रत्न माने गये हैं जिनमें कुछ रत्न, इन सप्त रत्नों से मिलते-जुलते ही हैं।

1. चक्ररत्न मुद्रा

प्रस्तुत तान्त्रिक मुद्रा बौद्ध परम्परा में प्रचलित है। यह सप्तरत्न से संबंधित किसी अमूल्य चक्ररूपी भेंट की सूचक है। इसे महासत्ता के सातरत्न भी कहा जाता है। यह अंतरिक्ष के अतुलनीय अमूल्य खजाने का सूचन भी करता है। उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर यह मुद्रा वज्रायना तारा देवी की पूजा से सन्दर्भित है पूजा मन्त्र यह है– **'ओम् चक्ररत्न प्रतिच्चाहूम् स्वाहा।'**

विधि

बायीं हथेली के मध्य भाग पर दायें हाथ की अंगुलियों एवं हथेली भाग को इस भाँति रखें कि उनमें 90^0 का कोण बन सकें, इस विधि से चक्ररत्न मुद्रा बनती है।[2]

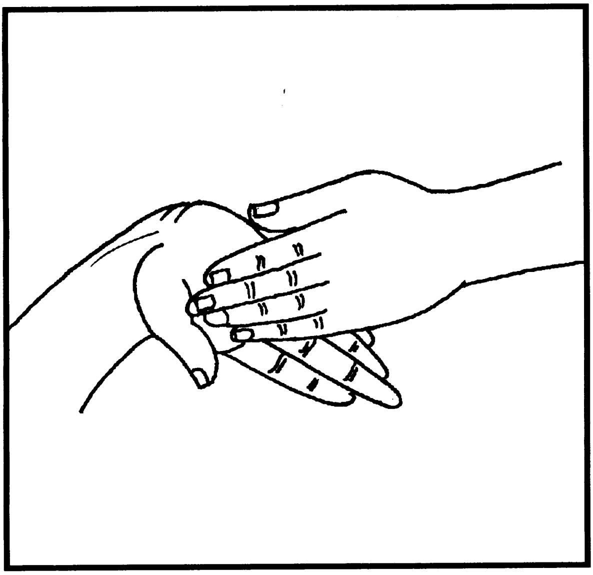

चक्र रत्न मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग करने से अग्नि एवं आकाश तत्त्व प्रभावित होते हैं। इनके संयोग से शरीर की नाड़ी शुद्धि होती है और पेट के विभिन्न अवयवों की क्षमता बढ़ती है तथा हृदय शक्तिशाली बनता है। • यह मुद्रा मणिपुर एवं सहस्रार चक्र को जागृत करते हुए व्यक्ति को असम्प्रज्ञात समाधि में स्थिर करती है तथा इससे ऊर्जा का वर्धन होता है। • इससे पाचन सम्बन्धी विकार भी दूर होते हैं।

2. मणिरत्न मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा बौद्ध की वज्रायन परम्परा में की जाती है। यह सप्तरत्नों में से एक है तथा वज्रायना देवी तारा की पूजा से संबंधित है। इस मुद्रा को इच्छापूरक मंत्र की सूचक माना गया है। पूजा मन्त्र यह है– **'ओम् मणिरत्न प्रतिच्छाहूम् स्वाहा।'** यह संयुक्त मुद्रा छाती के स्तर पर धारण की जाती है और यह मुद्रा गगन में उड़ते हुए पक्षी के सदृश प्रतीत होती है।

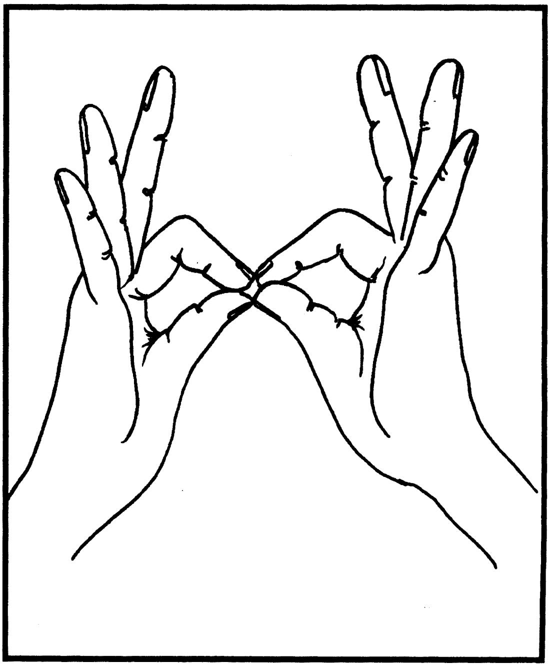

मणिरत्न मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को मध्यभाग में रखें, अंगूठा और तर्जनी के अग्रभाग को परस्पर संयुक्त कर उन्हें निकट लाएँ तथा शेष अंगुलियों को ऊपर की तरफ फैला दिये जाने पर मणिरत्न मुद्रा बनती है।[3]

लाभ

• इस मुद्रा का प्रयोग अनाहत, सहस्रार एवं मणिपुर चक्र को जागृत करते हुए तत्सम्बन्धी कार्यों को संतुलित करना है। इससे संकल्प बल एवं पराक्रम बढ़ता है तथा साधक निर्विकल्पी एवं निर्विकारी बनता है। • वायु, आकाश एवं अग्नि तत्त्वों को प्रभावित करते हुए श्वसन, पाचन मल-मूत्र गति, रक्त संचरण आदि कार्यों में यह मुद्रा सहायक बनती है। • यह मुद्रा थायमस, पिनियल एवं एड्रिनल ग्रन्थियों को प्रभावित करते हुए मुख्य रूप से बाल विकास में सहायता प्रदान करती है। इससे निर्णायक एवं नियंत्रण शक्ति का वर्धन होता है।

3. स्त्रीरत्न मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा बौद्ध परम्परा के सात रत्नों में से एक है। इस मुद्रा को अमूल्य रानी के उपहार की सूचक माना गया है। यह महासत्ता के सप्तरत्नों एवं अंतरिक्ष के अमूल्य खजाने को सूचित करती है। वज्रायना देवी तारा की पूजा में इस मुद्रा का उपयोग होता है। पूजा मंत्र निम्न है– **'ओम् स्त्री रत्न प्रतिच्चाहूम् स्वाहा।'**

यह संयुक्त मुद्रा छाती के स्तर पर धारण की जाती है। इसमें दोनों हाथों में प्रतिबिंब की भाँति मुद्रा बनती है।

विधि

दोनों हथेलियों को मध्य भाग में रखें। तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका को हथेली के भीतर मोड़ें, अंगूठें को मुड़ी हुई अंगुलियों के प्रथम पोर पर रखें, अनामिका को सीधी रखें तथा उभय हाथों को निकट रखने पर स्त्रीरत्न मुद्रा बनती है।[4]

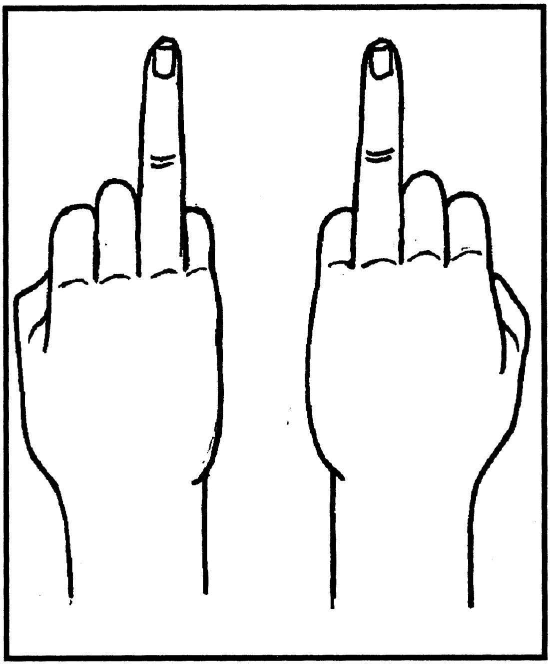

स्त्रीरत्न मुद्रा

सुपरिणाम

• पृथ्वी एवं जल तत्त्व को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा शरीर में हो रहे रासायनिक परिवर्तनों एवं व्यक्तित्व का संतुलन करती है। इससे शरीर बलिष्ठ, कान्तियुक्त एवं स्निग्ध बनता है। • इस मुद्रा के प्रयोग से मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र की शक्ति का जागरण होता है जिससे आरोग्य कर्म कौशलता, आध्यात्मिक तेजस्विता तथा नियंत्रण सामर्थ्य प्राप्त होता है। • इस मुद्रा के प्रयोग से बौद्धिक क्षमता एवं स्मृति का विकास होता है। शारीरिक स्थूलता-जड़ता-रूक्षता आदि कम होते हैं।

4. पुरुष रत्न मुद्रा

इस तान्त्रिक मुद्रा को बौद्ध परम्परा में श्रद्धा-निष्ठा पूर्वक किया जाता है। यह सप्त रत्नों में से एक अनमोल मंत्री के भेंट की सूचक है। यह महासत्ता के सात रत्नों एवं अंतरिक्ष के अमूल्य खजाने का भी परिचय करवाती है। स्वरूपत:

यह मुद्रा वज्रायना देवी तारा की पूजाराधना से संबंधित है। इसमें दोनों हाथों में समान मुद्रा बनती है। पूजा मन्त्र यह है– **'ओम् पुरुषरत्न प्रतिच्चाहूम् स्वाहा।'**

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में नीचे की तरफ रखें, अंगूठा और तर्जनी के अग्रभागों को परस्पर में स्पर्शित करें, मध्यमा को ऊपर की ओर सीधी रखें, कनिष्ठिका और अनामिका को हथेली की तरफ झुकायें तथा तर्जनी, अनामिका और कनिष्ठिका के द्वितीय पोर एक-दूसरे से स्पर्शित रहें, इस भाँति पुरुष रत्न मुद्रा बनती है।[5]

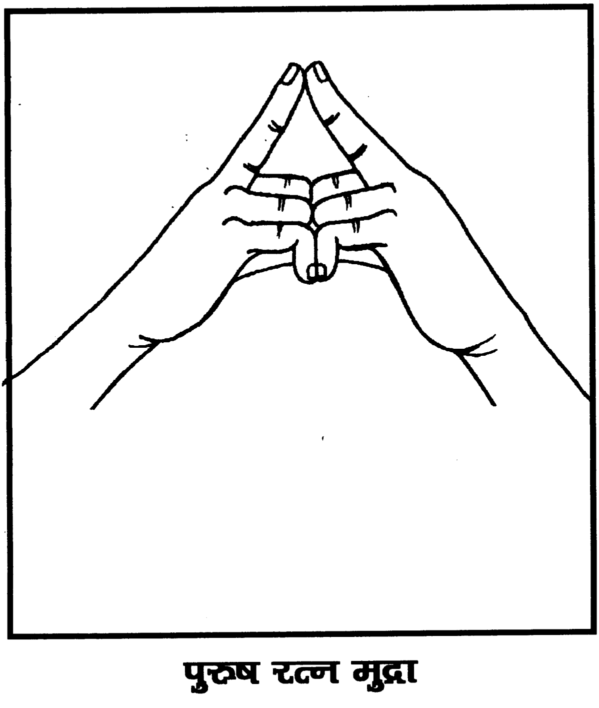

पुरुष रत्न मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि तत्त्व को प्रभावित करते हुए पाचन तन्त्र को सन्तुलित करती है। शारीरिक स्थूलता एवं मानसिक तनाव को न्यून करती है। • मणिपुर चक्र की शक्ति जागृत करते हुए यह आत्मिक बल प्रदान करती है और मधुमेह, उदर-पीड़ा, अपच आदि का निवारण करती है। • यह मुद्रा स्वभाव को सौम्य, निडर एवं शान्त बनाती है।

5. हस्ति रत्न मुद्रा

सप्त रत्नों में से एक, यह तान्त्रिक मुद्रा बौद्ध परम्परा में प्रयुक्त की जाती है। यह मुद्रा अमूल्य हाथी को भेंट रूप में देने की सूचक है। यह पूर्ववत महासत्ता के सप्तरत्नों एवं अंतरिक्ष के अमूल्य खजाने को भी सूचित करती है। सामान्यतया वज्रायना देवी तारा की पूजाराधना हेतु इस मुद्रा का उपयोग किया जाता है। पूजा मन्त्र यह है- **'ओम् हस्ति रत्न प्रतिच्चाहूम् स्वाहा।'** यह मुद्रा ठुड्डी के स्तर पर धारण की जाती है।

विधि

दायीं हथेली को अधोमुख रखते हुए मध्यमा को छोड़कर शेष अंगुलियों एवं अंगूठे को हथेली की तरफ झुकायें तथा मध्यमा को बाहर की ओर प्रसरित रखें। बायें हाथ को दायीं हथेली के नीचे रखते हुए अनामिका को छोड़ शेष अंगुलियों को मुट्ठि रूप में बांधें तथा मध्यमा को दायीं हथेली की तरफ अभिमुख करने पर हस्तिरत्न मुद्रा बनती है।[6]

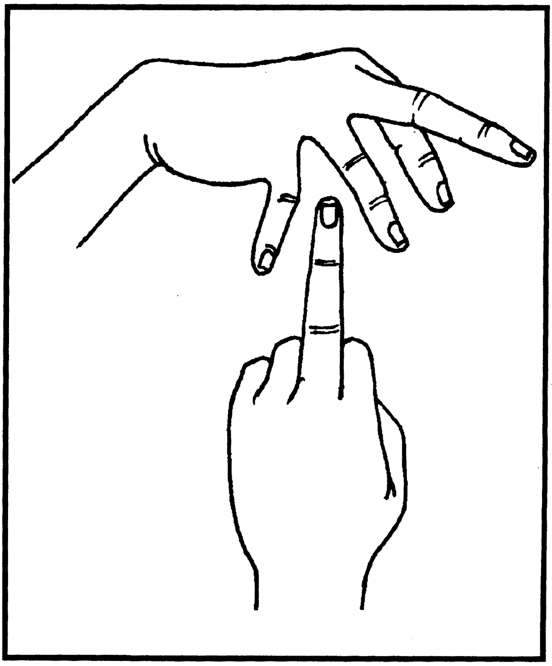

हस्ति रत्न मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग अग्नि तत्त्व को प्रभावित करते हुए एड्रिनल एवं पेन्क्रियाज के स्राव को संतुलित करता है, जिससे उदर सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है। • यह मुद्रा मणिपुर चक्र को प्रभावित कर तैजस केन्द्र को सक्रिय करती है जिससे शरीर एवं आत्मा दोनों के तेज में वृद्धि होती है। • इसके प्रयोग से डायबिटिज, अपच, उदर पीड़ा आदि शारीरिक रोगों का निवारण होता है।

6. अश्व रत्न मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा बौद्ध (वज्रायन) परम्परा में साधकों द्वारा धारण की जाती है। यह किसी मूल्यवान अश्व के भेंट की सूचक है। यह सप्तरत्नों में से एक है। इस मुद्रा का प्रयोग शक्तिशाली वज्रायना देवी तारा की पूजोपासना के समय किया जाता है। इसमें दोनों हाथ एक-दूसरे के प्रतिबिंब के समान नजर आते हैं। पूजा मन्त्र यह है- **'ओम् अश्वरत्न प्रतिच्वाहूम् स्वाहा।'**

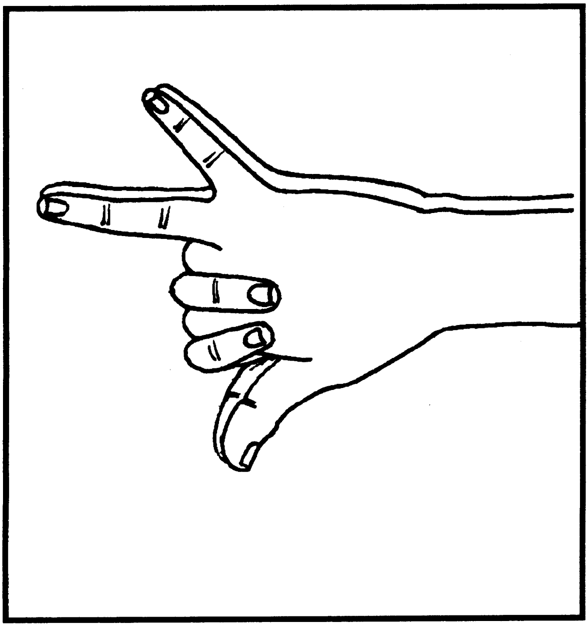

अश्व रत्न मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को एक-दूसरे के अत्यन्त निकट लाएं, अंगूठा, अनामिका और कनिष्ठिका को ऊपर की ओर प्रसरित करें, अनामिका और कनिष्ठिका के अग्रभाग परस्पर में स्पर्शित रहते हुए भी उनके मध्य में अंतर रखें, फिर मध्यमा और तर्जनी एक-दूसरे में गुम्फित हुई रहने पर अश्वरत्न मुद्रा बनती है।[7]

सुपरिणाम

• वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा हृदय एवं वायु विकार सम्बन्धी समस्त रोगों के निवारण में सहयोगी हो सकती है। • विशुद्धि एवं अनाहत चक्र को प्रभावित करते हुए यह वाक्शक्ति का विकास एवं इन्द्रिय नियंत्रण करती है तथा दीर्घजीवन, निरोगी काया एवं शान्तचित्त देती है। • थायमस, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रंथि के स्राव को व्यवस्थित करते हुए भावों को निर्मल एवं परिष्कृत तथा जीवन को सफल एवं उदात्त बनाती है।

7. उपरत्न मुद्रा

यह जापानी बौद्ध के वज्रायण, मंत्रायण परम्परा की तान्त्रिक मुद्रा है। यह सप्त रत्न से जुड़ी अनमोल भेंट को दर्शाती है। यह सप्तरत्नों में से अन्तिम रत्न अलौकिक धन के रूप में माना जाता है। वस्तुतः यह मुद्रा वज्रायण परम्परा की शक्तिशाली देवी तारा से जुड़ी हुई है। यह संयुक्त मुद्रा छाती के स्तर पर धारण की जाती है। इस मुद्रा के साथ मन्त्र का पाठ होता है वह यह है- **'ओम् उपरत्न प्रतिच्वाहूम् स्वाहा।'**

विधि

दोनों हथेलियों को आमने-सामने कर सभी अंगुलियों को थोड़ा सा मोड़ते हुए एवं उनके अग्रभागों को परस्पर में स्पर्शित करते हुए रखने पर उपरत्न मुद्रा बनती है।[8]

सुपरिणाम

• उपरत्न मुद्रा के प्रयोग से अग्नि एवं महत्त तत्त्व प्रभावित होते हैं। इससे कब्ज, दस्त, उल्टी, दमा, सन्धिवात, हड्डियों की कमजोरी में लाभ मिलता है। • मणिपुर एवं सहस्रार चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा मानसिक संशय,

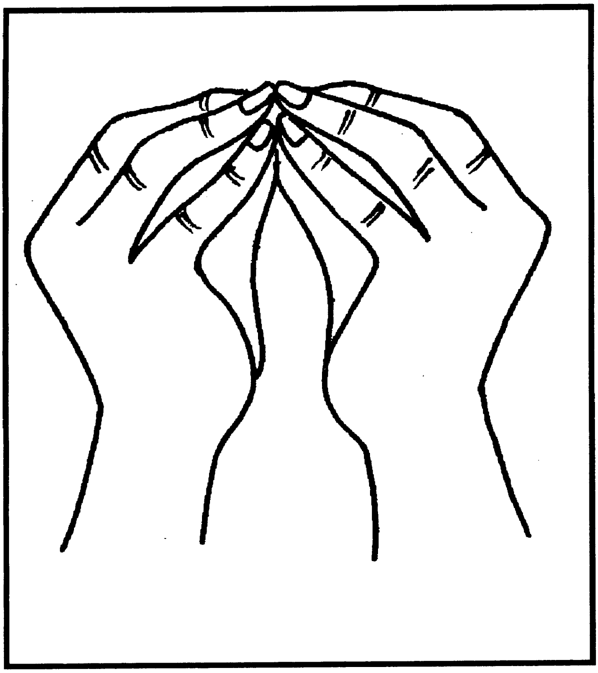

उपरत्न मुद्रा

विपर्यय, विकल्प, डिप्रेशन आदि का निराकरण कर आन्तरिक समाधि प्रदान करती है। इससे उदर एवं मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों का निवारण भी होता है। • इस मुद्रा के प्रयोग से पिनियल एवं एड्रिनल ग्रन्थियों का स्राव सन्तुलित होता है जिससे क्रोधादि कषाय एवं कामवासनाएँ नियंत्रित होती हैं और ब्रह्म तेज में वृद्धि होती है।

8. खड्ग रत्न मुद्रा

यह मुद्रा जापानी और बौद्ध परम्परा में प्रयुक्त की जाती है। यह एक कीमती तलवार के उपहार की सूचक है। यह अपनी निजी विशेषता के कारण परमसत्ता के सप्तरत्नों एवं विश्व के अटूट खजाने को दर्शाती है। मूलत: यह मुद्रा शक्तिधारिणी वज्रायना देवी तारा की पूजा से सम्बन्धित है। इस संयुक्त मुद्रा में दोनों हाथ एक-दूसरे के स्वरूप से प्रतिबिंबित होते हैं। यह ठुड्डी के स्तर पर धारण की जाती है।

विधि

दाएँ हाथ से बाएँ हाथ को हल्का सा नीचे की तरफ किन्तु एक-दूसरे के अभिमुख रखें, तत्पश्चात तर्जनी और मध्यमा को फैलायें, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली की तरफ मोड़ें तथा अंगूठे को अनामिका और कनिष्ठिका के बाह्य पोरों पर स्पर्शित करते हुए रखने से खड्गरत्न मुद्रा बनती है।[9]

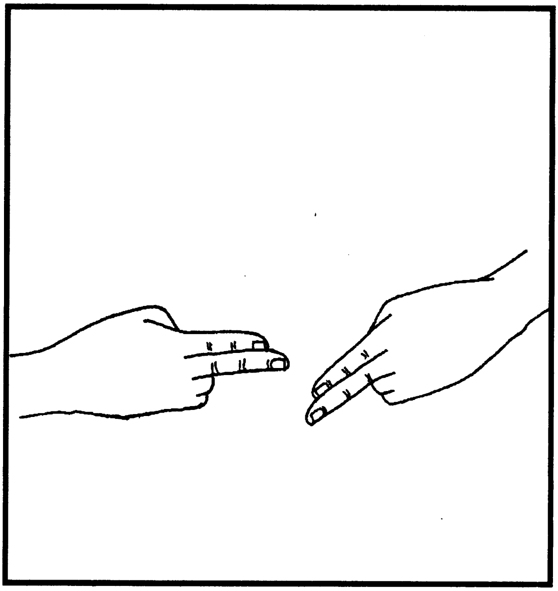

खड्ग रत्न मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश एवं वायुतत्त्व को संतुलित करती है जिससे कण्ठ एवं हृदय सम्बन्धी किसी भी प्रकार की समस्या का निवारण हो सकता है। यह चित्त को शान्त कर चरित्र को उदात्त बनाती है। • इसके द्वारा अनाहत एवं विशुद्धि चक्र जागृत होते हैं जिससे वाक्शक्ति, कवित्व शक्ति, आरोग्य आदि में वृद्धि होती है। • आनंद केन्द्र एवं विशुद्धि केन्द्र के द्वारा थायमस, थायरॉइड आदि ग्रन्थियों को प्रभावित करते हुए भावों को निर्मल, एवं परिष्कृत करती है।

इस अध्याय में वर्णित सप्तरत्न की मुद्राएँ मुख्य रूप से भगवान बुद्ध के बोधि प्राप्ति से पूर्व की अवस्था का वर्णन करती है। वर्तमान में इनका सम्बन्ध वज्रायना देवी तारा की उपासना से माना जाता है। साधना के क्षेत्र में यह रत्न

के समान विशिष्ट प्राकृतिक शक्तियों की द्योतक है। स्वभावतः शरीर के विभिन्न तंत्रों को प्रभावित करते हुए शारीरिक संतुलन एवं स्वस्थता को भी प्रदान करती है ऐसा विशेषज्ञों द्वारा सुसिद्ध है।

सन्दर्भ-सूची

1. *बुद्धिजम एण्ड लामाइज्म ऑफ तिब्बत, ओस्टाईन बूडेल, पृ. 381-91*
2. *SBE द कल्ट ऑफ तारा मेज़िक एण्ड रिचूवल इन तिब्बत, स्टीफन बेयर, पृ. 152*
3. *वही, पृ. 152*
4. *वही, पृ. 152*
5. *वही, पृ. 152*
6. *वही, पृ. 152*
7. *वही, पृ. 152*
8. *वही, पृ. 152*

●

अध्याय-4

अष्टमंगल से सम्बन्धित मुद्राओं का स्वरूप एवं मूल्य

बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर यह माना जाता है कि भगवान बुद्ध के चरण युगल पर अष्टमंगल के चिह्न थे। जो प्राणी मात्र के लिए शुभत्व का संदेश देते थे, जीव मात्र के लिए मंगल भाव प्रसरित करते थे। आज यह चिह्न विशेष धातु, काष्ठ या मिट्टी आदि में उत्कीर्ण देखे जाते हैं। उनका सामान्य वर्णन इस प्रकार हैं–

1. **मत्स्य–** सुवर्णमत्स्य, जापान में मत्स्य को एक मांगलिक चिह्न के रूप में माना गया है अत: इस चिह्न को गृहद्वार आदि पर लगाते हैं। यह नदी आदि में जल बहाव के विपरीत गति करता है इसलिए इसे प्रगति का सूचक भी मानते हैं।
2. **छत्र–** तीन लोक की सम्पदा को दर्शाने वाला और समस्त प्राणियों को आश्रय देने वाला चिह्न छत्र कहलाता है।
3. **शंख–** यह मंगल कारक एवं विजय की घोषणा का सूचक होता है।
4. **श्रीवत्स–** एक प्रकार का मांगलिक चिह्न, भगवान विष्णु का हृदयस्थ चिह्न, श्रीवत्स कहलाता है।
5. **ध्वजा–** यह विजय पताका की द्योतक होती है।
6. **कलश–** उत्कृष्ट मंगल का प्रतीकात्मक चिह्न, कलश है। इसे समग्र परम्पराओं में मंगल का सूचक माना जाता है। यह तीन लोक की रहस्यमयी संपदाओं से भी युक्त होता है।
7. **पद्म–** पद्म अर्थात कमल। यह प्रसन्नता एवं पवित्रता का चिह्न माना जाता है।
8. **चक्र–** यह विजय का सूचक माना गया है।

1. निधि घट मुद्रा

बौद्ध (वज्रायन) परम्परा की यह मुद्रा आठ मांगलिक चिह्नों में से एक है। यह चिह्न किसी विशेष मेहमान के आने पर प्रदर्शित किया जाता है। मूलत: यह मुद्रा कुम्भ-कलश की सूचक है। इस मुद्रा में दोनों हाथ एक-दूसरे के प्रतिबिम्ब भासित होते हैं। इस मुद्रा के समय मन्त्र बोला जाता है वह निम्न है– **'ओम् निधिघट प्रतिच्छा स्वाहा।'** यह मुद्रा युगल हाथों से छाती के स्तर पर धारण की जाती है।

विधि

दोनों हथेलियों को एक-दूसरे के सम्मुख रखते हुए नीचे के गादी के स्थान को परस्पर मिलाएँ, अंगुलियों और अंगूठों के अग्रभागों का स्पर्श करवाएँ तथा हथेलियों के बीच में खाली जगह छोड़ें, इस तरह निधिघट मुद्रा बनती है।[2]

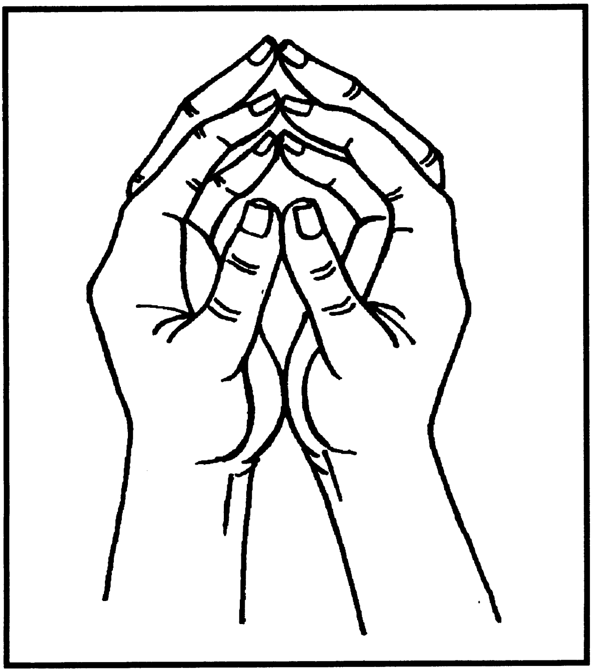

निधि घट मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा करने से शरीरगत अग्नि एवं वायु तत्त्व प्रभावित होते हैं। इनके संयोग से गैस की समस्त विकृतियाँ दूर होती है। इसी के साथ शान्ति का

अनुभव होता है, मानसिक एकाग्रता में वृद्धि होती है तथा स्नायुतंत्र मजबूत बनता है। • मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र को जागृत करते हुए यह मानसिक एवं चैतसिक शान्ति प्रदान करती है। आन्तरिक ज्ञान, कवित्व शक्ति, निरोगी अवस्था आदि में विकास कर पाचन सम्बन्धी गड़बड़ियों को दूर करती है। • तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र को सक्रिय कर यह मुद्रा बाह्य एवं आन्तरिक कान्ति में वृद्धि, क्षमता एवं सामर्थ्य का विकास, जीवन का निर्मलीकरण एवं उदात्तीकरण करती है।

2. पद्म कुंजर मुद्रा

बौद्ध परम्परा में प्रचलित यह मुद्रा आठ मांगलिक चिह्नों में से एक है। यह उत्तम कमल की सूचक है। यह चिह्न किसी दिव्य अतिथि को अथवा देवी-देवताओं की पूजा करते समय उन्हें अर्पण किया जाता है। दोनों हाथों में समान मुद्रा होती है।

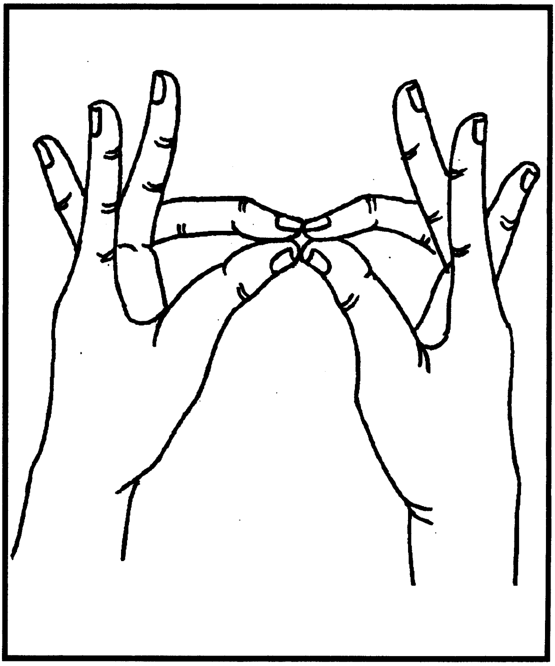

पद्म कुंजर मुद्रा

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखते हुए तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका

अंगुलियों को ऊर्ध्व प्रसरित करें तथा अंगूठे और अनामिका के अग्रभागों का परस्पर स्पर्श करवाते हुए दोनों हाथों को अत्यन्त समीप रखने पर पद्म कुंजर मुद्रा बनती है।[3]

सुपरिणाम

● इस मुद्रा को धारण करने से चेतन तत्त्व सक्रिय होता है। यह आध्यात्मिक विकास, मानसिक शान्ति, आत्म जागरण, अन्तराभिमुख अनुभूतियों एवं व्यक्तित्व विकास में सहायक बनती है। ● यह मुद्रा सहस्रार चक्र एवं ललाट चक्र को जागृत करती है इससे मानसिक संकल्प-विकल्प दूर होकर चैतसिक एकाग्रता प्राप्त होती है। यह अतिन्द्रिय ज्ञान को विकसित करती है ● यह मुद्रा ज्योति एवं ज्ञानकेन्द्र को सक्रिय करते हुए क्रोधादि कषायों पर नियंत्रण करती है तथा पूर्व जन्म की स्मृति आदि करने में सहायक बनती है।

3. श्री वत्स्य मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में धारण की जाती है। यह संयुक्त मुद्रा आठ मांगलिक चिह्नों में से एक है। इस मुद्रा को अंत रहित गांठ (ग्रन्थि) की सूचक माना है। यह चिह्न वज्रायना देवी तारा की पूजा करते समय मुद्रा पूर्वक अर्पित किया जाता है। पूजा मन्त्र यह है– **'ओम् श्री वत्स्य प्रतिच्छा**

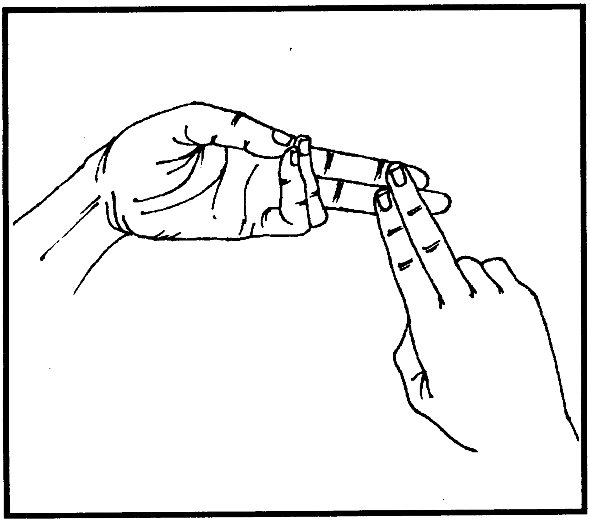

श्री वत्स्य मुद्रा

स्वाहा।' यह मुद्रा छाती के स्तर पर की जाती है।

विधि

दोनों हाथों की तर्जनी और मध्यमा को फैलायें, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली की तरफ मोड़ें, अंगूठें को अनामिका और कनिष्ठिका के अग्रभाग से स्पर्श करवायें।

तत्पश्चात बायें हाथ को नीचे की तरफ रखते हुए दायें हाथ की तर्जनी और मध्यमा के प्रथम दो पोरों का बायीं तर्जनी और मध्यमा के प्रथम दो पोरों से स्पर्श करवाने पर श्री वत्स्य मुद्रा बनती है।

सुपरिणाम

• श्रीवत्स्य मुद्रा करने से अग्नि एवं जल तत्त्व का संतुलन एवं संयोग होता है जिससे पित्त से उभरने वाली बीमारियाँ एवं मूत्र दोष का परिहार होता है और गुर्दे स्वस्थ बनते हैं। यह मुद्रा स्वाभाविक रूखेपन को दूर कर स्फूर्ति प्रदान करती है। • मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा मधुमेह, अपच, गैस, पाचन तंत्र सम्बन्धी विकृतियों को दूर करती है। • यह मुद्रा एड्रीनल एवं गोनाड्स ग्रंथियों के स्राव को नियंत्रित करते हुए व्यक्ति को साहसी, निर्भीक, सहनशील, आशावादी बनाकर उसमें प्रतिकारात्मक शक्ति का विकास करती है। इसी के साथ सिरदर्द, कमजोरी, भूख आदि का शमन कर कामेच्छाओं का दमन करती है।

4. सितात पत्र मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा बौद्ध परम्परा से सम्बन्धित है और आठ मांगलिक चिह्नों में से एक है। सित अर्थात श्वेत, यह मुद्रा सफेद छत्र की सूचक है। यह चिह्न शक्ति सम्पन्ना वज्रायना देवी तारा की पूजा करते वक्त अर्पित किया जाता है। इस मुद्रा को युगल हाथों से छाती के स्तर पर करते हैं। पूजा मन्त्र- **'ओम् सितातपत्र प्रतिच्छा स्वाहा।'**

विधि

दायीं हथेली को मध्यभाग में अधोमुख रखते हुए अंगुलियों और अंगूठे को बायीं ओर फैलायें। बायीं हथेली को मध्यभाग में सीधा रखते हुए मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली के अन्दर मोड़ें, अंगूठा मध्यमा के प्रथम पोर का स्पर्श

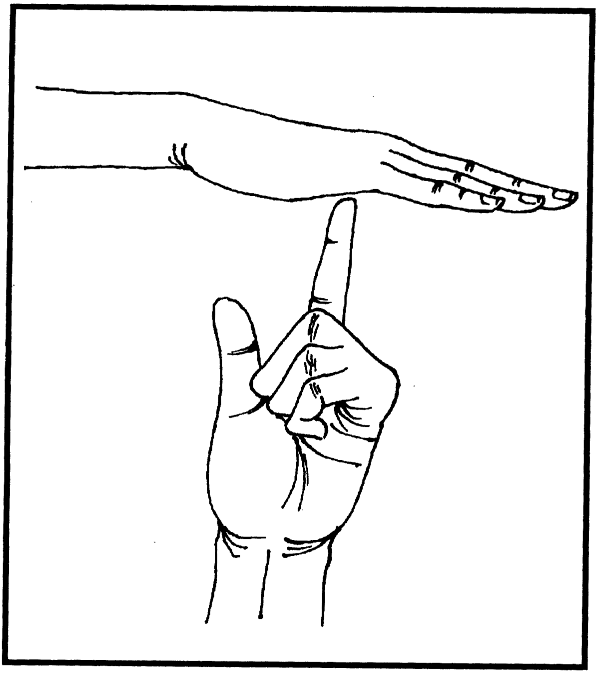

सितात पत्र मुद्रा

करता हुआ रहें तथा तर्जनी दायीं हथेली को स्पर्श करती हुई रहने पर सितातपत्र मुद्रा बनती है।[5]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्वों का नियंत्रण करती है। इन तीनों तत्वों के संयोग से कुपितवायु, गठिया-साइटीका, वायुशूल, लकवा आदि रोगों का निवारण होता है। • इस मुद्रा को करने से मणिपुर, अनाहत एवं आज्ञा चक्र जागृत होते हैं। इससे वक्तृत्व, कवित्व, इन्द्रिय निग्रह आदि गुणों की प्राप्ति और समत्व भावों की उत्पत्ति होती है। • इस मुद्रा का प्रभाव एड्रिनल, थायमस एवं पिच्युटरी ग्रन्थि पर पड़ता है। इससे शरीर की आन्तरिक संरचनाएँ मजबूत एवं क्रियाशील बनती है। बच्चों में रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति बढ़ती है, तनावमुक्ति के साथ मानसिक शक्ति की अनुभूति होती है।

5. सुवर्ण चक्र मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा अष्ट मांगलिक चिह्नों में से एक है तथा बौद्ध परम्परा में प्रयुक्त की जाती है। इसे स्वर्ण चक्र की सूचक कहा गया है। यह चिह्न विशेष अतिथियों को एवं वज्रायना देवी तारा की पूजा करते समय उन्हें अर्पण किया जाता है। पूजा मन्त्र यह है **'ओम् सुवर्ण चक्र प्रतिच्छा स्वाहा'**।

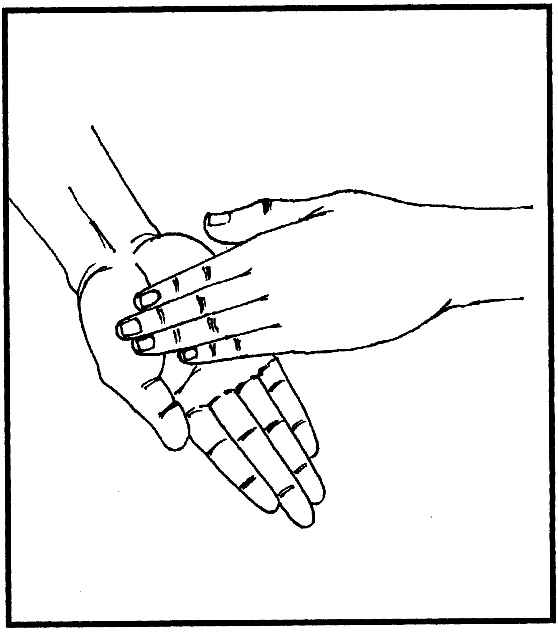

सुवर्ण चक्र मुद्रा

विधि

दायें हाथ को ऊर्ध्वाभिमुख रखते हुए अंगुलियों को फैलायें तथा बायें हाथ को अधोमुख रखते हुए उसकी अंगुलियों को फैलायें। तदनन्तर बायें हाथ की अंगुलियों से दायीं हथेली का स्पर्श करते हुए 90^0 का कोण बनने पर सुवर्ण चक्र मुद्रा बनती है।[6]

सुपरिणाम

• सुवर्ण मुद्रा की साधना पृथ्वी तत्त्व को संतुलित करते हुए शरीर को शक्तिशाली एवं ऊर्जायुक्त बनाती है। यह जड़ता, भारीपन, दुर्बलता का नाश करती है और मन में दया, कोमलता एवं साहस आदि भावों का निर्माण करती है। • मूलाधार चक्र को जागृत करते हुए यह शारीरिक एवं मानसिक आरोग्य,

बौद्धिक दक्षता, कार्य कौशलता, ओजस्विता आदि का विकास करती है। • शक्ति केन्द्र को सक्रिय रखते हुए यह काम-वासनाओं पर नियंत्रण कर आध्यात्मिक शक्ति का ऊर्ध्वारोहण करती है। इसी के साथ व्यक्तित्व को उच्चता एवं तेजस्विता प्रदान करती है।

6. वज्र आलोक मुद्रा

यह मुद्रा बौद्ध परम्परा में अष्ट मंगल से सम्बन्धित सोलह आन्तरिक द्रव्य अर्पण की सूचक है। इस मुद्रा को ऐन्द्रिक सुखों की 16 देवियों में, विशेष रूप से वज्रायना देवी तारा की पूजा से सम्बन्धित माना गया है। यह संयुक्त मुद्रा छाती के स्तर पर धारण की जाती है। पूजा करते वक्त यह मन्त्र बोला जाता है– **'ओम् अह् वज्र आलोक हूम्।'** दोनों हाथों में प्रतिबिंब की भाँति मुद्रा बनती है।

विधि

हथेलियाँ स्वयं के सम्मुख, अंगुलियाँ हथेली की तरफ मुड़ी हुई, अंगूठा ऊपर की तरफ उठा हुआ रहे, फिर दोनों हाथों को समीप करने पर वज्र आलोक मुद्रा बनती है।[7]

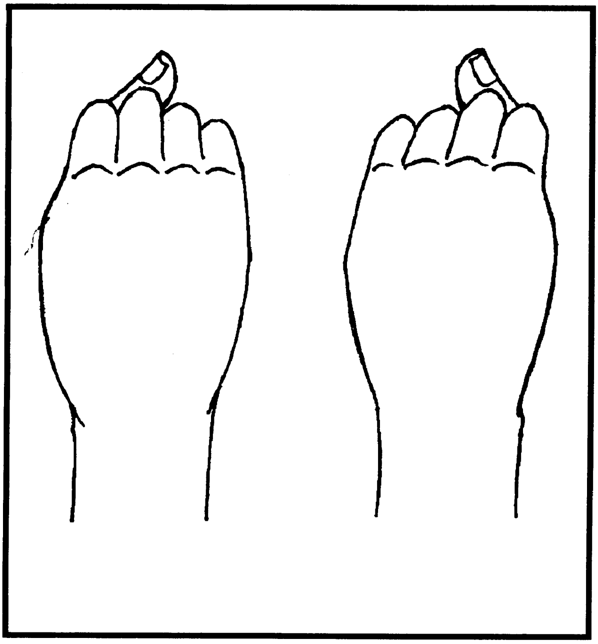

वज्र आलोक मुद्रा

सुपरिणाम

• यह अग्नि एवं जल तत्त्व को संतुलित करते हुए साधक में स्फूर्ति, जोश, उष्णता आदि का निर्माण करती है। • इस मुद्रा को करने से मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र प्रभावित होते हैं। इससे शरीर को विशेष शक्ति प्राप्त होती है तथा वचनसिद्धि भी मिलती है। यह मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस एवं पाचन सम्बन्धी विकृतियों को भी दूर करती है। • यह मुद्रा स्वास्थ्य केन्द्र एवं तैजस केन्द्र को प्रभावित करती हुई शरीर को एलर्जी से बचाती है, स्वर सुधारती है, व्यक्तित्व विकास करती है तथा आन्तरिक शारीरिक तन्त्रों को नियमित करती है।

7. वज्र दर्शे मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा बौद्ध परम्परा में धारण की जाती है। यह अष्ट मंगल से सन्दर्भित सोलह आंतरिक द्रव्य चढ़ाने की सूचक है। सोलह आन्तरिक भेंट रहस्यमयी और सोलह ऐन्द्रिक सुखों की देवियों से सम्बन्धित हैं। यह मुद्रा विशेष रूप से वज्रायना देवी तारा की पूजा के समय की जाती है। पूजा मन्त्र है– **'ओम् अह् वज्र दर्शे हुम्'**। इस मुद्रा को छाती के सम्मुख धारण करते हैं।

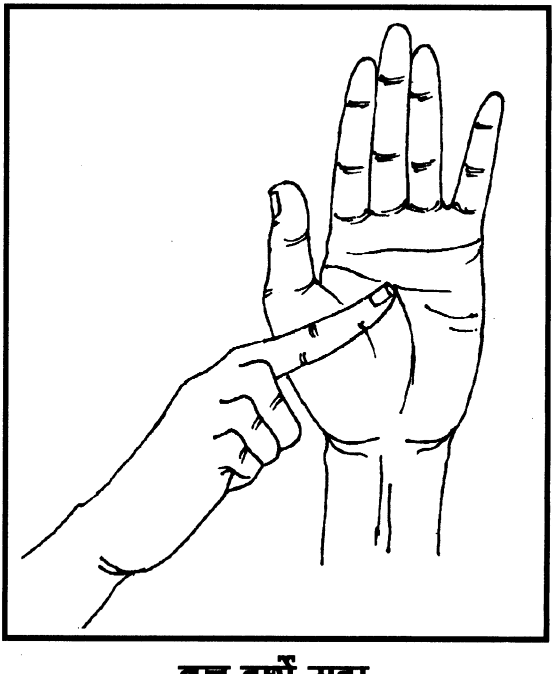

वज्र दर्शे मुद्रा

विधि

दायीं हथेली को नीचे की तरफ रखें, तर्जनी को मध्य भाग की ओर फैलायें तथा शेष अंगुलियों एवं अंगूठे को हथेली की तरफ मोड़ें। बायीं हथेली को मध्य भाग में रखते हुए अंगुलियों एवं अंगूठे को ऊपर की तरफ फैलाएँ। फिर दायीं तर्जनी का बायीं हथेली से स्पर्श करने पर वज्रदर्शे मुद्रा बनती है।[8]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा वायु एवं चेतन तत्त्व को सक्रिय करती है। इससे प्राण वायु स्थिर होती है। यह फेफड़ें, हृदय और गुर्दे सम्बन्धी रोगों का शमन कर चैतसिक अनुभूतियों को मजबूत करती है। • यह मुद्रा अनाहत एवं सहस्रार चक्र को प्रभावित करती है। इससे वक्तृत्व, कवित्व, इन्द्रिय निग्रह आदि का विकास होता है तथा संकल्प-विकल्प, संशय-विपर्यय आदि का उपशमन होता है। • यह मुद्रा थायमस और पिनियल ग्रंथि को प्रभावित करते हुए कामेच्छाओं पर नियन्त्रण, निर्णयात्मक शक्ति का विकास, आन्तरिक तंत्रिकाओं के संचालन आदि करने में सहायता प्रदान करती है।

8. वज्र धर्मे मुद्रा

यह मुद्रा बौद्ध परम्परा में धारण की जाती अष्ट मंगल के चिह्नों में से एक है और सोलह आंतिरक द्रव्य अर्पण करने की सूचक है। ये सोलह द्रव्य विषय सुख देने वाली 16 देवियों से सम्बन्धित हैं उनमें भी मुख्य वज्रायना देवी तारा की पूजा से सम्बन्धित है। यह संयुक्त मुद्रा छाती के स्तर पर की जाती है। इसमें दोनों हाथों में प्रतिबिंब की भाँति मुद्रा बनती है। इसका मंत्र है– **'ओम् अह् वज्र धर्मे हूम्।'**

विधि

हथेलियाँ मध्य भाग में हल्की सी नीचे की तरफ, तर्जनी हल्की सी ऊर्ध्व प्रसरित, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका हथेली की तरफ मुड़ी हुई, अंगूठे का अग्रभाग मध्यमा के अग्रभाग से स्पर्श करता हुआ, तर्जनी के प्रथम पोर परस्पर स्पर्श करते हुए तथा शेष अंगुलियों के द्वितीय पोर एक साथ रहने पर वज्रधर्मे मुद्रा बनती है।[9]

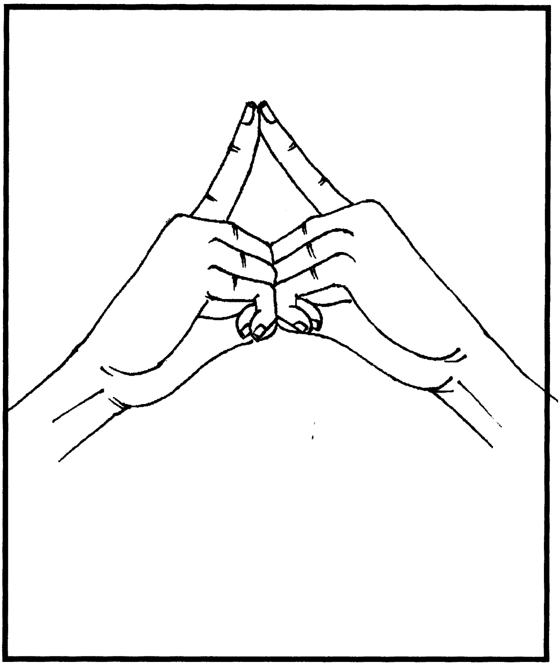

वज्र धर्मे मुद्रा

सुपरिणाम

• वज्रधर्मे मुद्रा करने से वायु एवं आकाश तत्त्व संतुलित होते हैं। इससे वायु सम्बन्धी रोगों जैसे वायुशूल, कुपित वायु, गठिया, साइटिका आदि रोगों का उपशमन होता है। • अनाहत एवं विशुद्धि चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा आन्तरिक ज्ञान को उजागर कर साधक को महाज्ञानी, वाक्पटु, निरोगी, शोकहीन एवं दीर्घजीवी बनाती है। • थायमस एवं थायरॉइड ग्रंथियों को सक्रिय करते हुए शरीर के सभी अंगों के सम्यक संचालन, आंतरिक तंत्रों के नियंत्रण, कोलेस्ट्रोल, कैल्शियम, आयोडिन आदि के वर्धन तथा प्रतिरोधात्मक शक्ति के विकास में सहायक बनती है।

9. वज्र धूपे मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा बौद्ध परम्परा में प्रवर्तित अष्ट मंगल के चिह्नों में से एक है और ऐन्द्रिक सुख अभिलाषिणी 16 देवियों को सोलह प्रकार की सामग्री चढ़ाने की सूचक है। उनमें भी यह मुद्रा मुख्य रूप से वज्रायना देवी तारा की पूजा से सम्बन्धित है। पूजा मन्त्र यह है– **'ओम् वज्र धूपे हूम्।'**

यह मुद्रा छाती के स्तर पर धारण की जाती है। दोनों हाथों में प्रतिबिंब की भाँति मुद्रा बनती है।

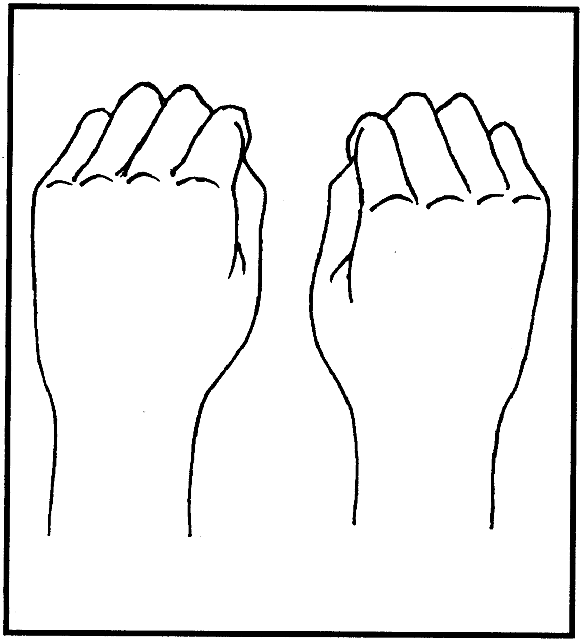

वज्र धूपे मुद्रा

विधि

हथेलियों को स्वयं के सम्मुख रखें, अंगुलियों एवं अंगूठों को मुट्ठी रूप में बांधें, अंगूठे को अंगुलियों के भीतर रखें तथा दोनों हाथों को समीप लाएं, इस भाँति वज्रधूपे मुद्रा बनती है।[10]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा की साधना आकाश एवं जल तत्त्व को प्रभावित करती है इससे वैभाविक दशाएँ जैसे काम, क्रोध, मोह आदि उपशान्त होते हैं। तरल पदार्थों का प्रवाह सम्यक होता है। हृदय सम्बन्धी रोगों का निर्गमन होता है। • यह मुद्रा करने से आज्ञा चक्र एवं स्वाधिष्ठान चक्र प्रभावित होते हैं। इससे बुद्धि एकाग्र एवं कुशाग्र बनती है, वचन सिद्धि प्राप्त होती है तथा स्वभाव एवं मन शांत बनता है। • दर्शन एवं स्वास्थ्य केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा कषायों पर नियंत्रण और निर्णय शक्ति का विकास करती है।

10. वज्र गंधे मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा मुख्य रूप से वज्रायना देवी तारा की पूजा के समय प्रयुक्त की जाती है। परम्परानुसार इस समय सोलह आन्तरिक द्रव्य चढ़ाये जाते हैं जिन्हें रहस्यमयी भेंट कहा गया है। पूजा मन्त्र यह है- **'ओम् अह् वज्र गंधे हूम्'** दोनों हाथों में समान मुद्रा बनती है।

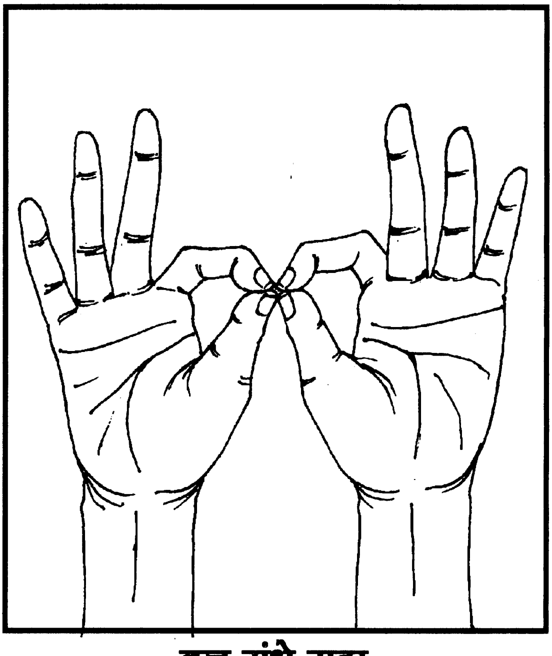

वज्र गंधे मुद्रा

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखते हुए अंगूठे और तर्जनी के अग्रभागों को स्पर्श करवायें, शेष अंगुलियों को ऊपर की ओर फैलायें तथा दोनों हाथों को अत्यन्त समीप लायें ताकि दोनों अंगूठें और दोनों तर्जनियाँ परस्पर मिल सकें, इस भाँति वज्र गंधे मुद्रा बनती है।[11]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा वायु एवं आकाश तत्त्व को प्रभावित करती है। इससे हृदय सम्बन्धी रोगों का निदान एवं अनहद भावों का विकास होता है। प्राण वायु स्थिर होती है। हृदय, गुर्दे और फेफड़े सम्बन्धी अनेक समस्याओं का उपचार होता है।

• यह मुद्रा विशुद्धि चक्र एवं ललाट मुद्रा पर प्रभाव डालती है। जिससे व्यक्ति महाज्ञानी, कवि, शान्तचित्त, निरोगी, शोकहीन एवं दीर्घजीवी होकर आन्तरिक अनुभूतियों का विकास करता है। • इस मुद्रा से विशुद्धि केन्द्र एवं ज्योति केन्द्र सक्रिय होते हैं। इससे जीवन में क्रोधादि कषायों पर नियंत्रण होता है।

11. वज्र गीते मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा बौद्ध परम्परा में धारण की जाती है। इस मुद्रा का प्रयोग करते समय अष्ट मंगल के साथ सोलह आंतरिक द्रव्य चढ़ाये जाते हैं। यह रहस्यमयी सामग्री विषय सुख की सोलह देवियों में से किसी एक को अर्पित की जाती है, यद्यपि उनमें वज्रायना देवी तारा की पूजा करने का भाव मुख्य रहता है। पूजा मन्त्र यह है- **'ओम् अह् वज्र गीते हूम्।'** दोनों हाथों में समान मुद्रा बनती है।

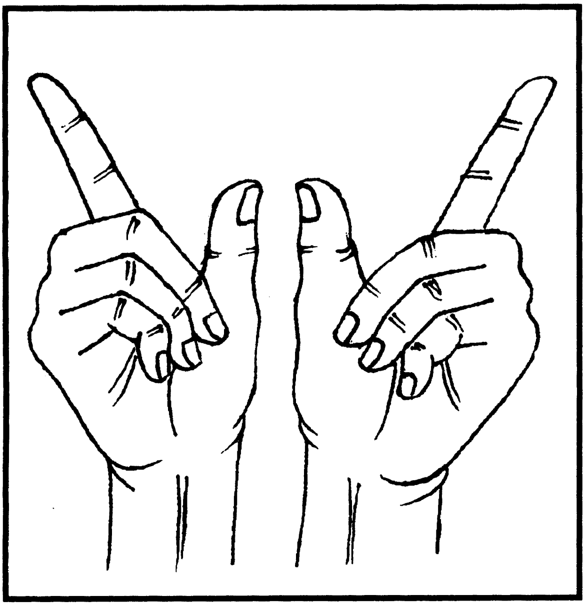

वज्र गीते मुद्रा

विधि

हथेलियाँ मध्यभाग में, तर्जनी ऊपर की ओर फैली हुई, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका हथेली की तरफ मुड़ी हुई रहें, फिर दोनों हाथों को समीप रखने पर वज्र गीते मुद्रा बनती है।[12]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व को प्रभावित करते हुए शरीर एवं नाड़ी की शुद्धि तथा हड्डियों, मांसपेशियों, तरल पदार्थों के प्रवाह को सम्यक करती है। हृदय को शक्तिशाली बनाती है। • मूलाधार एवं मणिपुर चक्र को जागृत करते हुए यह आरोग्य दक्षता, कर्म कौशल्य, ओजस्विता एवं शक्ति प्रदान करती है। यह मुद्रा मधुमेह, अपच, गैस एवं पाचन सम्बन्धी विकृतियों को भी दूर करती है। • एड्रिनल एवं गोनाड्स ग्रंथियों को सक्रिय करते हुए यह संचार व्यवस्था, श्वसन एवं रक्त संचरण आदि के कार्यों को सम्यक एवं सुचारू बनाती है तथा काम-शक्ति में होने वाले ऊर्जाशक्ति के व्यय को कम कर व्यक्तित्व विकास एवं विधेयात्मक विचारशैली के निर्माण में सहयोग करती है।

12. वज्र हास्ये मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा मुख्य रूप से वज्रायना देवी तारा की पूजा से सम्बन्धित है। इस मुद्रा का प्रयोग करते हुए ऐन्द्रिक सुख की प्रतीक 16 देवियों में से किसी

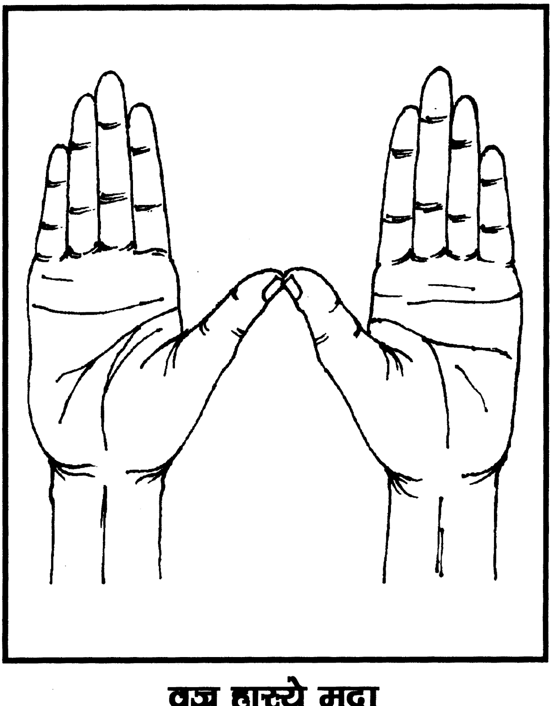

वज्र हास्ये मुद्रा

एक को अष्टमंगल और सोलह आंतरिक द्रव्य चढ़ाये जाते हैं उनमें भी मुख्य भाव देवी तारा से जुड़ा रहता है। पूजा करते वक्त यह मन्त्र बोलते हैं-

'ओम् अह् वज्र हस्ये हुम्।'

दोनों हाथों में समान मुद्रा होती है। इसे छाती के सामने धारण करते हैं।

विधि

हथेलियों को सामने की तरफ रखते हुए अंगुलियों और अंगूठों को उर्ध्व प्रसरित करें तथा दोनों अंगूठों के अग्रभागों को संयुक्त करने पर वज्र हास्ये मुद्रा बनती है।[13]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं जल तत्त्व को प्रभावित करती है। इनका संयोग होने से मूत्र दोष, पित्त सम्बन्धी दोष, रक्त विकार, अस्थि, त्वचा आदि से सम्बन्धित रोगों का परिहार होता है। • इस मुद्रा का प्रभाव मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान पर होता है जिससे बाह्य एवं आन्तरिक शक्ति में वर्धन, वचनसिद्धि, वाणी की मधुरता, उदर एवं पाचन सम्बन्धी विकृतियों में राहत मिलती है। • स्वास्थ्य एवं तैजस केन्द्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा तनाव, सिरदर्द, रक्तचाप, कमजोरी, अपच आदि का उपशमन, व्यक्तित्व निर्माण एवं शारीरिक स्वस्थता में सहायक बनती है।

13. वज्र लास्ये मुद्रा

इस मुद्रा का सम्बन्ध मुख्यत: वज्रायना देवी तारा से है। यह मुद्रा दिखाते हुए 16 देवियों में से किसी एक देवी को सोलह आंतरिक द्रव्य और अष्टमंगल अर्पण किये जाते हैं, किन्तु मुख्य भाव देवी तारा की पूजाराधना का रहता है। पूजा करते वक्त निम्न मन्त्र पढ़ते हैं-

'ओम् अह् वज्र लास्ये हुम्।' दोनों हाथों में समान मुद्रा की जाती है।

यह मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में धर्मगुरुओं एवं श्रद्धालुओं के द्वारा गर्भधातुमण्डल, वज्रधातुमण्डल, होम आदि क्रियाओं के समय भी धारण की जाती है।

विधि

हथेलियों को स्वयं के सम्मुख रखते हुए अंगुलियों एवं अंगूठों को ऊपर की तरफ फैलाएँ, फिर दोनों को समीप करने पर वज्र लास्ये मुद्रा बनती है।[14]

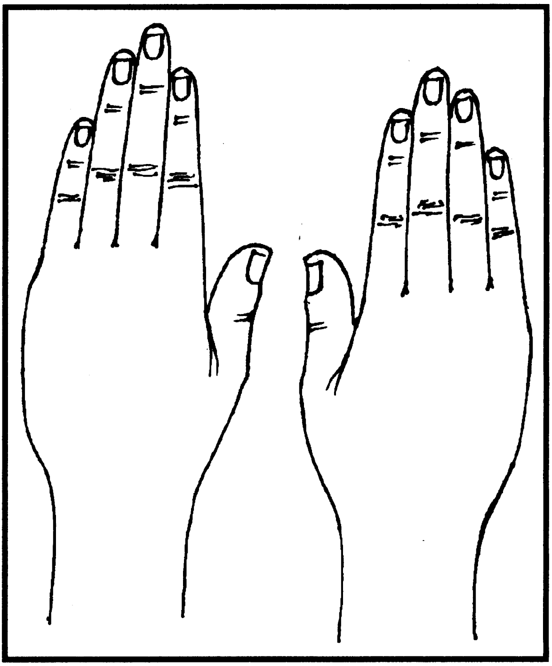

वज्र लास्ये मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व को संतुलित करती है जिससे शारीरिक दुर्बलता, मोटापा, रूखापन, आलस्य आदि का निवारण होता है और कोमलता आदि गुणों का विकास होता है। • इस मुद्रा को करने से मूलाधार एवं मणिपुर चक्र जागृत होते हैं जिसके प्रभाव से डायबिटीज, अपच, गैस एवं पाचन सम्बन्धी विकृतियों में शांति मिलती है। • यह मुद्रा शक्ति केन्द्र एवं तैजस केन्द्र को जागरूक एवं काम-इच्छाओं का उपशमन कर ब्रह्म तेज में वृद्धि करती है और रोग प्रतिरोधक शक्ति का विकास करती है।

14. वज्र मृदंगे मुद्रा

बौद्ध परम्परा में प्रचलित यह मुद्रा वज्रायना देवी तारा की पूजा करने के उद्देश्य से की जाती है। इस आराधना के समय विषय सुख की प्रतिमूर्ति 16 देवियों में से किसी एक के सामने अष्टमंगल के साथ सोलह रहस्यमयी द्रव्य चढ़ाये जाते हैं उनमें उपासक की भावना देवी तारा से जुड़ी रहती है। इस समय मन्त्र भी बोला जाता है वह यह है...

'ओम् अह् वज्र मृदंग हुम्।' इस मुद्रा को छाती के स्तर पर करते हैं।

विधि

दायीं हथेली बाहर की तरफ, तर्जनी और मध्यमा ऊपर की तरफ फैली हुई, अनामिका और कनिष्ठिका हथेली में मुड़ी हुई और अंगूठे का प्रथम पोर अनामिका के प्रथम पोर से स्पर्शित रहें।

बायीं हथेली अन्दर की तरफ, तर्जनी मध्यभाग की तरफ फैली हुई, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका हथेली में मुड़ी हुई तथा अंगूठे का प्रथम

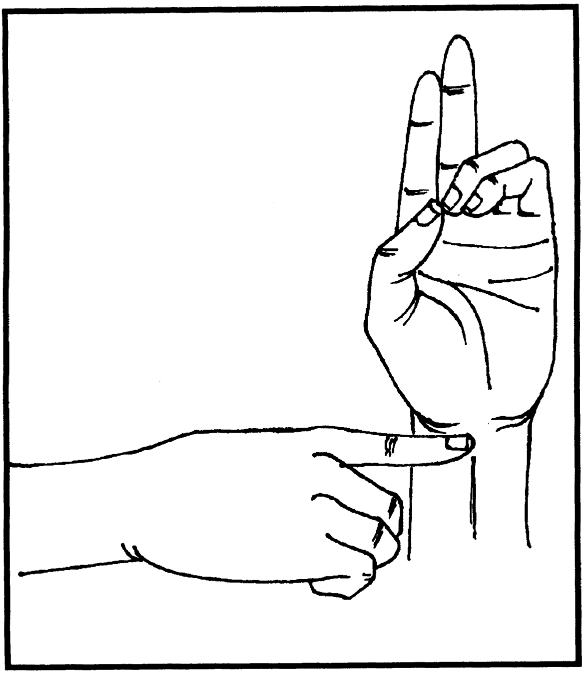

वज्र मृदंगे मुद्रा

पोर मध्यमा और अनामिका के प्रथम पोर को स्पर्श करता हुआ रहे, बायीं तर्जनी दायीं हथेली की तरफ निकट में रहे। इस भाँति वज्र मृदंगे मुद्रा बनती है।[15]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा करने से अग्नि, जल एवं आकाश तत्त्व संतुलित होते हैं। इनके संयोग से शरीर में हल्कापन, रक्त परिसंचरण एवं पाचन सम्बन्धी विकृतियाँ दूर होती है। • इस मुद्रा का प्रभाव मणिपुर, स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र पर पड़ता है। इससे यह मुद्रा बौद्धिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं शारीरिक विकास में सहायक बनती है। • इस मुद्रा की साधना से गोनाड्स, एड्रिनल एवं पिच्युटरी ग्रंथियों पर असर होता है जो कि समस्त आन्तरिक संचार तंत्रों को मजबूत बनाता है। इससे निर्णय शक्ति का विकास होता है तथा व्यक्ति साहसी, आशावादी एवं स्थिर स्वभावी बनता है।

15. वज्र मुरजे मुद्रा

यह तान्त्रिक परम्परा की मुद्रा बौद्ध अनुयायियों द्वारा धारण की जाती है। इस मुद्रा का प्रयोग करते हुए 16 देवियों में से किसी एक देवी के सामने अष्टमंगल के साथ सोलह आंतरिक द्रव्य समर्पित किये जाते हैं, किन्तु विशिष्ट भाव देवी तारा को प्रसन्न करने का रहता है। पूजा मन्त्र यह है– **'ओम् अह् वज्र मुरजे हुम्।'**

दोनों हाथों में समान मुद्रा की जाती है।

विधि

हथेलियाँ बाहर की तरफ, तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका नीचे की तरफ फैली हुई, अनामिका हथेली में मुड़ी हुई, अंगूठे का प्रथम पोर अनामिका के प्रथम पोर को स्पर्श करता हुआ रहे। फिर दोनों हाथों को निकट करने पर वज्र मुरजे मुद्रा बनती है।[16]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा शरीरगत अग्नि तत्त्व को प्रभावित करती है। इसकी साधना से शरीर हल्का एवं सक्रिय रहता है। • मणिपुर चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा आध्यात्मिक एवं भौतिक विकास में सहयोगी बनती है। मधुमेह, कब्ज एवं

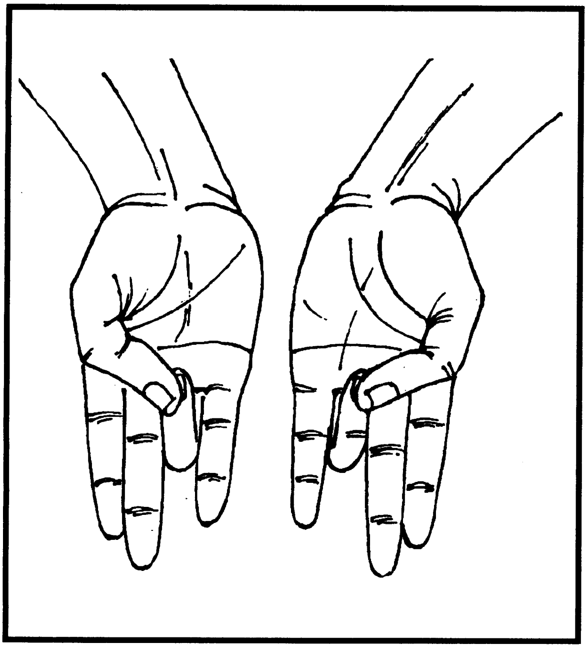

वज्र मुरजे मुद्रा

पाचन तंत्र सम्बन्धी विकृतियों को दूर करती है। • तैजस चक्र को सक्रिय रखते हुए यह मुद्रा तनाव मुक्त, आशावादी, विधेयात्मक, साहसी, निडर व्यक्तित्व का निर्माण करती है।

16. वज्र नृत्ये मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा बौद्ध परम्परा में मुख्य रूप से देवी तारा की आराधना से सम्बन्धित है। पूर्ववत देवी तारा के साथ-साथ विषय सुख की 16 देवियों की पूजा करते समय भी यह मुद्रा दिखायी जाती है और उनके समक्ष अष्टमंगल और सोलह रहस्य भरे द्रव्य चढ़ाये जाते हैं। पूजा मन्त्र निम्न है– **'ओम् अह् वज्र नृत्ये हुम्।'**

दोनों हाथों में समान मुद्रा होने पर भी उन्हें रखने की स्थिति भिन्न होती है।

विधि

दोनों हाथों की तर्जनी और मध्यमा बाहर की तरफ फैली हुई और हल्की सी ऊपर उठी हुई रहें, अनामिका और कनिष्ठिका हथेली में मुड़ी हुई रहें,

अंगूठा उन दोनों का स्पर्श करता हुआ रहे। तदनन्तर बायीं हथेली को ऊर्ध्वमुख रखते हुए तथा दायीं हथेली को अधोमुख करके उसे बायीं हथेली के ऊपर रखने पर वज्र नृत्ये मुद्रा बनती है।[17]

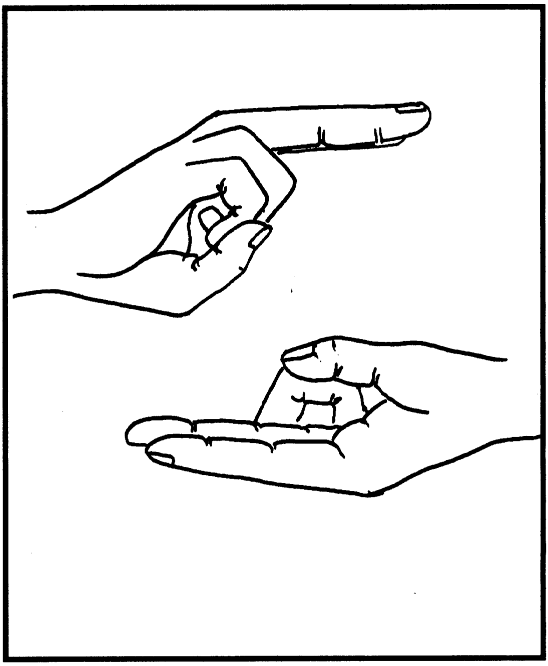

वज्र नृत्ये मुद्रा

सुपरिणाम

• वज्र नृत्ये मुद्रा को धारण करने से अनाहत, मणिपुर एवं सहस्रार चक्र प्रभावित होते हैं। यह शरीरस्थ रक्त विकार, हृदय विकार, पाचन विकार आदि को दूर कर दैहिक स्वस्थता एवं मानसिक शांति प्रदान करती है। यह मुद्रा सद्भाव एवं सद्विचारों का वर्धन करते हुए आध्यात्मिक उन्नति में भी सहायक बनती है। • इस मुद्रा का प्रयोग वायु, अग्नि एवं आकाश तत्त्व को नियंत्रित एवं संतुलित करता है। इनके संतुलन से सभी अंग सक्रिय रहते हैं, शरीरस्थ तापमान संतुलित रहता है तथा नि:स्वार्थ भाव का पोषण होता है। • आनंद, ज्ञान एवं तैजस केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा कामेच्छाओं को नियंत्रित रखती है, कषाय भाव का दमन करती है और भावधारा को निर्मल एवं परिष्कृत करती है।

17. वज्र रास्ये मुद्रा

यह मुद्रा बौद्ध परम्परा की विशिष्ट मुद्राओं में से एक है। इस मुद्रा का प्रयोग अष्टमंगल अर्पित करने एवं सोलह देवियों में प्रमुख वज्रायना देवी तारा की आराधना करने के प्रयोजन से किया जाता है। शेष वर्णन पूर्ववत। पूजा मन्त्र निम्न है- **'ओम् अह् वज्र रास्ये हुम्।'**

दोनों हाथों में प्रतिबिम्ब की भाँति मुद्रा बनती है।

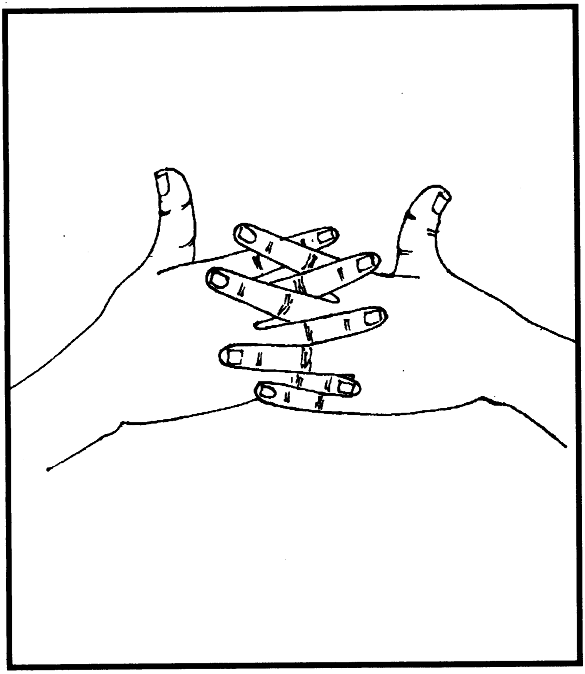

वज्र रास्ये मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को स्वयं के सम्मुख रखते हुए अंगुलियों को परस्पर इस तरह अन्तर्ग्रथित करें कि बायें हाथ की अंगुलियाँ दायें पर रहें तथा अंगूठा ऊपर की तरफ सीधा रहने पर वज्र रास्ये मुद्रा बनती है।[18]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से जल एवं आकाश तत्त्व प्रभावित होते हैं। इनके संतुलन एवं संयोग से हृदय में रक्त आपूर्ति सम्बन्धी विकृतियाँ दूर होती है। • स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा पिनियल एवं

पीयूष ग्रंथि को सक्रिय करती है तथा बुद्धि को कुशाग्र, दिमाग को शान्त एवं वाणी को प्रभावी बनाती है। • यह मुद्रा पिच्युटरी एवं गोनाड्स (काम ग्रन्थियों) को सक्रिय करती है जिससे शरीर के आन्तरिक क्रिया कलापों पर सम्यक प्रभाव पड़ता है। यह इच्छा एवं वासनाओं पर नियंत्रण कर शक्ति का ऊर्ध्वारोहण करती है।

18. वज्र पुष्पे मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा अष्ट मंगल चढ़ाने एवं वज्रायना देवी तारा की पूजा करने से सम्बन्धित है। पूर्ववत इस मुद्रा को प्रदर्शित करते हुए विषय सुख की प्रतीक सोलह देवियों में से किसी एक देवी के समक्ष सोलह आन्तरिक द्रव्य चढ़ाये जाते हैं। उस समय पूजा सिद्धि हेतु मन्त्रोच्चार भी किया जाता है। वह निम्न है–

'ओम् अह् वज्रपुष्पे हुम्।'

दोनों हाथों में प्रतिबिम्ब की भाँति मुद्रा बनती है। यह मुद्रा छाती के सामने धारण करते हैं।

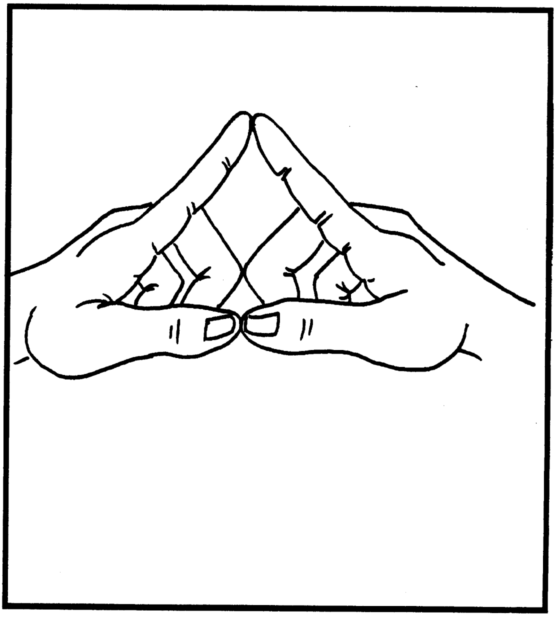

वज्र पुष्पे मुद्रा

विधि

हथेलियाँ मध्यभाग की तरफ हल्की सी ऊपर उठी हुई रहें, अंगूठा और तर्जनी नीचे की ओर प्रसरित रहें, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका हथेली की तरफ मुड़ी हुई रहें, फिर दोनों हाथों को इस तरह मिलाया जायें कि अंगूठें और तर्जनी के अग्रभाग तथा मध्यमा का दूसरा जोड़ अपने प्रतिरूप का स्पर्श कर सकें, इस विधिपूर्वक वज्र पुष्पे मुद्रा बनती है।[19]

लाभ

• वज्र पुष्पे मुद्रा के नियमित प्रयोग से मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र के कार्य संतुलित रहते हैं। यह मुद्रा शरीर की कांति एवं तेज में वृद्धि करते हुए त्वचा विकार, नेत्र विकार, मूत्र प्रदेश के विकार को दूर करती है। इससे प्रजनन सम्बन्धी समस्याओं का भी निवारण होता है। • यह मुद्रा पृथ्वी एवं जल तत्त्व का नियमन करते हुए स्थूलता, आलस्य एवं स्वार्थवृत्ति का निवारण करती है। इससे शरीर को स्वस्थता प्राप्त होती है। • इस मुद्रा को धारण करने से शक्ति केन्द्र एवं स्वास्थ्य केन्द्र प्रभावित होते हैं। यह कुण्डलिनी जागरण में सहायक बनते हुए आध्यात्मिक, व्यावहारिक एवं शारीरिक विकास में सहायता प्रदान करती है।

19. वज्र स्पर्शे मुद्रा

बौद्ध परम्परा की पूजा-उपासना में प्रचलित यह मुद्रा अष्ट मंगल एवं सोलह आन्तरिक द्रव्य चढ़ाने के समय की जाती है। इस मुद्रा का प्रधान लक्ष्य वज्रायना देवी तारा की उपासना एवं भक्त की मनोकामना पूर्ति है। यह मुद्रा मन्त्रोच्चार के साथ की जाती है। मन्त्र निम्न है– **'ओम् अह् वज्र स्पर्शे हुम्।'**

दोनों हाथों में प्रतिबिम्ब की भाँति समान मुद्रा होती है।

विधि

हथेलियों को मध्यभाग के सम्मुख रखें, मध्यमा और अंगूठें के अग्रभाग को मिलायें, शेष अंगुलियों को ऊपर की तरफ फैलायें, तदनन्तर दोनों हाथों को इतना निकट लायें कि दोनों अंगूठे और दोनों तर्जनी परस्पर मिल सकें, इस तरह वज्र स्पर्शे मुद्रा बनती है।[20]

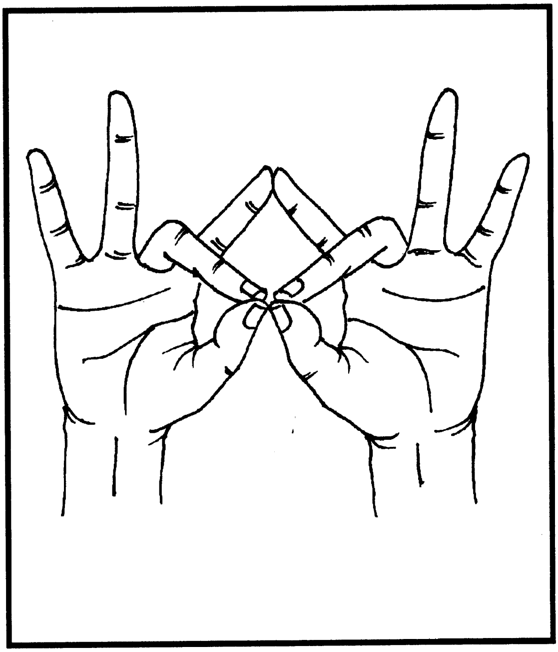

वज्र स्पर्शो मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व को संतुलित रखते हुए हड्डी, मांसपेशी आदि ठोस तत्त्वों को मजबूत करती है तथा शारीरिक दुर्बलता, मोटापा, अपच, क्रोध आदि को नियंत्रित रखती है। • यह मुद्रा मूलाधार एवं मणिपुर चक्र को प्रभावित करती है। इससे शरीर को आरोग्य, दक्षता, कुशलता, ओजस्विता की प्राप्ति एवं पाचन सम्बन्धी विकृतियाँ दूर होती है। • एड्रिनल एवं गोनाड्स ग्रंथियों को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा संचार व्यवस्था, हलन चलन, श्वसन प्रणाली, रक्त परिसंचरण आदि को नियमित करती है। यह शरीर को एलर्जी से भी बचाती है एवं कामेच्छाओं पर नियंत्रण भी करती है।

20. वज्र वंशे मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा पूर्ववत बौद्ध परम्परा में वज्रायना देवी तारा की आराधना से सम्बन्धित है। इस मुद्रा के माध्यम से 16 देवियों के सामने मुख्यतः देवी तारा के सामने अष्टमंगल एवं गोपनीय सामग्रियाँ चढ़ाई जाती है। इससे पूजा के

अतिशय में वृद्धि होती है तथा उपासक की मनोवांछाएँ पूर्ण होती है। इस मुद्रा के साथ यह मन्त्र उच्चारित होता है–

'ओम् अह् वज्र वंशे हुम्' यह मुद्रा छाती के सामने धारण की जाती है।

विधि

दायीं हथेली स्वयं की तरफ, अंगुलियाँ मध्यभाग की ओर फैली हुई तथा बायीं हथेली के नीचे रहें। बायीं हथेली भी स्वयं की तरफ, अंगुलियाँ मध्यभाग की तरफ प्रसरित रहें। इस भाँति वज्रवंशे मुद्रा बनती है।[21]

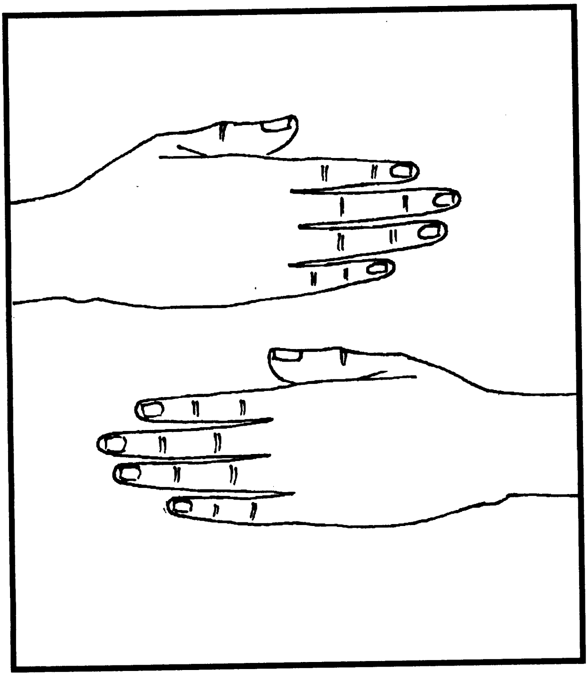

वज्र वंशे मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि तत्त्व को संतुलित करते हुए स्वभाव को सौम्य बनाती है तथा पाचन तंत्र सम्बन्धी विकारों को दूर करती है। • इस मुद्रा के प्रयोग से मणिपुर चक्र प्रभावित होता है जिससे शक्ति एवं ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण होता है। यह मधुमेह, कब्ज, अपच आदि रोगों का उपशमन भी करती है। • तैजस केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा शारीरिक एवं आत्मिक कान्ति में अभिवृद्धि तथा प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करती है।

21. वज्र वीने मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा बौद्ध परम्परा में स्वीकृत एवं देवी तारा की उपासना से सम्बन्धित है। विषय सुख की सोलह देवियों, मुख्य रूप से वज्रायना देवी तारा को प्रसन्न करने एवं उनकी कृपा पाने के प्रयोजन से यह मुद्रा की जाती है। इस मुद्रा के प्रभुत्व को पाने के लिए उस समय अष्टमंगल एवं आन्तरिक द्रव्य चढ़ाये जाते हैं। पूजा मन्त्र का उच्चारण भी किया जाता है–

'ओम् अह् वज्र वीने हुम्।'

यह मुद्रा छाती के सामने धारण करते हैं।

विधि

दायीं हथेली को अधोमुख रखते हुए अंगुलियों को भीतर मोड़ें और अंगूठे को मध्य भाग की तरफ फैलायें। बायीं हथेली को ऊर्ध्वमुख करते हुए अंगुलियों को भीतर मोड़ें और अंगूठे को बायीं तरफ फैलायें। तत्पश्चात दायें अंगूठे के प्रथम पोर को बायीं मुट्ठी के अन्दर करने पर वज्र वीने मुद्रा बनती है।[22]

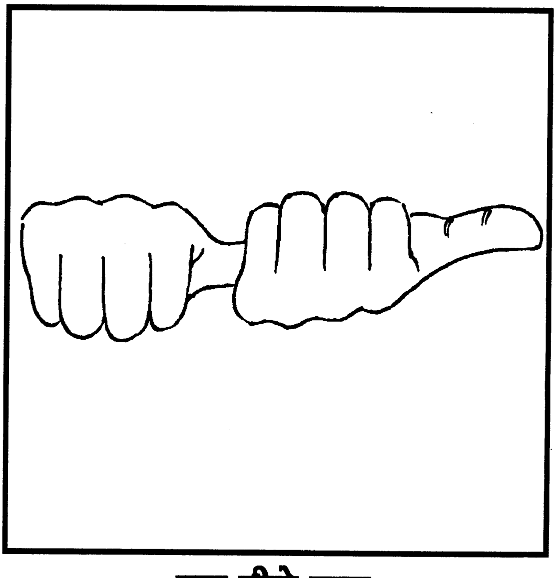

वज्र वीने मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा वायु तत्त्व को प्रभावित करती है जिससे प्राणवायु स्थिर बनती है तथा फेफड़ें, हृदय एवं गुर्दे सम्बन्धी रोगों का शमन होता है। • यह

मुद्रा अनाहत एवं विशुद्धि चक्र को जागृत करते हुए साधक को महाज्ञानी, कवित्व-वक्तृत्व आदि का विकास कर शान्तचित्त बनाती है। • थायरॉइड एवं थायमस ग्रंथियों को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा शारीरिक अंगों का सम्यक संचालन, कैलशियम, आयोडीन एवं कोलेस्ट्रोल को नियंत्रित करती है।

22. कनक मत्स्य मुद्रा

बौद्ध परम्परा की यह मुद्रा अष्टमंगल में से एक है और स्वर्ण मछली की सूचक है। वज्रायना देवी तारा की पूजोपासना करते वक्त अष्टविध बाह्य द्रव्य चढ़ाये जाते हैं उनमें से भी यह एक है। अन्य सात के नाम हैं- गांठ, चक्र, कमल, विजय पताका, छत्र, खजाने का गमला और शंख।

इसमें दोनों हाथ में समान मुद्रा प्रतिबिंब के रूप में होती है। इसका मन्त्र है- **'ओम् कनक मत्स्य-प्रतिच्छा स्वाहा।'**

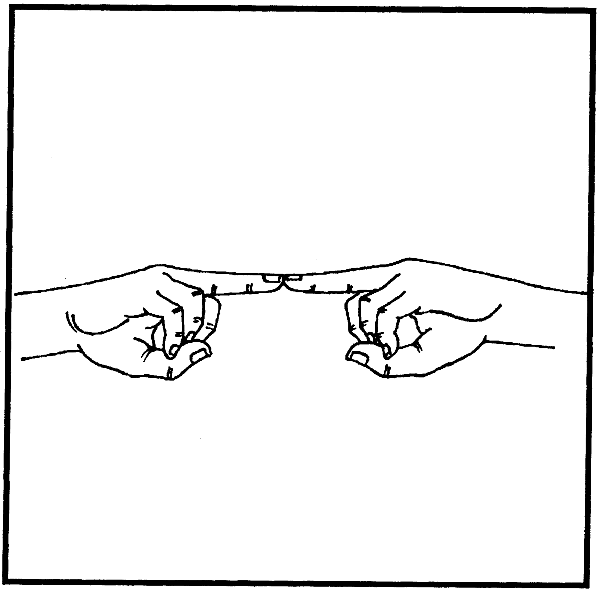

कनक मत्स्ये मुद्रा

विधि

हथेलियों को नीचे की तरफ करते हुए उसकी ढ़ीली मुट्ठी बांधें तथा दोनों मध्यमाओं को मध्य भाग की ओर बढ़ाते हुए परस्पर में अग्रभागों का स्पर्श करवाने पर कनक मत्स्य मुद्रा बनती है।[23]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से अग्नि एवं जल तत्त्व संतुलित होते हैं। इनके संयोग से पित्त से उभरने वाली बीमारियाँ, मूत्र दोष, पाचन-तंत्र सम्बन्धी विकृतियाँ दूर होती है। • यह मुद्रा मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करती है जिससे आंतरिक एवं बाह्य जगत की शक्तियों का ऊर्ध्वारोहण होता है। वाणी में सिद्धि प्राप्त होती है तथा कब्ज, अपच गैस आदि रोग दूर होते हैं। • एड्रिनल एवं कामग्रन्थियों को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा श्वसन प्रणाली, रक्त प्रणाली आदि को सशक्त करती है। स्वर सुधारने एवं व्यक्तित्व निर्माण में भी यह सहयोग करती है।

23. कुण्ड ध्वज मुद्रा

इस मुद्रा का उपयोग वज्रायना देवी तारा की पूजा में किया जाता है। यह ध्वज मुद्रा विजय पताका की प्रतीक है। इसे छाती के स्तर पर धारण करते हैं।

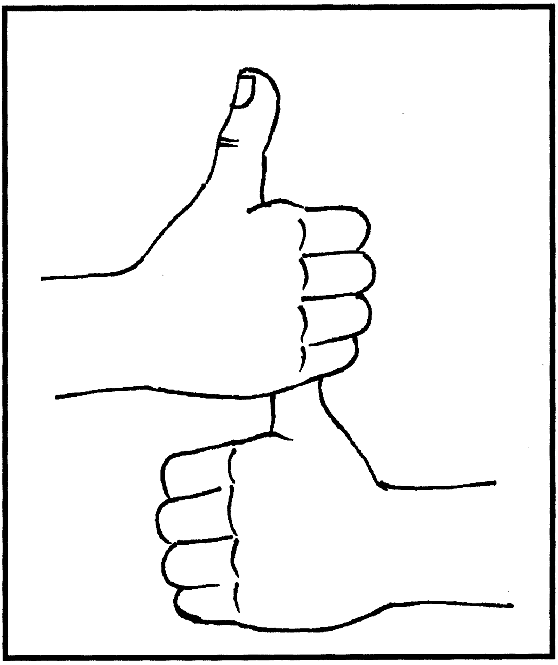

कुण्ड ध्वज मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को स्वयं के अभिमुख करते हुए मुट्ठी रूप में बांधें, अंगूठे ऊपर की तरफ रहें, दायां हाथ बायें के ऊर्ध्व भाग में रहे तथा बायें हाथ के अंगूठे का प्रथम पोर दायें हाथ की मुट्ठी में आबद्ध रहे, इस तरह कुण्डध्वज मुद्रा बनती है।[24]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं वायु तत्त्व का संतुलन करती है। इससे वायु सम्बन्धी दोषों का शमन तथा रक्त, वीर्य, लसिका, मूत्र आदि से सम्बन्धित दोषों का परिहार होता है। • स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा निरोगी शरीर एवं दीर्घ जीवन में कारणभूत बनती है। • स्वास्थ्य केन्द्र एवं विशुद्धि केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा जीवन को उदात्त एवं निर्मल बनाती है तथा कान्ति एवं तेज को बढ़ाती है।

24. शंखावर्त्त मुद्रा

जापानी बौद्ध वर्ग में प्रचलित एवं वज्रायना देवी तारा की पूजा से सम्बन्धित यह मुद्रा अष्ट मांगलिक चिह्नों में से एक है। इसे छाती के स्तर पर धारण करते हैं। इसका मन्त्र है– **'ओम् शंखवर्त्त प्रतिच्छा स्वाहा।'** शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दायीं हथेली को मध्यभाग में रखें, अंगुलियों को नीचे की तरफ फैलायें, अंगूठे को ऊपर की तरफ रखें। बायीं हथेली को भी मध्यभाग में रखते हुए मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को नीचे की तरफ फैलायें, तर्जनी हथेली की तरफ मुड़ी हुई, अंगूठा ऊपर उठा हुआ एवं प्रतिपक्ष अंगूठे को स्पर्श करता हुआ तथा अधोमुख अंगुलियों के अग्रभाग भी परस्पर स्पर्श करते हुए रहें, तब शंखावर्त्त मुद्रा बनती है।[25]

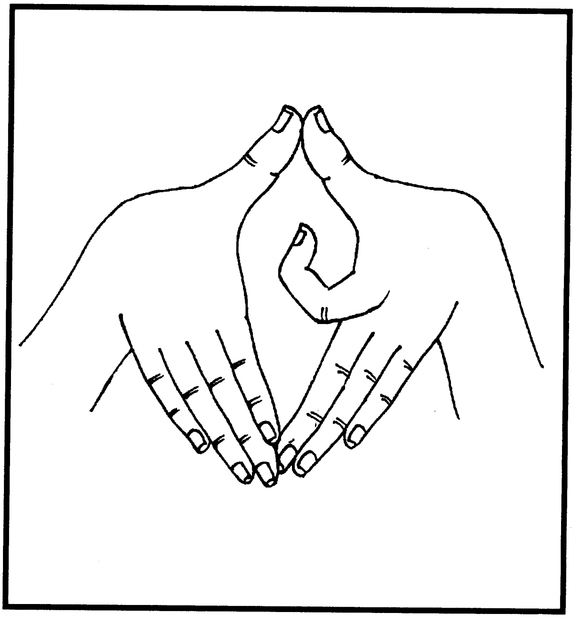

शंखावर्त्त मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा करने से अग्नि तत्त्व संतुलित होता है जिससे उदराग्नि प्रदीप्त होकर निद्रा सम्बन्धी समस्याएँ दूर होती है। क्रोध आदि कषाय भी शान्त होते हैं। • मणिपुर चक्र को जागृत कर यह मुद्रा पाचन सम्बन्धी विकृतियों का शमन एवं शारीरिक बल में वृद्धि करती है। • इस मुद्रा से एड्रिनल एवं पेन्क्रियाज का स्राव संतुलित होता है।

हर व्यक्ति जीवन में शुभ और मंगल की अभिलाषा करता है एवं तदहेतु प्रयासरत भी रहता है। तीर्थंकर आदि अतिशययुक्त महापुरुषों के लिए प्रकृति की हर वस्तु मंगलरूप हो जाती है। फिर भी अधिकांश परम्पराओं में आठ मांगलिक द्रव्यों की व्याख्या की गई है। बौद्ध परम्परा में भगवान बुद्ध के चरणों में आठ मांगलिक चिह्न होने की मान्यता है, उसी की स्मृति में एवं उन गुणों को प्राप्त करने हेतु तारा देवी के समक्ष तत्सम्बन्धी मुद्राएँ की जाती है। यह मुद्राएँ आध्यात्मिक समृद्धि के साथ शारीरिक स्वस्थता एवं जीवन में कल्याण की शृंखला को बनाए रखता है। यह मुद्रा इन्द्रिय एवं अतिन्द्रिय सुखों की उपलब्धि करवाएँ इसी उद्देश्य से इन मुद्राओं का उल्लेख यहाँ किया है।

सन्दर्भ-सूची

1. *बुद्धिजम एण्ड लामाइज्म ऑफ तिब्बत, ओस्टाईन वूडेल, पृ. 392-93*
2. *SBE द कल्ट ऑफ तारा मेज़िक एण्ड रिचवल इन तिब्बत, स्टीफन बेयर, पृ. 152*
3. *वही, पृ. 155*
4. *वही, पृ. 155*
5. *वही, पृ. 155*
6. *वही, पृ. 155*
7. *वही, पृ. 160*
8. *वही, पृ. 161*
9. *वही, पृ. 161*
10. *वही, पृ. 161*
11. *वही, पृ. 161*
12. *वही, पृ. 160*
13. *वही, पृ. 160*
14. *(क) SBE, पृ. 160*
    (ख) GDE, पृ. 60
    (ग) LCS, पृ. 88
15. *SBE, पृ. 160*
16. *वही, पृ., 160*
17. *वही, पृ., 160*
18. *वही, पृ., 161*
19. *वही, पृ., 161*
20. *वही, पृ., 161*
21. *वही, पृ., 160*
22. *वही, पृ., 160*
23. *वही, पृ., 155*
24. *वही, पृ., 155*
25. *वही, पृ., 155*

●

अध्याय-5

अठारह कर्त्तव्य सम्बन्धी मुद्राओं का सविधि विश्लेषण

कर्त्तव्यों का पालन हर क्षेत्र में आवश्यक है। बौद्ध पूजा उपासना के सम्बन्ध में अठारह कर्त्तव्यों की चर्चा मिलती है। इन कर्त्तव्यों के निर्देशन के रूप में ग्यारह मुद्राओं का वर्णन मिलता है। इन मुद्राओं का मुख्य उद्देश्य कर्त्तव्यों के प्रति जागृति लाना है। इन मुद्राओं का स्वरूप इस प्रकार है-

1. बुत्सु बु-सम्मय-इन् मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में धर्म गुरुओं और भक्तों द्वारा धारण की जाती है। इन मुद्राओं को अठारह कर्त्तव्यों के समय मंत्रोच्चार पूर्वक

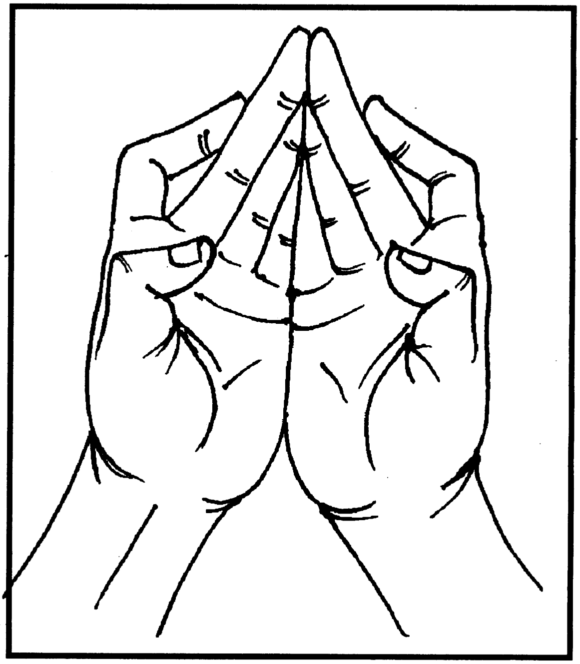

बुत्सु बु-सम्मय-इन् मुद्रा

करते हैं। इस मुद्रा को बुद्धों के समूह का सूचक माना गया है। यह मुद्रा दोनों हाथों से की जाती है।

विधि

दोनों हथेलियों की बाह्य किनारियों को मिलाते हुए कनिष्ठिकाओं की किनारियों को मिलायें, फिर मध्यमा और अनामिका के अग्रभाग का स्पर्श करवायें, फिर तर्जनियों को मोड़ते हुए मध्यमा के पृष्ठ भाग के दूसरे पोर से स्पर्श करवायें, फिर अंगूठों को मोड़ते हुए उन्हें तर्जनी के नीचे के भाग से स्पर्शित करवाने पर उपरोक्त मुद्रा बनती है।[1]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा शरीर में अग्नि तत्त्व को प्रभावित करती है। इससे प्रमाद, आलस्य, अनिद्रा, अतिनिद्रा आदि दूर होते हैं। • मणिपुर चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा आन्तरिक एवं बाह्य शक्ति प्रदान करती है। इससे पाचन अग्नि दिप्त होती है और उदर एवं पाचन सम्बन्धी रोगों का नाश होता है। • एड्रिनल ग्रंथि को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा उसके स्राव को संतुलित करती है। इससे आन्तरिक एवं शारीरिक संरचना सम्यक बनती है तथा सिरदर्द, कमजोरी, अपच, तनाव आदि में राहत मिलती है।

2. चतुर दिग् बंध मुद्रा

भारत में इस मुद्रा को वज्रवलि मुद्रा भी कहते हैं। जापान में इस मुद्रा का नाम 'कोंगो-चो-इन्' है। यहाँ चतुर दिग् बंध का अर्थ वज्र की दीवार या बांध है।

यह मुद्रा जापानी बौद्ध परंपरा में धर्मगुरुओं और श्रद्धालुओं द्वारा अठारह कर्त्तव्यों के उद्देश्य से धारण की जाती है। मुद्रा नाम के अनुसार यह मुद्रा धार्मिक सीमाओं के बन्द होने की सूचक है। दर्शाये चित्र से भी इस कथन का समर्थन हो जाता है।

विधि

दोनों हथेलियों को ऊर्ध्वाभिमुख करते हुए चारों अंगुलियों को फैलायें, कनिष्ठिका को कनिष्ठिका के अग्रभाग से और तर्जनी को तर्जनी के अग्रभाग से मिलायें, दायें हाथ की मध्यमा और अनामिका को बायें हाथ की मध्यमा और

अनामिका के ऊपर क्रॉस करते हुए रखें। यहाँ मध्यमा और अनामिका से दो क्रॉस बनते हैं।[2]

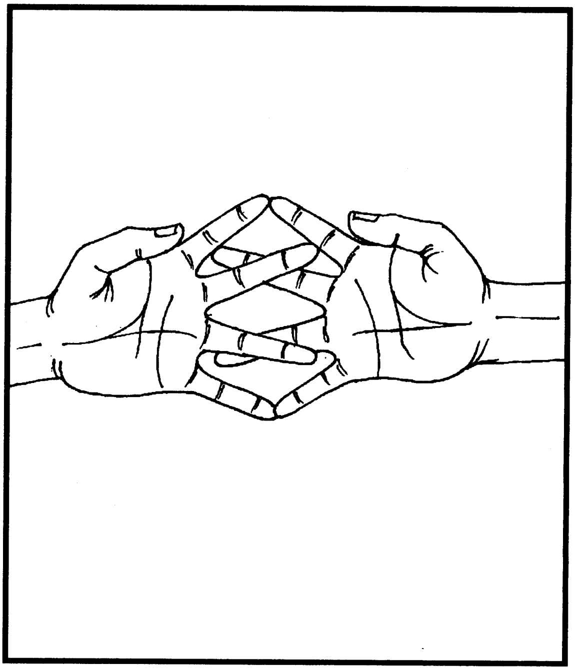

चतुर दिग् बंध मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा की साधना से पृथ्वी तत्त्व प्रभावित होता है। इससे शरीर बलिष्ठ एवं संतुलित रहता है तथा शरीर के ठोस तत्त्व सम्बन्धी विकार दूर होते हैं। • यह मुद्रा मूलाधार चक्र को प्रभावित करती है जिससे शरीर की निरोगता, कार्य दक्षता, कान्ति एवं तेज में वृद्धि होती है। • शक्ति केन्द्र को सक्रिय एवं संतुलित करते हुए यह मुद्रा काम वासनाओं को नियंत्रित कर ऊर्जा के अपव्यय को बचाती है और आन्तरिक गुणों को विकसित करती है।

3. हयग्रीवा मुद्रा

हयग्रीव का अर्थ है अश्व का मुख। इस मुद्रा में अश्वमुख को दर्शाया जाता है इसीलिये इसका नाम हयग्रीवा मुद्रा है।

यह मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में धर्मगुरुओं और भक्तों द्वारा 18 कर्त्तव्यों के परिपालनार्थ धारण की जाती है। मुद्रा स्वरूप के अनुसार यह घोड़े के मुखवाले देव की सूचक है।

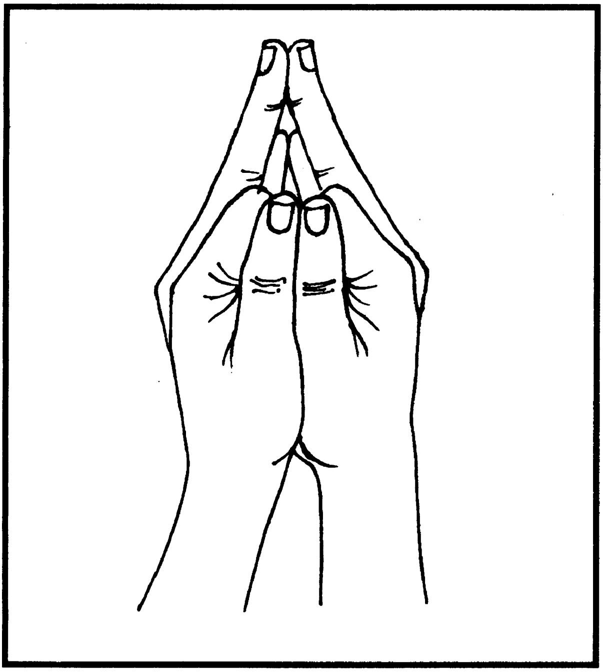

हयग्रीवा मुद्रा

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखते हुए तर्जनी और अनामिका को हथेली के अन्दर मोड़ें, मध्यमा और कनिष्ठिका को ऊपर की ओर सीधा रखें एवं उनके अग्रभागों को परस्पर में स्पर्श करवायें, अंगूठें ऊपर उठे हुए और उनकी बाह्य किनारियाँ स्पर्शित करती हुई रहने पर हयग्रीवा मुद्रा बनती है।[3]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा करने से वायु तत्त्व का संतुलन सम्यक प्रकार से होता है। इससे प्राण वायु में स्थिरता, वायु सम्बन्धी दोषों का निराकरण, फेफड़ा, गुर्दा, हृदय आदि से संबंधित रोगों में फायदा होता है। • विशुद्धि चक्र को प्रभावित करते हुए चित्त को शान्त, शोकहीन एवं दीर्घजीवी बनाने में यह मुद्रा उपयोगी

है। • थायरॉइड एवं पैराथायरॉइड ग्रंथि के स्रावों को नियंत्रित रखते हुए यह मुद्रा आवाज को मधुर, शरीर को शक्तिशाली, हड्डियों को मजबूत एवं स्वभाव को अप्रमत्त एवं धैर्यशील बनाती है।

4. क-इन् मुद्रा

अठारह कर्त्तव्यों के समय की जाने वाली यह मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में प्रचलित है तथा वहाँ के धर्मगुरुओं और श्रद्धालुओं द्वारा धारण की जाती है। यह पवित्र स्थानों में किये गये द्वेष पूर्ण भावों को निष्कासित करने एवं उन्हें डराने की सूचक है।

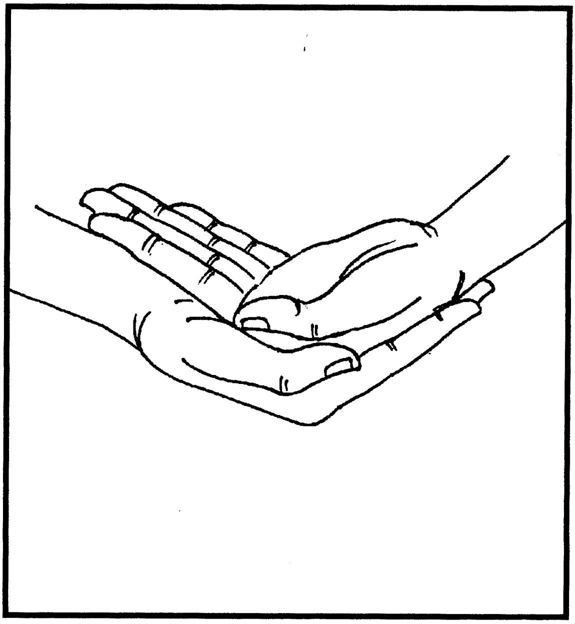

क-इन् मुद्रा

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखें, अंगुलियों एवं अंगूठों को ऊपर उठायें, हाथ हल्के से मुड़े हुए रहें तथा दायां हाथ बायें हाथ के ऊपर लगभग 30^0 कोण पर रहें, इस तरह क-इन् मुद्रा बनती है।[4]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा की साधना अग्नि एवं जल तत्त्व को संतुलित कर माध्यस्थ

वृत्ति को उत्पन्न करती है। स्वभाव को शांत, जोशीला, स्फूर्ति युक्त बनाती है तथा प्रमाद निद्रा, क्रोधादि कषाय को दूर करती है। • मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा आध्यात्मिक दशा को विकसित कर यथार्थ ज्ञान में वृद्धि करती है तथा वचन सिद्धि, वाणी प्रभुत्व, मधुमेह एवं पाचन तंत्र सम्बन्धि रोगों में लाभ पहुँचाती है। • तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र पर पड़ने से प्रभाव रक्तचाप, सिरदर्द, कमजोरी, अपच, तनाव, एलर्जी, श्वसन आदि में विशेष लाभ होता है।

5. कोंगो-मो-इन् मुद्रा

यह मुद्रा पूर्ववत जापान के बौद्ध अनुयायी धारण करते हैं। भारत में इस मुद्रा को 'आकाश जल मुद्रा' एवं 'वज्र जल मुद्रा' कहते हैं। यह अठारह महाकर्त्तव्यों के समय प्रदर्शित की जाती है। इसे पवित्र भूमि के संरक्षण की सूचक मुद्रा माना गया है। इस मुद्रा में दोनों हाथों का उपयोग होता है।

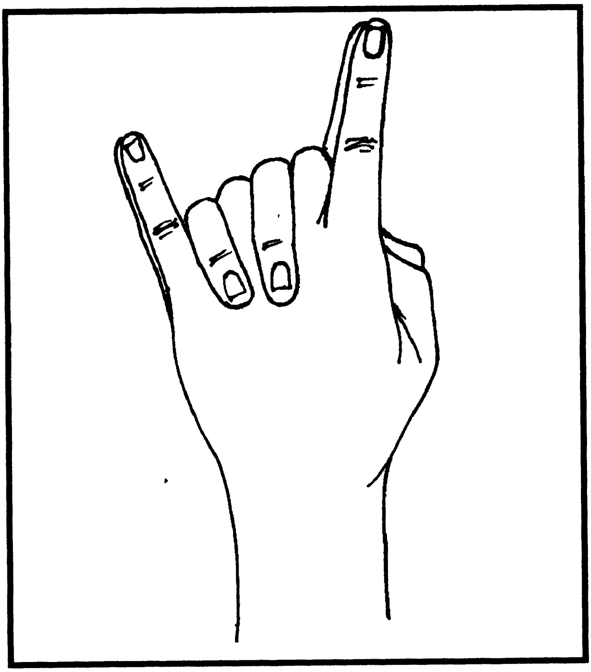

कोंगो-मो-इन् मुद्रा

विधि

हथेलियों को नीचे की तरफ अभिमुख करें, मध्यमा और अनामिका को ऊपर की ओर अन्तर्ग्रथित करें, तर्जनी और कनिष्ठिका को ऊर्ध्व प्रसरित कर उनके अग्रभागों को मिलायें तथा अंगूठें तर्जनी के विपरीत आराम करते हुए रहें, इस भाँति 'कोंगो-मो-इन्' मुद्रा बनती है।[5]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के प्रयोग से आकाश एवं वायु तत्त्व संतुलित होते हैं। यह हृदय एवं वायु सम्बन्धी रोगों को उपशान्त करते हुए प्राण वायु को ऊर्ध्वगामी बनाती है। • आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा आन्तरिक ज्ञान को विकसित कर साधक को कुशाग्र बुद्धियुक्त, शान्तचित्त, शोकहीन एवं निरोगी बनाती है। • पिच्युटरी एवं थायरॉइड ग्रन्थि को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा शरीर की आन्तरिक क्रियाओं को सम्यक एवं सुचारू बनाती है। यह दिमाग को शान्त रखने, घाव आदि भरने, कोलेस्ट्रॉल कंट्रोल आदि में भी सहायक बनती है।

6. पुष्पमाला मुद्रा

जापानी बौद्ध परम्परा में आचरित यह तान्त्रिक मुद्रा अठारह महाकर्त्तव्यों के समय श्रद्धालुओं द्वारा धारण की जाती है। यह संयुक्त मुद्रा अपने नाम के अनुरूप फूलों के माला की सूचक है।

विधि

दोनों हाथों की बाह्य किनारियों को एक साथ करें, फिर मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को भीतर की तरफ अन्तर्ग्रथित करें, तर्जनी ऊपर की ओर उठायें और हल्की सी मोड़ें तथा अंगूठों को सीधा रखने पर पुष्प माला मुद्रा बनती है।[6]

सुपरिणाम

• पुष्पमाला मुद्रा को धारण करने से शरीर में वायु एवं अग्नि तत्त्व का संतुलन होता है। इससे गैस की नाना विकृतियाँ दूर होती है, तत्क्षण शान्ति का अनुभव होता है, मस्तिष्क का स्नायुतंत्र शक्तिशाली तथा सिरदर्द-अनिद्रा आदि रोग उपशान्त होते हैं। • विशुद्धि एवं मणिपुर चक्र को प्रभावित करते हुए यह

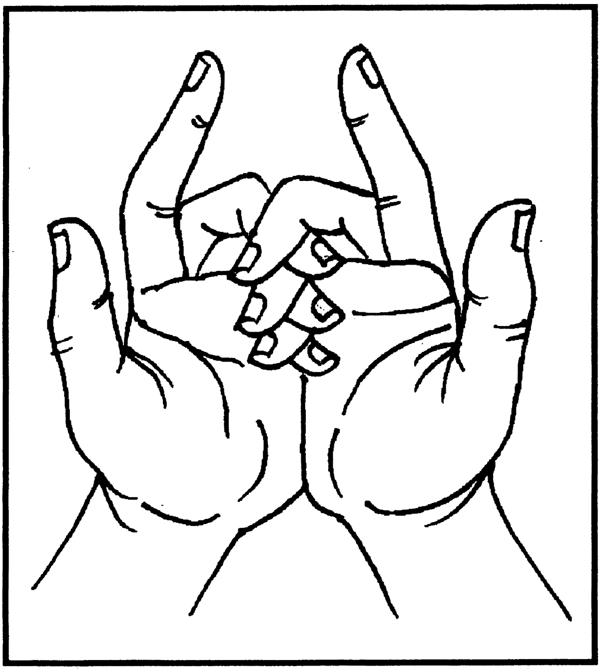

पुष्पमाला मुद्रा

मुद्रा विशेष बल प्रदान करती है। डायबिटीज, कब्ज, अपच, गैस, पाचन विकृति से सम्बन्धी रोगों में लाभ देती है। • तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र को प्रभावित कर जीवन विकास की क्षमता को तीव्र, चित्त को निर्मल एवं तेजस्वी बनाती है। साथ ही स्वर को मधुर, सुरीला एवं व्यक्ति को तनाव से मुक्त करती है।

7. रत्न वाहन मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा अठारह महाकर्त्तव्यों के अवसर पर की जाती है। इस मुद्रा को जापानी बौद्ध धर्म के श्रद्धालुगण स्वीकार करते हैं। यह संयुक्त मुद्रा किसी देवता के सत्कार-स्वागत की सूचक मुद्रा है। इसकी विधि निम्न है–

विधि

दोनों हथेलियों को एक साथ मध्य भाग में रखें, हथेलियों और अंगूठों की बाह्य किनारियों को मिलायें, तर्जनी, अनामिका और कनिष्ठिका को किंचित घुमाते हुए उनके अग्रभागों का परस्पर स्पर्श करवायें तथा मध्यमा को तीसरे

जोड़ से मोड़ते हुए अपने विरोधी के साथ अन्तर्ग्रथित करने पर रत्न वाहन मुद्रा बनती है।[7]

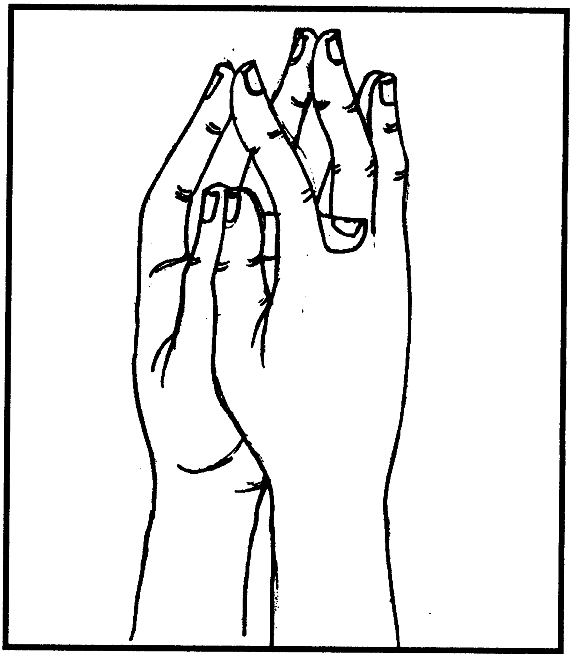

रत्न वाहन मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– स्वाधिष्ठान, विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**– जल, वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन, थायरॉइड, पैराथायरॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**– स्वास्थ्य, विशुद्धि एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, कान, नाक, गला, मुँह, स्वर यंत्र, स्नायु तंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

8. शौ-छ-रौ-इन् मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा अठारह महाकर्त्तव्यों से सम्बन्धित है तथा जापानी बौद्ध परम्परा के धर्म गुरुओं और श्रद्धालुओं द्वारा धारण की जाती है। विद्वानों के अनुसंधान के आधार पर जो बुद्ध साधु छकड़ों या गाड़ियों पर चढ़कर आते हैं यह मुद्रा उनके स्वागत की सूचक है। यह मुद्रा दिखाकर उस तरह के बुद्ध सन्तों का सत्कार किया जाता है।

विधि

दोनों हथेलियाँ ऊर्ध्वाभिमुख, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका मध्य भाग की तरफ हल्की सी झुकी हुई और उनके प्रथम पोर अन्तर्ग्रथित अवस्था में रहें, तर्जनी ऊपर फैली हुई और अपने अग्रभागों का स्पर्श करती हुई रहें तथा अंगूठे के अग्रभाग मध्यमा के अग्रभाग से स्पर्शित करते हुए रहें। इस तरह 'शौ-छ-रौ इन्' मुद्रा बनती है।[8]

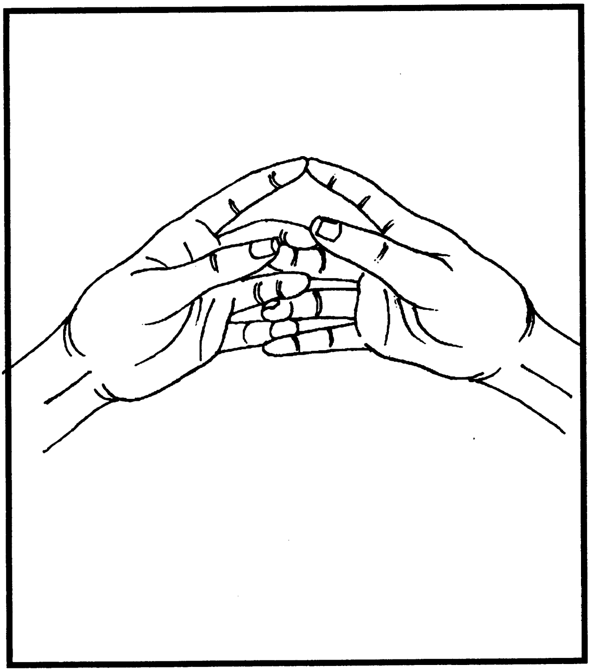

शौ-छ-रौ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा धारण करने से जल एवं अग्नि तत्त्व संतुलित होते हैं। इनके संयोग से पित्त से उभरने वाली बीमारियाँ, मूत्र दोष, गुर्दे सम्बन्धी रोगों का परिहार होता है। • स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा आभ्यंतर एवं बाह्य शक्तियों को जागृत करती है तथा मधुमेह, कब्ज, अपच, उदर विकार आदि को दूर करती है। • एड्रिनल एवं काम ग्रंथियों को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा रक्त परिसंचरण, श्वसन प्रक्रिया, रोग प्रतिकारात्मक शक्ति

आदि में सहयोग करती है तथा काम-वासनाओं को नियंत्रित कर आत्म तेज में वृद्धि करती है।

9. जौ-जु-म-को-कु इन् मुद्रा

जापान देश की बौद्ध परम्परा में यह तान्त्रिक मुद्रा भी अठारह कर्त्तव्यों के समय धारण की जाती है। इस मुद्रा को एक हाथ से करते हैं। यह दुगुने पवित्रीकरण एवं शुद्धिकरण की सूचक है।

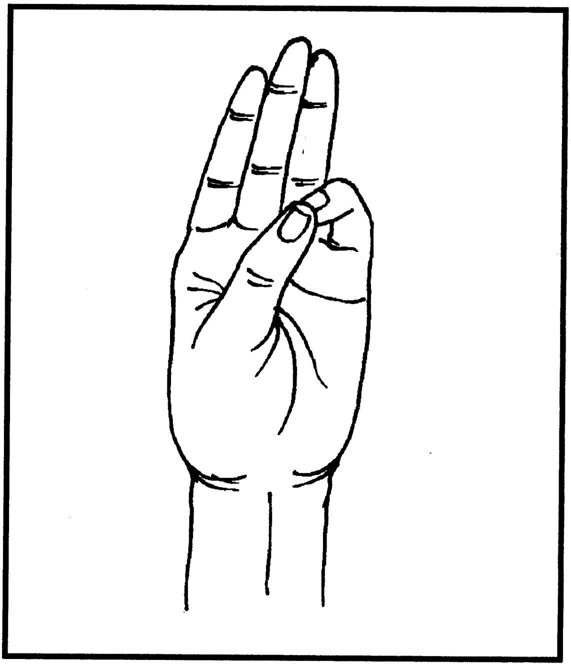

जौ-जु-म-को-कु इन् मुद्रा

विधि

बायीं हथेली को स्वयं की ओर रखते हुए अंगूठा और कनिष्ठिका के अग्रभागों को परस्पर स्पर्श करवायें तथा शेष तीन अंगुलियों को ऊपर उठाते हुए प्रथम जोड़ पर से किंचित झुकायें। तब जौ-जु-म-को-कु-इन् मुद्रा बनती है।[9]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश एवं अग्नि तत्त्व को संतुलित करती है जिससे शरीर एवं नाड़ी शुद्धि होती है, पेट के विभिन्न अवयवों की क्षमता बढ़ती है, हृदय

शक्तिशाली बनता है, काम-क्रोधादि नियंत्रित होते हैं तथा शरीर के तेज एवं कांति में वृद्धि होती है। • इस मुद्रा का प्रभाव मणिपुर एवं अनाहत चक्र पर पड़ता है जो कि वक्तृत्व एवं कवित्व शक्ति, इन्द्रिय नियंत्रण, शारीरिक कान्ति आदि में वृद्धि करता है। • तैजस एवं आनन्द केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा भावों को निर्मल एवं उसे तनावमुक्त करती है।

10. महावज्रचक्र मुद्रा

यह मुद्रा भी अठारह कर्त्तव्यों के सन्दर्भ में की जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

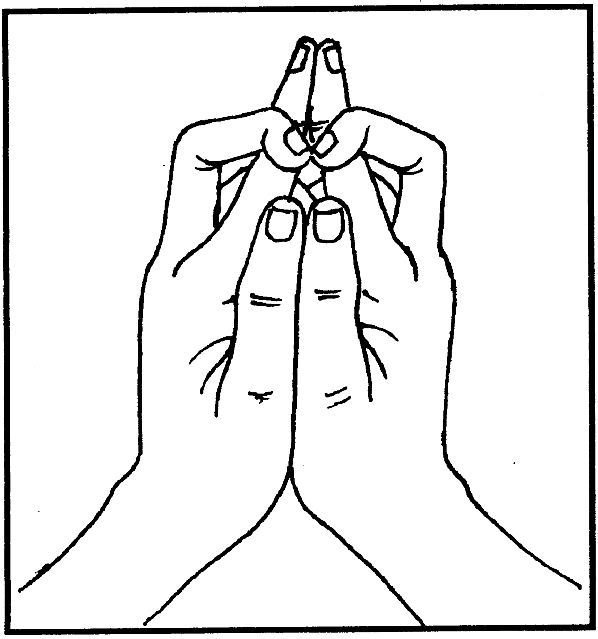

महावज्रचक्र मुद्रा

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखें, अनामिका और कनिष्ठिका को अन्तर्ग्रंथित करें, मध्यमा को तर्जनी के पृष्ठ भाग से आगे की ओर लाएँ तथा अंगूठों को बाह्य किनारियों से संयुक्त रखने पर महावज्रचक्र मुद्रा बनती है।[10]

सुपरिणाम

• पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा हड्डियों-

मांसपेशियों को मजबूत करती है तथा मोटापा, निद्रा, स्वाभाविक रूखेपन आदि को दूर करती है। • यह मुद्रा मूलाधार एवं मणिपुर चक्र के ऊपर प्रभाव डालते हुए मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस एवं पाचन विकृतियों को भी दूर करती है। • गोनाड्स एवं एड्रिनल ग्रंथियों पर प्रभाव डालते हुए यह मुद्रा रक्त संचार व्यवस्था, मांसपेशियों, रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति आदि को विकसित, व्यक्तित्व निर्माण, एलर्जी आदि से बचने में सहयोग करती है।

11. वज्र बंध मुद्रा

भारत में यह मुद्रा वज्र बंध मुद्रा, भूमि बंध मुद्रा, सीमा बंध मुद्रा और जापान में जि-केटसु-इन् मुद्रा के नाम से संबोधित एवं बौद्ध परम्परा में अठारह कर्त्तव्यों से सम्बन्धित है। इस संयुक्त मुद्रा को किसी भी पवित्र स्थान के वर्णन की सूचक माना गया है।

विधि

हथेलियों को अधोमुख करते हुए मध्यमा और अनामिका को बाहर की ओर अन्तर्ग्रथित करें तथा तर्जनी, कनिष्ठिका और अंगूठें ऊपर की तरफ फैले हुए एवं परस्पर में अग्रभागों का स्पर्श करते हुए रहें। इस तरह वज्रबंध मुद्रा बनती है।[11]

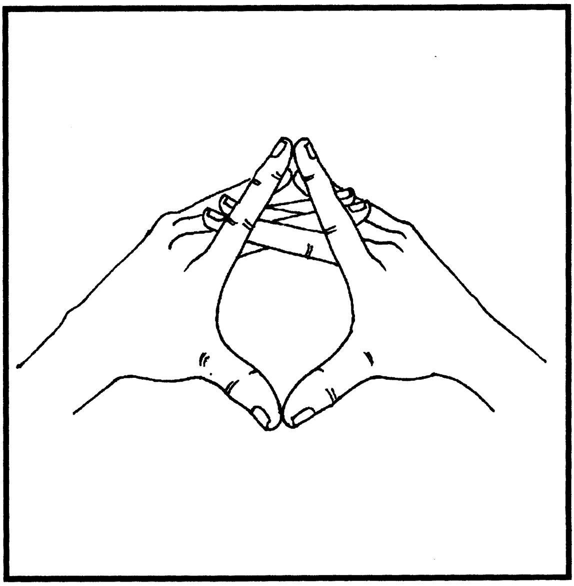

वज्र बंध मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से पृथ्वी एवं जल तत्त्व प्रभावित होते हैं जिससे शरीर में हो रहे रासायनिक परिवर्तन एवं व्यक्तित्व संतुलन में सहयोग मिलता है तथा निर्मल एवं परिवर्तनशील विचारों का निर्माण होता है। • यह मुद्रा मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करती है। इससे वाणी में मधुरता एवं कोमलता आती है। • शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र पर प्रभाव डालते हुए यह मुद्रा काम वासनाओं पर नियंत्रण, शारीरिक एवं आत्मिक तेज की वृद्धि आदि में सहयोगी बनती है।

उपरोक्त मुद्राओं के वर्णन का मुख्य उद्देश्य जन सामान्य में कर्त्तव्यों के प्रति जागृति लाना है। अठारह कर्त्तव्य से सम्बन्धित यह मुद्राएँ साधकों को अपने कर्त्तव्यों का मान करवाए। कर्त्तव्य पालन में यह जागरूकता आन्तरिक चक्रों का जागरण करे तथा मानसिक एवं शारीरिक संतुलन स्थापित करें।

सन्दर्भ-सूची

1. *GDE एसोटेरिक मुद्राज ऑफ जापान, गोरी देवी, दिल्ली, 1999*
2. *(क) GDE, पृ. 103 (ख) LCS, पृ. 61*
3. *LCS, पृ. 63*
4. *GDE, पृ. 106*
5. *(क) GDE, पृ. 106 (ख) LCS, पृ. 63*
6. *LCS, पृ. 61*
7. *LCS, पृ. 62*
8. *GDE, पृ. 105*
9. *GDE, पृ. 106*
10. *(क) GDE, पृ. 396 (ख) LCS, पृ. 60*
11. *(क) GDE, पृ. 103 (ख) LCS, पृ. 61*

अध्याय-6

बारह द्रव्य हाथ मिलन सम्बन्धी मुद्राओं का प्रभावी स्वरूप

बारह द्रव्य हाथ मिलन (Twelve elemental 'Hand clasps') संबंधी मुद्राओं का बौद्ध परम्परा में विशेष स्थान है। यह शीर्षक बौद्ध धर्मगुरुओं और श्रद्धालुओं द्वारा दोनों हाथों को मिलाने की कुछ विशिष्ट मुद्राएँ दर्शाता है। जिनका स्वरूप इस प्रकार है–

1. बिहररै सत-गस्सहौ मुद्रा

जापान में यह मुद्रा उपर्युक्त नाम से एवं 'हंजकुगोशोचकु' नाम से जानी जाती है। भारत में इस मुद्रा का नाम 'विपरयस्त' मुद्रा है। यह तान्त्रिक मुद्रा

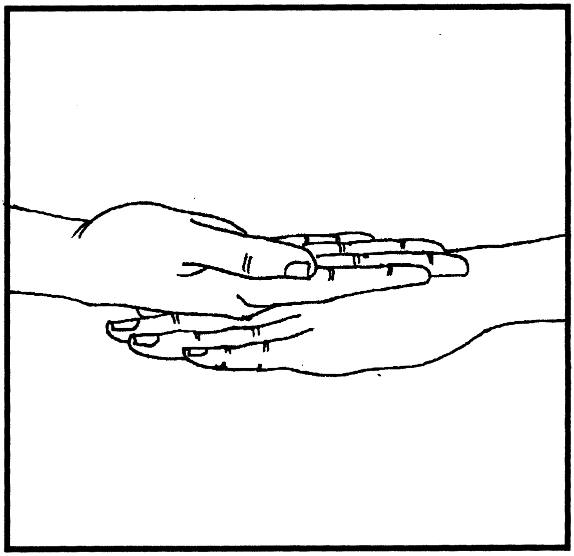

बिहररै सत-गस्सहौ मुद्रा

जापानी बौद्ध परम्परा में धर्मगुरुओं और श्रद्धालुओं द्वारा धारण की जाती है। यह बारह द्रव्य हाथ मिलन में से एक है। इसकी विधि निम्न है–

विधि

बायीं हथेली के ऊपर दायीं हथेली रखने पर यह मुद्रा बनती है। इसमें दायीं हथेली ऊर्ध्वाभिमुख और बायीं हथेली अधोमुख रहती है। इस मुद्रा को नाभि के आगे धारण करते हैं तथा यह अनुज मुद्रा के समान है।[1]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के प्रयोग से वायु तत्त्व प्रभावित होता है। यह मुद्रा मांसपेशियों, श्वसन प्रणाली, पाचन विसर्जन तंत्र आदि को संतुलित करते हुए वायु सम्बन्धी विकारों को निर्गमन करती है। • अनाहत चक्र के माध्यम से इन्द्रिय नियंत्रण, वाक् पटुता, कवित्व आदि गुणों का विकास होता है तथा हृदय सम्बन्धी रोगों का निवारण होता है। • आनन्द केन्द्र को जागृत कर यह मुद्रा मनोभावों को निर्मल एवं परिष्कृत करती है, बच्चों की रोग आदि से रक्षा करती है तथा आन्तरिक आनंद की अनुभूति करवाती है।

2. बोद गस्सहौ मुद्रा

जापान में प्रचलित यह मुद्रा 'बे-रेंज गस्सहो' के नाम से भी जानी जाती है। भारत में इसे 'पुन' मुद्रा कहते हैं। यह पूर्ववत बारह द्रव्य हाथ ग्रहण में से एक है। यह संयुक्त मुद्रा नये खिले हुए कमल की भाँति नजर आती है।

विधि

दोनों हथेलियों को एक साथ मध्य भाग में रखें, फिर हथेली की एड़ियों (अंगूठे के नीचे का हिस्सा) को मिलायें, अंगुलियों को ऊपर की ओर उठायें, अंगूठा, तर्जनी और कनिष्ठिका के अग्रभागों को परस्पर संयुक्त करें, मध्यमा और अनामिका बाहर की तरफ निकली हुई एक कप का आकार प्रदान करें इस तरह बोद गस्सहौ मुद्रा बनती है।[2]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा करने से वायु एवं चेतन तत्त्व संतुलित होते हैं। इनके संयोग से अंगों का हलन-चलन, रक्त प्रवाह, श्वसन क्रिया आदि नियमित होते हैं। फेफड़ें, हृदय, गुर्दा आदि सम्यक रूप से कार्य करते हैं। आध्यात्मिक शक्ति में वृद्धि होती

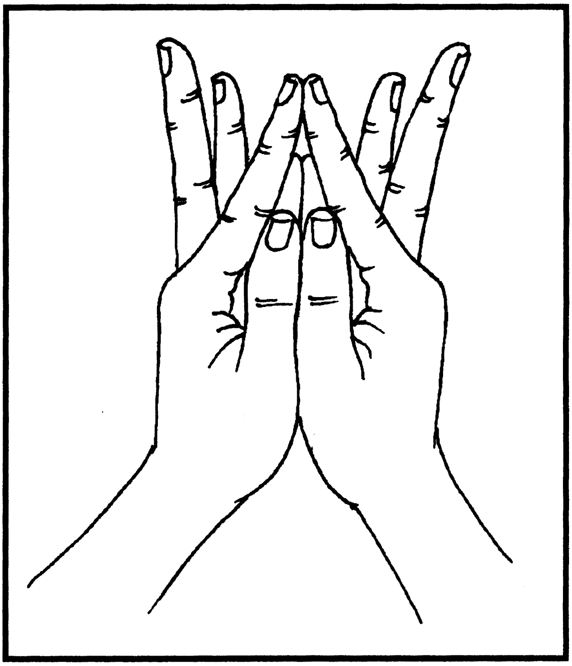

बोद गस्सही मुद्रा

है। • इस मुद्रा के प्रयोग से अनाहत एवं सहस्रार चक्र जागृत होते हैं जिससे मानसिक अनिश्चयात्मक स्थिति, ईहा-अपोह, शंका-कुशंका आदि का शमन होता है। • थायमस एवं पिनियल ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा निर्णयात्मक शक्ति का विकास, पोटेशियम, सोडियम, जल आदि का संतुलन करती है।

3. फुकुशु गस्सहौ मुद्रा

जापान में इस मुद्रा के 'जुनी गोशो', 'जुनी गास्सहो' नाम भी प्रसिद्ध हैं। यह जापानी मुद्रा बौद्ध परम्परा में धर्मगुरुओं एवं श्रद्धालुओं द्वारा धारण की जाती है। पूर्ववत बारह द्रव्य हाथ मिलन में से यह एक है। यह मुद्रा दर्शाये चित्र के अनुसार ढ़कने के लिए मिलाये हाथों को सूचित करती है।

विधि

दोनों हथेलियों को नीचे की ओर अभिमुख करें, फिर अंगुलियों को हल्का सा तिरछा करते हुए आगे की ओर करें तथा दोनों अंगूठें अपनी लंबाई का स्पर्श करते हुए रहने पर फुकुशु-गस्सहौ मुद्रा बनती है।[2]

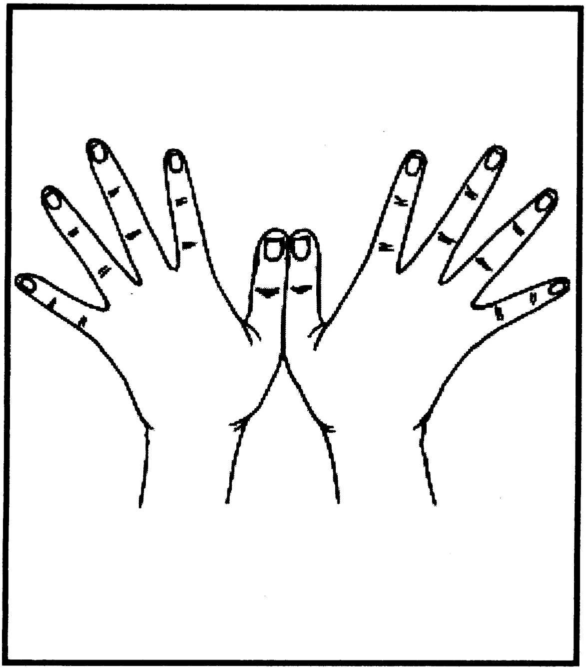

फुकुशु गस्सहौ मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा वायु एवं चेतन तत्त्व को संतुलित करती है। इससे गैस संबंधी विकृतियों का निवारण, कुपित वायु आदि का शमन होता है तथा व्यक्ति अन्तर जगत की ओर अभिमुख होता है। • आज्ञा एवं सहस्रार चक्र को जागृत कर यह मुद्रा स्वभाव को आनंदमय और आत्मा को संशय-विपर्यय से रहित कर असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति करवाता है। • ज्योति एवं ज्ञान केन्द्र को सक्रिय कर यह मुद्रा क्रोधादि कषायों को नियंत्रित, चिन्तन शक्ति को विकसित एवं ज्ञानोपलब्धि करवाती है।

4. हरनम गस्सहौ मुद्रा

भारत में यह मुद्रा 'प्रणाम मुद्रा' के नाम से कही जाती है। मुख्यतया जापानी बौद्ध परम्परा में यह अधिक प्रचलित है। यह पूर्ववत बारह द्रव्य हाथ मिलन में से एक है।

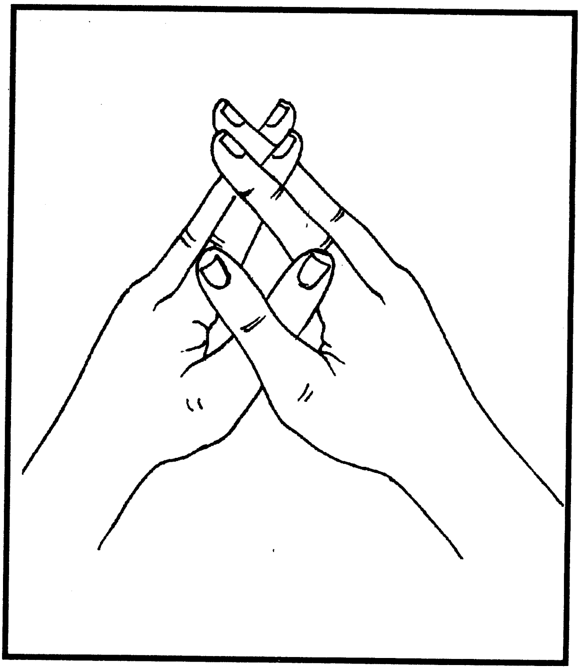

हरनम गस्सहौ मुद्रा

विधि

दोनों हाथों की अंगुलियों को प्रथम पोर से अन्तर्ग्रथित करें और बायें अंगूठे को दायें अंगूठे के नीचे रखने पर हरनम-गस्सहौ मुद्रा बनती है।[4]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के प्रयोग से वायु एवं चेतन तत्त्व प्रभावित होता है। इससे चेतना शक्ति विकसित एवं अन्तर अभिमुख होती है। • अनाहत एवं सहस्रार चक्र को जागृत करने में यह मुद्रा परम सहायक है। इससे हृदय में प्रेम, करुणा, सेवा, सहानुभूति आदि भावों का विकास होता है। • थायमस एवं पिनियल ग्रंथियों के स्राव को संतुलित कर यह काम इच्छाओं को नियंत्रित, निर्णायक बुद्धि एवं शक्ति

का विकास कर शारीरिक रसायनों को संतुलित करती है। बालकों में रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास तथा भावों को निर्मल एवं परिष्कृत करती है।

5. कुम्मर गस्सहौ मुद्रा

यह मुद्रा भारत में 'कमल मुद्रा' के नाम से चर्चित है। मुख्य तौर पर जापानी बौद्ध परम्परा के श्रद्धालु वर्ग इस मुद्रा को स्वीकार करते हैं। यह पूर्ववत बारह द्रव्य हाथ मिलन में से एक है। निम्न चित्र के अनुसार यह खिलती हुई गुलाब के कली की सूचक मुद्रा है।

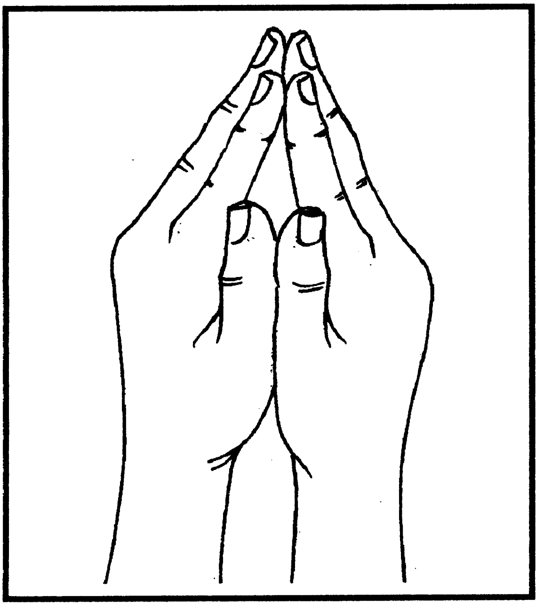

कुम्मर गस्सहौ मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को एक साथ मिलाते हुए अंगुलियों को ऊपर की ओर उठायें तथा हथेलियों को थोड़ा सा मोड़ते हुए बीच में से कली की भाँति आकार देने पर कुम्मर-गस्सहौ मुद्रा बनती है।[5]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के अभ्यास से पृथ्वी एवं जल तत्त्व के बीच संतुलन स्थापित होता है। इनके संयोग से शरीर में ऐसे रासायनिक परिवर्तन होते हैं जिनसे

व्यक्तित्व का संतुलन होता है। जल तत्त्व का संतुलन होने से निर्मल विचारों का जन्म होता है। • मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत कर यह मुद्रा आरोग्य,दक्षता, कर्म कौशलता एवं वचन सिद्धि को प्राप्त करवाती है। • काम ग्रंथियों के स्राव का नियंत्रण कर जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों का शमन करती है तथा चेहरे का आकर्षण, तेज, व्यक्तित्व, स्वर की मधुरता आदि इसी से प्राप्त होती है।

6. मिहरित गस्सहौ मुद्रा

यह जापानी बौद्ध परम्परा में प्रसंग विशेष पर धारण की जाती है। पूर्ववत बारह द्रव्य हाथ मिलन की मुद्राओं में से यह एक है। इसकी विधि निम्न है-

विधि

दोनों हाथों को पृष्ठ भाग से स्पर्श करवायें तथा अंगुलियों और अंगूठों के अग्रभागों को अन्तर्ग्रंथित करने पर यह 'विपरीत मुद्रा' कहलाती है।[6]

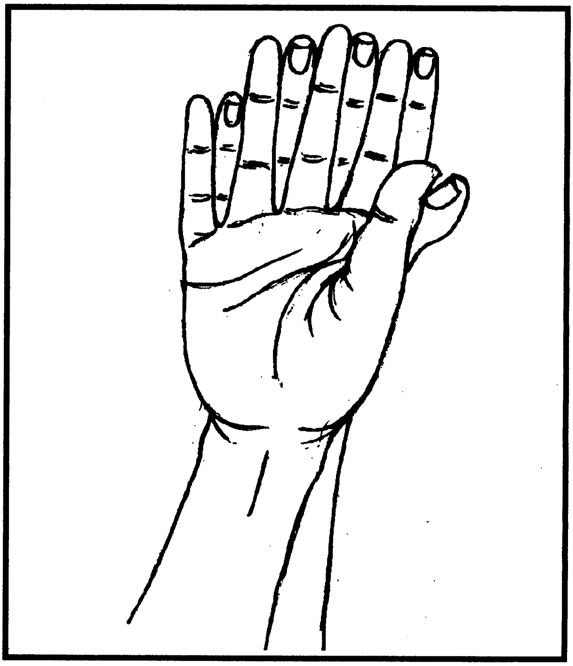

मिहरित गस्सहौ मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– आज्ञा एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व**– आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**– पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र**– दर्शन एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मस्तिष्क, आँख एवं स्नायु तंत्र।

7. नेबिन-गस्सहौ मुद्रा

यह मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में बारह द्रव्य हाथ मिलन के समय की जाती है। निम्न चित्र के अनुसार यह मुद्रा स्थिर और गंभीर हृदय के मिलन की सूचक है। पूर्व में दर्शाये चित्रों से ज्ञात होता है कि बारह द्रव्य हाथ मिलन की मुद्राओं में भिन्न-भिन्न रूप से हाथों को मिलाया जाता है।

इस मुद्रा की विधि यह है–

विधि

दोनों हथेलियों को नमस्कार मुद्रा की भाँति परस्पर में मिलाना नेबिन-गस्सहौ मुद्रा है।[7]

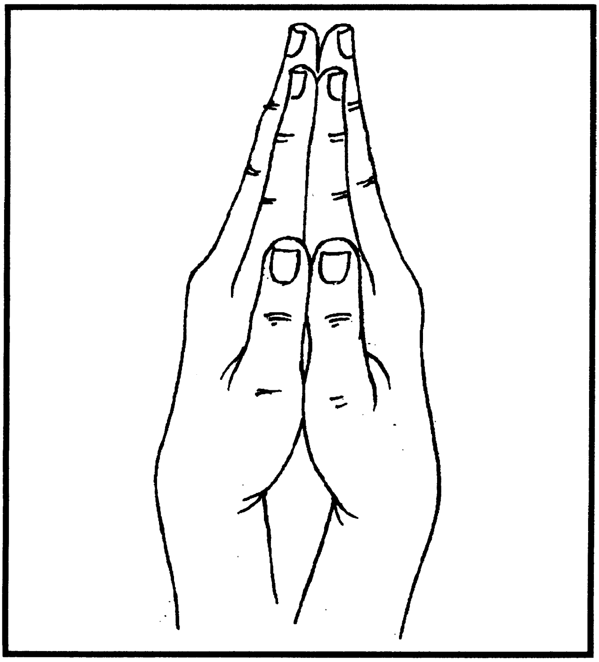

नेबिन-गस्सहौ मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश एवं जल तत्त्व को संतुलित करते हुए काम, क्रोध, मोह, लोभ, दु:ख, चिंता आदि का शमन करती है। • आज्ञा एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए बुद्धि को कुशाग्र, चित्त को शान्त एवं एकाग्र बनाती है। इससे नियंत्रण सामर्थ्य एवं वाणी की सिद्धि प्राप्त होती है। • पिच्युटरी एवं गोनाड्स के स्राव को संतुलित कर यह शरीर की आन्तरिक क्रियाओं को नियन्त्रित, स्वभाव को शांत एवं मनोवृत्तियों को परिष्कृत करती है। काम वासनाओं का नियंत्रण भी इसी की साधना से होता है।

8. ओत्तनश-गस्सहौ मुद्रा

यह बारह द्रव्य हाथ मिलन की मुद्राओं में से एक है। इसे जापानी बौद्ध परम्परा के श्रद्धालु वर्ग धारण करते हैं। यह मुद्रा निम्न स्वरूप के अनुसार स्पष्ट व्याख्या की सूचक है।

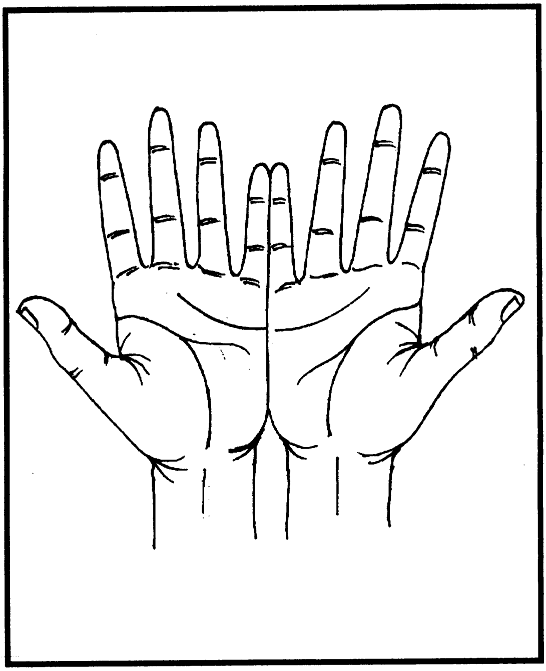

ओत्तनश-गस्सहौ मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियाँ सामने की ओर, अंगुलियाँ और अंगूठें ऊपर की तरफ एवं हल्के से पृथक-पृथक फैले हुए तथा हथेली की बाह्य किनारियाँ मिली हुई रहने पर ओत्तनाश-गस्सहौ मुद्रा बनती है।[8]

सुपरिणाम

• अग्नि एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा तीव्र दृष्टि, पाचन शक्ति आदि के सामर्थ्य को बढ़ाते हुए प्राण वायु को स्थिर बनाती है। • इस मुद्रा से मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र जागृत होते हैं जिससे आन्तरिक ज्ञान उजागर होता है। चित्त शान्त एवं स्वर मधुर बनता है, निरोगी काया एवं दीर्घ जीवन की प्राप्ति होती है। • विशुद्धि एवं तैजस केन्द्र का साक्षात्कार होने से जीवन एवं विचारों में तीव्रता और प्रतिकारात्मक शक्ति का विकास होता है। आध्यात्मिक वृत्ति होने से आन्तरिक तेज भी दिप्त होता है।

9. संपुट्-गस्सहौ मुद्रा

यह संयुक्त मुद्रा बारह द्रव्य हाथ मिलन की मुद्राओं में से एक है। इसे जापानी बौद्ध परम्परा में अन्तर्भावों के साथ स्वीकार किया जाता है। यह मुद्रा रिक्त हृदय के मिलन की सूचक है।

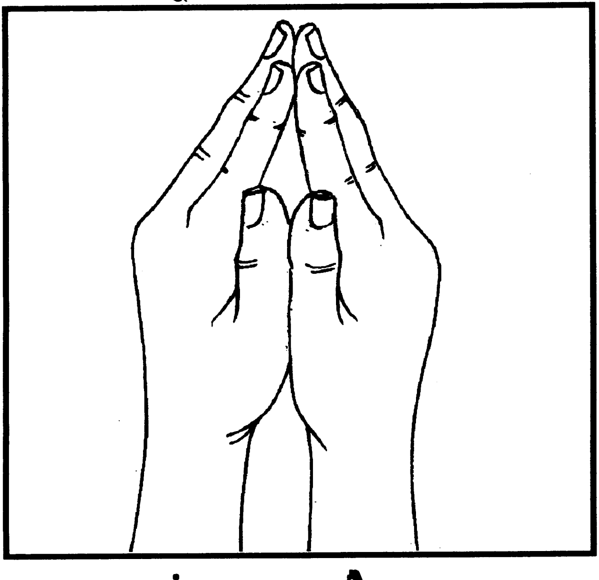

संपुट-गस्सहौ मुद्रा

विधि

दोनों हाथों को समीप लाकर इस तरह मिलायें कि अंगुलियाँ हल्की सी झुकी हुई रहें, तब 'संफुट्-गस्सहौ' मुद्रा बनती है।[9]

सुपरिणाम

• संफुट्-गस्सहौ मुद्रा को धारण करने से शरीरगत वायु एवं आकाश तत्त्व संतुलित होकर भाव धारा को निर्मल बनाते हैं। • यह मुद्रा विषय-कषायों को मन्द करते हुए वायु दोषों का निराकरण करती है। • अनाहत एवं आज्ञा चक्र को जागृत करते हुए यह हृदय में सहानुभूति, सेवा, करुणा, मैत्री एवं प्रेम भाव का जागरण, वाणी को मधुर तथा बुद्धि को कुशाग्र बनाती है। • थायमस एवं पिच्युटरी के स्राव को संतुलित करते हुए यह आन्तरिक हलन-चलन, हृदय की धड़कन आदि को नियंत्रित करती है तथा मनोगत भावों को निर्मल एवं परिष्कृत भी बनाती है।

10. तैरै-गस्सहौ मुद्रा

यह मुद्रा पूर्ववत जापानी बौद्ध परम्परा के धर्मगुरुओं एवं श्रद्धालुओं द्वारा प्रसंग विशेष पर धारण की जाती है। इस मुद्रा को विद्वानों ने निर्माण आधार की सूचक कहा है।

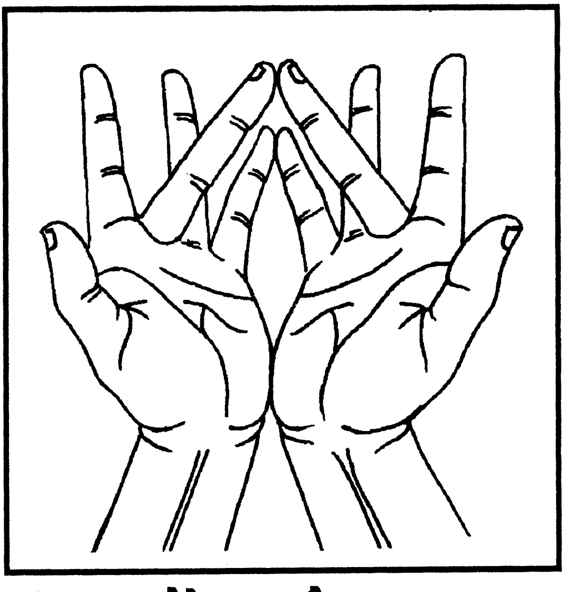

तैरे-गस्सहौ मुद्रा

विधि

हथेलियाँ अन्दर (स्वयं) की तरफ, हथेलियों की बाह्य किनारियाँ स्पर्श करती हुई, कनिष्ठिका और मध्यमा के अग्रभाग स्पर्श करते हुए, अनामिका और तर्जनी बाहर की ओर लहराती हुई और अंगूठे बाहर की तरफ मुड़े हुए रहने पर 'तैरै-गस्सहौ' मुद्रा बनती है।[10]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश एवं चेतन तत्त्व को सक्रिय करती है जिससे अनहद आनंद की प्राप्ति होती है और मन से दूषित एवं विकृत भाव क्षीण होकर उत्तम भाव जागृत होते हैं। • विशुद्धि एवं सहस्रार चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा यथार्थ ज्ञान उपलब्ध करवाती है और अन्य वृत्तियों का निरोध कर समाधि की प्राप्ति करवाती है। • इस मुद्रा को धारण करने से थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पिनियल ग्रंथि पर प्रभाव पड़ता है। इससे शरीर के समस्त अंगों का सुचारू संचालन, हड्डियों का विकास तथा मैत्री आदि गुणों में वृद्धि होती है।

11. अदर-गस्सहौ मुद्रा

इसे जापान में अदर गस्सहौ तथा भारत में आधार मुद्रा कहा जाता है। यह जापानी बौद्ध परम्परा में भक्त या पुजारी के द्वारा धारण की जाती है। बारह द्रव्य हाथ मिलाने की जो क्रिया होती है उनमें से एक मुद्रा है। यह मुद्रा पानी धारण करना सूचित करती है।

विधि

दोनों हथेलियों की बाह्य किनारियों को मिलाते हुए चारों अंगुलियों के अग्र भागों को संयुक्त करें तथा अंगूठों को बाहर की तरफ फैलाये रखना, अदर-गस्सहौ मुद्रा है।[11]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से वायु तत्त्व संतुलित होता है। इससे गठिया, वायु विकार सम्बन्धी रोग, साइटिका आदि रोगों में आराम मिलता है तथा प्राण वायु स्थिर बनती है। • अनाहत चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा वक्तृत्व एवं कवित्व कला में विकास करती है। • आनंद केन्द्र को सक्रिय करते हुए इस मुद्रा के द्वारा आभ्यन्तर व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

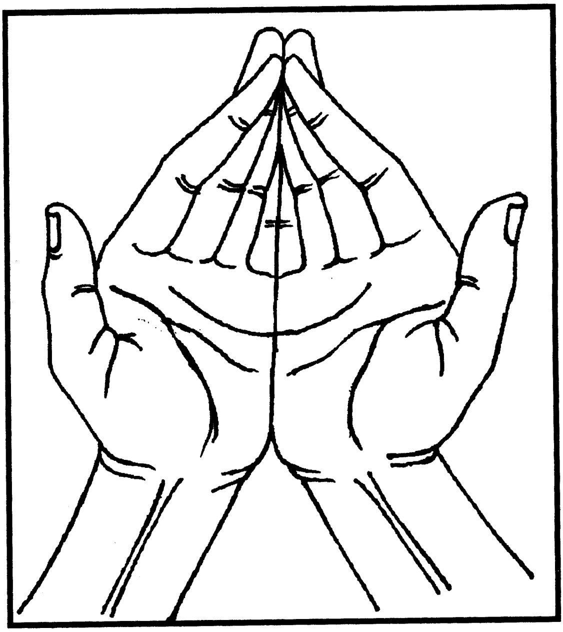

अदर-गस्सही मुद्रा

इस अध्याय में वर्णित यह ग्यारह मुद्राएँ विविध पूजा अनुष्ठानों के समय धारण की जाती है। इसके द्वारा द्रव्य अर्पण आदि के भाव प्रदर्शित करते हुए मन में श्रद्धा भावों का विशेष प्रस्फुटन होता है। यह श्रद्धा भाव अन्तःस्रावी ग्रन्थियों, चक्रों आदि के सक्रिय होने एवं उनके संतुलन में भी विशिष्ट सहायक बनती है। शारीरिक स्वस्थता एवं भावात्मक उर्ध्वता में उपरोक्त मुद्राएँ विशेष कार्यकारी सिद्ध हुई है।

सन्दर्भ-सूची

1. *मुद्रा ए स्टडी ऑफ सिम्बोलिक गेश्चर्स इन जेपनिज़, बुद्धिस्ट स्कल्पचर, इ. डाले साउण्डर्स, पृ. 42*
2. *EDS पृ. 40*
3. *वही, पृ. 40*
4. *वही, पृ. 41*
5. *वही, पृ. 40*
6. *वही, पृ. 40*
7. *वही, पृ. 40*
8. *वही, पृ. 41*
9. *वही, पृ. 40*
10. *वही, पृ. 40*
11. *वही, पृ. 41*

●

अध्याय-7

म-म-मडोस सम्बन्धी मुद्राओं का प्रयोग कब और क्यों?

बौद्ध पूजा-उपासना में वज्रायना देवी तारा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। म-म-मड़ोस में समाविष्ट छः मुद्राएँ विशिष्ट पूजनों में प्रयुक्त की जाती है। भगवान बुद्ध के अतिशय युक्त ज्ञान प्रकाश के द्वारा जीवन के शुद्धिकरण में यह मुद्राएँ विशेष प्रेरक है। संस्कृत मंत्रों का प्रयोग इनकी प्रभावकता को अधिक बढ़ाता है। टोरमा आदि द्रव्यों का अर्पण बौद्ध धर्म में द्रव्यपूजा के अस्तित्व का भी द्योतक है। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार इनका स्वरूप निम्न प्रकार है।

1. सर्व धर्मः मुद्रा

बौद्ध परम्परा में 'म-म-मडोस' नाम की एक क्रिया होती है। उसमें छः प्रकार की मुद्राओं का प्रयोग होता है। म-म-मडोस सम्बन्धी छः मुद्राओं में से यह पहली मुद्रा है। इसे धर्मराज्य की शुद्धता का सूचक माना गया है। विशेष रूप से शुभ्र टोरमा अर्थात पूजा आदि के दरम्यान वज्रायना देवी तारा के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले द्रव्य विशेष का सूचक है। यह संयुक्त मुद्रा नाक के स्तर पर धारण की जाती है। मुद्रा मंत्र यह है– **'ओम् स्वभाव शुद्धम्, सर्व धर्मः स्वभाव शुद्धो हुम्।'**

विधि

अंजलि मुद्रा की भाँति हथेलियों, अंगुलियों और अंगूठों को परस्पर मिलाना, सर्व धर्मः मुद्रा है।[1]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व को प्रभावित करती है। इससे हड्डियों, मांसपेशियों, त्वचा एवं शारीरिक अवयवों के विकास में सहयोग मिलता है

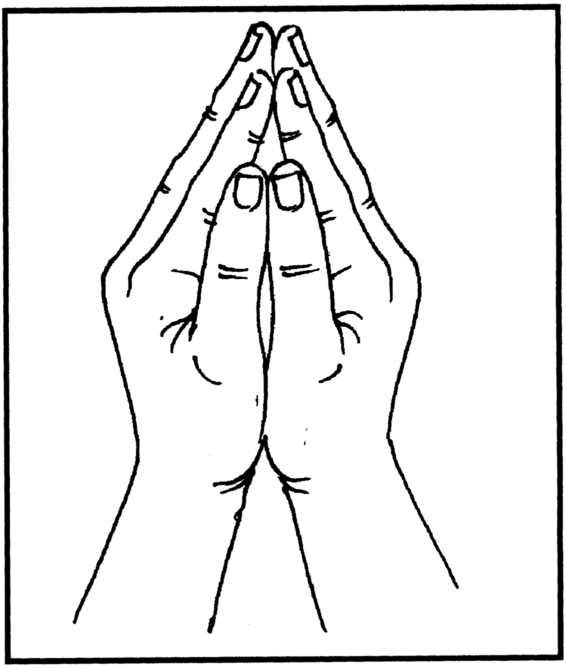

सर्व धर्मः मुद्रा

तथा शारीरिक दुर्बलता, मोटापा, रूखापन आदि दूर होता है। • मणिपुर एवं मूलाधार चक्र को प्रभावित करते हुए शारीरिक आरोग्य एवं कान्ति को बढ़ाती है।

• एड्रिनल एवं गोनाड्स की कार्य क्षमता को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा व्यक्ति को सहनशील, आशावादी, तनाव मुक्त बनाती है तथा रक्तचाप, सिरदर्द, एलर्जी आदि की समस्याओं से मुक्त करती है।

2. सर्व तथागतेभ्यो मुद्रा

बौद्ध आम्नाय में स्वीकृत 'म-म मडोस्' सम्बन्धी छः मुद्राओं में से यह दूसरी मुद्रा है। सामान्य रूप से रत्न मंजूषा की सूचक इसे माना गया है और विशेष रूप से श्वेत टोरमा अर्पण को सूचित करती है। इस मुद्रा को वज्रायना देवी तारा के समक्ष किया जाता है। यह संयुक्त मुद्रा दोनों हाथों में प्रतिबिंब की भाँति बनती है। मुद्रा मन्त्र यह है-

'नमः सर्वतथागतेभ्यो विश्व मुखेभ्यः सर्वथा खम उद्गते स्फरणा इमम् गगन-खम स्वाहा।'

विधि

दोनों हाथों को मध्यभाग में रखें तथा अंगुलियों और अंगूठों को ऊपर की ओर फैलाते हुए उनके अग्रभागों को स्पर्श करवायें, इस भाँति सर्व तथागतेभ्यो मुद्रा बनती है।[2]

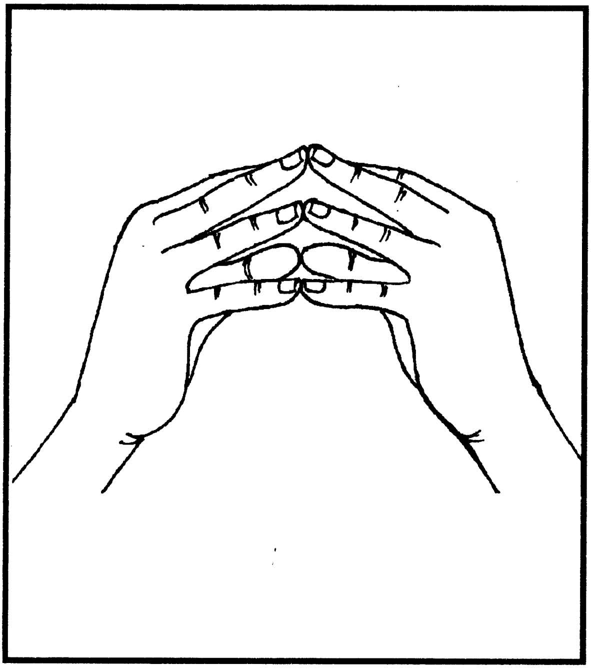

सर्व तथागतेभ्यो मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं जल तत्त्व को प्रभावित करती है। इन दोनों के संयोग से रक्त आदि तरल पदार्थों का संचरण सम्यक प्रकार से होता है। शरीर बलिष्ठ, स्निग्ध एवं कान्तियुक्त बनता है। जड़ता एवं भारीपन नष्ट होता है। • इस मुद्रा से मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र प्रभावित होते हैं जो कि व्यक्ति की कार्यक्षमता में वर्धन करते हैं तथा इससे जिह्वा पर सरस्वती वास होता है। • काम ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित कर यह मुद्रा स्वर सुधारती है, बाल बढ़ाती है और व्यक्तित्व विकास में सहयोगी बनती है।

3. वज्र अमृत कुण्डली मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा बौद्ध परम्परा में श्रद्धापूर्वक ग्रहण की जाती है। पूर्वकथित 'म-म मडोस' की छः मुद्राओं में यह तीसरी मुद्रा है। यह मुद्रा सामान्यतः भंवरे के मधुरस की सूचक है तथा विशेष रूप से सफेद टोरमा (पवित्र केक) को अर्पण करने एवं धागे के क्रॉस को प्रस्तुत करने की सूचक है। यह प्रसिद्ध वज्रायना देवी तारा की पूजा से सम्बन्धित है। इस संयुक्त मुद्रा को छाती के सामने धारण करते हैं। मुद्रा मंत्र यह है– **'वज्र अमृत कुण्डली हन-हन हुम् फट्।'**

विधि

दोनों हथेलियों को बाहर की तरफ रखें, अंगुलियाँ ऊपर उठी हुई हों, अंगूठे अंगुलियों से 45^0 कोण पर हों तथा दोनों अंगूठें एक-दूसरे के प्रथम पोर पर क्रॉस करते हुए हों, तब वज्र अमृत कुण्डली मुद्रा बनती है।[3]

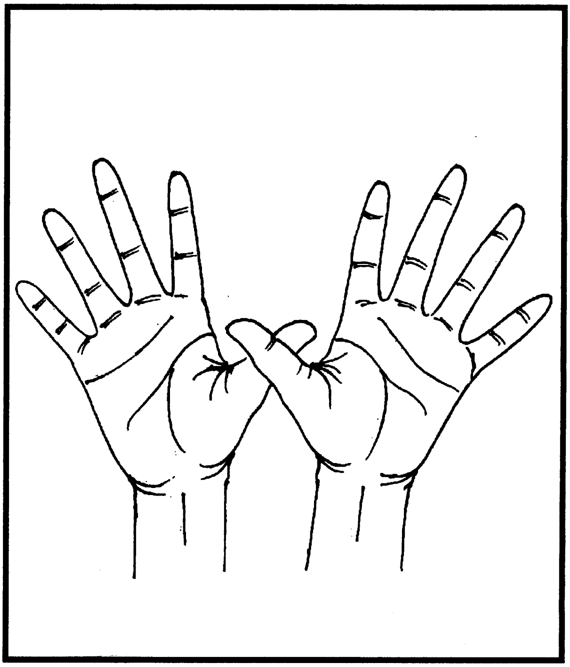

वज्र अमृत कुंडली मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए मानसिक उग्र भावों को शांत करती है तथा प्राण को स्थिर करती है। • इसके द्वारा अनाहत एवं आज्ञा चक्र जागृत होते हैं जो कि हृदय में सद्गुणों की स्थापना करते हैं। • थायमस एवं पिच्युटरी ग्रंथि को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा आन्तरिक हलन-चलन, हृदय की धड़कन, मनोवृत्तियाँ आदि को सुस्थिर करती है।

4. सर्व तथागत अवलोकिते मुद्रा

बौद्ध परम्परा के अनुयायियों द्वारा आचरित की जाने वाली यह संयुक्त मुद्रा है। इसे छाती के स्तर पर धारण की जाती है। 'म-म-मडोस्' की छः मुद्राओं में से यह चौथी मुद्रा है। विशेष रूप से यह मुद्रा सफेद टोरमा (पवित्र केक) को अर्पण करने और धागे के क्रॉस को अर्पित करने की सूचक है। इस मुद्रा का प्रयोग वज्रायना देवी तारा की पूजा हेतु किया जाता है।

दोनों हाथों में प्रतिबिम्ब की भाँति मुद्रा बनती है। मुद्रा मन्त्र यह है– **'नमः सर्वतथागता अवलोकिते ओम् संभर संभर हुम्।'**

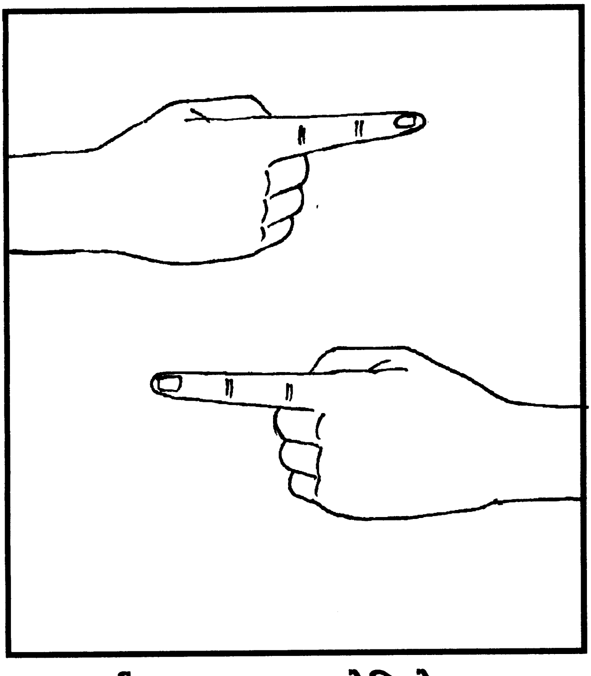

सर्व तथागत अवलोकिते मुद्रा

विधि

दायें हाथ से बायें हाथ को थोड़ा सा ऊपर रखते हुए दोनों हाथों को मध्यभाग में स्थिर करें, दायीं तर्जनी को बायीं तरफ और बायीं तर्जनी को दायीं तरफ फैलायें तथा शेष अंगुलियों एवं अंगूठों को मुट्ठी रूप में बांध लेने पर 'सर्व तथागत अवलोकिते' मुद्रा बनती है।[4]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा वायु एवं जल तत्त्व को प्रभावित करती है। इससे हृदय, फेफड़ें एवं गुर्दे सम्बन्धी रोगों से राहत मिलती है तथा रक्त, वीर्य, लसिका, मल-मूत्र आदि से सम्बन्धित समस्याओं का भी निराकरण होता है और ज्ञान विकसित होता है। • यह मुद्रा करने वाला विशुद्धि एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करता है। इससे आन्तरिक ज्ञान का विकास एवं शान्त चित्त की प्राप्ति होती है। • थायरॉइड एवं गोनाड्स (काम ग्रंथियाँ) के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा घाव भरने, कोलेस्ट्राल, कैलशियम, आयोडिन आदि की क्षति पूर्ति करते हैं।

5. ज्ञान अवलोकिते मुद्रा

जापानी बौद्ध परम्परा में अनुचरित यह मुद्रा वज्रायना देवी तारा की पूजा से सम्बन्धित है। यह 'म-म मडोस्' सम्बन्धी छः मुद्राओं में से पाँचवीं मुद्रा है। सामान्यतया यह मुद्रा ज्ञान के तारे (केतु) आदि की प्रतीक है तथा विशेष रूप से सफेद टोरमा चढ़ाने की सूचक है।

विधि

दायें हाथ में तर्जनी मुद्रा करें अर्थात् दायें हाथ को मध्य भाग में रखकर तर्जनी को बायीं ओर फैलायें तथा शेष अंगुलियों को भीतर में मोड़ें। बायें हाथ में ध्यान मुद्रा बनायें अर्थात् बायीं हथेली को मध्य भाग में दायीं तरफ मुख किये हुए रखें। इस भाँति ज्ञान अवलोकिते मुद्रा बनती है।[5]

मुद्रा मन्त्र है– **'ओम् ज्ञान अवलोकिते समन्त-स्फर्ण-रश्मि भाव समय महमनि दुरू दुरू हृदय ज्वालनी हुम्।'**

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से वायु एवं जल तत्त्व संतुलित होते हैं। यह प्राणवायु को ऊर्ध्वगामी एवं सकारात्मक बनाते हुए वायु सम्बन्धी दोषों का

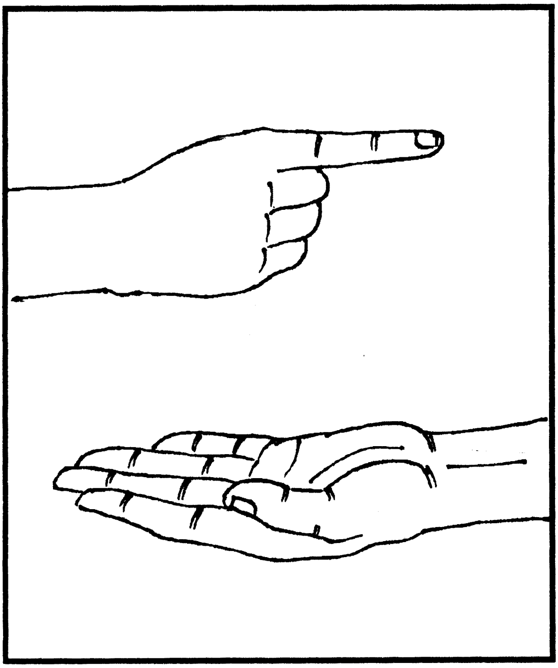

बान अवलोकिते मुद्रा

शमन करती है। • स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र को जागृत कर यह आध्यात्मिक एवं शारीरिक ऊर्ध्वता, बौद्धिक कुशाग्रता, शांत स्वभाव आदि गुणों का विकास करती है। • स्वास्थ्य केन्द्र एवं ज्योति केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा कषायों को नियन्त्रित, काम-वासना को शमित एवं निर्णयात्मक शक्ति को विकसित करती है।

6. समन्त बुद्धनम् मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा 'म-म मडोस्' सम्बन्धी मुद्राओं में से छठवीं मुद्रा है। यह मुद्रा सम्पूर्ण अन्तरिक्ष के महासत्ता की सूचक है। इसके अतिरिक्त सफेद टोरमा चढ़ाने एवं धागे के क्रास को प्रदर्शित करने की भी सूचक है। यह मुद्रा वज्रायना देवी तारा की आराधना निमित्त की जाती है।

मुद्रा मन्त्र यह है– **'नमः समन्त बुद्धनम् गृहेश्वरा प्रभा-ज्योतेना मह समये स्वाहा।'**

विधि

दोनों हाथों की अंगुलियों और अंगूठों को एक-दूसरे में अन्तर्ग्रथित कर देना, समन्त बुद्धनम् मुद्रा है।[6]

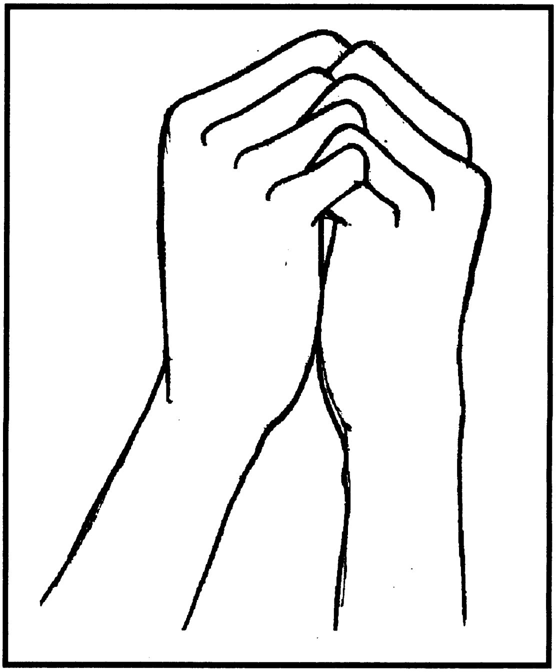

समन्त बुद्धनम् मुद्रा

सुपरिणाम

• अग्नि एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीर एवं नाड़ी शुद्धि और कब्ज को दूर करती है। इससे पेट के विभिन्न अवयवों की क्षमता बढ़ती है, हृदय शक्तिशाली बनता है तथा उग्रता, कषाय, चिंता आदि का निर्गमन होता है। • मणिपुर एवं आज्ञा चक्र को सम्यक गति देते हुए यह मुद्रा मानसिक, वाचिक एवं कायिक शान्ति प्रदान करती है। यह स्वभाव को शांत, मृदु एवं मधुर भी बनाती है। • एड्रिनल एवं पिच्युटरी ग्रन्थियों को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास कर व्यक्ति को साहसी, सहनशील एवं आशावादी बनाती है।

मुद्रा विधान व्यक्तित्व विकास का एक सफल प्रयोग है। विविध मुद्राओं के पीछे विभिन्न प्रयोजन रहे हुए है। कुछ में आध्यात्मिक जागरण को मुख्यता दी गई है तो कुछ में मानसिक तनावमुक्ति को, कुछ आत्मशुद्धिकरण की प्रेरक है तो कुछ शरीर शुद्धिकरण में सहायक। म-म-मडोस के विधान में प्रयुक्त मुद्राओं की संख्या भले ही कम है परन्तु इन मुद्राओं का प्रयोग शरीर की सम्पूर्ण तांत्रिक प्रणाली के नियमन में सहायक बनता है। इस अध्याय के माध्यम से आराधक वर्ग इनका प्रयोग अधिक जागरूकता एवं समर्पण पूर्वक करते हुए इनके सम्पूर्ण सुपरिणामों को प्राप्त करें यही इस प्रस्तुति का लक्ष्य है।

सन्दर्भ-सूची

1. *द काल्ट ऑफ तारा मेज़िक एण्ड रिचूवल इन तिब्बत, स्टीफल बेयर, पृ. 347*
2. *वही, पृ. 347*
3. *वही, पृ. 347*
4. *वही, पृ. 347*
5. *वही, पृ. 347*
6. *वही, पृ. 347*

●

अध्याय-8

जापानी बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक स्वरूप

मुद्रा प्रयोग एक सार्वभौमिक विधान है। आर्य सभ्यता में ही नहीं अपितु विश्व की भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में मुद्रा विज्ञान समादरित है। इसके अस्तित्व एवं महत्त्व को स्वीकार करते हुए जापान जैसा विकसित देश भी अपनी दैनिक चर्या में मुद्राओं को विशेष स्थान प्रदान करता है। मुद्रा प्रयोग मानव के सर्वांगीण उन्नति में प्रेरक बनती है तथा भौतिक एवं आध्यात्मिक प्रगति पथ पर आरूढ़ करती है।

1. अभिषेक गुह्य मुद्रा

यह हस्त मुद्रा जापानी बौद्ध परंपरा में भक्त एवं पुजारी के द्वारा धारण की जाती है। यह एक तान्त्रिक मुद्रा है।

विधि

दोनों हथेलियों को आमने-सामने रखकर मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को एक-दूसरे में अन्तर्ग्रथित करें, तर्जनी के अग्रभागों को एक-दूसरे से स्पर्श करवायें तथा अंगूठे बाहर की तरफ से Side में जुड़े हुए रहने पर, वह अभिषेक गुह्य मुद्रा कहलाती है।[1]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा करने से शरीरगत अग्नि एवं वायु तत्त्व प्रभावित होते हैं। इससे गैस संबंधी विकृतियाँ तत्क्षण शान्त होती है। मन की स्थिरता एवं एकाग्रता में विकास होता है। मस्तिष्क का स्नायुतंत्र शक्तिशाली बनता है। सिरदर्द, अनिद्रा आदि रोगों का शमन होता है। • मणिपुर एवं अनाहत चक्र को जागृत कर यह मुद्रा आध्यात्मिक एवं शारीरिक बल एवं इन्द्रिय जय आदि के वर्धन में सहायक

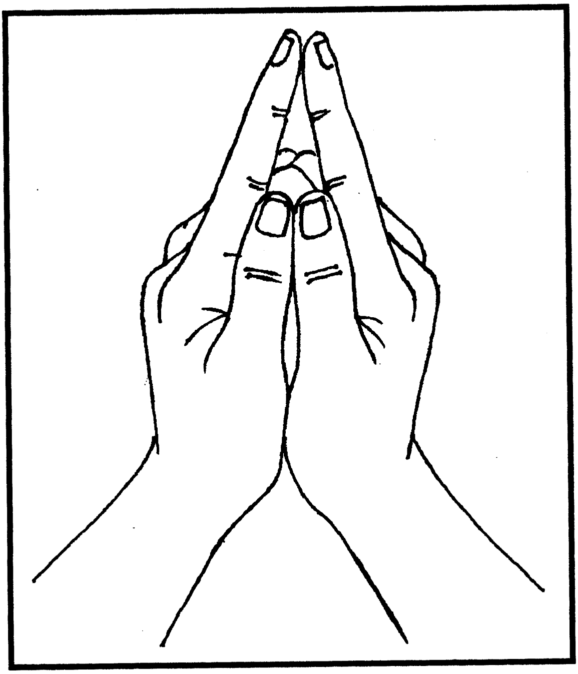

अभिषेक गुह्य मुद्रा

बनती है। यह मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस एवं पाचन विकृतियों को भी दूर करती है। • आनन्द एवं तैजस केन्द्र के ऊपर इस मुद्रा का विशेष प्रभाव पड़ता है। यह व्यक्ति को अन्तर्मुखी करते हुए काम-वासनाओं का परिशोधन करती है। • एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार यह मुद्रा बालकों को बीमार होने से एवं मंदता आदि से बचाती है तथा पित्ताशय, लीवर, रक्तचाप, प्राणवायु आदि का संतुलन करती है।

2. अधिष्ठान मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा विभिन्न धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न करने हेतु वहाँ के भक्त या पुजारी द्वारा धारण की जाती है।

अधिष्ठान का मुख्य अर्थ होता है वासस्थान, रहने का स्थान आदि। सांख्य के अनुसार भोक्ता और भोग का संयोग अधिष्ठान कहलाता है।[2]

यहाँ अधिष्ठान मुद्रा का अभिप्राय देवी-देवताओं को भोग चढ़ाना अथवा उनके निवास स्थान पर उनकी पूजा करना हो सकता है।

विधि

दायें हाथ को स्वयं के अभिमुख करते हुए अंगूठा और कनिष्ठिका को हथेली की तरफ मोड़ें और उनके अग्रभागों को संयुक्त करें, शेष तीन अंगुलियाँ ऊपर की ओर उठी हुई रहें।

बायें हाथ की अंगुलियाँ जप माला धारण की हुई अंदर की तरफ मुड़ी रहें और यह हाथ दायें हाथ की side में रहें, इस तरह अधिष्ठान मुद्रा बनती है।[3]

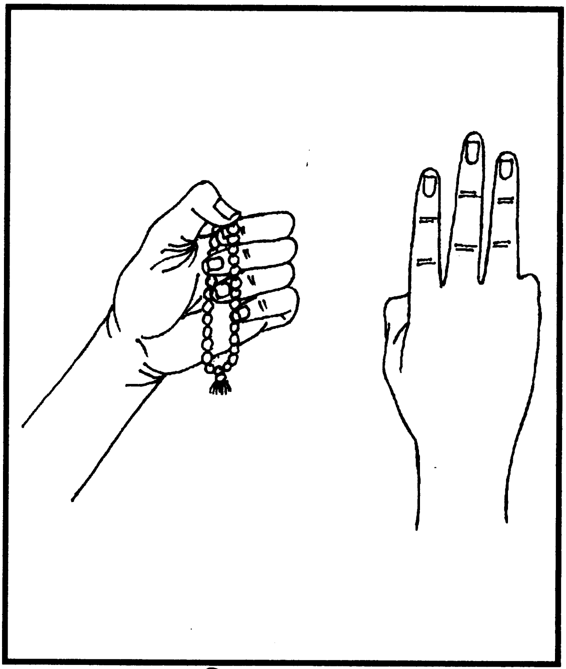

अधिष्ठान मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करती है। इन दोनों के संयोग से शरीर में आवश्यक संतुलन बना रहता है। स्नायुतंत्र की स्थिति स्थापकता, चेहरे की सुंदरता, रोग प्रतिरोधक क्षमता में विकास होता है। यह हार्ट अटैक, लकवा, मूर्च्छा, अपच आदि का निवारण करती है। • इसका प्रभाव मणिपुर एवं आज्ञा चक्र पर पड़ता है। इससे पाचक रसों का उत्पादन , शरीरगत रक्त, शर्करा, जल, सोडियम आदि तत्त्वों का संतुलन होता है। • यह मुद्रा पिच्युटरी, एड्रिनल एवं पेन्क्रियाज पर प्रभाव डालते हुए निर्णायक शक्ति,

स्मरण शक्ति, देखने-सुनने की शक्ति में वर्धन करती है। इसी के साथ तीव्र परख शक्ति, अथक कार्यशक्ति एवं साहस भी उत्पन्न करती है।

3. अग्निचक्र शमन मुद्रा-1

यह मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में प्रचलित है तथा वहाँ के भक्त या पुजारियों द्वारा धारण की जाती हैं। यह मुद्रा अपने नाम के अनुरूप अग्निचक्र के अधिक उत्तेजित हो जाने पर उसे संतुलित करने के लिए अथवा अग्नि संबंधित किसी देव को शान्त करने के लिए की जाती होगी।

विधि

दोनों हथेलियाँ ऊपर की ओर प्रसरित, तर्जनी को छोड़कर शेष तीन अंगुलियाँ अंदर की ओर मुड़ी हुई, अंगूठे का अग्रभाग मध्यमा के नीचे के Joint का स्पर्श करता हुआ और तर्जनी अंगूठे के ऊपर मुड़ी हुई रहें तथा हथेलियों की बाह्य किनारियाँ स्पर्श करती हुई रहने पर अग्निचक्र शमन मुद्रा बनती है।[4]

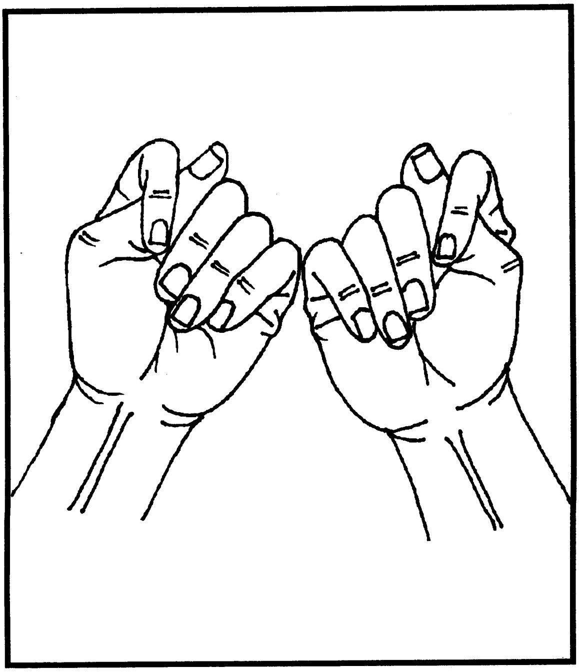

अग्निचक्र शमन मुद्रा-1

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व का संतुलन करती है। इससे शरीर की कान्ति, स्निग्धता एवं सौन्दर्य में वृद्धि होती है। • यह मुद्रा मणिपुर एवं मूलाधार चक्रों को जागृत करते हुए रक्त, शर्करा, जल, सोडियम, फॉस्फोरस का नियमन करती है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह मुद्रा स्वप्नदोष, हस्तदोष, शारीरिक गर्मी, चर्बी, भोगेच्छा आदि को नियंत्रित करती है तथा रक्तचाप (B.P.) एसिडिटी, सिरदर्द आदि में राहत देती है।

4. अग्निचक्र शमन मुद्रा-2

जापानी बौद्ध परम्परा में प्रस्तुत मुद्रा का दूसरा प्रकार भी वहाँ के पूजारियों और श्रद्धालुओं द्वारा अपनाया जाता है। यह मुद्रा किंचित अन्तर के साथ पूर्ववत ही बनती है।

विधि

इस मुद्रा में अंगुलियाँ हथेली की तरफ मुड़ी हुई और अंगूठा अंगुलियों के भीतर रहता है तथा दोनों मुट्ठियों को समीप लाते हुए कनिष्ठिका के ऊपरी जोड़ को स्पर्श किया जाता है।[5]

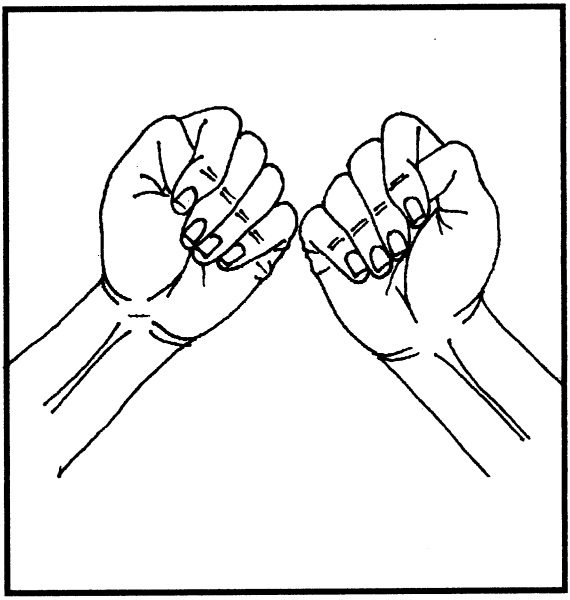

अग्निचक्र शमन मुद्रा-2

सुपरिणाम

• अग्निचक्र शमन मुद्रा के अभ्यास से जल एवं अग्नि तत्त्व प्रभावित होते हैं। इनके संयोग से पित्त से उभरने वाली बीमारियों का शमन, मूत्र दोष का परिहार एवं गुर्दा स्वस्थ बनता है। • स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा पेट के परदे के नीचे स्थित सभी अवयवों के कार्य का नियमन करती है। शरीरस्थ रक्त शर्करा, जल, सोडियम आदि की मात्रा को संतुलित करती है। • एड्रिनल, पेन्क्रियाज एवं नाभि चक्र के क्रियाकलापों को सम्यक एवं संतुलित करने में भी यह मुद्रा सहायक बनती है।

5. अग्नि ज्वाला मुद्रा

अग्नि ज्वाला अर्थात आग की लपटे। यहाँ अग्नि ज्वाला मुद्रा के द्वारा अग्नि देवता को आह्वान किया जाता होगा अथवा इस मुद्रा के द्वारा जल पिप्पली का वृक्ष अथवा धव का वृक्ष, जिसमें लाल फूल लगते हैं उसे दर्शाया जाता होगा, क्योंकि अग्नि ज्वाला का एक अर्थ धव का वृक्ष और जल पिप्पल का वृक्ष भी है।[6]

यह मुद्रा भी जापान के बौद्ध अनुयायियों में विभिन्न धार्मिक कार्यों के निमित्त की जाती है।

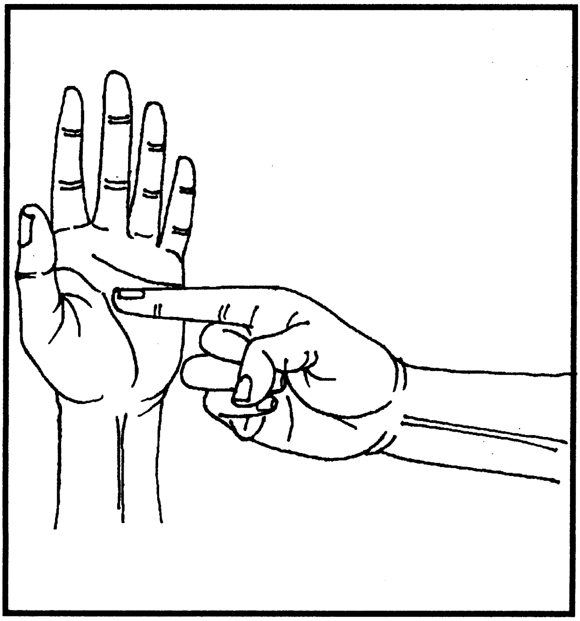

अग्नि ज्वाला मुद्रा

विधि

बायां हाथ इस प्रकार रखें कि उसके आगे और पीछे के दोनों हिस्से दिख सकें। दायें हाथ की मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका हथेली की तरफ मुड़ी हुई, अंगूठा उनके ऊपर तथा तर्जनी का अग्रभाग बायीं हथेली को स्पर्श करता हुआ रहने पर अग्नि ज्वाला मुद्रा बनती है।[7]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं वायु तत्त्वों को संतुलित करते हुए शरीर के प्रत्येक भाग को नियंत्रित करती हैं। • इस मुद्रा का प्रभाव अनाहत एवं विशुद्धि चक्र पर पड़ता है जिससे ज्ञान ग्रन्थियाँ जागृत होती हैं। • विशुद्धि एवं आनन्द केन्द्र को सक्रिय एवं संतुलित करते हुए यह मुद्रा स्वभाव को उदार, शांत एवं चित्त को एकाग्र बनाती है। इससे काम-वासनाओं पर नियंत्रण होता है और भावधारा निर्मल एवं परिष्कृत बनती है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह ऊर्जा उत्पादन, चयापचय, विष प्रतिकार, पाचन कार्य एवं मस्तिष्किय संतुलन करती है। इससे शैशव अवस्था में बच्चों के शारीरिक विकास एवं रोग निरोध आदि में भी सहायता मिलती है।

6. अग्निशाला मुद्रा

जापानी बौद्ध वर्ग में स्वीकृत यह तान्त्रिक मुद्रा ध्यान मुद्रा के समान दिखती है। इसे बौद्ध परंपरा में पुजारियों और श्रद्धालुओं द्वारा अपनाया जाता है।

विधि

दायीं हथेली के ऊपर बायीं हथेली को इस भाँति रखें कि अंगुलियाँ एक-दूसरे का स्पर्श न कर सकें, किन्तु अंगूठों के अग्रभाग एक-दूसरे का स्पर्श कर सकें, इस तरह अग्निशाला मुद्रा बनती है।[8]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करता है। इससे शरीर की जड़ता, भारीपन, दुर्बलता आदि का निवारण होता है, हृदय सम्बन्धी रोगों का उपशमन होता है, एकाग्रता सधती है एवं ध्यान में प्रगति होती है। • मूलाधार एवं अनाहत चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा आरोग्य, कार्य कुशलता, ओजस्विता एवं ऊर्ध्वगति में सहयोगी बनती है। • यौन एवं

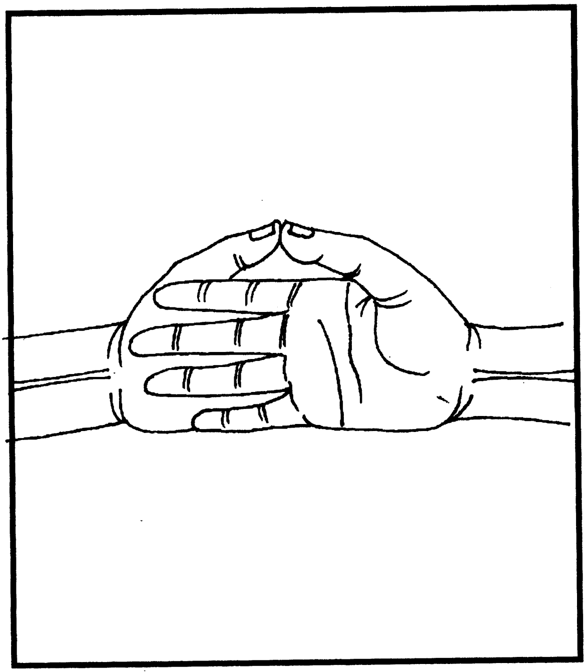

अग्निशाला मुद्रा

थायमस ग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा बच्चों के नैतिक, शारीरिक एवं बौद्धिक विकास में सहयोगी बनती है। यह देह में स्थित जल तत्त्व का संतुलन एवं ज्ञानतंतु, मज्जा कोष, बोन-मेरो आदि का भी नियमन करती है।

7. आह्वान मुद्रा

आह्वान का शाब्दिक अर्थ है- बुलाना, पुकारना। यहाँ आह्वान का तात्पर्य मंत्रोच्चार के द्वारा देवी-देवताओं को आमन्त्रित करना है। जैन, हिन्दू एवं बौद्ध तीनों परम्पराओं में आह्वान मुद्रा का उल्लेख एवं विवरण प्राप्त होता है, किन्तु उसकी विधियों में अन्तर है।

जापानी बौद्ध परम्परा में इसे तान्त्रिक मुद्रा कहा गया है इसका प्रयोग मन्त्रोच्चार के साथ आह्वान के लिए ही किया जाता है। यह मुद्रा धर्मगुरुओं द्वारा निम्न विधि से की जाती है-

विधि

बायीं हथेली को हृदय की ओर रखते हुए अंगुलियों को ऊपर और किंचित बायीं तरफ करें। दायीं हथेली बायीं हथेली को नीचे की ओर से पकड़ती हुई और दायां अंगूठा बायें हाथ की कनिष्ठिका के ऊपर से हथेली की ओर स्पर्श करता हुआ रहे, तब आह्वान मुद्रा बनती है।[9]

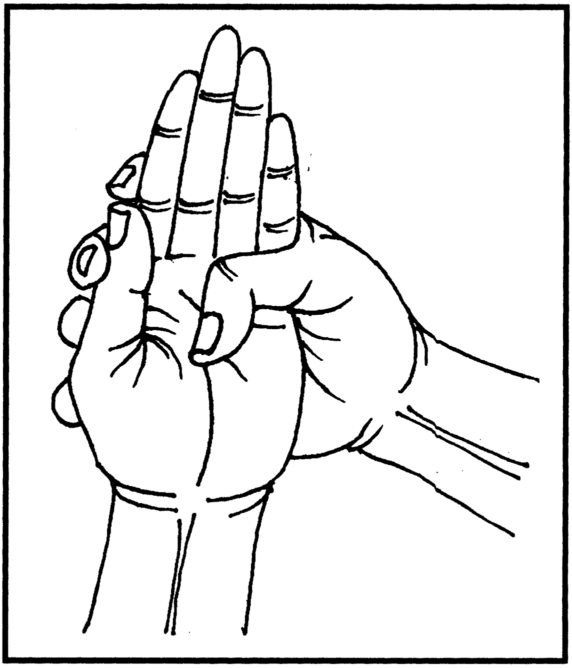

आह्वान मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा शरीरगत जल एवं वायु तत्त्व को प्रभावित करते हुए रक्त, वीर्य, लसिका आदि के प्रवाह को संतुलित करती है। पांचन तंत्र को स्वस्थ एवं सक्रिय करती है। • यह मुद्रा स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र को प्रभावित करते हुए बच्चों में संस्कारों का जागरण तथा उनके शारीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक विकास में सहयोग करती है। • यह मुद्रा आनंद एवं स्वास्थ्य केन्द्र को सक्रिय करते हुए अन्य केन्द्रों के विकास में भी सहायक बनती है।

8. अजण्ट-टेम्बोरिन्-इन् मुद्रा

भारत में इसे धर्मचक्र मुद्रा कहते हैं। यह धर्मचक्र अथवा सृष्टि नियमों के चक्र घूमने की सूचक है। जापानी बौद्ध परम्परा में यह मुद्रा निम्न प्रकार से की जाती है–

विधि

दायें हाथ का अंगूठा और तर्जनी के अग्रभाग को जोड़ते हुए शेष तीन अंगुलियों को ऊपर की ओर रखें। बायें हाथ की मध्यमा और अनामिका को हथेली तरफ मोड़ते हुए तर्जनी को ऊपर उठायें, कनिष्ठिका हथेली की ओर घुमी हुई तथा अंगूठा ऊपर उठा हुआ रहे।

बायें हाथ की तर्जनी का अग्रभाग दायें हाथ के अंगूठे के अग्रभाग के समानान्तर हो, तब अजण्ट-टेम्बोरिन्-इन् मुद्रा कहलाती है।[10]

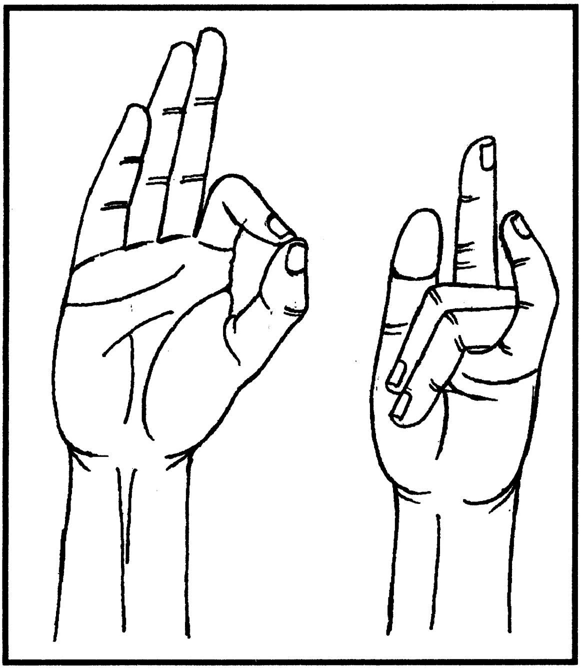

अजण्ट-टेम्बोरिन्-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं जल तत्त्व को संतुलित करते हुए जठर, तिल्ली, यकृत, एड्रिनल आदि में अग्नि रस एवं पाचक रसों को उत्पन्न करती है तथा

शरीर के तापमान आदि को नियंत्रित करती है। • मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा शरीर में रक्त शर्करा, जल तत्त्व और सोडियम को नियंत्रित करती है। पेट के परदे के नीचे स्थित सभी अवयवों के कार्य का नियमन भी करती है। • एड्रिनल, पेन्क्रियाज एवं नाभि चक्र के संचालन में यह विशेष सहयोग प्रदान करती है। पित्ताशय, लीवर, रक्त अभिसंचरण, रक्तचाप, प्राणवायु के संतुलन एवं नाभि चक्र के स्थानांतरण में भी सहयोगी बनती है।

9. अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा-1

उपर्युक्त मुद्रा जापान में 'अन्-आय्-इन्' के नाम से भी प्रसिद्ध है। विद्वानों के उल्लेखानुसार यह मध्यम वर्ग और क्षुद्र जीवन के लिए लागू होती है। यह संयुक्त मुद्रा छाती के सामने धारण की जाती है। दोनों हाथों की मुद्रा समान होती है।

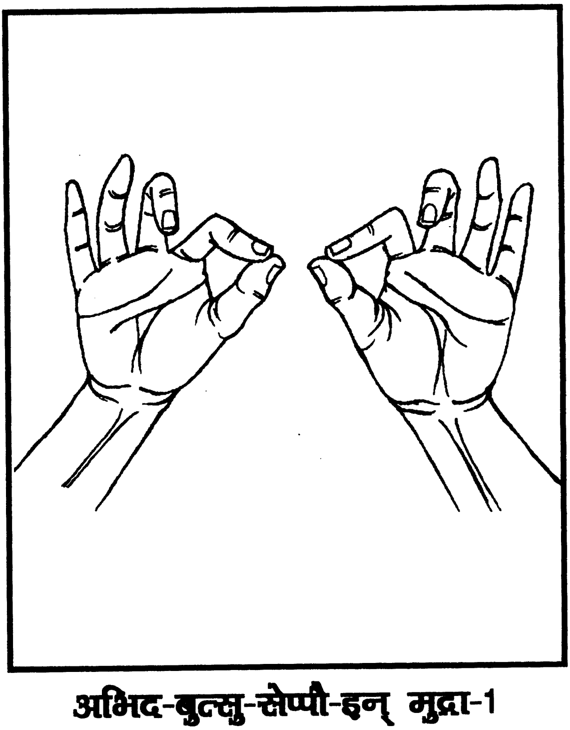

अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा-1

विधि

हथेलियों को बाहर की तरफ करते हुए तर्जनी और अंगूठों के प्रथम पोर को मिलायें, मध्यमा को हथेली की ओर मोड़ें, अनामिका उससे भी कम मुड़ी

हुई तथा कनिष्ठिका ऊपर की ओर जाती हुई रहना, 'अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन्' मुद्रा है।[11] इसमें दोनों हाथों को निकट रखा जाता है।

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से जल एवं आकाश तत्त्व का संतुलन होता है। इससे शारीरिक रूखापन एवं रक्तादि विकार दूर होते हैं। • यह मुद्रा सहस्रार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए संशय-विकल्प आदि को शान्त कर यथार्थ ज्ञान को उपलब्ध करवाती है। मस्तिष्क में मेरुजल का संचालन कर कामेच्छाओं पर नियंत्रण करती है। • स्वास्थ्य एवं ज्ञान केन्द्र को जागृत करते हुए काम ग्रंथियों के माध्यम से सम्पूर्ण स्वास्थ्य का नियमन करती है तथा अन्य केन्द्रों के विकास को सुगम बनाती है। • एक्युप्रेशर प्रणाली के अनुसार यह मुद्रा शरीर स्थित जल सोडियम, पोटेशियम आदि का संतुलन एवं अन्य समस्त ग्रंथियों का सम्यक संचालन करती है और ज्ञान ग्रंथियों को जागृत कर महाज्ञानी एवं महागुणी बनाती है।

10. अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा-2

इस मुद्रा के छः प्रकारान्तर हैं। यह दूसरा प्रकार मध्यम वर्ग की मध्यम श्रेणी के लिए है। शेष वर्णन पूर्ववत समझें।

विधि

हथेलियों को बाहर की तरफ करते हुए अंगूठा और मध्यमा के प्रथम पोर को मिलायें, तर्जनी और अनामिका को किंचित हथेली की तरफ मोड़ें, कनिष्ठिका ऊपर की ओर रहें तथा दोनों हाथों का समीप रहना, अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा कहलाती है।[12]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के द्वारा वायु तत्त्व संतुलित होता है। प्राण वायु स्थिर होती है। हृदय एवं रक्त अभिसंचरण की क्रिया नियंत्रित होती है। मानसिक शक्ति एवं स्मरण शक्ति का पोषण होता है। • यह मुद्रा विशुद्धि एवं अनाहत चक्र को जागृत कर शरीर में ऊर्जा का उत्पादन करती है तथा मुद्रा धारक को महाज्ञानी, शोकहीन, शान्त चित्त, निरोगी, दीर्घजीवी बनाती है। इससे वक्तृत्व, कवित्व, लेखन आदि कलाओं में भी दक्षता आती है। • यह मुद्रा आनंद एवं विशुद्धि

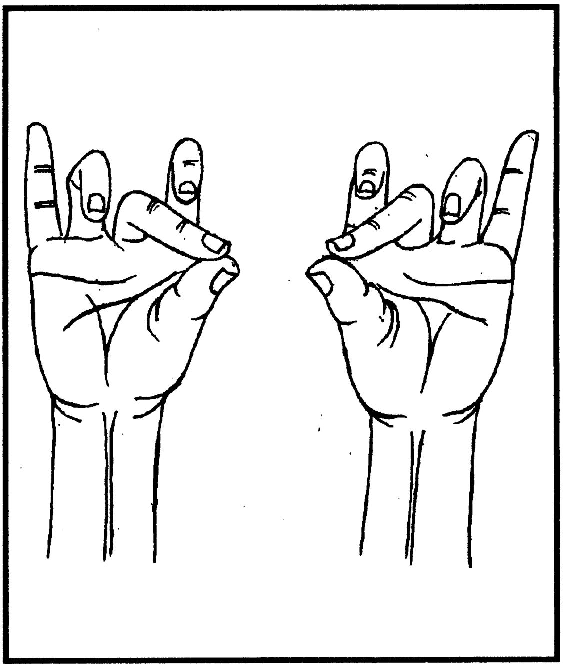

अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा-2

केन्द्र को सक्रिय करते हुए उच्चतर चेतना एवं आत्मिक शक्तियों का विकास करती है। इससे भावों का निर्मलीकरण एवं परिशोधन होता है। यह युवावस्था के विकास में भी महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान करती है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह मुद्रा रक्त आपूर्ति, बच्चों में स्फूर्ति एवं सत्प्रवृत्तियों का विकास करती है।

11. अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा-3

अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् नामक मुद्रा का यह तीसरा प्रकार मध्यम वर्ग के उत्तम श्रेणियों के लिए है। शेष वर्णन पूर्ववत समझें।

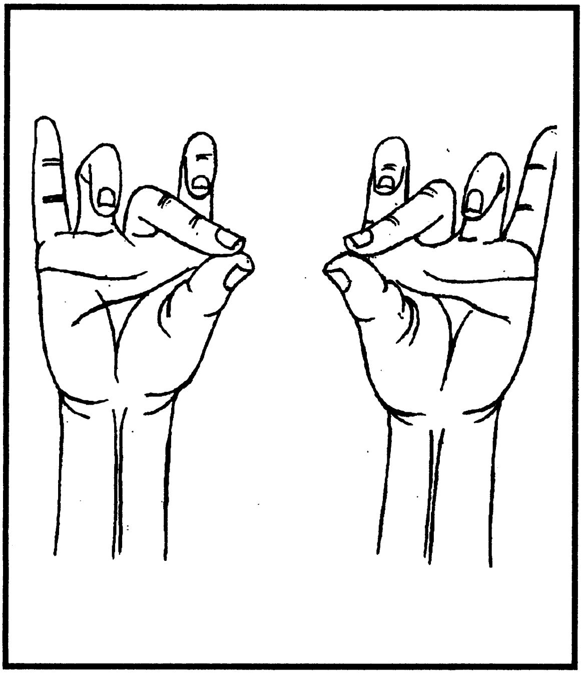

अभिद-बुत्सु-सेप्पी-इन् मुद्रा-3

विधि

इस तीसरे प्रकार में अंगूठे के प्रथम पोर को अनामिका के प्रथम पोर से स्पर्श करवाया जाता है। शेष विधि पूर्ववत समझनी चाहिए।[13]

12. अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा-4

यह चौथा प्रकार निम्न वर्ग की निम्न श्रेणियों के लिए है। शेष वर्णन पूर्ववत समझें।

विधि

इस मुद्रा में दायां हाथ ऊपर की ओर तथा बायां हाथ नीचे की ओर होता है। शेष विधि तीसरे प्रकार के समान है।[14]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश तत्त्व को प्रभावित करते हुए शरीर में रहे विष द्रव्यों एवं विजातीय तत्त्वों को दूर करती है तथा हृदय रोग एवं तत्सम्बन्धी समस्याओं

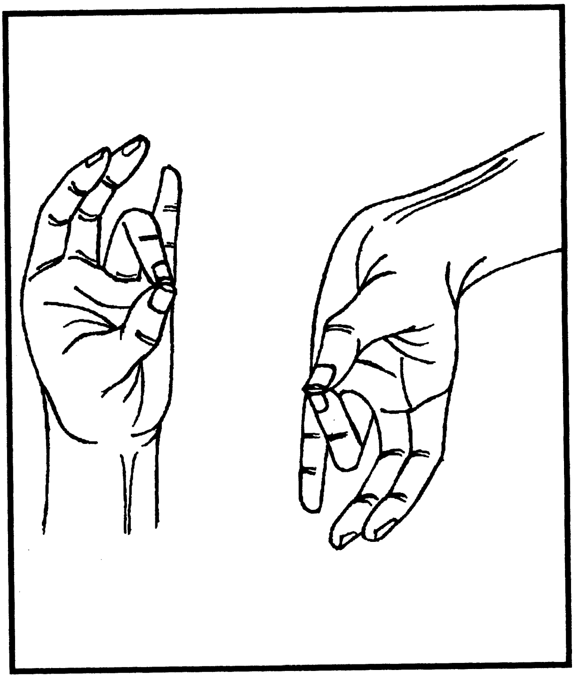

अभिद-बुत्सु-सेप्पी-इन् मुद्रा-4

का उपशमन करती है। • इस मुद्रा के प्रयोग से आज्ञा एवं सहस्रार चक्र जागृत होते हैं। यह मुद्रा ज्ञान ग्रंथियों को जागृत, बुद्धि को कुशाग्र, मन को एकाग्र एवं विकल्पों को शान्त करती है। इससे असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति भी होती है। • ज्ञान एवं दर्शन केन्द्र पर इस मुद्रा का विशेष प्रभाव पड़ता है। इनके जागरण से पूर्व जन्म की स्मृति तरोताजा हो सकती है।

13. अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा-5

उपर्युक्त मुद्रा का यह पाँचवाँ प्रकार मध्यम वर्ग के मध्यम जीवन यापन के लिए है। शेष वर्णन पूर्ववत समझें।

विधि

इस मुद्रा में अंगूठे का प्रथम पोर मध्यमा के प्रथम पोर से स्पर्श करता है, तर्जनी और अनामिका हथेली की ओर मुड़ी हुई और कनिष्ठिका ऊपर उठी रहती है। सीधे हाथ की अंगुलियाँ ऊपर की ओर तथा बायें हाथ की अंगुलियाँ नीचे की तरफ रहती है।[15]

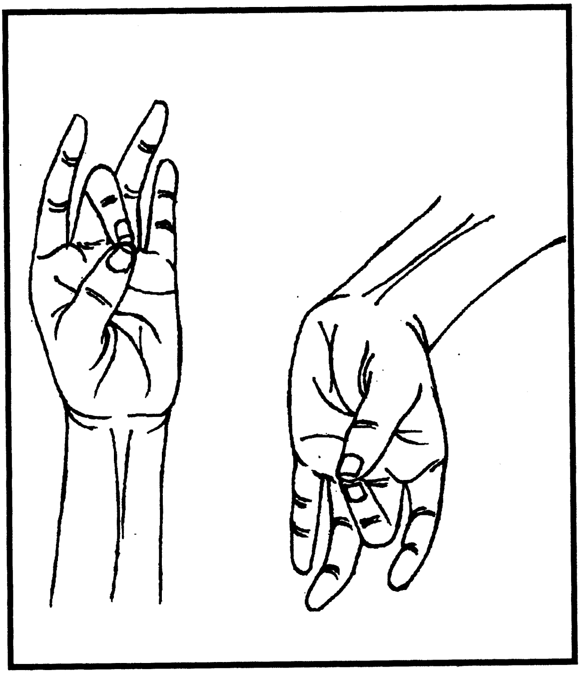

अभिद-बुत्सु-सेप्पी-इन् मुद्रा-5

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व का संतुलन कर स्वस्थ शरीर का निर्माण करती है। • यह मुद्रा मूलाधार एवं अनाहत चक्र को जागृत करते हुए इन्द्रिय निग्रह, वक्तृत्व एवं कवित्व शक्ति आदि में वर्धन करती है। • एक्युप्रेशर स्पेशलिस्ट के अनुसार यह मुद्रा विशेष रूप से थायमस एवं यौन ग्रंथियों को प्रभावित करती है। इससे बालकों के विकास में गति आती है और उनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है।

14. अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा-6

उपर्युक्त मुद्रा का यह छठवाँ प्रकार मध्यम वर्ग के उत्तम जीवन के लिए है। शेष वर्णन पूर्ववत समझें।

विधि

इस मुद्रा में अंगूठे के प्रथम पोर को तर्जनी के प्रथम पोर से स्पर्श करवाते हैं, मध्यमा और अनामिका हथेली तरफ झुकी हुई और कनिष्ठिका ऊपर उठी

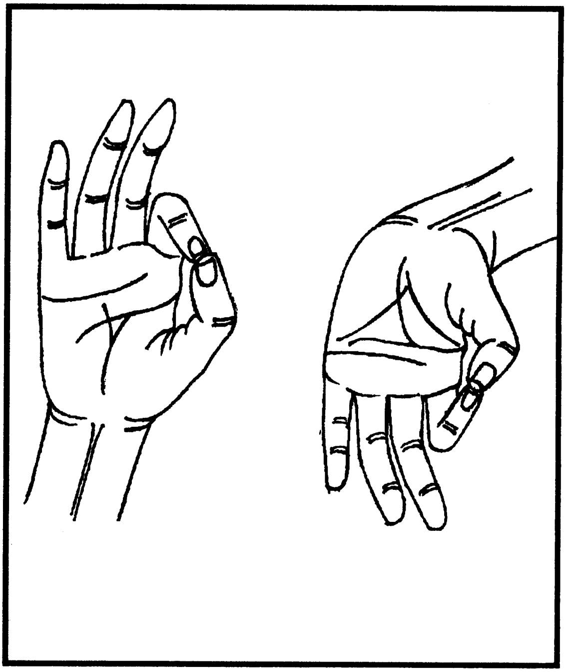

अभिद-बुत्सु-सेप्पी-इन् मुद्रा-6

रहती है। इसमें भी पूर्व मुद्रावत दायें हाथ की अंगुलियाँ ऊपर की ओर तथा बायें हाथ की अंगुलियाँ नीचे की तरफ रहती है।[16]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं आकाश तत्त्वों को संतुलित करती है। इससे रक्त, वीर्य, लसिका, मल-मूत्र आदि के विकार ठीक होते हैं तथा नि:स्वार्थ भावों का जागरण होता है। • यह मुद्रा अनाहत एवं आज्ञा चक्र को प्रभावित करते हुए आन्तरिक गुणों को जागृत करती है। • आनंद एवं दर्शन केन्द्र को सक्रिय एवं संतुलित करते हुए यह मुद्रा भावों को निर्मल एवं परिष्कृत करती है तथा कामवासना एवं क्रोधादि कषायों का उपशमन करती है।

15. अन्-आय-इन् मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा जापान में अन्-आय-इन्, चीन में अन्-वेइ-यिन् और भारत में वितर्क मुद्रा के नाम से जानी जाती है। इसे जापानी बौद्ध परम्परा के धर्मगुरु और श्रद्धालु वर्ग प्रसंग विशेष पर अपनाते हैं।

उपलब्ध सन्दर्भों के आधार पर इसमें बायां हाथ प्रवचन मुद्रा का सूचन करता है तथा दायाँ हाथ आध्यात्मिक एवं धार्मिक विवादों के समय पुस्तक धारण करने का सूचक माना गया है। सम्भवत: धार्मिक विवादों का अन्त करने के लिए एक हाथ में पुस्तक रखते हैं ताकि सटीक समाधान किये जा सकें। दूसरे हाथ के संकेतों द्वारा वाणी का प्रयोग किया जाता है जिसे प्रवचन मुद्रा की उपमा दी है। इस मुद्रा को कमर के स्तर पर धारण करते हैं।

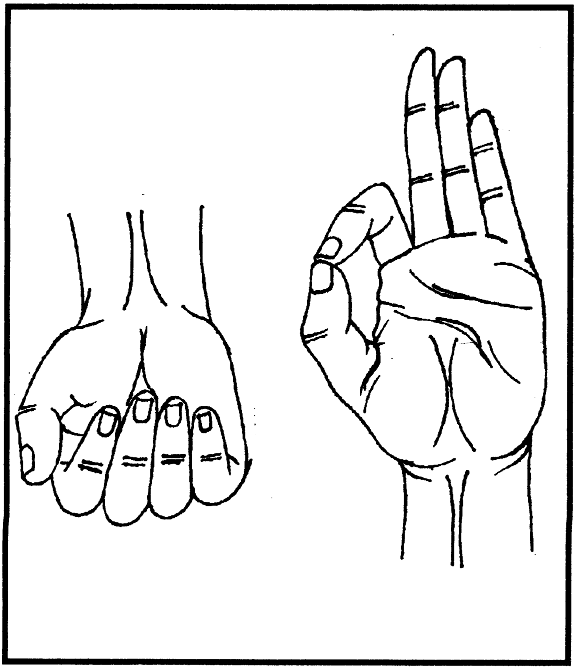

अन्-आय-इन् मुद्रा

विधि

बायीं हथेली को बाहर की तरफ रखते हुए अंगूठा और तर्जनी के प्रथम पोर को मिलायें तथा शेष अंगुलियों को ऊपर की ओर करें। दायें हाथ की अंगुलियों को पुस्तक धारण की हुई मुद्रा के समान बनायें, इस तरह अन्-आय-इन् मुद्रा बनती है।[17]

सुपरिणाम

● इस मुद्रा की साधना पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व को संतुलित करती है। इससे शरीर एवं नाड़ी शोधन, पेट के विभिन्न अवयवों की क्षमता में वर्धन, कब्ज का शमन तथा पाचन शक्ति का संतुलन होता है। ● मूलाधार एवं मणिपुर चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा जल, फॉस्फोरस, रक्त शर्करा और सोडियम का संतुलन करती है। ● यह मुद्रा एड्रिनल, पेन्क्रियाज एवं यौन ग्रंथियों के स्राव को नियंत्रित कर पित्ताशय, लीवर, रक्त अभिसंचरण, रक्तचाप, प्राणवायु आदि का संतुलन करती है।

16. अन्-आय-शोशु-इन् मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा जापान और चीन की बौद्ध परम्पराओं में भक्त वर्ग एवं पुजारियों द्वारा धारण की जाती हैं। यह इससे पूर्वकथित मुद्रा का ही एक प्रकारान्तर है। इसे शान्ति स्थापित करने, एकत्रित करने एवं स्वर्ग लोक में किसी का स्वागत करने की सूचक मुद्रा माना गया है।

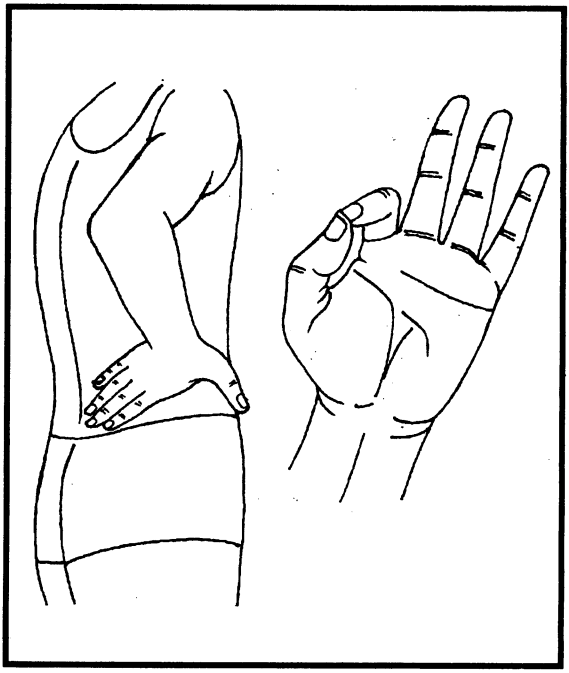

अन्-आय्-शोशु-इन् मुद्रा

विधि

दायें हाथ को हल्का सा मोड़ते हुए अंचित मुद्रा के समान कमर के स्तर पर मध्य में धारण करें और बायें हाथ में पूर्व मुद्रा के समान ही मुद्रा करें। कुछ हद तक यह मुद्रा अभय मुद्रा से भी सम्बन्ध रखती है। दायें हाथ को थोड़ा घुमाने पर यह तुष्टीकरण की मुद्रा भी दर्शाती है।[18]

सुपरिणाम

• पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा हड्डी, त्वचा, नाखुन, बाल आदि को सुंदर एवं मजबूत बनाती है। शारीरिक दुर्बलता, मोटापा, जड़ता आदि को दूर कर चित्त को शांत एवं ध्यान में एकाग्रता उत्पन्न करती है। • यह मुद्रा विशुद्धि, सहस्रार एवं मूलाधार चक्र को प्रभावित करती है। इससे मुख्य रूप से ज्ञान पक्ष मजबूत बनता है तथा आरोग्य रक्षता एवं दीर्घ जीवन की प्राप्ति होती है। • पिनियल, थायरॉइड एवं यौन ग्रंथियों को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा शरीरस्थ यौन ग्रंथियाँ, कैल्शियम, फॉस्फोरस आदि का संतुलन करती है। प्रजनन, वंध्यत्व एवं मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याओं का भी निवारण करती है।

17. अंजलि मुद्रा

अंजलि मुद्रा के अनेक प्रकारों में यह प्रकार जापानी बौद्ध परंपरा के श्रद्धालुओं द्वारा धारण किया जाता है। इसे भारत में अंजलि या अधर मुद्रा और जापान में अदर गस्सहौ मुद्रा भी कहा जाता है।

यह तान्त्रिक मुद्रा किसी के प्रति अपना नमन और वंदन प्रस्तुत करने की सूचक है। यह संयुक्त मुद्रा पत्र मुद्रा के समान है।

विधि

दोनों हाथों की किनारियों को परस्पर मिलाते हुए अंगुलियों को आगे की ओर बढ़ायें। इसमें हथेलियाँ और कनिष्ठिका की बाह्य किनारियाँ परस्पर में मिली हुई रहें तथा हाथों को थोड़ा सा इस तरह घुमायें जैसे कि छोटे पदार्थ को ग्रहण करने के लिए हथेलियाँ झुकी हुई हों, इस भाँति अंजलि मुद्रा बनती है।[19]

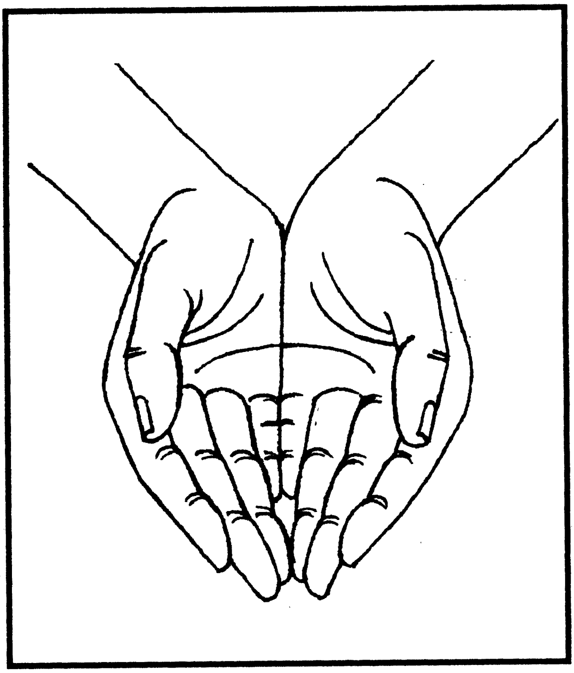

अंजलि मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व में संतुलन स्थापित करती है। इससे मांस, चर्बी, पाचन तंत्र आदि संतुलित रहते हैं तथा शरीर सुंदर, सुगठित, मजबूत, बलशाली एवं कान्तिमय बनता है। • मूलाधार एवं मणिपुर चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस एवं पाचन विकृतियों का निवारण करती है। • गोनाड्स एवं एड्रिनल ग्रंथियों को प्रभावित करते हुए यह नेतृत्व गुण में विकास, चारित्र निर्माण, रक्त परिभ्रमण, प्राणवायु आदि का संतुलन करती है।

18. अनुचित्त मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा के श्रद्धालुओं द्वारा धार्मिक अनुष्ठानों में अपनायी जाती है। अनुचित्त अर्थात चित्त का अनुसरण करने वाली। इस मुद्रा के प्रभाव से इन्द्रिय चेतना अतीन्द्रिय शक्ति के अभिमुख होती है।

विधि

दोनों हथेलियों को एक-दूसरे के समीप करें, मध्यमा और कनिष्ठिका को परस्पर में गुंफित करें, तर्जनी और अनामिका को थोड़ा सा मोड़ते हुए उनके अग्रभागों का एक-दूसरे से स्पर्श करवायें तथा दोनों अंगूठों की बाह्य किनारियाँ परस्पर संयुक्त रहने पर अनुचित्त मुद्रा बनती है।[20]

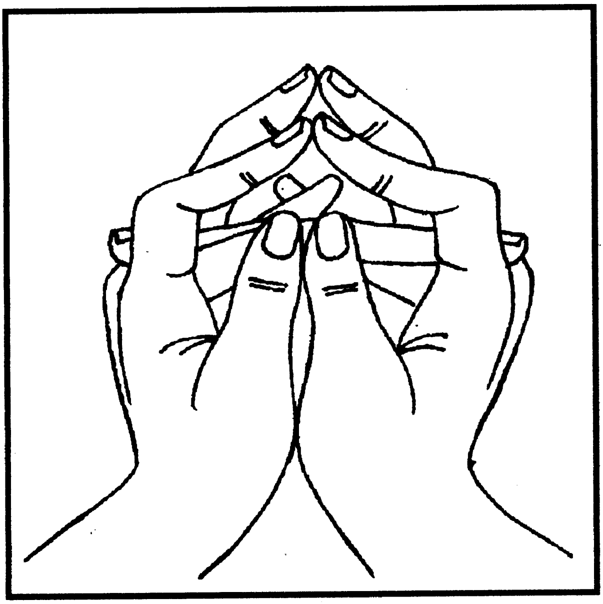

अनुचित्त मुद्रा

सुपरिणाम

• अनुचित्त मुद्रा धारण करने से अग्नि तत्त्व संतुलित होता है। यह पाचन तंत्र को संतुलित करते हुए क्रोधादि आवेगों को शांत करती है। • यह मुद्रा मणिपुर चक्र को जागृत करते हुए शरीर में रक्त, शर्करा, जल, सोडियम, अग्नि आदि तत्त्वों को संतुलित रखती है। इससे तनाव नियंत्रण एवं चारित्र विकास भी होता है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार शर्करा, रक्तचाप, प्राणवायु, पाचक रसों के संतुलन में यह मुद्रा बहु उपयोगी है।

19. अन्जन्-इन् मुद्रा

इस मुद्रा के अनेक नाम हैं। इसे जापान में अन्जन्-इन् मुद्रा और सोकुचि-इन् मुद्रा, चीन में अन-शन्-यिन् और चयु-टि-यिन् मुद्रा, भारत में भूमिस्पर्श, भास्पर्श, मारवी जयइ मुद्रा, थायलैण्ड में मान्विछइ, पेंग मारवी चइ, सदुंग-मेन आदि कहते हैं।

यह तान्त्रिक मुद्रा जापानी और चीनी बौद्ध परम्परा में अधिक प्रचलित है। वहाँ के भक्तों एवं पुजारियों द्वारा यह दिखायी जाती है। यह सोकुची-इन् मुद्रा का एक प्रकारान्तर है। विद्वज्ञों के अनुसार यह धरती पर प्रभुत्व और शैतानों के विनाश की सूचक है। वस्तुतः यह मुद्रा भगवान बुद्ध के द्वारा भूमि को साक्षी के रूप में रखने के प्रयोजन से की गई थी।

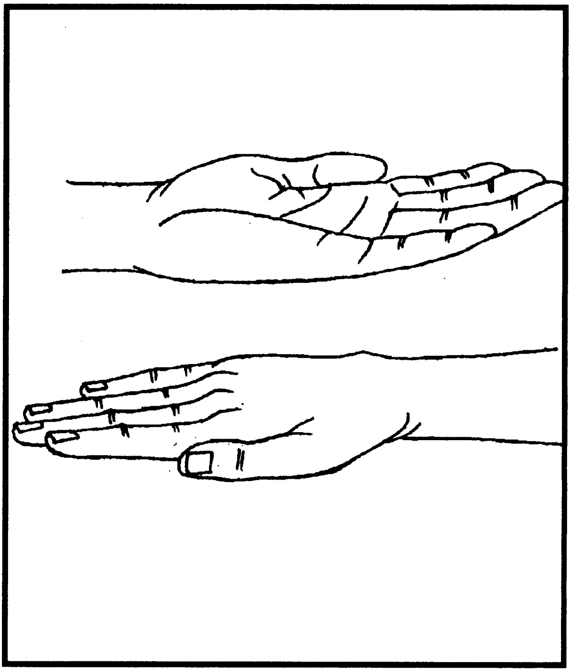

अन्जन्-इन् मुद्रा

विधि

दायीं हथेली को अधोमुख करते हुए अंगुलियों को भूमि से समानान्तर आगे की ओर फैलायें। बायें हाथ को कमर के स्तर पर धारण करते हुए हथेली को ध्यान मुद्रा के समान ऊर्ध्वाभिमुख करें, तब अन्जन्-इन् मुद्रा कहलाती है।[21]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा धारण करने से अग्नि एवं वायु तत्त्व संतुलित रहते हैं। इससे कुपित वायु, गठिया-साइटिका, वायुशूल, लकवा आदि रोगों का निवारण तथा घुटने-जोड़ों आदि में सन्धिवात से होने वाला दर्द समाप्त होता है। • मणिपुर एवं अनाहत चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा बाह्य एवं आन्तरिक गुणों का विकास करती है, ध्यान में चित्त को एकाग्र एवं शान्त रखती है तथा प्रेम, करुणा, मैत्री के भावों का जागरण करती है। • थायमस, एड्रिनल एवं पेन्क्रियाज के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा बच्चों में उल्लास, कुशाग्र बुद्धि आदि का विकास करती है और B.P., एसिडिटी, पित्त, उल्टी आदि का निवारण करती है।

20. बसर-उन्-कोंगौ-इन् मुद्रा-1

यह मुद्रा भारत में 'बसर-उन्-कोंगौ-इन्' मुद्रा और 'वज्रहुंकर' मुद्रा तथा चीन में 'चुअन्-युह-लो-हंग' मुद्रा के नाम से जानी जाती है।

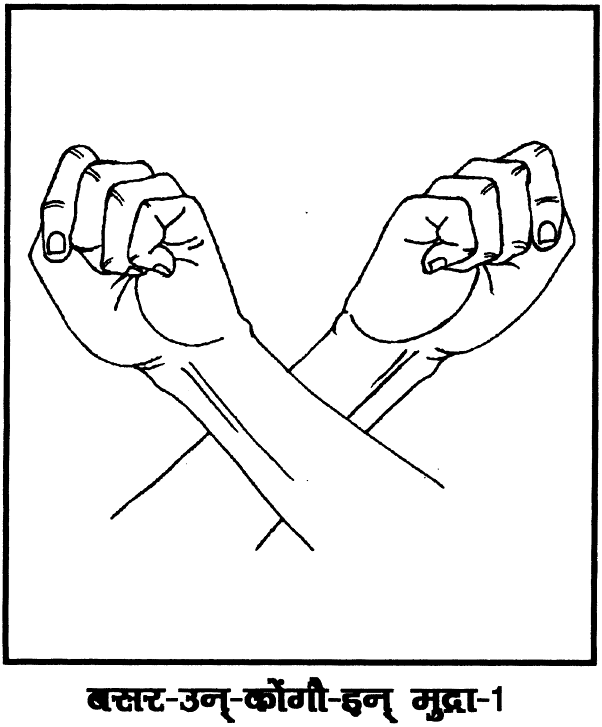

बसर-उन्-कोंगौ-इन् मुद्रा-1

इस तान्त्रिक मुद्रा का प्रभाव जापानी और चीनी बौद्ध परम्परा में सर्वाधिक है। यह मुद्रा वहाँ के धर्मगुरुओं या भक्तों के द्वारा धारण की जाती है। विद्वानों ने इसे वज्र के समान शक्तिशाली, क्रोधावस्था में मनोभावों के नाश एवं नियमों की सच्चाई की सूचक कहा है। यह संयुक्त मुद्रा छाती के पास धारण की जाती है।

विधि

दोनों हाथों के अंगूठों को अन्दर डालते हुए मुट्ठी बांधें, हथेलियों को बाहर की ओर अभिमुख करें तथा हाथों को कलाई के स्तर पर Cross करते हुए दायें हाथ को आगे और बायें हाथ को शरीर के पास रखें, तब उपर्युक्त मुद्रा बनती है।[22]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से अग्नि एवं जल तत्त्व का संतुलन होता है। इससे मूत्र दोष का परिहार एवं पित्त से होने वाली बीमारियों का उपशमन होता है। • स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा नाभि चक्र को संतुलित और पेट सम्बन्धी विकारों को उपशमित करती है तथा तनाव नियंत्रण एवं चारित्र का विकास करती है। • स्वास्थ्य एवं तैजस केन्द्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा ईर्ष्या, घृणा, भय, संघर्ष, तृष्णा आदि वृत्तियों का निरोध करती है।

21. बसर-उन्-कोंगौ-इन् मुद्रा-2

उपर्युक्त मुद्रा के दो प्रकारान्तर हैं। इसका सामान्य वर्णन पूर्ववत जानना चाहिये। मुद्रा बनाने की विधि निम्न प्रकार है-

विधि

इस मुद्रा में भी दोनों हाथों की मुट्ठी बनाते हैं किन्तु यहाँ तर्जनी को मुट्ठी से पृथक कर उसके अग्रभाग को अंगूठे के द्वितीय पोर से स्पर्श करवाते हैं। शेष विधि प्रथम प्रकार के समान है।[23]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश तत्त्व को प्रभावित करते हुए शरीर स्थित विष द्रव्यों एवं विजातीय तत्त्वों का निष्कासन करती है। शरीर को तंदुरुस्त एवं मजबूत बनाती है और क्रोधादि कषायों से मुक्त करती है। • इस मुद्रा से आज्ञा एवं

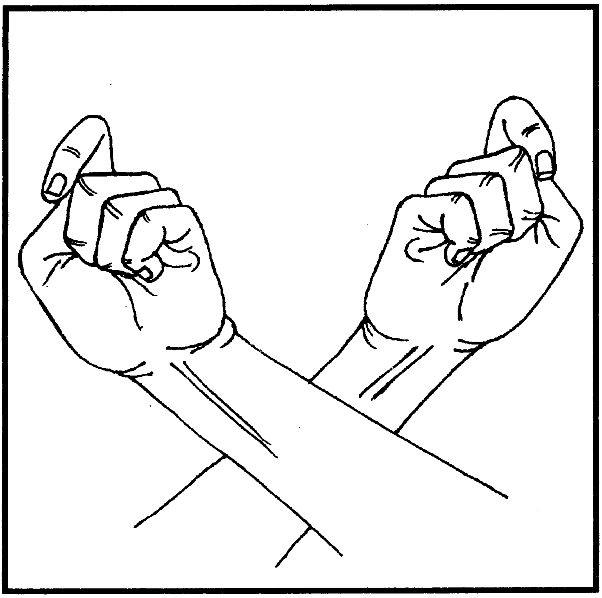

बसर-उन्-कोंगी-इन् मुद्रा-2

सहस्रार चक्र जागृत होते हैं। इससे यह शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास करते हुए शान्ति प्राप्ति में सहायक बनती है। • पिनियल एवं पिच्युटरी ग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा दृढ़ मनोबल, निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति एवं देखने-सुनने की शक्ति को बढ़ाती है तथा व्यक्ति को बुद्धिशाली, तत्त्वज्ञानी और मानव जाति का प्रेमी बनाती है।

22. बुद्धालोचनी मुद्रा

जापानी बौद्ध परम्परा में प्रचलित यह तान्त्रिक मुद्रा विविध धार्मिक क्रियाओं में दर्शायी जाती है। यह मुद्रा बुद्धालोचनी देव से सम्बन्धित है। यह संयुक्त मुद्रा उक्त देव को संतुष्ट करने के उद्देश्य से की जाती है।

विधि

दोनों हथेलियों को आमने-सामने कर अंगूठों को ऊपर की ओर उठायें, तर्जनी को झुकाते हुए उसके प्रथम पोर को अंगूठों के प्रथम पोर के पृष्ठ भाग

पर रखें तथा शेष अंगुलियों को ऊपर उठाते हुए उन्हें प्रथम पोर पर अन्तर्ग्रथित करें। इस तरह बुद्धालोचनी मुद्रा बनती है।[24]

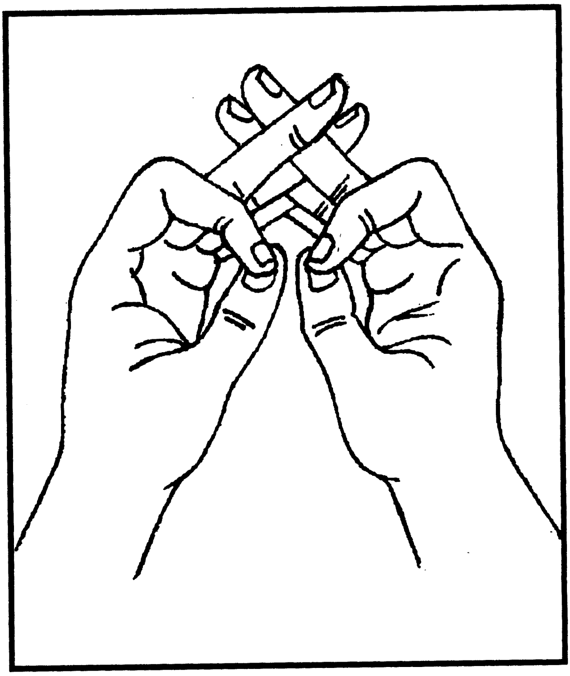

बुद्धालोचनी मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा करने से अग्नि एवं जल तत्त्व प्रभावित होते हैं। इससे शारीरिक एवं स्वाभाविक रूखापन दूर होता है। शरीर का तेज बढ़ता है। आलस्य, निद्रा, मोटापा, दुर्बलता आदि का निवारण होता है। • इस मुद्रा से मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र जागृत होकर शरीर में रक्त और शर्करा का संतुलन तथा मधुमेह, कब्ज, अपच आदि का शमन करते हैं। • एक्युप्रेशर सिद्धान्त के अनुसार यह मुद्रा मंदता, भीरूता, हीनता, बी.पी., एसिडिटी, कमजोरी आदि का निवारण करती है।

23. बुद्धाश्रमण मुद्रा

इस मुद्रा के दो प्रकारान्तर हैं। प्रथम प्रकार हिन्दू और बौद्ध दोनों परम्पराओं में मान्य है। दूसरा प्रकार जापान और चीन के बौद्ध अनुयायियों द्वारा अपनाया गया है। भारत में इस मुद्रा के दो नाम हैं- 1. बुद्धाश्रमण और 2. परित्राण आशय मति मुद्रा।

तिब्बत में इसे म्यांग-हड्स-फ्यांग-रज्ञ मुद्रा कहते हैं। यह पूर्वजन्म की प्रतीक या सांसारिक आसक्ति को अस्वीकृत करने की सूचक है।

विधि

दायीं हथेली को अधोमुख करते हुए अंगुलियों को मध्यभाग की ओर फैलायें तथा हाथ को शरीर से दूर रखने पर बुद्धाश्रमण मुद्रा बनती है।[25]

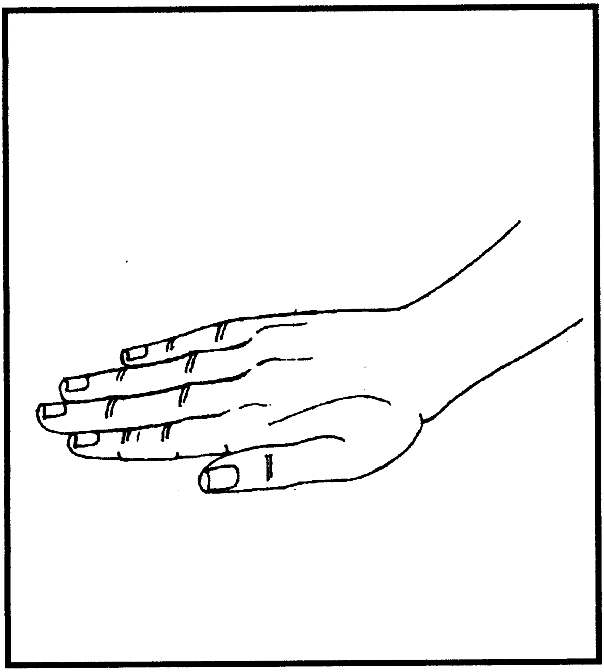

बुद्धाश्रमण मुद्रा

सुपरिणाम

• अग्नि एवं जल तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा पित्त सम्बन्धी बीमारियों एवं मूत्र दोष का शमन करती है तथा गुर्दे को स्वस्थ बनाती है। •

मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा शारीरिक एवं आध्यात्मिक बल प्रदान करती है। शरीर को बलशाली एवं सत्त्वशाली तथा उदर को स्वस्थ एवं संतुलित बनाती है। • स्वास्थ्य एवं तैजस केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, भय, लोभ, तृष्णा आदि का शमन करती है तथा काम ग्रंथियों के स्राव को संतुलित रखती है।

24. बुप्पत्सु-इन् मुद्रा

इसे जापान में बुप्पत्सु-इन्, चीन में फो-पुओ-यिन् और भारत में बुद्धपत्त मुद्रा कहते हैं। यह तान्त्रिक मुद्रा सामान्य रूप से जापानी बौद्ध परम्परा में अनुपालित है। यह मुद्रा भगवान बुद्ध द्वारा बैठकर की गई, उनके भिक्षुक होने की सूचक है। जो इस मुद्रा को धारण करता है वह धर्म नियमों का पालक या ग्राहक होता है।

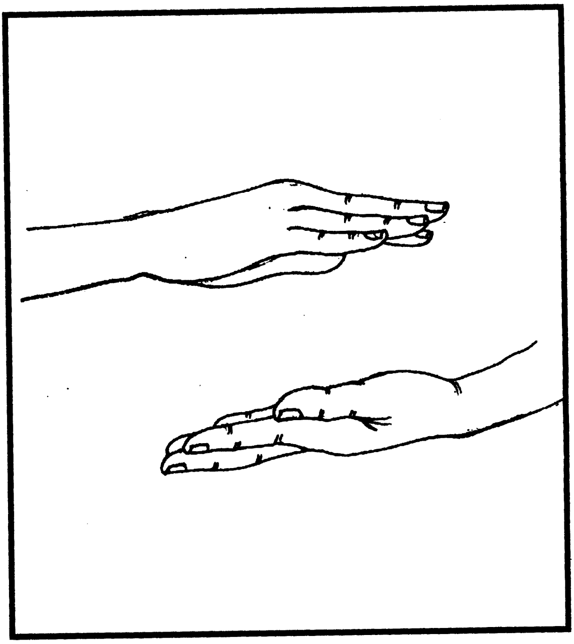

बुप्पत्सु-इन् मुद्रा

विधि

बायीं हथेली को ऊपर की तरफ एवं दायीं हथेली को नीचे की ओर अभिमुख करें। अंगुलियों को अपनी-अपनी दिशा में फैलायें, हाथ थोड़े से मुड़े

हुए हों, दायां हाथ ऊपर में और बायां हाथ नीचे में रहें अर्थात दोनों हाथों की अंगुलियाँ एक-दूसरे प्रतिरूप का दर्शन कर सकें इस भाँति रखने पर बुप्पत्सु-इन् मुद्रा बनती है।[26]

सुपरिणाम

चक्र– सहस्रार, आज्ञा एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व–** आकाश एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि–** पिनीयल, पीयूष एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** ज्योति, दर्शन एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मस्तिष्क, आँख, स्नायु तंत्र, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग एवं गुर्दे।

25. चक्र मुद्रा

चक्र मुद्रा के अनेक प्रकारों में यह मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में मान्य है। उसकी विधि निम्न है–

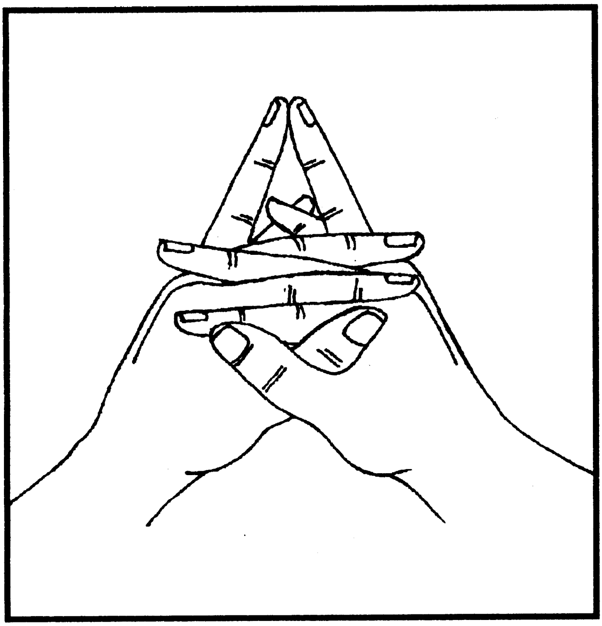

चक्र मुद्रा

विधि

दोनों हाथों की अंगुलियों को ढीले रूप से अन्तर्ग्रथित करते हुए अनामिका को ऊर्ध्व प्रसरित कर उनके अग्रभागों को परस्पर जोड़ देना चक्र मुद्रा है।[27]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं वायु तत्त्व को संतुलित करती है। इससे गैस की विभिन्न विकृतियाँ दूर होकर तत्क्षण शक्ति मिलती है। मस्तिष्क का स्नायु तंत्र मजबूत बनता है। सिरदर्द, अनिद्रा आदि का निवारण होता है। • मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा विविध कलाओं एवं गुणों को विकसित करती है। आभ्यंतर ज्ञान को जागृत कर चित्त को शान्त एवं स्थिर बनाती है। • एड्रिनल एवं थायरॉइड ग्रंथियों को विशेष सक्रिय बनाते हुए यह मुद्रा पित्ताशय, लीवर, रक्त परिभ्रमण, रक्तचाप, प्राणवायु आदि का संतुलन करती है।

26. चक्रवर्ती मुद्रा

यह मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में विविध धार्मिक कार्यों एवं देवी-देवता के आह्वान के लिए धारण की जाती है। यह चक्रवर्ती से सम्बन्धित मुद्रा है जो सम्पूर्ण विश्व के सम्राट् को सूचित करती है। इस मुद्रा के द्वारा चक्रवर्ती की संपदा को स्मृत या उजागर किया जाता है।

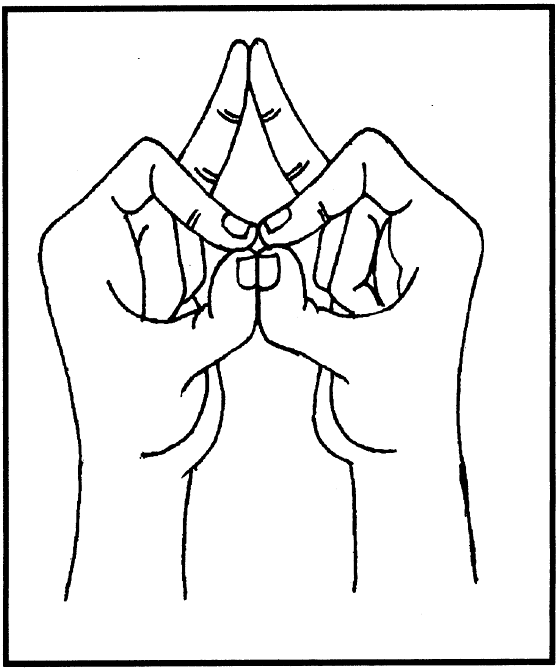

चक्रवर्ती मुद्रा

विधि

दोनों हाथों को समीप में लायें, अंगूठों को ऊर्ध्व प्रसरित करते हुए उनकी बाह्य किनारियों को मिलायें, तर्जनी को दूसरे जोड़ से मोड़ते हुए अंगूठा और तर्जनी के अग्रभाग को स्पर्शित करें, मध्यमा और कनिष्ठिका हथेली के अंदर मुड़ी हुई तथा अनामिका के अग्रभाग परस्पर जुड़े हुए रहने पर चक्रवर्ती मुद्रा बनती है।[28]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व को संतुलित करते हुए शारीरिक जड़ता, दुर्बलता, मोटापा आदि को न्यून करके पाचन क्रिया को सम्यक बनाती है। • मणिपुर एवं मूलाधार चक्र को प्रभावित करते हुए शारीरिक आरोग्य, कार्य दक्षता, ओजस्विता आदि प्रदान करती है तथा मधुमेह, अपच, गैस, कब्ज आदि विकृतियों को उपशान्त करती है। • एक्युप्रेशर स्पेशलिस्ट के अनुसार यह मुद्रा एसिडिटी, तेज सिरदर्द, पित्त, रक्तचाप, मधुमेह, कमजोरी, आधासीसी आदि का शमन करते हुए वंध्यत्व एवं संभोगेच्छा का निवारण करती है।

27. चि-केन-इन् मुद्रा-1

प्रस्तुत मुद्रा जापान और चीन में अधिक प्रचलित है। वहाँ के श्रद्धालुगण ही इसे धारण करते हैं। यह वैरोचना से प्राप्त सुदृढ़ ज्ञान की सूचक है।

विधि

बायें हाथ को मुट्ठी रूप में बाँधते हुए उसे अंगूठे द्वारा ऊपर से बंद करें और तर्जनी को ऊपर की ओर सीधी रखें। दायीं हथेली को भी मुट्ठि रूप में बनाते हुए आगे की ओर करें तथा अंगूठे को मुट्ठी के बाहर रखें। बायीं तर्जनी दायीं अंगुलियों से बंधी हुई रहें। दायां हाथ नाभि के स्तर पर रहें। इस तरह चि-केन-इन् मुद्रा बनती है।[29]

सुपरिणाम

• वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा हृदय रुधिराभिसंचरण, श्वसन क्रिया, मल-मूत्र की गति आदि का नियंत्रण करती है। यह स्वभाव एवं हृदय परिवर्तन आदि में भी सहायक बनती है। • अनाहत एवं विशुद्धि चक्र के जागरण से हृदय में निर्मल भावों की उत्पत्ति, सद्ज्ञान का जागरण, कवित्व,

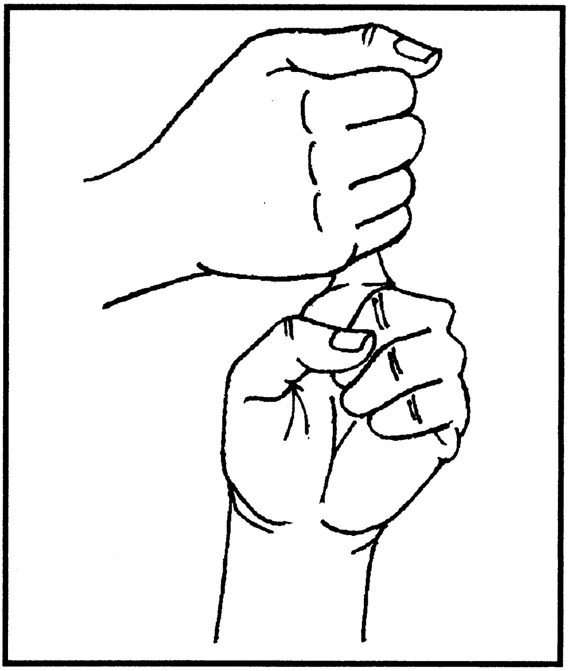

चि-केन-इन् मुद्रा-1

वक्तृत्व आदि गुणों का विकास तथा निरोगी जीवन प्राप्त होता है। • आनंद एवं तैजस केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा काम ग्रन्थियों, वृषण एवं डिम्बाशय की क्रियाओं का निरोध करती है। काम-वासना को नियंत्रित तथा भावधारा को निर्मल एवं परिष्कृत बनाती है।

28. चि-केन-इन् मुद्रा-2

इस मुद्रा के दो रूप प्रचलित है। एक मुद्रा में दोनों हाथ के अंगूठे बाह्य भाग पर स्थिर रहते हैं जबकि दूसरी मुद्रा में दोनों अंगूठे हथेली के भीतर मुड़े रहते हैं। शेष विधि समान होती है।[30] स्पष्टीकरण के लिए दूसरे प्रकार का चित्र निम्न है-

सुपरिणाम

• अग्नि एवं जल तत्त्व का संतुलन करने वाली यह मुद्रा आलस्य, प्रमाद, निद्रा आदि का शमन कर स्फूर्ति, उल्लास, सक्रियता आदि में वर्धन करती है। • मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को संतुलित करते हुए यह मुद्रा तनाव नियंत्रण,

चित्त एकाग्रीकरण तथा नाभि चक्र सम्बन्धी दोषों का उपशमन करती है। • इस मुद्रा के प्रयोग से पेन्क्रियाज, एड्रिनल एवं नाभि चक्र प्रभावित होते हैं। जिससे दम्भ वृत्ति, अहंकार, वासना, असामाजिक प्रवृत्ति आदि का शमन होता है।

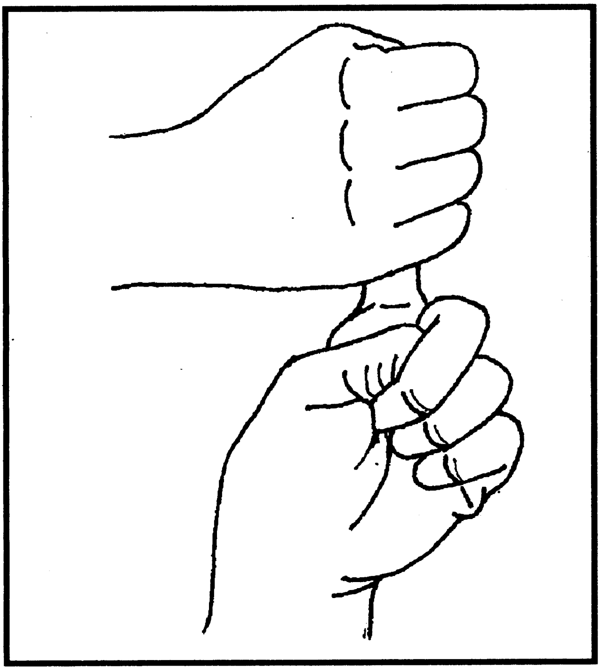

चि-केन्-इन मुद्रा-2

29. चिकु-चौ-शौ-इन् मुद्रा

यह मुद्रा सामान्यतया जापानी बौद्ध परम्परा में अपनायी जा रही है। इसे होम आदि विविध धार्मिक कार्यों के प्रसंग पर धारण करते हैं। यह 28 नक्षत्रों को आमंत्रण देने की सूचक मुद्रा है।

विधि

बायां हाथ सामने की ओर, अंगूठा हथेली में मुड़ा हुआ और अंगुलियाँ अंगूठे के ऊपर मुड़ी हुई रहें। दायां हाथ स्वयं की ओर, तर्जनी और मध्यमा ऊपर उठी हुई और अंगूठा अनामिका और कनिष्ठिका के ऊपर झुका हुआ रहे, इस भाँति उपर्युक्त मुद्रा बनती है।[31] इस मुद्रा में बायां हाथ बायीं जंघा पर और दायां हाथ छाती के सामने रखा जाता है।

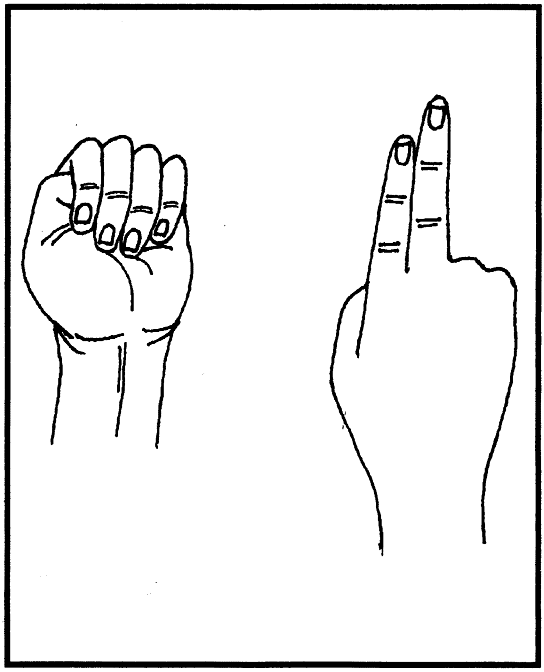

चिकु-ची-शी-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग जल एवं पृथ्वी तत्त्व को संतुलित करता है। इनके सम्यक संयोजन से जीवनी शक्ति में वृद्धि होती है तथा भारीपन, चर्बी, सर्दी, दमा, आर्थाइटि आदि रोगों का शमन होता है। • स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र को जागृत कर यह मुद्रा काम वृत्तियों का शमन, ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण तथा नाभि केन्द्र को जागृत कर ध्या सिद्धि करवाती है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार प्रजनन कार्य में सरलता, वंध्यत्व निवारण, मासिक धर्म, स्वप्न दोष, हस्तदोष, शारीरिक गर्मी आदि का संतुलन करती है यह नाभि से सम्बन्धित रोगों को भी उपशान्त करती है।

30. गगनगंज मुद्रा-1

यह मुद्रा विविध धार्मिक क्रियाओं के समय जापानी बौद्ध परम्परा के धर्म गुरुओं औ भक्तों द्वारा धारण की जाती है। यह बोधिसत्त्व गगनगंज की सूचक है।

विधि

हथेली स्वयं के अभिमुख, अनामिका और कनिष्ठिका हथेली के भीतर मुड़ी हुई एवं अंगूठा उनके ऊपर मुड़ा हुआ, तर्जनी और मध्यमा फैली हुई, प्रसरित दायें हाथ की अंगुलियाँ प्रसरित बायें हाथ की अंगुलियों पर क्रॉस करती हुई 90^0 का कोण बनाने पर गगनगंज मुद्रा बनती है।[32]

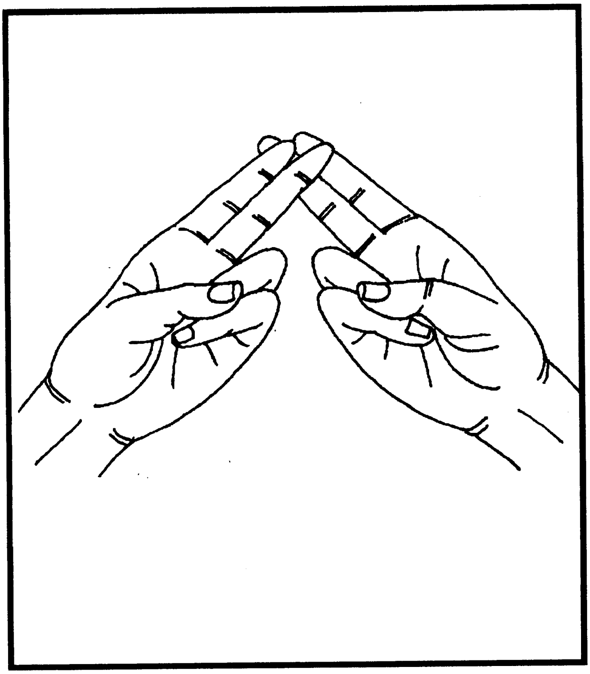

गगनगंज मुद्रा-1

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व का संतुलन करते हुए रुधिर, चर्बी, अस्थि, आदि के निर्माण में सहयोगी बनती है। • इस मुद्रा को धारण करने से मणिपुर एवं मूलाधार चक्र जागृत होते हैं। यह मधुमेह, कब्ज, अपच आदि शारीरिक विकृतियों का शमन करती है। • यह मुद्रा करने से एड्रिनल, पेन्क्रियाज एवं गोनाड्स का स्राव संतुलित होता है। साथ ही शर्करा, रक्तचाप आदि का भी साथ ही संतुलन होता है।

31. गगनगंज मुद्रा-2

गगनगंज मुद्रा के दो रूप हैं। यह दूसरा रूप भी बोधिसत्त्व गगनगंज मुद्रा से ही सम्बन्धित है। यह मुद्रा भी जापानी बौद्ध वर्ग में धार्मिक कृत्यों के प्रसंग पर की जाती है। इसकी विधि निम्न है–

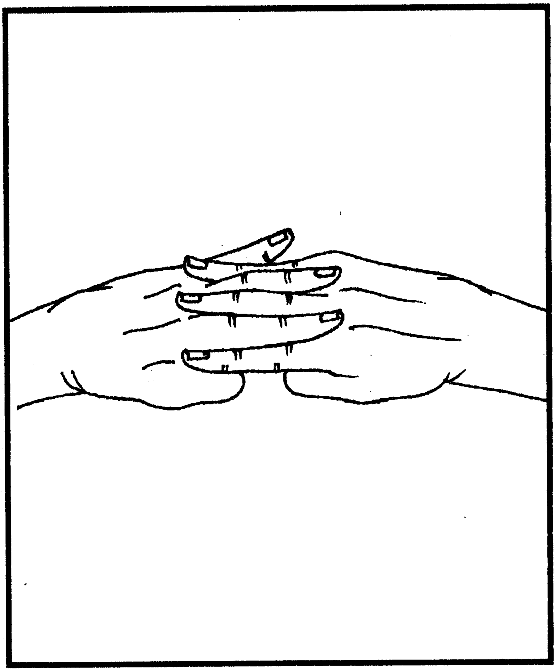

गगनगंज मुद्रा-2

विधि

हथेलियों को नीचे की ओर अभिमुख करें, अंगूठा और कनिष्ठिका को हथेली में मोड़ें तथा तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को बाह्य से अन्तर्ग्रथित करने पर द्वितीय गगनगंज मुद्रा बनती है।[33]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग अग्नि एवं वायु तत्त्व का संतुलन करता है। इससे कुपित वायु, गठिया, साइटिका, वायुशूल, लकवा आदि रोग समाप्त होते हैं तथा एकाग्रता, मन स्थिरता आदि में वर्धन होता है। • मणिपुर एवं अनाहत

चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा वक्तृत्व, कवित्व, इन्द्रिय निग्रह आदि गुणों को प्रकट करती है। शरीरगत रक्त शर्करा, जल एवं सोडियम आदि का भी नियंत्रण करती है। • तैजस एवं आनंद केन्द्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा भावों को निर्मल, परिष्कृत एवं परिशुद्ध करती है तथा जीवन को उत्तुंगता एवं ओजस्विता प्रदान करती है।

32. गणधारन्-टेम्बौरिन्-इन् मुद्रा

यह मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा से ही सम्बन्धित है। धर्मचक्र मुद्रा इसी का प्रकारान्तर है। यह संयुक्त मुद्रा कमर के स्तर पर की जाती है।

विधि

दायें हाथ को ढीली मुट्ठी रूप बांधकर हथेली को मध्य भाग की तरफ रखें, बायीं हथेली को ऊर्ध्वाभिमुख करें, अंगूठा एवं तर्जनी के अग्रभाग को स्पर्शित करवायें और अग्रभाग को ढीली मुट्ठी में प्रविष्ट करवाएँ तथा शेष अंगुलियों को हथेली की ओर मोड़ने पर 'गणधारन् टेम्बौरिन्-इन्' मुद्रा बनती है।[34]

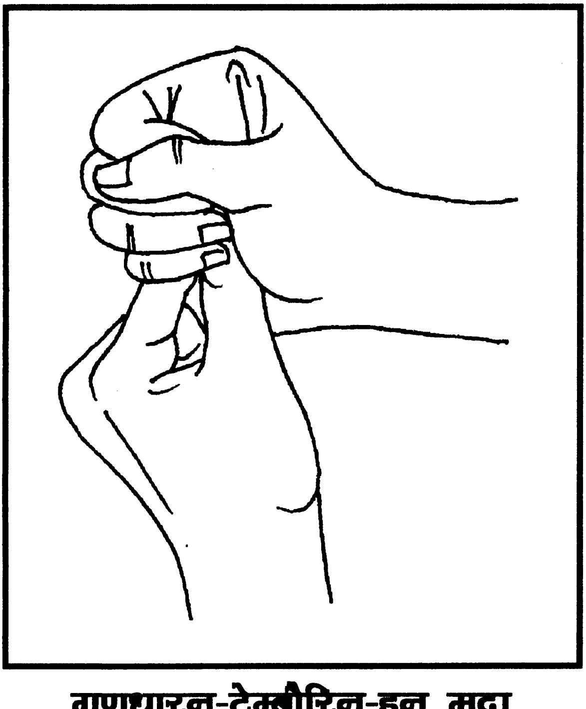

गणधारन्-टेम्बौरिन्-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए निःस्वार्थ भाव का निर्माण करती है। • अनाहत एवं आज्ञा चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा वक्तृत्व, कवित्व, इन्द्रिय निग्रह आदि गुणों में वर्धन करती है तथा बुद्धि को एकाग्र, कुशाग्र एवं मन को शांत बनाती है। • यह मुद्रा थायरॉइड एवं थायमस ग्रंथियों को प्रभावित करते हुए विशेष रूप से बालकों के विकास एवं उनके सम्यक जीवन निर्माण में सहायक बनती है। हिचकी, दाँतों की तकलीफ, स्नायुओं की मोंच, ऐंठन आदि का निवारण तथा प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करती है।

33. गंधर्वराज मुद्रा

यह मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में श्रद्धालुओं द्वारा उभय हाथों से की जाती है। यहाँ गंधर्वराज से दो अर्थ ज्ञात होते हैं- 1. देवताओं का एक प्रकार और 2. गंधर्वो का राजा चित्रगुप्त। अभिप्रायतः यह मुद्रा जाति विशेष देवता से सम्बन्धित होनी चाहिए।

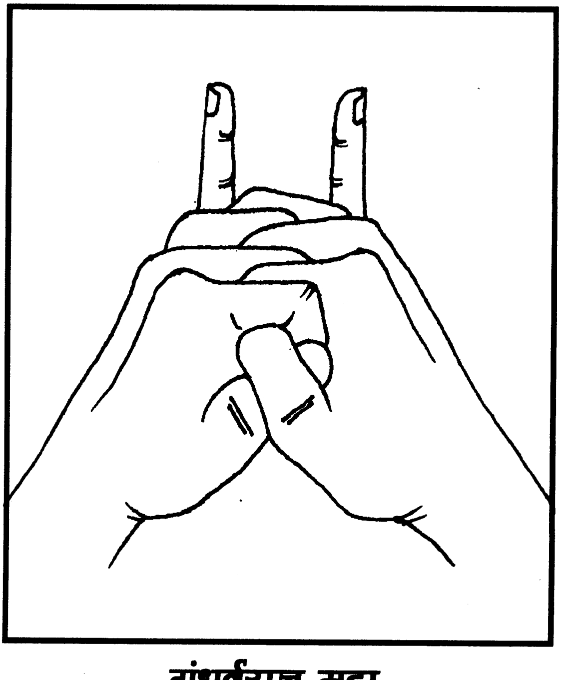

गंधर्वराज मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को एक-दूसरे के सन्मुख रखें, फिर कनिष्ठिका को छोड़ शेष अंगुलियों को भीतर की तरफ अन्तर्ग्रथित करें तथा कनिष्ठिका को ऊर्ध्व प्रसरित करने पर गंधर्वराज मुद्रा बनती है।[35]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं पृथ्वी तत्त्व को संतुलित करते हुए शरीर में रासायनिक परिवर्तन एवं व्यक्तित्व संतुलन में सहायक बनती है। यह स्वाभाविक एवं शारीरिक रूखेपन को दूर करते हुए शरीर को स्वस्थ, कान्तियुक्त एवं आभायुक्त बनाती है। • यह मुद्रा स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र को प्रभावित करते हुए पेट के परदे के नीचे स्थित अवयवों के कार्य का नियमन करती है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह मुद्रा ज्ञान तंतुओं, मज्जा, बोन-मेरो एवं वीर्य रज का नियमन करती है तथा मासिक धर्म एवं शारीरिक विकास आदि को संतुलित रखती है।

34. गे-बकु-केन-इन् मुद्रा-1

जापान और चीन की बौद्ध परम्परा में यह मुद्रा तीन रूपों में की जाती है। चीन में इसका नाम 'वाई-फु-च-मन-यिन' है तथा भारत में इसे 'ग्रथितम् मुद्रा' कहते हैं।

यह बाह्य बंध मुट्ठी की सूचक है और छाती के सामने की जाती है। इस मुद्रा को क्रिश्चन लोगों की प्रार्थना मुद्रा के समान कहा जा सकता है।

प्रथम विधि

इस रीति में दोनों हथेलियों को योजित कर अंगुलियों को बाहर की तरफ अन्तर्ग्रथित करें तथा बायें अंगूठे को दायें अंगूठे के ऊपर रखने से 'गे-बकु-केन्-इन्' मुद्रा बनती है।[36]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि तत्त्व का संतुलन करते हुए जठर, तिल्ली, यकृत, एड्रिनल आदि में अग्निरस एवं पाचक रसों का संतुलन करती है। • मणिपुर चक्र को जागृत कर यह विशेष शक्ति एवं ऊर्ध्वता प्रदान करते हुए अपच, मधुमेह, कब्ज, एसिडिटी आदि रोगों का निवारण करती है। • एड्रिनल ग्रंथि को प्रभावित कर

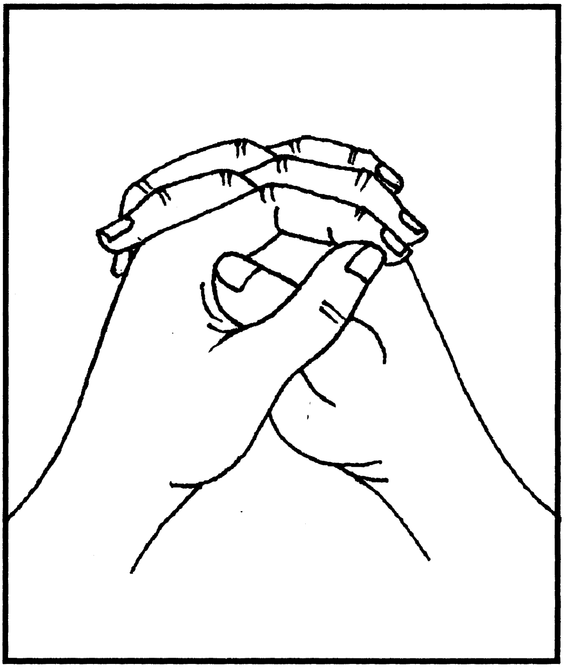

गे-बकु-केन-इन् मुद्रा-1

यह मुद्रा संचार व्यवस्था को नियमित एवं प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करती है। साधक को साहसी, सहनशील एवं आशावादी बनाती है।

द्वितीय विधि

यह मुद्रा शुद्धता और उदारता की सूचक है। इसमें दायां अंगूठा बायें अंगूठे के ऊपर रहता है। शेष वर्णन पूर्ववत।[37]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं जल तत्त्व का संतुलन करती है। इससे शरीर की जड़ता, दुर्बलता, मोटापा आदि दूर होते हैं तथा अस्थि, मज्जा, त्वचा, नाखुन, रक्त, वीर्य, लसिका आदि का कार्य नियमित होता है। • इस मुद्रा से शरीरगत मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र प्रभावित होते हैं जो कामग्रन्थि को नियंत्रित करते हैं। इससे काम-वासना नियंत्रित रहती हैं तथा विधेयात्मक ऊर्जा का उर्ध्वारोहण होता है।

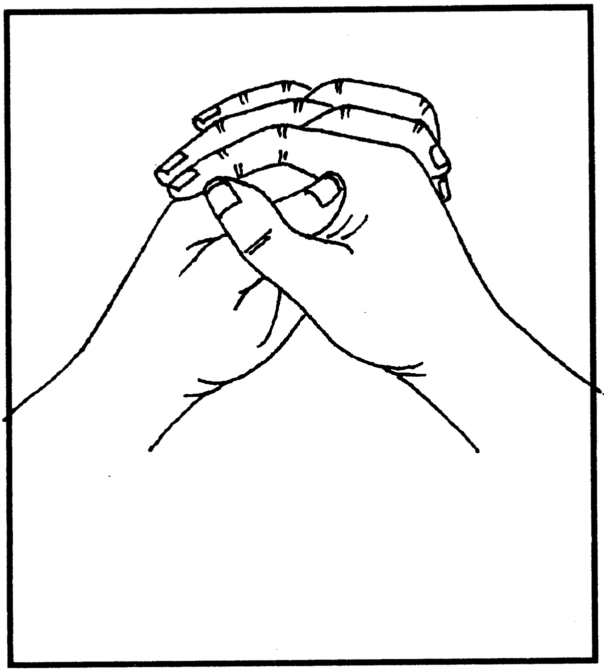

गे-बकु-केन-इन् मुद्रा-2

• शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र को जागृत कर गोनाड्स के स्राव को संतुलित करते हुए काम ऊर्जा के साथ स्वास्थ्य पर नियंत्रण करती है। इसी के साथ यह मुद्रा मन और भावनाओं पर नियंत्रण पाने की कला सिखाती है।

तृतीय विधि

यह मुद्रा भगवान बुद्ध के ज्ञान को एकत्रित करने की सूचक है। इस मुद्रा में अंगुलियों को अन्तर्ग्रथित कर अंगूठों को अंगुलियों के भीतर रखते हैं।[38] शेष वर्णन पूर्ववत।

सुपरिणाम

• यह मुद्रा धारण करने से वायु तत्त्व संतुलित होता है। छाती, फेफड़ें, हृदय और थायमस ग्रंथि का कार्य सम्यक बनता है। प्राण वायु स्थिर एवं

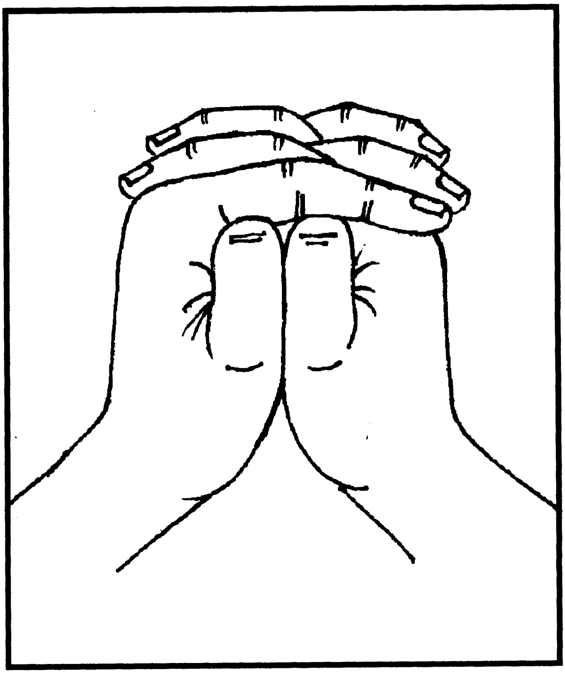

गे-बकु-केन-इन् मुद्रा-3

विधेयात्मक ऊर्जा का ऊर्ध्वीकरण होता है। • यह मुद्रा अनाहत एवं विशुद्धि चक्र को जाग्रत करती है। इससे आन्तरिक शक्तियों का जागरण होता है तथा अनेक कलाओं का भी विकास होता है। हृदय में आनंद भाव की उत्पत्ति, कंठ मधुर एवं सुरीला तथा चित्त शान्त एवं काया निरोगी बनती है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार इस मुद्रा के प्रयोग से बालकों के चिड़चिड़ापन, जिद्दीपन आदि का निवारण होता है।

35. गौ-बकु-इन् मुद्रा

जापानी बौद्ध परम्परा में प्रचलित एवं धार्मिक क्रियाओं के समय अवधारित यह मुद्रा युगल हाथों से की जाती है। इसकी विधि निम्न है–

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखें, अंगूठे ऊपर उठे हुए एवं आपस में मिले हुए हों, तर्जनी अलग-अलग रूप से ऊर्ध्व प्रसरित, मध्यमा ऊपर से

अन्तर्ग्रथित हुई, अनामिका प्रतिपक्ष के अग्रभाग का स्पर्श करती हुई तथा कनिष्ठिका हथेली भीतर मुड़ी रहने पर गौ-बकु-इन् मुद्रा बनती है।[39]

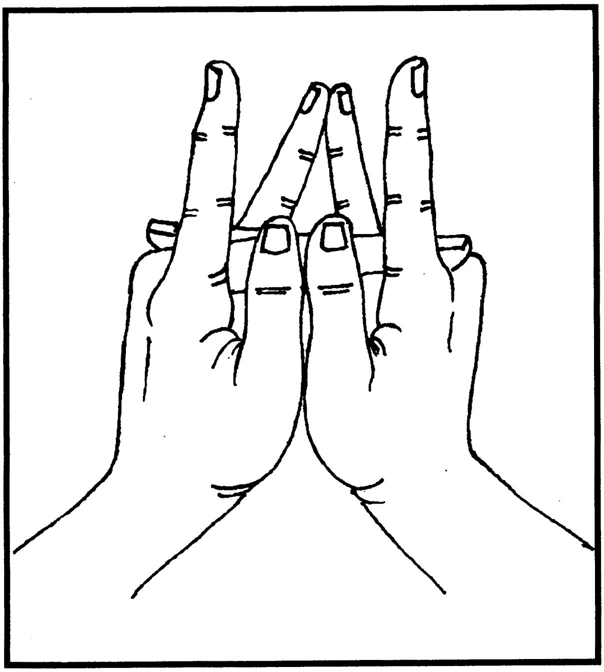

गौ-बकु-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए शरीर में रहे विष द्रव्यों एवं विजातीय तत्त्वों का निष्कासन करती है तथा मन से दुर्भाव एवं वैभाविक अवस्थाओं का शमन करती है। • विशुद्धि चक्र एवं आज्ञा चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा ज्ञान केन्द्रों को सक्रिय करती है। इससे जीवन में आनंद एवं खुशहाली की अनुभूति होती है। • यह मुद्रा थाइरॉइड, पैराथाइरॉइड एवं पिच्युटरी ग्रंथि को प्रभावित करती है। इसी के साथ ऊर्जा के उत्पादन का चयापचय करते हुए व्यक्ति की सक्रियता एवं तीव्रता को निर्धारित करती है।

36. हयग्रीवा मुद्रा

यह एक तान्त्रिक मुद्रा है। जापानी बौद्ध परम्परा में इसके दो स्वरूप हैं। एक 18 कर्त्तव्यों के समय धारण की जाती है दूसरी सामान्य क्रिया कलापों के प्रसंग पर दर्शाते हैं। इसकी विधि निम्न है-

विधि

दोनों हथेलियाँ मध्यभाग में एक साथ मिली हुई, अंगूठे ऊपर उठे हुए, मध्यमा और कनिष्ठिका अपने प्रतिरूप अग्रभाग का स्पर्श करती हुई, तर्जनी प्रथम दो जोड़ पर से मुड़ती हुई एवं प्रथम पोर के पीछे का भाग अपने प्रतिरूप का स्पर्श करता हुआ तथा अनामिका हथेली के भीतर मुड़ी रहने पर हयग्रीवा मुद्रा बनती है।[40]

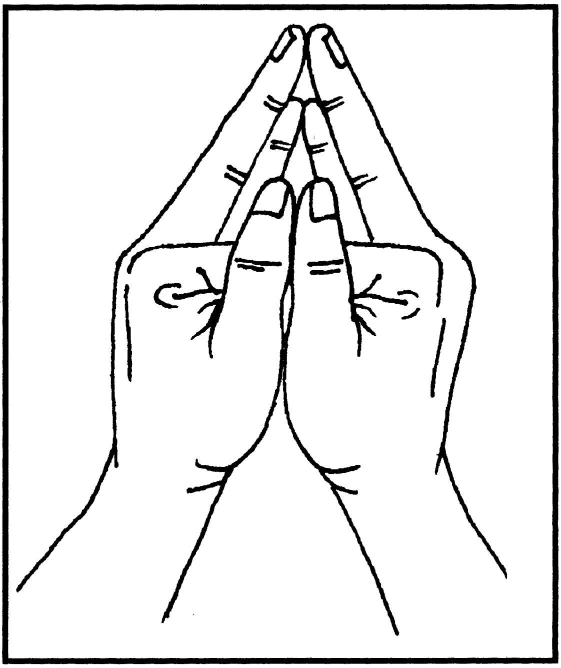

हयग्रीवा मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व को संतुलित करती है। इससे शरीर का भारीपन, जड़ता, दुर्बलता आदि दूर होकर शरीर स्निग्ध, कान्ति युक्त, ओजस्वी एवं स्वस्थ बनता है। • यह मुद्रा मणिपुर एवं मूलाधार चक्र को जागृत करते हुए शारीरिक आरोग्य, कर्म कुशलता एवं शक्ति वर्धन में सहायक बनती है। • एक्युप्रेशर सिद्धान्त के अनुसार यह मुद्रा एसिडिटी, उल्टी, सिरदर्द आदि को कम करती है। रक्तचाप, शर्करा, गर्मी, मासिक स्राव आदि का संतुलन करती है।

37. हेमन्त मुद्रा

छः ऋतुओं में से मार्गशीर्ष और पौष मास की ऋतु हेमन्त ऋतु कहलाती है। यह मुद्रा अपने नाम के अभिरूप सर्दी की सूचक है।

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखें, अंगुलियों और अंगूठों को ऊपर की ओर फैलाते हुए हल्के से अलग और कुछ झुकायें, फिर हाथों को समीप लाकर छाती की तरफ घुमाना, हेमन्त मुद्रा कहलाती है।[41]

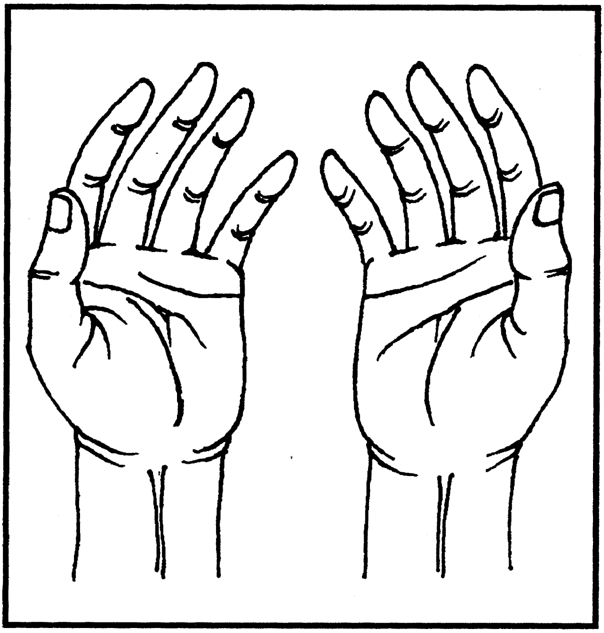

हेमन्त मुद्रा

सुपरिणाम

• वायु तत्त्व को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा रक्त संचरण, श्वसन क्रिया एवं मल-मूत्र गति आदि में संतुलन करती है। हृदय, गुर्दे एवं फेफड़ों को विशेष रूप से स्वस्थ बनाने में सहयोगी बनती है। • अनाहत चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा वाक्पटुता, कवित्व, वक्तृत्व आदि की प्रतिभा में विकास करती है। • आनन्द केन्द्र को जागृत करते हुए रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करती है।

38. हौर्यूजि-टेम्बौरिन्-इन् मुद्रा

यह मुद्रा पूर्ववत जापान की बौद्ध परम्परा में विख्यात है। यह संयुक्त मुद्रा छाती के स्तर पर धारण की जाती है। अनुसंधानकर्त्ताओं ने इसे धर्म के प्रचार और धर्म चक्र के घुमने की सूचक कहा है।

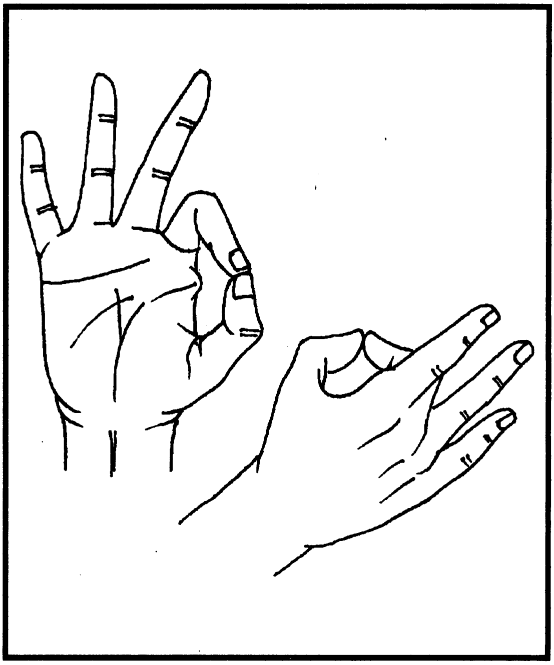

हौर्यूजि-टेम्बौरिन्-इन् मुद्रा

विधि

दायीं हथेली आगे की तरफ, अंगूठा और तर्जनी का अग्रभाग स्पर्श करता हुआ, शेष तीन अंगुलियाँ ऊपर की ओर रहें। बायीं हथेली ऊपर की तरफ एवं हल्की सी मध्यभाग की तरफ झुकी हुई, मध्यमा और अंगूठें के अग्रभाग आपस में स्पर्श करते हुए, शेष तीन अंगुलियाँ ऊपर तरफ एवं हल्की सी झुकी रहें। बायां हाथ दायें हाथ से थोड़ा नीचे रहता है। इस प्रकार 'हौर्यूजि-टेम्बौरिन्-इन्' मुद्रा बनती है।[42]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं वायु तत्त्व को प्रभावित करते हुए तत्क्षण शान्ति की अनुभूति करवाता हैं तथा सिरदर्द, अनिद्रा आदि समस्याओं का निराकरण करता है। • मणिपुर एवं अनाहत चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा शक्ति एवं आरोग्य में वर्धन करती है तथा प्रेम, करुणा, मैत्री, सहानुभूति आदि भावों का निर्माण करती है। • एड्रिनल एवं थायमस ग्रंथियों को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा शरीर की आंतरिक प्रणालियाँ जैसे श्वसन क्रिया, रक्त परिसंचरण आदि को संतुलित एवं सुचारू बनाती है।

39. ईश्वर मुद्रा

भारत में यह मुद्रा 'ईश्वर' मुद्रा के नाम से है, किन्तु इसका प्रयोग जापानी बौद्ध परम्परा के श्रद्धालुओं द्वारा किया जाता है। इसकी विधि निम्न है-

विधि

दोनों हथेलियों को संयोजित कर अंगूठा, तर्जनी और कनिष्ठिका को ऊपर की ओर उठायें एवं अपने प्रतिरूप का स्पर्श करवायें, फिर मध्यमा और तर्जनी को बाह्य भाग से अन्तर्ग्रथित करें, तब यह मुद्रा ईश्वर मुद्रा कहलाती है।[43]

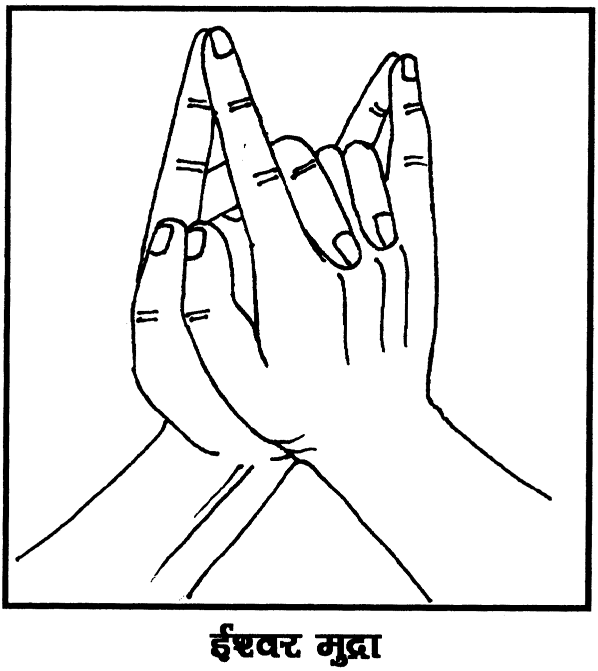

ईश्वर मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के अभ्यास से आकाश तत्त्व संतुलित होता है। • सहस्रार एवं अनाहत चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा मानसिक संकल्प-विकल्पों का नाश कर एकाग्रता एवं असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति करवाती है। • ज्ञान एवं आनंद केन्द्र को जागृत कर यह मुद्रा मन की समस्त वृत्तियों एवं विभिन्न कोष्ठों को नियंत्रित करती है। इसी के साथ बुद्धि, स्मृति, चिंतन शक्ति को विकसित कर प्राग् अवबोध एवं परामनोवैज्ञानिक ज्ञान की उपलब्धि करवाती है तथा काम वासनाओं का परिशोधन करती है।

40. ज्ञान मुद्रा

भारत में इसे वज्र मुद्रा भी कहते हैं। यह जापानी बौद्ध परम्परा में अधिक प्रचलित है। इस संयुक्त मुद्रा की विधि निम्न है-

विधि

बायें हाथ की तर्जनी और अंगूठे को ऊपर की ओर उठायें तथा शेष

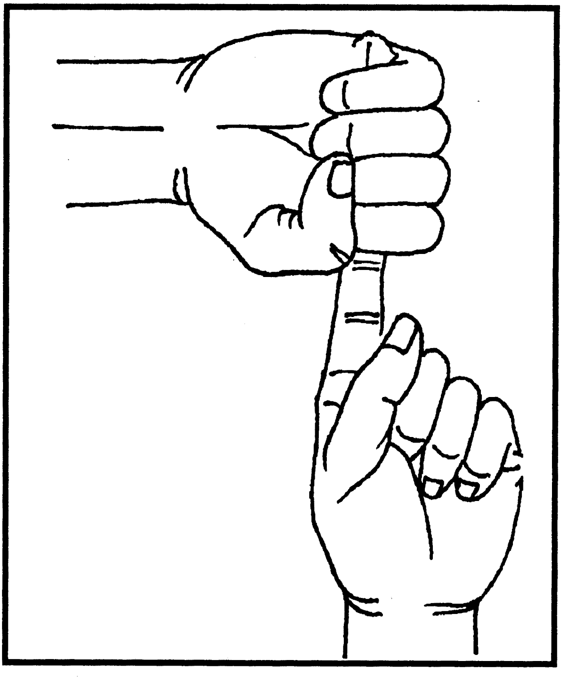

ज्ञान मुद्रा

अंगुलियों को हथेली में मोड़ें। दायें हाथ की मुट्ठी बनाते हुए बायीं तर्जनी को उसमें सन्निविष्ट कर देना, ज्ञान मुद्रा है।[44]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के प्रयोग से आकाश तत्त्व प्रभावित होता है। यह भीतरी कोलाहल को मुक्त करते हुए शान्त वातावरण का निर्माण करती है तथा हार्ट अटैक, लकवा, मूर्च्छा आदि का निवारण करती है। • यह मुद्रा विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र को प्रभावित कर व्यक्ति को महाज्ञानी, पंडित, शान्त चित्त, निरोगी, शोकमुक्त एवं दीर्घ जीवी बनाती है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह मुद्रा बौनेपन, मानसिक मंदता, अविकसित शरीर, बालकों में झूठ, शरारत आदि अनैतिक प्रवृत्तियों का निराकरण करती है।

41. कन्शुकुन्देन्-इन् मुद्रा

जापानी बौद्ध परम्परा में प्रवर्तित यह मुद्रा दोनों हाथों से की जाती है तथा यह षड़क्षर सूत्र की सूचक है। इसकी रचना निम्न रीति से होती है–

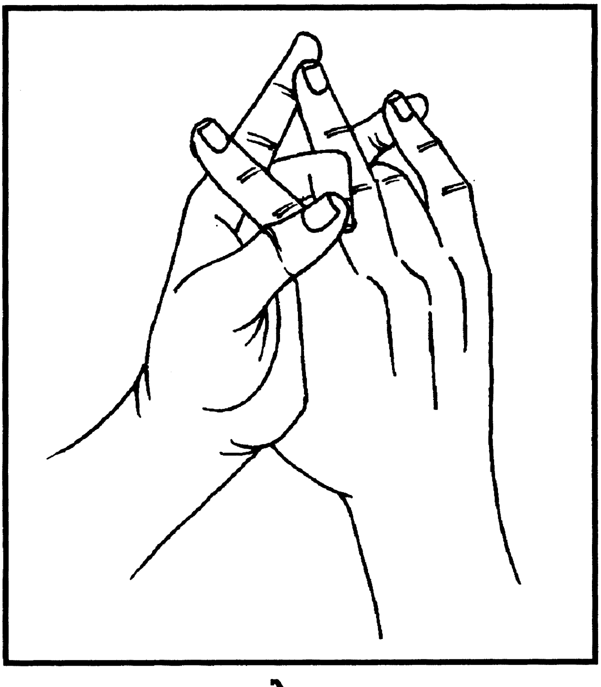

कन्शुकुन्देन्-इन् मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को मध्य भाग की ओर अभिमुख करें। फिर बायें अंगूठें के अग्रभाग को मध्यमा के अग्रभाग से स्पर्श करवायें, तर्जनी और कनिष्ठिका को ऊपर की तरफ सीधी रखें तथा अनामिका को झुकायें। दायां अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका को ऊर्ध्व प्रसरित करें, दायें अंगूठे को बायीं हथेली के बाह्य किनारे पर रखें, दायीं तर्जनी को बायां अंगूठा और मध्यमा के बीच स्थान में योजित करें। दायीं मध्यमा बायीं तर्जनी के अग्रभाग को Cross करें तथा दोनों कनिष्ठिकाएँ अग्रभाग का क्रॉस करती हुई रहने पर 'कन्शुकुन्देन्-इन्' मुद्रा निर्मित होती है।[45]

सुपरिणाम

• पृथ्वी एवं जल तत्त्व का संतुलन करते हुए यह मुद्रा हड्डी, मांसपेशी आदि ठोस तत्त्वों तथा रक्त, वीर्य, लसिका, मल-मूत्र आदि को नियंत्रित एवं विकसित करती है। • मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा जल तत्त्व, फॉस्फोरस आदि तत्त्वों को संतुलित करती है। इससे नाभि चक्र एवं पेट के पर्दे के नीचे स्थित अवयवों के कार्य का नियमन होता है। • यह मुद्रा करने से विशेष रूप से कामग्रन्थियाँ एवं नाभि चक्र प्रभावित होते हैं। हस्तदोष, स्वप्न दोष, मासिक धर्म सम्बन्धी विकृतियाँ एवं बंध्यत्व आदि का निवारण होता है।

42. कर्म-आकाशगर्भ मुद्रा

जापानी बौद्ध परम्परा में प्रचलित इस मुद्रा को निम्न विधि से करते हैं-

विधि

दोनों हथेलियाँ मध्यभाग में निकट रहें, दायां अंगूठा बायें अंगूठे को क्रॉस करता हुआ रहे, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अग्रभाग पर अन्तर्ग्रथित रहें तथा कनिष्ठिका अन्तर्ग्रथित होकर बाहर की तरफ जायें, वह कर्म-आकाश गर्भ मुद्रा कहलाती है।[46]

सुपरिणाम

• इस मुद्राभ्यास से आकाश तत्त्व संतुलित होता है। जिस प्रकार आकाश सभी को स्थान देता है वैसे ही आकाश तत्त्व अन्य तत्त्वों को कार्यान्वित होने

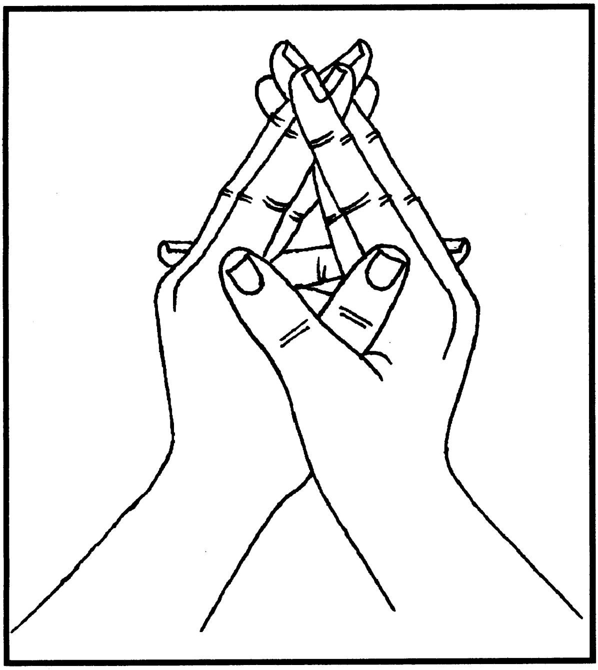

कर्म-आकाशगर्भ मुद्रा

के लिए स्थान देता है। अत: यह अन्य तत्त्वों का भी संतुलन करता है। • आज्ञा चक्र एवं सहस्रार चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा संकल्प-विकल्पमय अवस्था, संशय आदि का निवारण कर परम यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि करवाती है। • एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार यह मुद्रा मनोबल, निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति आदि का वर्धन करती है। इस मुद्रा प्रयोग से व्यक्ति बुद्धिशाली, लेखक, कवि, वैज्ञानिक, तत्त्वज्ञानी बनता है। साधक में अनेक दिव्य गुणों एवं आंतरिक ज्ञान की उत्पत्ति होती है।

43. कटक मुद्रा

मुद्राविज्ञान में कटक मुद्रा के पाँच प्रकार वर्णित हैं उनमें अंतिम प्रकार जापान और चीन देश की बौद्ध परम्परा में अपनाया जाता है, शेष हिन्दू एवं नाट्य परम्परा से सम्बन्धित हैं। कटक शब्द के कई अर्थ हैं। यहाँ उसका अर्थ है किसी के माध्यम से खुलना। इसका स्पष्ट अभिप्राय अज्ञात है।

विधि

बायीं हथेली बाहर की तरफ, तर्जनी मध्यमा और अंगूठा तीनों हथेली की ओर झुके हुए एवं परस्पर अग्रभागों का स्पर्श करते हुए तथा अनामिका और कनिष्ठिका बढ़ते हुए क्रम से हथेली की तरफ झुकी हुई हों, तब कटक मुद्रा कहलाती है।[47]

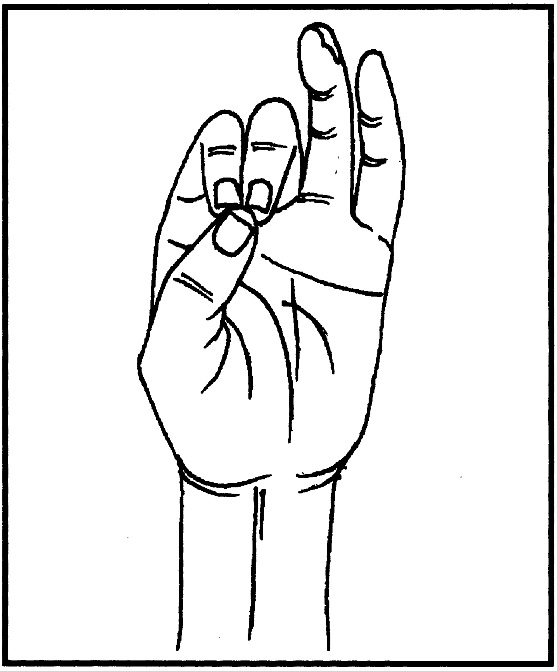

कटक मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा की साधना आकाश तत्त्व को प्रभावित करते हुए थायरॉइड, पेराथायरॉइड, लाररस आदि पर नियंत्रण करती है तथा शरीर से विजातीय तत्त्वों एवं विष द्रव्यों को दूर करती है। • अनाहत एवं विशुद्धि चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा वायु तत्त्व, फेफड़ें और हृदय का नियमन, शरीर के तापमान एवं कैल्शियम का संतुलन कर, ऊर्जा उत्पादन, रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास एवं ज्ञान तंतुओं को जागृत करती है। • आनंद एवं विशुद्धि केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा जीवन की क्षमता को विकसित एवं तीव्र बनाती है। भावों को निर्मल एवं परिष्कृत करती है।

44. किचिजौ-इन् मुद्रा

यह मुद्रा जापान और चीन की बौद्ध परम्परा में समान रूप से प्राप्त होती है। यह पूर्वनिर्दिष्ट 'अन्-आय्-इन्' मुद्रा का ही प्रकारान्तर है। इसे अच्छे भविष्य या किस्मत की सूचक कहा गया है।

विधि

बायीं हथेली को बाहर की तरफ करें, तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका को सीधी रखें तथा अनामिका को अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्श करवायें, तब 'किचिजौ-इन्' मुद्रा बनती है।[48]

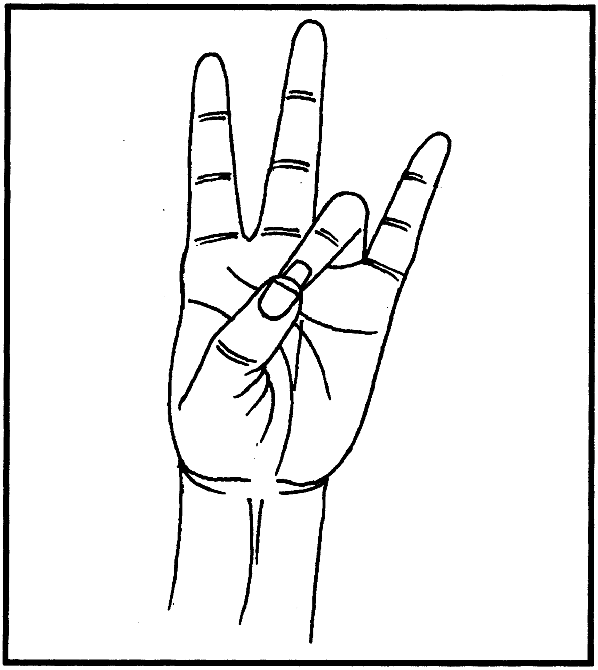

किचिजौ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं जल तत्त्व को संतुलित करती है। इससे रक्त विकार दूर होते हैं, कफ प्रकृत्ति संतुलित रहती है। सुस्ती, भारीपन, चर्बी, सर्दी, सांस की तकलीफ, दमा, आर्थ्राइटिस आदि दोषों का शमन होता है। • मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए स्वस्थ निरोगी काया, कार्य कुशलता,

आंतरिक एवं बाह्य तेजस्विता, वक्तृत्व, कवित्व, इन्द्रिय निग्रह आदि शक्तियों का विकास करती है। • एक्युप्रेशर सिद्धान्त के अनुसार यह शरीर की गर्मी, चर्बी, अत्यधिक संभोगेच्छा, मासिक स्राव आदि को नियंत्रित करती हैं और प्रजनन बाधाओं को भी दूर करती है।

45. किम्यौ-गस्सहौ मुद्रा

इस मुद्रा के अन्य नामान्तर हैं- कोंगो-गस्सहौ, केंजी-गस्सहौ, अंजलि मुद्रा आदि। यह मुद्रा श्रद्धा, भक्ति, आराधना की सूचक है।

विधि

दोनों हथेलियों को नमस्कार मुद्रा की भाँति संयुक्त करें तथा दायीं को बायीं मध्यमा पर हल्की सी क्रॉस करते हुए रखने पर किम्यौ-गस्सहौ मुद्रा बनती है।[49]

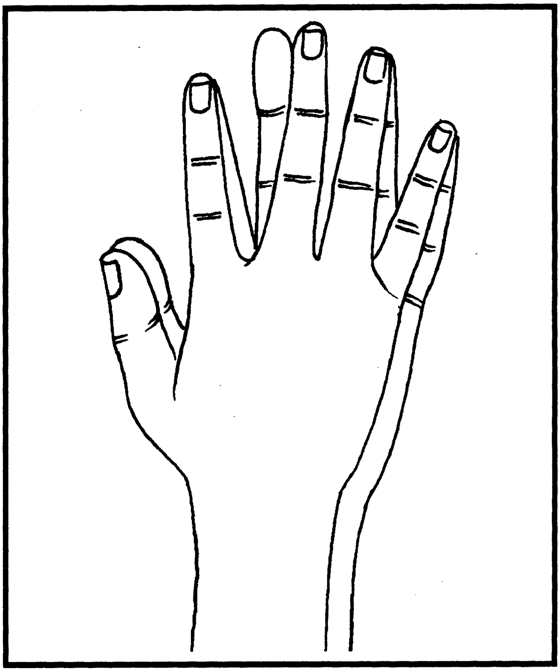

किम्यौ-गस्सहौ मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग अग्नि एवं वायु तत्त्व में संतुलन स्थापित करता है। इससे गैस सम्बन्धी विकृतियों का निवारण, मानसिक स्थिरता एवं एकाग्रता का

विकास, स्नायुतंत्र का शक्ति वर्धन, सिरदर्द, अनिद्रा, सन्धिवात, वायुशूल, लकवा आदि का निवारण होता है। • मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा, जल, सोडियम, रक्त शर्करा, कैल्शियम आदि का नियंत्रण करती है। पाचन तंत्र को मजबूत, सक्रिय एवं संतुलित तथा कार्य शक्ति का नियमन करती है।

एड्रिनल, पेन्क्रियाज, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रंथियों को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा हिचकी, दाँत की तकलीफ, स्नायुओं की मोच आदि को नियंत्रित रखती है। एसिडिटी, उल्टी, तेज सिरदर्द, रक्तचाप, आधासीसी आदि विकारों का शमन करती है।

46. कोंगो-गस्सहो मुद्रा

यह मुद्रा जापान देश में प्रचलित है। यह अंजलि मुद्रा की प्रकारान्तर मुद्रा है। इसे श्रद्धा, भक्ति, आराधना की सूचक माना जाता है। यह संयुक्त मुद्रा निम्न विधि से की जाती है–

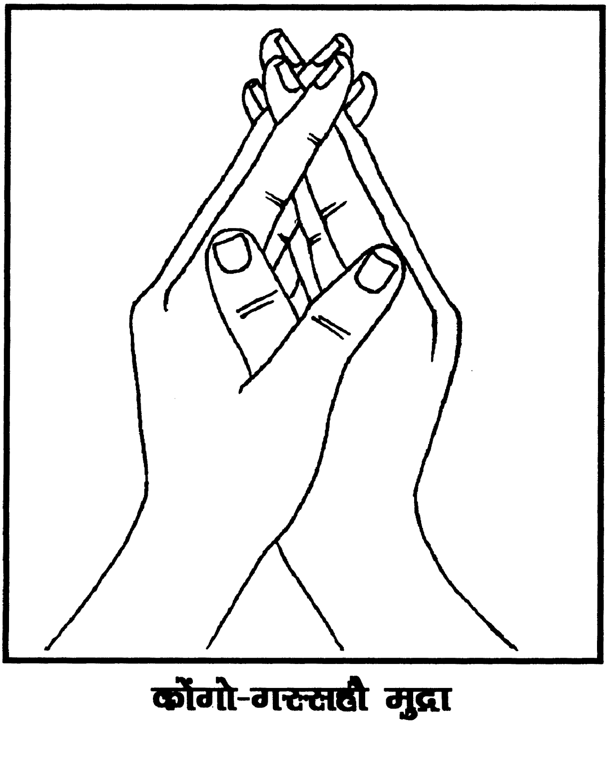

कोंगो-गस्सहो मुद्रा

विधि

दोनों हाथों की अंगुलियों के अग्रभाग को अन्तर्ग्रथित करते हुए बायें अंगूठे के ऊपर दायां अंगूठा रखने से कोंगो-गस्सहौ मुद्रा बनती है।[50]

सुपरिणाम

आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा त्याग एवं अध्यात्म की भावना में वृद्धि करती है। जीव मात्र के प्रति हृदय में प्रेम, करुणा एवं वात्सल्य भाव जागृत करती है। • सहस्रार एवं आज्ञा चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा मस्तिष्क में मेरुजल का संचालन कर कामेच्छाओं पर नियंत्रण करती है। शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास में सहयोगी बनती है। • ज्ञान एवं दर्शन केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा बुद्धि-स्मृति एवं चिन्तन को प्रबुद्ध करती है।

47. कोंगौ-केन्-इन् मुद्रा

यह मुद्रा दो रूपों में प्राप्त होती है। प्रयोजन की अपेक्षा दोनों में समानता है, किन्तु प्रविधि में अन्तर है। उपलब्ध वर्णन के अनुसार यह वज्र के समान कठोर शक्ति और विस्मयकारी क्रोध की सूचक है। इसमें दोनों हाथों में समान मुद्रा बनती है।

प्रथम विधि

दोनों हथेलियों को मध्यभाग में रखें, अंगूठों को भीतर डालते हुए हाथों की मुट्ठी बांधें तथा दायें हाथ को छाती के स्तर पर और बायें को कमर के निचले हिस्से पर धारण करने से 'कोंगौ-केन्-इन्' मुद्रा का निर्माण होता है।[51]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को करने से पृथ्वी एवं जल तत्त्व संतुलित रहते हैं। यह शारीरिक मोटापा, जड़ता,दुर्बलता, रूक्षता आदि का निवारण करते हुए शरीर में उष्णता, जोश, स्फूर्ति, तीव्र दृष्टि आदि का वर्धन करती है। • मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा एक अच्छे व्यक्तित्व के निर्माण में सहयोगी बनती है। • नाभिचक्र एवं यौन ग्रंथियों को प्रभावित करते हुए देह

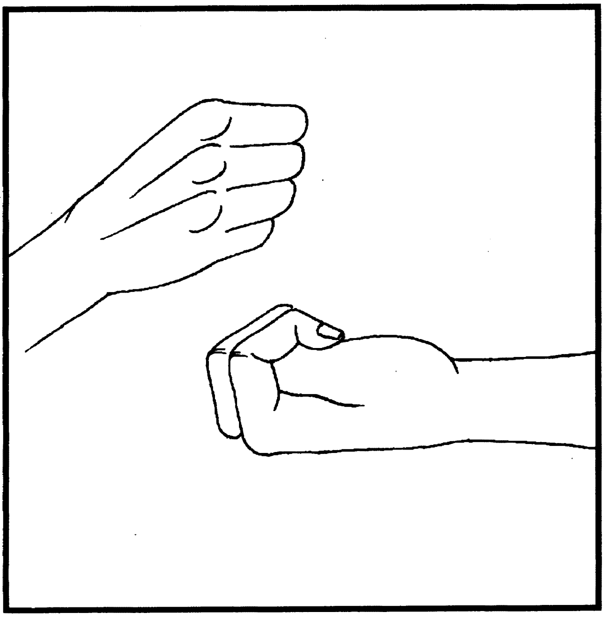

कोंगौ-केन्-इन् मुद्रा-1

स्थित जल तत्त्व, ज्ञानतंतुओं, मज्जा, कोष, मांस, हड्डियों, बोन मेरो, वीर्य, रज आदि का संतुलन करती है।

द्वितीय विधि

उभय हथेलियों को बाहर की ओर अभिमुख करें, अंगूठों को हथेली में मोड़कर तर्जनी, मध्यमा और अनामिका के अग्रभागों को अंगूठों के ऊपर रखें, कनिष्ठिका को दोनों जोड़ से मोड़ें तथा दायां हाथ बायें को क्रॉस करता हुआ एवं कनिष्ठिका परस्पर में अड़ी हुई रहने पर 'कोंगौ-केन्-इन्' मुद्रा का दूसरा प्रकार बनता है।[52]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए रक्त अभिसंचरण, शारीरिक संतुलन, श्वसन क्रिया, मल-मूत्र की गति, तापमान एवं स्मरण शक्ति का नियमन करती है। • मूलाधार एवं विशुद्धि चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा जल, फास्फोरस, वायुतत्त्व, फेफड़ें और हृदय का नियमन करती है। शरीर

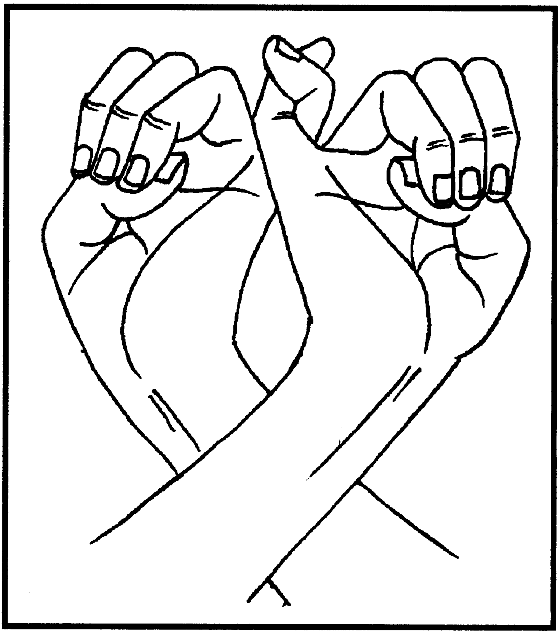

कोंगो-केन्-इन् मुद्रा-2

के तापमान नियंत्रण और शक्ति उत्पादन में सहायक बनती है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार शरीर में स्थित विजातीय द्रव्यों को दूर करती है। हिचकी, स्नायुओं की ऐंठन, सुस्ती आदि को दूर करती है।

48. नैबकु-केन्-इन् मुद्रा

यह मुद्रा भिन्न-भिन्न तीन स्थितियों में देखी जाती है और वे तीनों ही प्रकार जापानी बौद्ध परम्परा में प्रचलित हैं। प्रथम प्रकार चन्द्र का सूचक है, दूसरा गर्भधातुमण्डल आदि धार्मिक क्रियाओं एवं अठारह कर्त्तव्यों से सम्बन्धित है तथा आह्वान का सूचक है और तीसरा सामान्य है।

प्रथम विधि

हथेलियाँ एक-दूसरे की तरफ अभिमुख तथा अंगुलियाँ और अंगूठे हथेली के अन्दर की तरफ अन्तर्ग्रंथित होने पर नैबकु-केन्-इन् मुद्रा का प्रथम प्रकार बनता है।[53]

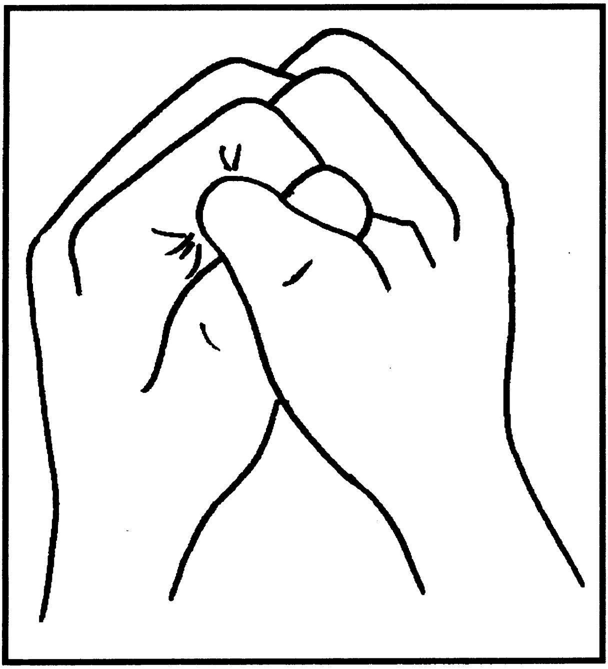

नैबकु-केन्-इन् मुद्रा-1

सुपरिणाम

• नैबकु-केन्-इन् मुद्रा मणिपुर, अनाहत एवं आज्ञा चक्र को गति एवं सक्रियता प्रदान करती है। इन चक्रों के जागरण से शारीरिक रक्त विकार, हृदय विकार, पाचन विकार आदि दूर होते हैं। इससे त्रैकालिक ज्ञान, भाव संप्रेषण आदि में सहायता प्राप्त होती है। • यह मुद्रा शरीरस्थ अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्वों का संतुलन करते हुए अग्निरस, पाचकरस एवं पित्तरस को उत्पन्न करती है। शरीर के प्रमुख संरक्षक एवं सहकारी बल को उत्पन्न करती है तथा मानसिक चेतनाओं का पोषण करती है। • एड्रिनल, थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि के स्राव को नियमित करती है। यह प्रतिरोधक शक्ति का विकास करते हुए साधक को एलर्जी एवं रोगों से बचाती है तथा समत्व गुण का पोषण कर जीवन को तनाव मुक्त एवं उत्साह युक्त बनाती है।

द्वितीय विधि

'नैबकु-केन्-इन्' मुद्रा के दूसरे प्रकार में भी हथेलियाँ एक-दूसरे की तरफ अभिमुख तथा अंगुलियाँ भीतर की तरफ अन्तर्ग्रथित रहती है किन्तु बायां अंगूठा मुट्ठी के भीतर और दायां अंगूठा बाहर रहता है।[54]

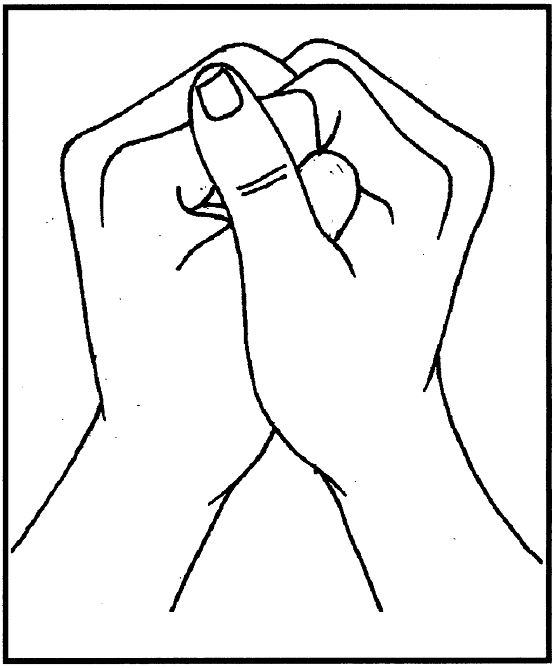

नैबकु-केन्-इन् मुद्रा-2

परिणाम

• आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा काम, क्रोध, मोह, लोभ, दु:ख, शोक, चिंता आदि का निवारण करती है। • सहस्रार एवं विशुद्धि चक्र को जाग्रत करते हुए यह मुद्रा जल तत्त्व, वायु तत्त्व, फेफड़ें और हृदय का नियमन करती है। शक्ति उत्पादन एवं ज्ञान तंतुओं को बल प्रदान करती है। • पिनियल, थायरॉइड एवं पैराथाइरॉइड ग्रन्थियों को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा सभी ग्रंथियों का संतुलन बनाए रखती है। शरीर में स्थित सोडियम, पोटेशियम, रक्तचाप आदि की मात्रा को संतुलित रखती है। दिव्य गुणों का जागरण कर मानव को महात्मा बनाती है।

तृतीय विधि

इस तीसरे प्रकार में दायां अंगूठा मुट्ठी के भीतर और बायां अंगूठा बाहर रहता है शेष वर्णन पूर्व मुद्रा के समान ही जानना चाहिए।[55]

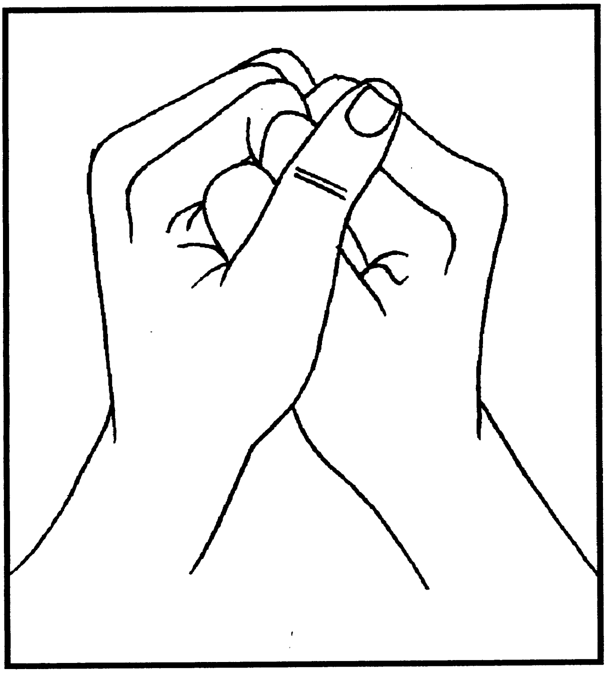

नैबकु-केन्-इन् मुद्रा-3

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं वायु तत्त्व को प्रभावित करते हुए हृदय के रक्त संचरण, श्वसन क्रिया, मल-मूत्र की गति, शारीरिक तापमान, प्राण वायु आदि का संतुलन बनाए रखती है। • स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा ज्ञान ग्रंथियों को उद्घाटित कर दीर्घजीवन प्रदान करती है। • एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार यह मुद्रा शरीर में शक्ति संचारण, श्वसन तंत्र, कैल्शियम, आयोडीन, कोलेस्ट्राल आदि का संतुलन, स्वभाव में स्फूर्ति, धैर्यता आदि गुणों का विकास करती है। नाभि खिसकने से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान भी करती है।

49. नीव-इन् मुद्रा

यह मुद्रा जापान और चीन की बौद्ध परम्परा में विशेष रूप से देखी जाती है। यह 'अन्-आय्-इन्' मुद्रा का प्रकारान्तर है। इस मुद्रा का प्रयोग तुष्टिकरण के लिए किया जाता है तथा इसे छाती के स्तर पर धारण करते हैं।

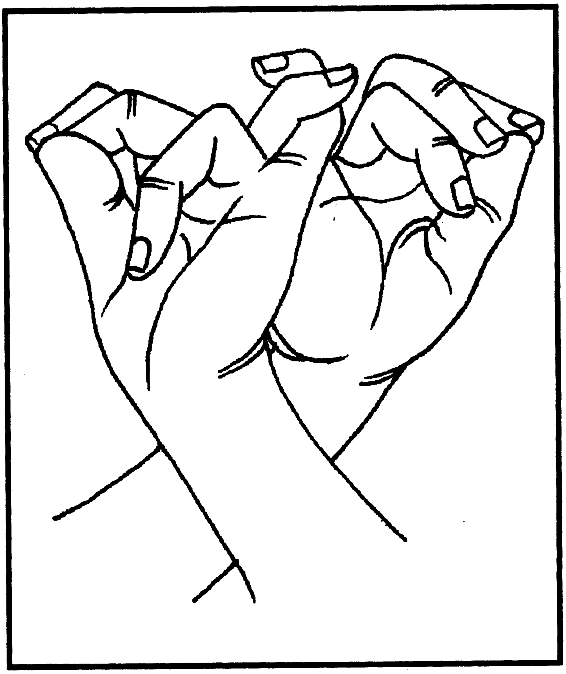

नीव-इन् मुद्रा

विधि

उभय हथेलियों को बाहर की तरफ करते हुए अंगूठों के प्रथम पोर को मध्यमा के प्रथम पोर से स्पर्श करवायें, तर्जनी और अनामिका को अन्दर की तरफ झुकायें, बायें हाथ को कलाई पर क्रॉस करता हुआ रखें तथा कनिष्ठिका परस्पर में गूंथी हुई रहने पर 'नीव-इन्' मुद्रा बनती है।[56]

सुपरिणाम

• वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा प्राण वायु को स्थिर करती है। फेफड़ें, हृदय, गुर्दें आदि पर विशेष प्रभाव डालती है। स्मरण शक्ति की क्षमता एवं नजाकत का पोषण करती है। • अनाहत एवं आज्ञा चक्र को जागृत कर शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास में सहायता प्रदान करती है। बुद्धि

को एकाग्र एवं कुशाग्र बनाती है। अनेक दिव्य गुणों का स्फुटन एवं सद्भावों का अंकुरण करती है। • आनंद एवं दर्शन केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा कषाय एवं वासनाओं पर नियंत्रण तथा भावों का निर्मलीकरण करती है।

50. न्यारै-केन्-इन् मुद्रा

भारत में इस मुद्रा को ज्ञानमुष्टि मुद्रा और तथागत मुष्टि मुद्रा कहते हैं। जापानी बौद्ध परम्परा में समादृत यह मुद्रा छः तत्त्व मुष्ठि मुद्राओं में से एक है। यह संयुक्त मुद्रा इस प्रकार है–

विधि

दायें हाथ को मुट्ठी रूप में बांधकर उसे मध्यभाग की तरफ रखें। बायें हाथ को भी मध्यभाग की तरफ कर तर्जनी को ऊर्ध्व प्रसरित करें, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली में मोड़ें, अंगूठे का प्रथम पोर तर्जनी के दूसरे पोर का स्पर्श करें तथा बायीं तर्जनी दायें हाथ की मुट्ठी में रहें, इस भाँति 'न्यारै-केन्-इन्' मुद्रा बनती है।[57]

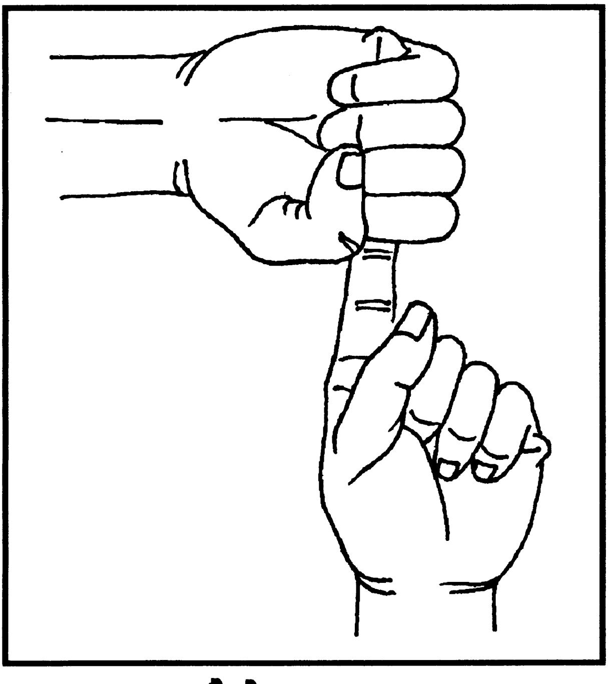

न्यारै-केन्-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा करने से शरीरस्थ वायु तत्त्व संतुलित होता है। इससे छाती, फेफड़ें, हृदय एवं वायु संचरण का संतुलन होता है। • इस मुद्रा प्रयोग से विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र प्रभावित होते हैं। • यह मुद्रा वायु एवं आकाश तत्त्व का नियमन करती है। इससे शारीरिक तापमान, कैल्शियम, मानसिक विकास आदि का संतुलन एवं शक्ति उत्पादन होता है। • पिच्युटरी, थायरॉइड एवं पैराथायरॉइड ग्रंथियों को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास, बालकों में गलत आदतों का निवारण, चंचलता एवं अभिमान का उपशमन करती है।

51. ओंग्यौ-इन् मुद्रा

इस मुद्रा के दोनों प्रकार जापानी बौद्ध परम्परा में प्रचलित है। उपलब्ध प्रमाणों से ज्ञात होता है कि यह मुद्रा दूसरों से छिपने की अथवा स्वयं को अन्यों से दूर करने की सूचक मुद्रा है। इस संयुक्त मुद्रा को छाती के स्तर पर धारण करते हैं।

प्रथम स्थिति

दायीं हथेली को नीचे की तरफ अभिमुख करते हुए अंगुलियों को (भूमि से समानान्तर) बायीं तरफ फैलायें। बायीं हथेली को मुट्ठी रूप में बांधकर

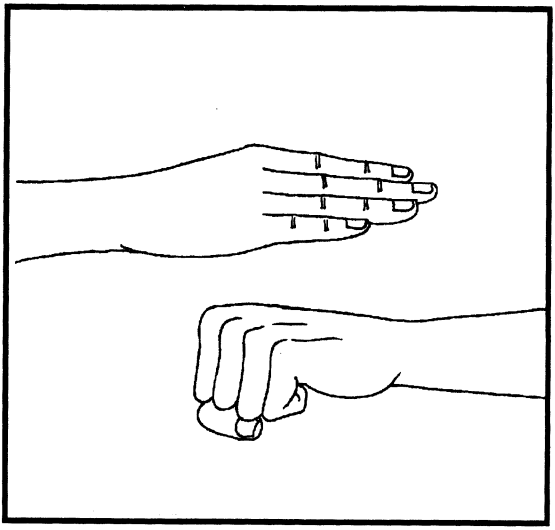

ओंग्यौ-इन् मुद्रा-1

अधोमुख करें। इसमें दायां हाथ बायें के ऊपर मंडराता हुआ रहता है। अतः इसे 'ओंग्यौ-इन्' मुद्रा कहते हैं।[58]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं आकाश तत्त्वों का संतुलन स्थापित करती है। शरीर में स्थित विजातीय एवं विषद्रव्यों का निष्कासन करती है। हृदय एवं रक्त संचरण सम्बन्धी समस्याओं का भी निवारण करती है। • यह मुद्रा सहस्रार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत एवं जल तत्त्व को संतुलित करते हुए समस्त ग्रंथियों का सम्यक संचालन करती है तथा पेट के नीचे के अवयवों के कार्य का नियमन करती है। • एक्यूप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह मुद्रा आन्तरिक ज्ञान का विकास करते हुए हृदय की सुकुमारता एवं मनोबल में वृद्धि करती है। इससे नेतृत्व गुण एवं निर्णयात्मक शक्ति आदि का विकास भी होता है।

द्वितीय स्थिति

इस दूसरे प्रकार में दायां हाथ पूर्ववत एवं बायें हाथ की मध्यमा, अनामिका एवं कनिष्ठिका हथेली में मुड़ी हुई, अंगूठा उनके ऊपर तथा तर्जनी मध्य भाग की तरफ प्रसरित रहती है।[59]

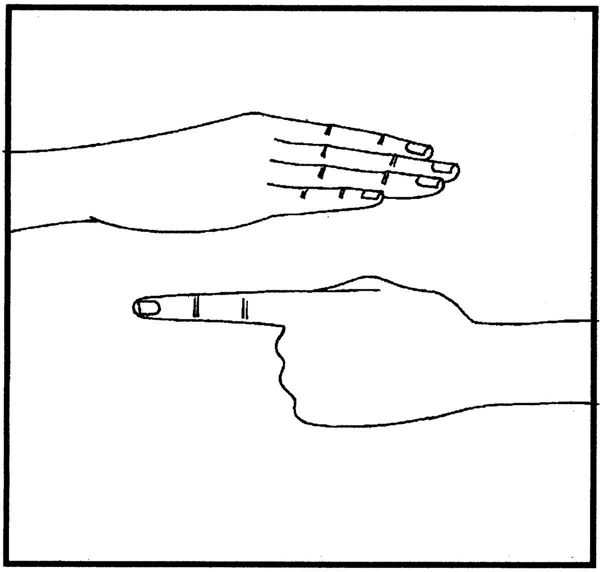

ओंग्यौ-इन् मुद्रा-2

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के प्रयोग से अग्नि एवं जल तत्त्व संतुलित रहते हैं। यह मुद्रा पित्त से उभरने वाली बीमारियों एवं मूत्र दोष का परिहार करती है। गुर्दे को स्वस्थ बनाती है तथा शरीर की कान्ति, तेज एवं स्निग्धता में वर्धन करती है। • मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस, पाचन विकृति आदि का निवारण करती है। • यह मुद्रा तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र को प्रभावित करते हुए एसिडिटी, उल्टी, रक्तचाप, तेज सिरदर्द, प्राणवायु एवं शर्करा संतुलन आदि में लाभकारी है।

52. पुष्पमाला मुद्रा

यह मुद्रा दो रूपों में प्राप्त होती है। इसका एक प्रकार 18 कर्त्तव्यों के समय दर्शाया जाता है और दूसरा धार्मिक क्रियाओं के प्रसंग पर प्रकट किया जाता है। प्रस्तुत मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में मान्य एवं फूलमाला की सूचक है।

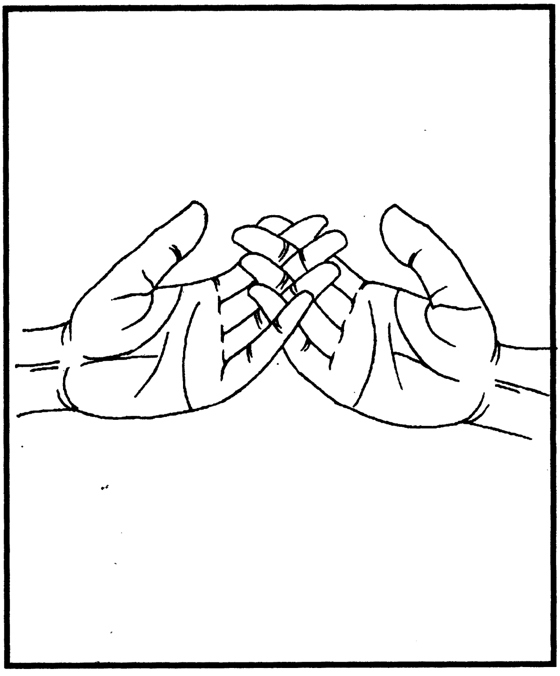

पुष्पमाला मुद्रा

विधि

इस मुद्रा में हथेलियाँ ऊर्ध्वाभिमुख, अंगुलियाँ मध्य भाग की तरफ प्रसरित और एक-दूसरे में हल्के से अन्तर्ग्रथित हुई रहती है।[60]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं वायु तत्त्व को संतुलित करती है। इससे वायु सम्बन्धी विकार, साइटिका, सन्धिवात, जोड़ों के दर्द आदि दूर होते हैं तथा शरीर सुंदर, पुष्ट एवं शक्तिशाली बनता है। • मूलाधार एवं अनाहत चक्रों को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा आरोग्य, दक्षता, कार्य कुशलता, आध्यात्मिक ऊर्ध्वता एवं तेजस्विता में वर्धन करती है। • यौन एवं थायमस ग्रंथियों को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा बच्चों के विकास एवं रोग रक्षा आदि में सहायक बनती है।

53. रागराज मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा धार्मिक कार्यों के समय देवी-देवताओं के लिए धारण की जाती है तथा इसका सम्बन्ध रागराज देवता से है। यह संयुक्त मुद्रा निम्न है–

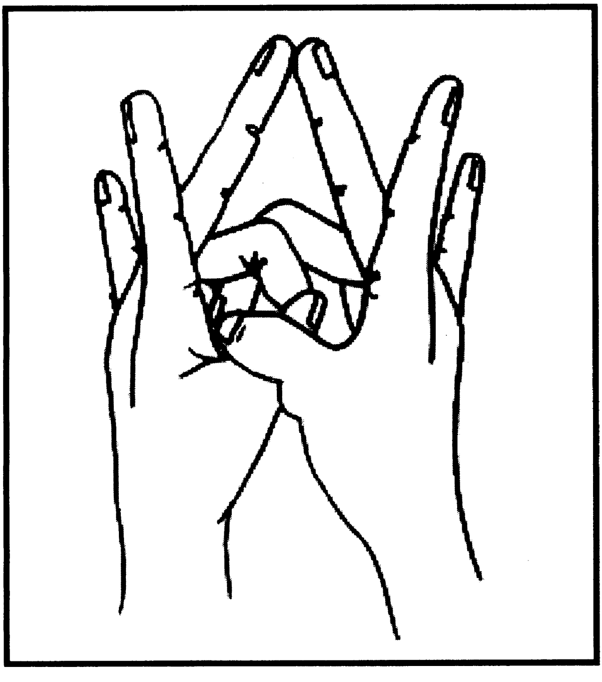

रागराज मुद्रा

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखें, अंगूठे और अनामिका के अग्रभागों को स्पर्शित करते हुए गोला बनायें, तर्जनी और कनिष्ठिका ऊपर की ओर रहें, मध्यमा अंगुलियाँ अग्रभागों को स्पर्श करती हुई रहें तथा अंगूठे और अनामिका को ग्रथित कर मिलाने पर रागराज मुद्रा बनती है।[61]

सुपरिणाम

• रागराज मुद्रा की साधना से मूलाधार एवं विशुद्धि चक्र जागृत होते हैं। इससे अतिन्द्रिय क्षमताएँ जागृत होती है, सकारात्मक चिंतन विकसित होता है तथा चेहरा ओजस्वी एवं प्रभावशाली बनता है। • इस मुद्रा से पृथ्वी एवं वायु तत्त्व संतुलित रहते हैं। मानसिक शक्ति एवं स्मरण शक्ति की क्षमता एवं नजाकत का पोषण होता है। शरीर शक्तिशाली एवं तंदरूस्त बनता है। • विशुद्धि एवं शक्ति केन्द्र को प्रभावित करते हुए इस मुद्रा के द्वारा वासनाओं को नियंत्रित एवं निर्मल किया जा सकता है। इससे वृत्तियाँ शांत होती है और कुंडलिनी शक्ति का ऊर्ध्वारोहण होता है।

54. रत्नघट मुद्रा

यह मुद्रा अपने नाम के अनुसार रत्नों के घट को सूचित करती है। इस संयुक्त मुद्रा को छाती के स्तर पर धारण करते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

हथेलियों को अंगूठों के नीचे वाली एडी के हिस्से से मिलायें, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका के अग्र- भागों को संयुक्त करें तथा तर्जनी को प्रथम एवं द्वितीय जोड़ से मोड़कर अंगूठों के अग्रभाग से स्पर्शित करें, तब रत्नघट मुद्रा बनती है।[62]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं वायु तत्त्व में संतुलन करती है इससे शरीर के सभी जैविक बल सक्रिय बनते हैं। शरीर बलशाली, सुंदर एवं स्निग्ध बनता है। • मूलाधार एवं अनाहत चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा फॉस्फोरस, वायु एवं

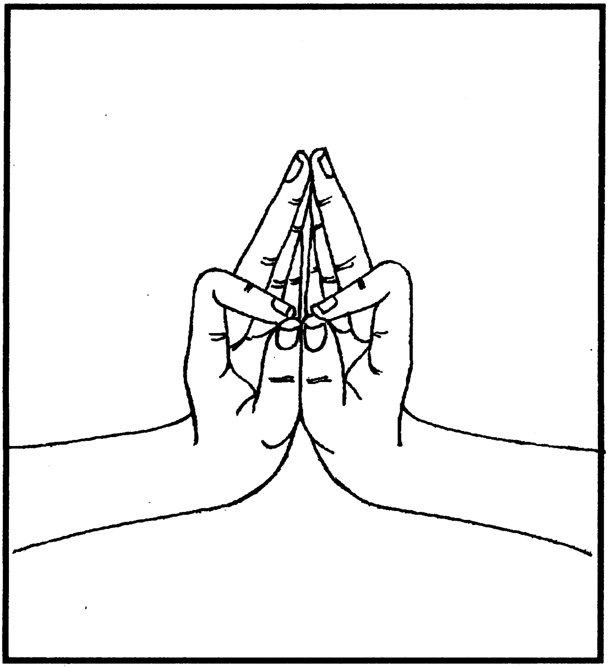

रत्नघट मुद्रा

आकाश तत्त्व का नियमन करती है। • शक्ति एवं आनंद केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा काम वासनाओं का दमन करते हुए ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण, विधेयात्मक कार्यों में शक्ति का प्रयोग तथा भावों को निर्मल एवं परिष्कृत करती है।

55. रत्नप्रभा आकाश गर्भ मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा रत्नप्रभा आकाशगर्भ नामक देव से सम्बन्धित है अतः उस देवता विशेष के संदर्भ में धारण की जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दोनों हथेलियों को अत्यन्त समीप कर मध्य भाग में रखें, दायाँ अंगूठा बायें पर क्रॉस करता हुआ रहे, तर्जनी और मध्यमा ऊपर उठी हुई, हल्की सी मुड़ी हुई एवं अग्रभागों का स्पर्श करती हुई रहें तथा अनामिका और कनिष्ठिका बाहर की तरफ अन्तर्ग्रंथित रहने पर रत्नप्रभा आकाशगर्भ मुद्रा बनती है।[63]

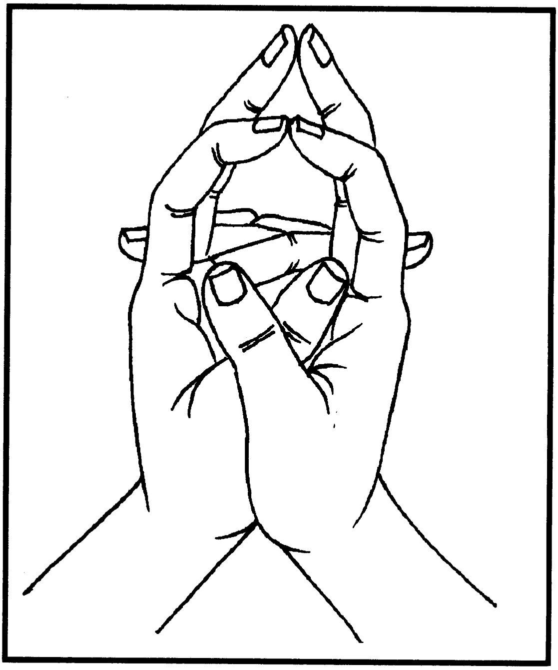

रत्नप्रभा मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी, जल एवं वायु तत्त्वों में संतुलन स्थापित करती है। इनके संयोग से शरीर का संतुलन बना रहता है। यह शरीर के ठोस तत्त्व हड्डियों, मांसपेशियों, त्वचा, नाखुन, रक्त, वीर्य, लसिका, मल-मूत्र, प्राण वायु आदि में संतुलन स्थापित करती है। • इस मुद्रा से मूलाधार, अनाहत एवं स्वाधिष्ठान चक्र जागृत होते हैं। जिससे आभ्यंतर शक्तियों का ऊर्ध्वारोहण, मानसिक एवं बौद्धिक स्थिरता और एकाग्रता की प्राप्ति होती है। • यह मुद्रा गोनाड्स एवं थायमस ग्रंथियों को सक्रिय करती है। यह विशेष रूप से बालकों के विकास एवं उत्साह वर्धन में कार्यकारी है तथा अनहद आनंद एवं शांति की अनुभूति करवाती है।

56. रेंजे-केन्-इन् मुद्रा

उपर्युक्त बौद्ध मुद्रा छः तत्त्व मुष्ठि मुद्राओं में से एक है। यह कमल के कलि की सूचक है तथा इस मुद्रा को छाती के स्तर पर एक हाथ से करते हैं। शेष पूर्ववत।

विधि

दायें हाथ को मुट्ठी रूप में बनाकर अंगूठे को तर्जनी के मुड़े हुए स्थान पर रखने से रेंजे-केन्-इन् मुद्रा बनती है।[64]

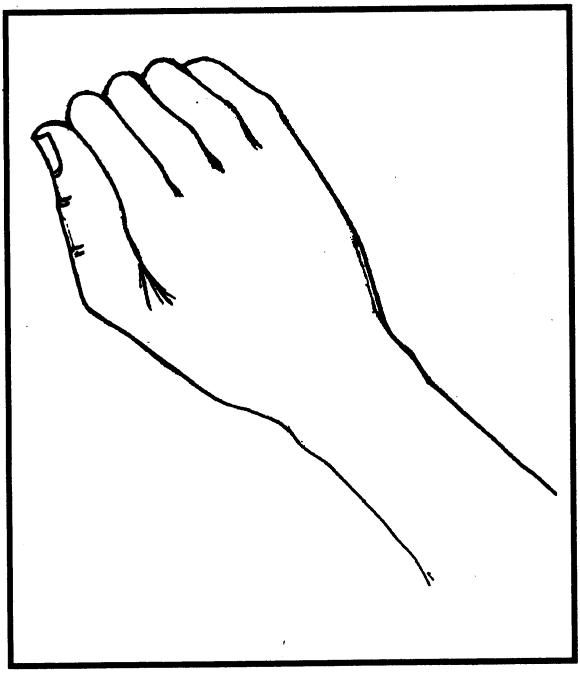

रेंजे-केन्-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं जल तत्त्व **ग्रन्थि**– प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, यकृत, तिल्ली, आतें, नाड़ी तंत्र एवं पाचन तंत्र।

57. रूप मुद्रा

जापानी बौद्ध परम्परा में यह मुद्रा विविध कार्यों के उद्देश्य से धारण की जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

हथेलियों को बाहर की तरफ अभिमुख करें, मध्यमा और अनामिका को अंगूठों के ऊपर रखें, तर्जनी और कनिष्ठिका को सीधी रखें, दायां हाथ बायें की कलाई पर क्रॉस करता हुआ रहे तथा कनिष्ठिकाएँ परस्पर में ग्रथित होने पर रूप मुद्रा बनती है।[65]

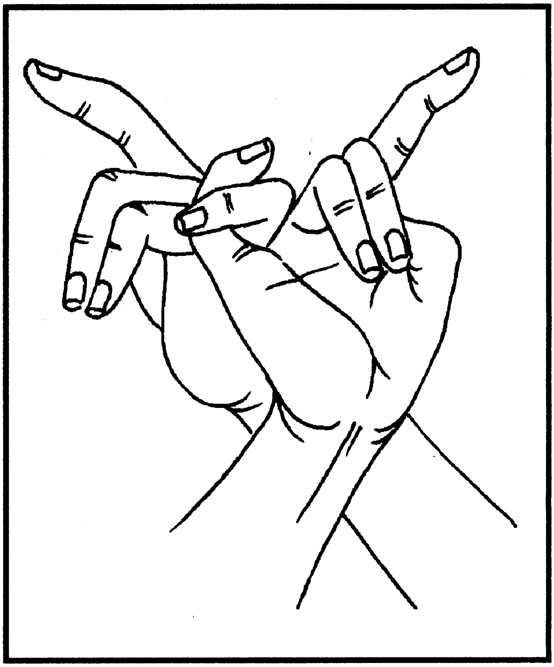

रूप मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से अग्नि तत्त्व संतुलित, पाचन तंत्र मजबूत एवं सक्रिय बनता है। • यह मुद्रा मणिपुर चक्र को जागृत करती है। इससे अग्नि तत्त्व, पाचन रस, शरीरस्थ रक्त, शर्करा, जल एवं सोडियम तत्त्व नियंत्रित रहते हैं। • तैजस केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा शरीर को कान्तिमय एवं तेजयुक्त बनाती है तथा साधक को साहसी, निर्भीक, सहिष्णु एवं आशावादी बनाती है।

58. सहस्रभुजा अवलोकितेश्वर मुद्रा

उपलब्ध सामग्री के अनुसार यह तान्त्रिक मुद्रा विविध कार्यों के प्रयोजन से दर्शायी जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

हथेलियाँ मध्यभाग में, अंगूठे ऊपर उठे हुए, तर्जनी और अनामिका अपने प्रतिरूप को अग्रभाग पर क्रॉस करती हुई, मध्यमा अग्रभाग को स्पर्श करती हुई तथा कनिष्ठिका सीधी फैली रहने पर सहस्र भुजा अवलोकितेश्वर मुद्रा बनती है।

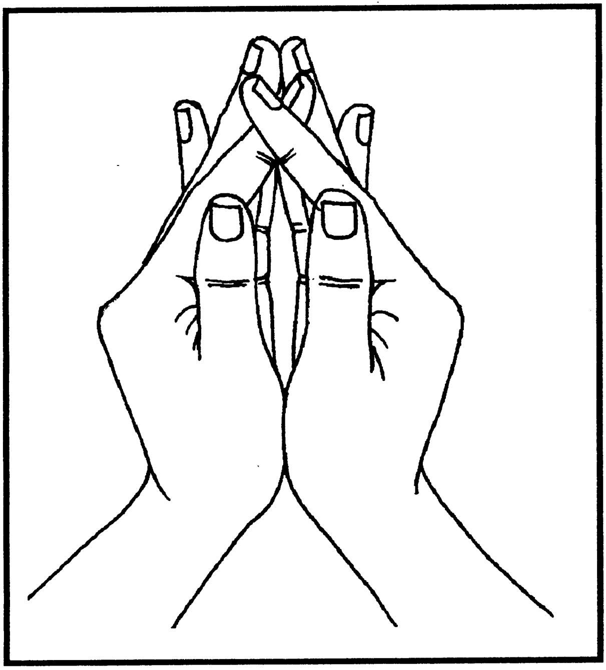

सहस्रभुजा अवलोकितेश्वर मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करती है। इससे हृदय शक्तिशाली तथा पेट के विभिन्न अवयवों की क्षमता का वर्धन होता है। • आज्ञा एवं मणिपुर चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस एवं पाचन विकृतियों को दूर करती है। शारीरिक, चैतसिक एवं बौद्धिक शक्ति का ऊर्ध्वारोहण करती है। • एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार मनोवृत्तियों को

परिष्कृत करने में, शरीर के समस्त अवयवों का संतुलन करने में तथा निःस्वार्थ आदि गुणों के विकास में यह मुद्रा सहायक बनती है।

59. संकै-सै-शौ-इन् मुद्रा

जापानी बौद्ध परम्परा में प्रचलित यह मुद्रा 'बसर-उन्-कोंगो-इन्' मुद्रा का प्रकारान्तर है। यह सम्पूर्ण विश्व पर विजय की सूचक है तथा त्रैलोक्य विजय मुद्रा से संबंधित है। यह संयुक्त मुद्रा दोनों हाथों में प्रतिबिम्ब की भाँति होती है। इस मुद्रा को छाती के स्तर पर धारण करते हैं।

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखते हुए अंगुलियों एवं अंगूठों की मुट्ठी बनायें, अंगूठों को भीतर की तरफ रखें तथा दायें हाथ को बायें के सामने कलाई के स्तर पर क्रॉस करता हुआ रखने पर 'संकै-सै-शौ-इन्' मुद्रा बनती है।[67]

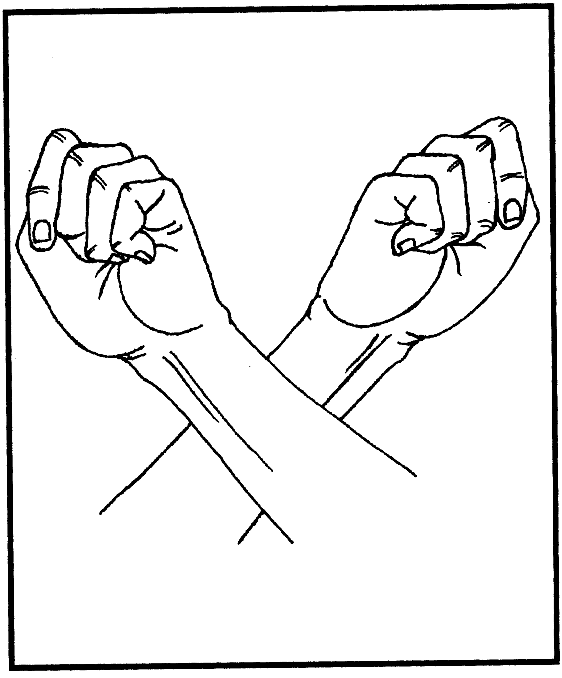

संकै-सै-शौ-इन मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करती है। इनके संतुलन से विचारों में दया, कोमलता, मैत्री आदि भावों का प्रस्फुटन होता है। •

मूलाधार एवं सहस्रार चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा मानसिक संकल्प-विकल्पमय अवस्था का निदान कर यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करवाती है। इससे शारीरिक आरोग्य, कर्म कौशल्य एवं चैतसिक एकाग्रता संप्राप्त होती है। • पिनियल एवं गोनाड्स के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा कामेच्छाओं पर नियंत्रण निर्णयात्मक शक्ति एवं लेखन, गायन, कवित्व आदि कलाओं को विकसित करती है।

60. सन्-कौ-छौ-इन् मुद्रा

यह संयुक्त मुद्रा बुद्ध को नमन करने की सूचक है एवं ध्यान मुद्रा से सम्बन्धित है। इस मुद्रा को गोद में धारण करते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

अधोमुख बायीं हथेली के ऊपर ऊर्ध्वाभिमुख दायीं हथेली को इस प्रकार रखें कि दायां अंगूठा बायीं कनिष्ठिका का और बायां अंगूठा दायीं कनिष्ठिका का भली भाँति स्पर्श कर सकें, इस तरह 'सन्-कौ-छौ-इन्'' मुद्रा बनती है।[68]

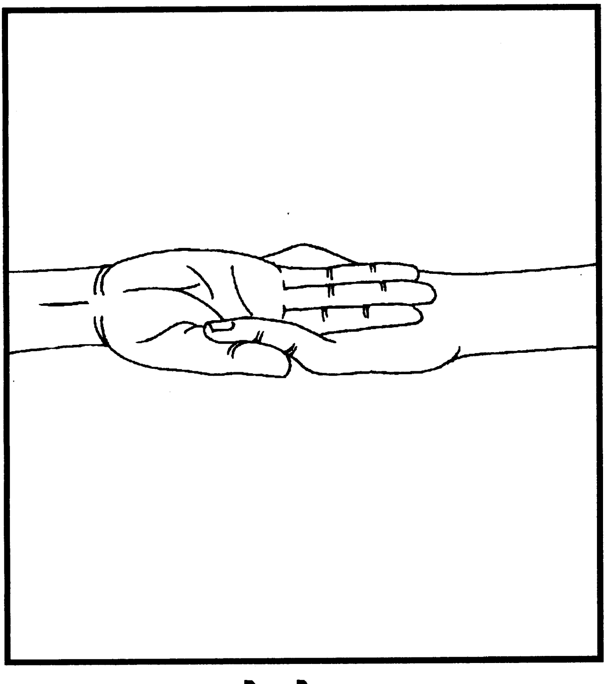

सन्-कौ-छौ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• जल, वायु एवं आकाश तत्त्व में संतुलन स्थापित करते हुए यह मुद्रा स्वभाव को शांत हृदय को शक्तिशाली एवं वैभाविक स्थिति का शमन करती है। • स्वाधिष्ठान, आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा वायु, आकाश, फेफड़ें एवं हृदय का नियमन करती है। शरीर के तापमान का नियंत्रण, शक्ति उत्पादन तथा नाभि चक्र को यथास्थान स्थित करती है। • स्वास्थ्य, विशुद्धि एवं दर्शन केन्द्र को प्रभावित करते हुए क्रोधादि कषायों एवं वासनाओं पर नियंत्रण करती है। जीवन को विधेयात्मक एवं आनंदमय बनाती है।

61. सेगन्-सेमुइ-इन् मुद्रा

यह मुद्रा 'सेगन् इन्' मुद्रा और 'सेमुइ इन्' मुद्रा का प्रचलित रूप है। इस संयुक्त मुद्रा को खड़े-खड़े छाती के स्तर पर धारण करते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दायीं हथेली को बाहर की तरफ अभिमुख करें। बायीं हथेली को भी बाहर की तरफ करके अंगुलियों और अंगूठों को नीचे की ओर फैलायें, तब सेगन्-सेमुइ-इन् मुद्रा बनती है।[69]

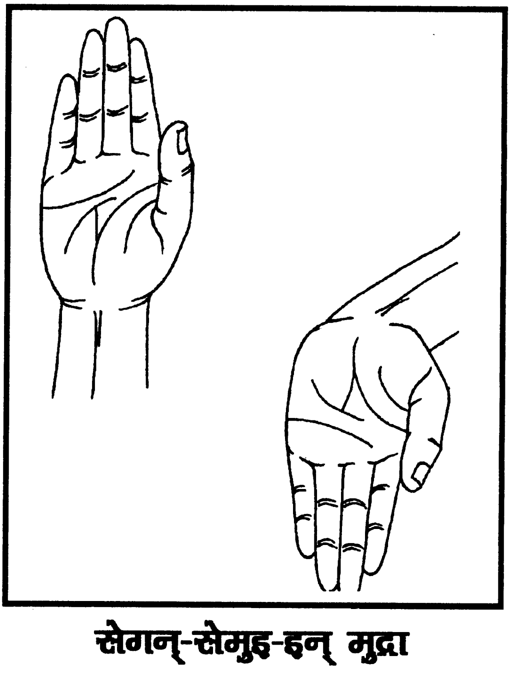

सेगन्-सेमुइ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीर से विजातीय विष तत्त्वों का निकास करती है। यह थायरॉइड, पेराथायरॉइड, लाररस, टान्सिल आदि का भी नियंत्रण करती है। • सहस्रार एवं आज्ञा चक्र को जागृत करते हुए संशय-विपर्यय से रहित निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त करवाती है तथा सम्यक ज्ञान को उत्पन्न कर बुद्धि को एकाग्र एवं कुशाग्र बनाती है। • एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार यह मुद्रा मनोबल, निर्णायक शक्ति, स्मरणशक्ति, देखने-सुनने की शक्ति का विकास करती है।

62. सेमुइ-इन् मुद्रा

भारत में इसे अभय मुद्रा और अभयवरद मुद्रा कहते हैं। यह अभय को वरदान रूप में प्राप्त करने की सूचक मुद्रा है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दायीं हथेली को अभय मुद्रा के समान छाती के स्तर पर रखें तथा बायीं हथेली को ऊर्ध्वाभिमुख रूप से कमर के स्तर पर या गोद में धारण करने पर 'सेमुइ-इन्' मुद्रा बनती है।[70]

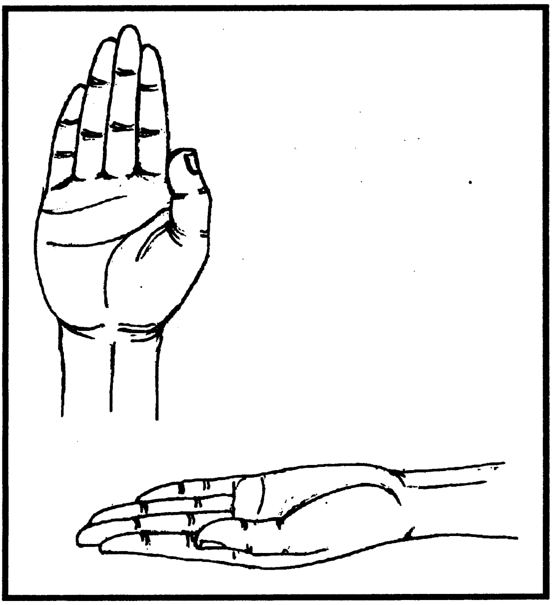

सेमुइ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व**– अग्नि एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, स्वर तंत्र, नाक, कान, गला एवं मुँह।

63. शब्द मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा द्विविध रूपों में प्राप्त होती है। देवी देवताओं या विशिष्ट अतिथियों की पूजा के प्रारंभ में कुछ सामग्रियाँ चढ़ाई जाती है उनमें से यह एक है। इसे संगीत की सूचक कहा गया है। मुख्य रूप से यह मुद्रा वज्रायना देवी तारा की पूजा से सम्बन्धित है। इसे छाती के स्तर पर धारण करते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत।

प्रथम विधि

इस मुद्रा को बनाने के लिए दायीं हथेली को नीचे की तरफ अभिमुख करें, तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों को मध्यभाग में हल्की सी ऊपर की तरफ फैलायें, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली में मोड़ें तथा अंगूठा-अनामिका और कनिष्ठिका के प्रथम पोर को स्पर्श करें। बायें हाथ में भी इसी तरह की मुद्रा बनायें। दायां हाथ हल्का सा बायें के ऊपर रखा जाता है।[71]

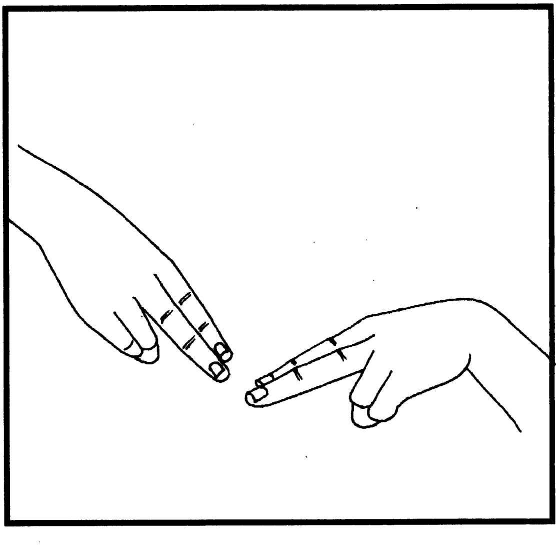

शब्द मुद्रा-1

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए शारीरिक उष्णता, आहार पाचन, भूख-प्यास, स्नायु तंत्र की स्थिति स्थापकता, हृदय की शक्ति आदि को सक्रिय एवं संतुलित रखती है। • इस मुद्रा को धारण कर सहस्त्रार एवं मणिपुर चक्र को जागृत किया जा सकता है। यह मधुमेह, कब्ज, अपच, पाचन विकृति, हृदय रोग आदि के निवारण में उपयोगी है। • पिनियल एवं एड्रिनल ग्रंथि को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा पित्ताशय, रक्तचाप, लीवर, रक्त परिभ्रमण, प्राणवायु, शर्करा, पानी, रक्तचाप आदि का संतुलन करती है। यह आध्यात्मिक एवं बौद्धिक विकास में भी सहायक बनती है।

द्वितीय विधि

इस दूसरे प्रकार में हथेलियों को बाहर की ओर अभिमुख करें, अंगूठों को हथेली में मोड़ें, मध्यमा और अनामिका को अंगूठों के ऊपर मोड़े हुए रखें, तर्जनी और कनिष्ठिका सीधी रहें। दायें हाथ का पिछला हिस्सा बायें हाथ के पिछले हिस्से को क्रॉस करता हुआ रहे तथा तर्जनी और कनिष्ठिका आपस में अड़ी हुई रहने पर शब्द मुद्रा का दूसरा प्रकार बनता है।[72]

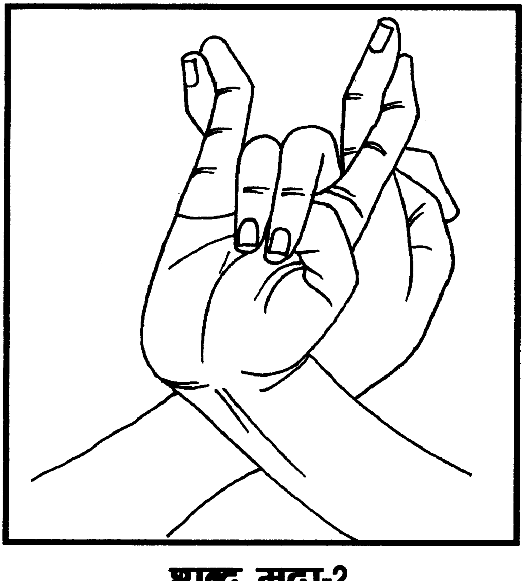

शब्द मुद्रा-2

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व को प्रभावित करते हुए त्वचा, नाखुन, हड्डियों, मांसपेशियों, बाल, हृदय, थायरॉइड, पेराथायरॉइड, टान्सिल्स आदि को नियंत्रित एवं संतुलित रखती है। • मूलाधार, मणिपुर एवं आज्ञाचक्र को संतुलित करते हुए यह मुद्रा आरोग्य, कार्य कुशलता, शीघ्रग्राही बुद्धि तथा बाह्य एवं आन्तरिक शक्ति में वर्धन करती है। • शक्ति, तैजस एवं दर्शन केन्द्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा आन्तरिक राग-द्वेषादि कषायों का शमन करती है, बुद्धि को तीव्र-एकाग्र बनाती है तथा काम वासनाओं को नियंत्रित करती है।

64. शक्र मुद्रा

यह तांत्रिक मुद्रा विविध धार्मिक कार्यों के समय धारण की जाती है तथा यह मुद्रा शक्र नामक इन्द्र की सूचक है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

अंगूठा और तर्जनी को ऊपर की तरफ फैलाकर तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेलियों में मोड़कर दोनों हाथों को समीप लाना शक्र मुद्रा है।[73]

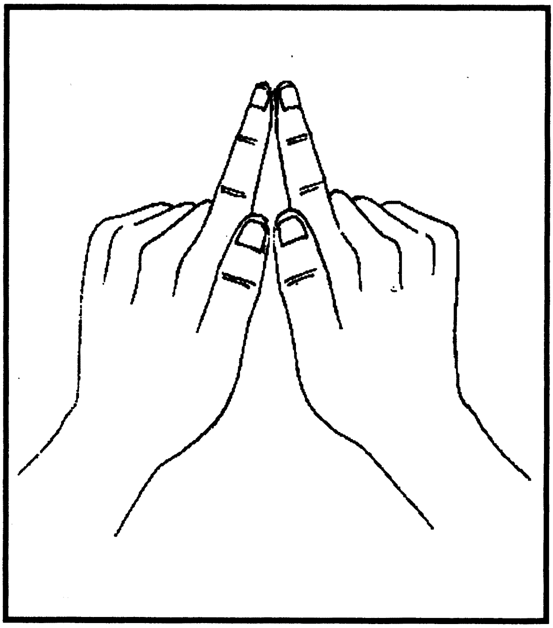

शक्र मुद्रा

सुपरिणाम

• शक्र मुद्रा को धारण करने से मणिपुर, स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र स्वस्थ एवं सक्रिय रहते हैं। इससे व्यक्तित्व गुण सम्पन्न बनता है तथा हृदय विकार, रक्त विकार, कंठ विकार एवं प्रजनन अंग सम्बन्धी विकार दूर होते हैं। • अग्नि, जल एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए यह पाचन शक्ति को विकसित करती है, Acidity, Dehydration आदि में आराम देती है तथा रोग प्रतिरोधक शक्ति का विकास करती है। • प्रजनन, एड्रिनल, थायरॉइड आदि ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा आवाज, स्वभाव, संचार व्यवस्था, हलन-चलन श्वसन आदि पर नियंत्रण करती है।

65. शाक्यमुनि मुद्रा

विविध धार्मिक कार्यों के अवसर पर दर्शायी जाती यह मुद्रा शाक्यमुनि (बुद्ध) से संबंधित है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दोनों हथेलियों को समीप कर अंगूठों को ऊपर उठायें, तर्जनी और अनामिका को हथेली के भीतर मोड़ें तथा मध्यमा और कनिष्ठिका को ऊर्ध्व

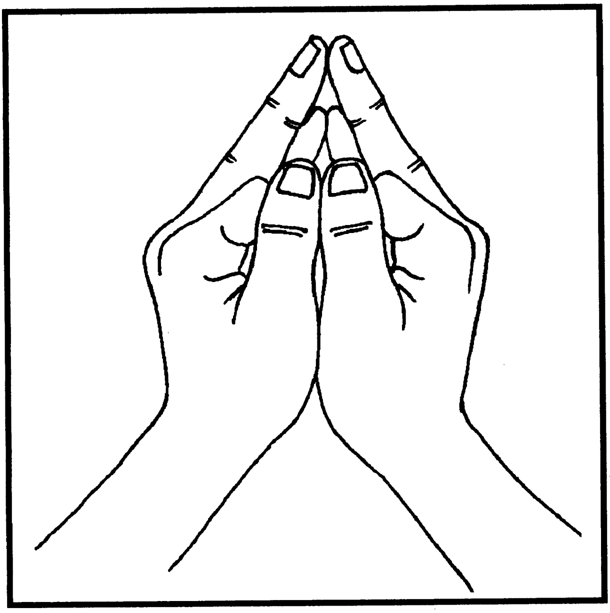

शाक्यमुनि मुद्रा

प्रसरित कर उनके अग्रभागों को मिलाना, शाक्यमुनि मुद्रा है।[74]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं वायु तत्त्व को संतुलित करती है। कुपित वायु, गठिया, साइटिका, वायुशूल, लकवा, अपच, गैस, एसिडिटी आदि कई रोगों के निवारण में यह मुद्रा सहायक बनती है। घुटने के दर्द, सन्धिवात, वायुशूल आदि में भी लाभदायी है। • मणिपुर एवं अनाहत चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा अग्नि तत्त्व एवं पाचक रसों का नियंत्रण, रक्तशर्करा, सोडियम आदि का संतुलन, रोग-प्रतिरोधक शक्ति का विकास, तनाव एवं कार्य शक्ति का नियमन करती है। • थायमस एवं एड्रिनल ग्रंथि तंत्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा बालकों के विकास में विशेष उपयोगी है।

66. शुमि-सेन्-हौ-इन् मुद्रा

यह मुद्रा भारत में सुमेरू मुद्रा के नाम से प्रसिद्ध है। इस मुद्रा का प्रयोग होम आदि धार्मिक कृत्यों में किया जाता है। शेष वर्णन पूर्ववत।

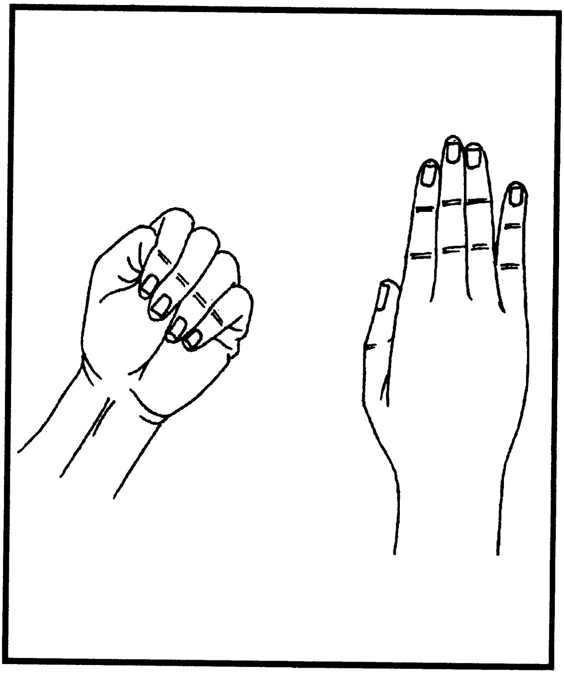

शुमि-सेन्-हौ-इन् मुद्रा

विधि

इस मुद्रा में बायीं हथेली मध्यभाग की तरफ, अंगूठा हथेली में मुड़ा हुआ तथा शेष अंगुलियाँ अंगूठे के ऊपर मुड़ी हुई रहें। दायीं हथेली बाहर की तरफ और अंगुलियाँ एवं अंगूठे ऊपर की तरफ फैले हुए रहें। बायां हाथ बायें नितम्ब पर और दायां हाथ छाती के स्तर पर रखा जाता है इस भाँति 'शुमि-सेन्-हौ-इन्' मुद्रा बनती है।[75]

सुपरिणाम

• पृथ्वी एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा जीवन में स्फूर्ति, उत्साह, साहस एवं आनंद की वृद्धि करती है। शरीर की जड़ता, भारीपन, स्थूलता, दुर्बलता आदि को दूर कर श्वसन प्रक्रिया एवं प्राण वायु संतुलन में भी सहायता प्रदान करती है। • मूलाधार एवं विशुद्धि चक्र को जागृत कर यह मुद्रा आन्तरिक ज्ञान एवं शक्तियों को उजागर करती है। यह वक्तृत्व-कवित्व गुणों का विकास एवं स्वस्थ काया को स्थायित्व भी प्रदान करती है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह कपट वृत्ति, अहंकार असामाजिक वृत्तियों का शमन करती है। शरीर से विष एवं विजातीय तत्त्वों का निष्कासन करती है। स्नायुओं में ऐंठन, सुस्ती, थकान, कमजोरी आदि को दूर करती है।

67. सम्मनिंग-सिन्स् मुद्रा

यह मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा के भक्तों एवं धर्मगुरुओं के द्वारा अपने पापों एवं गलतियों को प्रकट करने के लिए धारण की जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

इस मुद्रा में हथेलियाँ स्पर्श करती हुई, दायां अंगूठा ऊपर उठा हुआ, बायां अंगूठा हथेली में मुड़ा हुआ, तर्जनी ऊपर उठी हुई तथा हल्की सी मुड़ी हुई, मध्यमा ऊपर उठी हुई एवं अग्रभाग मिले हुए, अनामिका एवं कनिष्ठिका हथेली के पृष्ठ भाग पर अन्तर्ग्रथित हुए रहने पर सम्मनिंग-सिन्स् मुद्रा बनती है।[76]

सुपरिणाम

• पृथ्वी एवं वायु तत्त्व को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा प्राण वायु को स्थिर, हृदय, गुर्दे एवं फेफड़ों को सक्रिय तथा शारीरिक दुर्बलता का निवारण

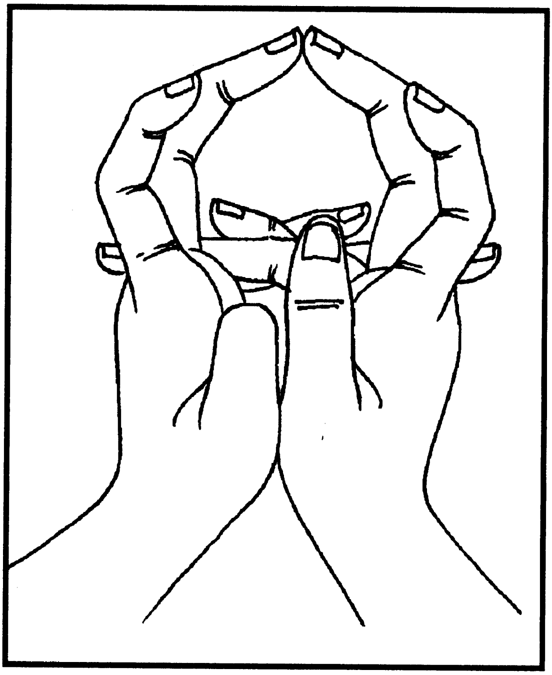

सम्मनिंग-सिन्स् मुद्रा

करती है। • मूलाधार एवं अनाहत चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा काम आतुरता को नियंत्रित करती है। शारीरिक स्वस्थता एवं हृदय में सद्गुणों का स्फुटन करती है। • शक्ति एवं तैजस केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा आभ्यंतर शक्तियों का ऊर्ध्वारोहण, कामवासनाओं का शमन, आन्तरिक एवं बाह्य कान्ति का वर्धन करती है।

68. सुप्रतिष्ठ मुद्रा

वज्रायन बौद्ध परम्परा की प्रमुख मुद्राओं में से यह एक है। उपलब्ध ग्रन्थों के अनुसार यह समूह में से अलग होने की प्रार्थना सूचक मुद्रा है। इसे छाती के स्तर पर संयुक्त हाथों से धारण करते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

उभय हथेलियों को ऊर्ध्वाभिमुख करते हुए अंगुलियों को बाहर की ओर फैलायें तथा हथेलियों एवं कनिष्ठिका की बाह्य किनारियों को मिलाने पर सुप्रतिष्ठ मुद्रा बनती है।

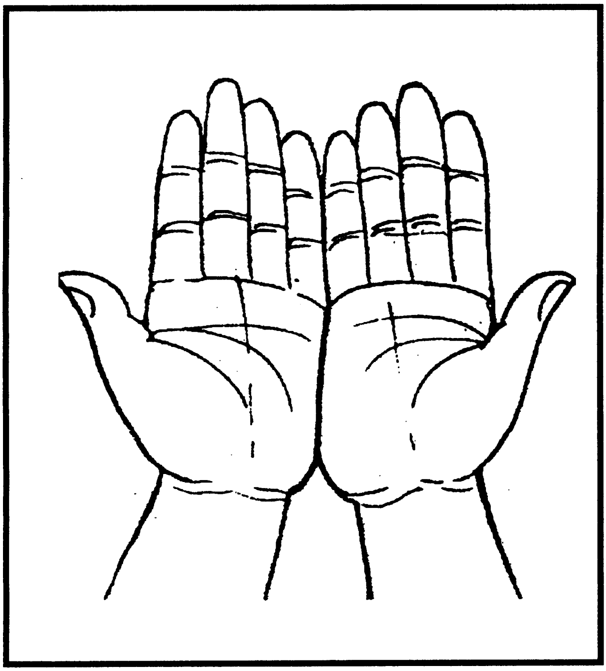

सुप्रतिष्ठ मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश तत्त्व को नियंत्रित करते हुए हृदय सम्बन्धी रोगों को उपशान्त कर भावधारा को निर्मल, वातावरण को शान्त, आनंदयुक्त एवं चित्त को प्रसन्न करती है। • यह मुद्रा मूलाधार, सहस्रार एवं आज्ञा चक्र को प्रभावित करते हुए संशयात्मक स्थिति का निवारण कर आन्तरिक दिव्य ज्ञान की उत्पत्ति करती है। बुद्धि को कुशाग्र एवं एकाग्र बनाती है। • यह मुद्रा पीनियल, पिच्युटरी एवं कामग्रंथियों को संतुलित करती है। इससे व्यक्ति में अनेक प्रतिभाओं का विकास होता है और शेष ग्रंथियों के कार्य नियंत्रित होते हैं।

69. सूत्र मुद्रा

जापानी बौद्ध परम्परा की यह मुद्रा धार्मिक अनुष्ठानों से सम्बद्ध रखती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दोनों हथेलियों को अंदर की तरफ करते हुए तर्जनी और कनिष्ठिका को हथेली में मोड़ें, अंगूठा इन अंगुलियों के प्रथम पोर पर मुड़ा हुआ रहे, मध्यमा

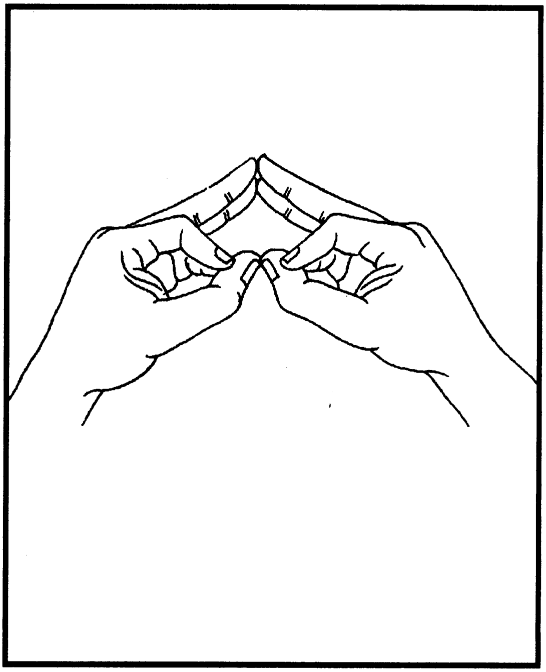

सूत्र मुद्रा

और अनामिका को ऊपर में फैलायें। तदनन्तर हाथों को इस प्रकार संयुक्त करें कि प्रसरित अंगुलियों एवं अंगूठों के अग्रभाग परस्पर स्पर्शित हो सकें, इस भाँति सूत्र मुद्रा बनती है।[78]

सुपरिणाम

• वायु तत्त्व को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा शरीर के संचालन, हृदय में रुधिराभिसंचरण, श्वसन एवं मल-मूत्र की गति आदि में सहयोग करती है। मानसिक शक्ति, स्मरण शक्ति आदि की क्षमता एवं नजाकत का पोषण करती है। • आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा वायु तत्त्व, आकाश तत्त्व, कैल्शियम, फेफड़ें, हृदय, शारीरिक तापमान का नियमन करती है। यह शक्ति उत्पादन एवं ज्ञान जागरण में भी सहायक बनती है। • दर्शन एवं विशुद्धि केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा कषाय उपशमन एवं काम वासना पर नियंत्रण कर जीवन को शांत, उदार, निर्मल एवं आनंदमय बनाती है।

70. त्रैलोक्य विजय मुद्रा

स्वर्ग, मृत्यु एवं पाताल तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने की सूचक यह मुद्रा धार्मिक प्रसंगों के दरम्यान अपनायी जाती है। इसकी विधि निम्न है–

विधि

हथेलियों को बाहर की तरफ अभिमुख करते हुए अंगूठों को हथेली में मोड़ें, मध्यमा और अनामिका अंगूठों के ऊपर मुड़ी हुई, तर्जनी और कनिष्ठिका ऊपर उठी हुई, दायां हाथ बायें हाथ को क्रॉस करता हुआ तथा कनिष्ठिका आपस में गूंथी हुई रहने पर त्रैलोक्य विजय मुद्रा बनती है।[79]

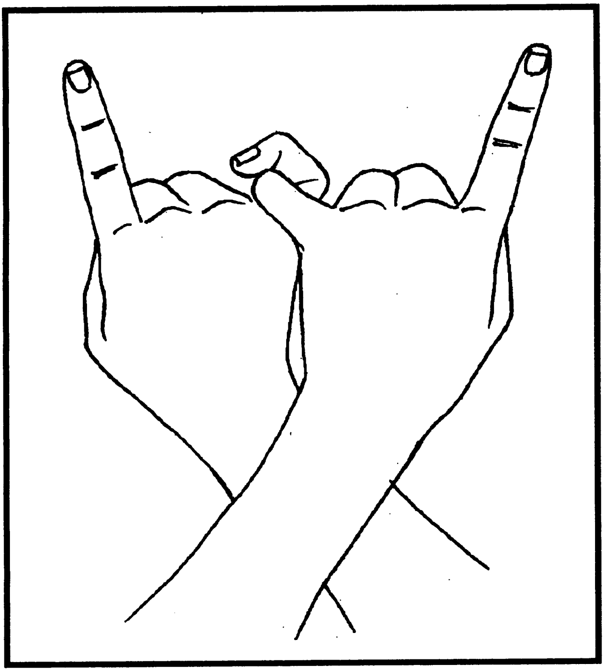

त्रैलोक्य विजय मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा करने से अग्नि एवं जल तत्त्व संतुलित होते हैं। यह मूत्र दोष एवं पित्त से उभरने वाली बीमारियों का भी परिहार करती है। • इस मुद्रा से मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र प्रभावित होते हैं। इससे मधुमेह, कब्ज, पाचन विकृतियों, एसिडिटी आदि का भी शमन होता है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के

अनुसार यह पित्ताशय, लीवर, रक्त परिभ्रमण, रक्तचाप, प्राण वायु का संतुलन कर चारित्र गठन करती है तथा नाभि खिसकने से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करती है।

71. वज्र मुद्रा

इन्द्र का प्रमुख शस्त्र वज्र कहलाता है। बौद्ध मत में चक्राकार चिह्न को वज्र कहा गया है। प्रायः सभी परम्पराओं में वज्र मुद्रा के उल्लेख प्राप्त होते हैं। जापानी बौद्ध परम्परा में इसके निम्नोक्त दो प्रकार प्रचलित हैं–

प्रथम प्रकार

युगल हाथों को समीप कर हथेलियों, अंगूठों और कनिष्ठिकाओं की बाह्य किनारियों को मिलायें, इस बीच में एक पोला सा स्थान रखें, अनामिका को हथेली तरफ मोड़ें तथा मध्यमाओं को अग्रभाग से जोड़ने पर वज्र मुद्रा का प्रथम प्रकार बनता है।[80]

वज्र मुद्रा-1

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से वायु तत्त्व नियंत्रित रहता है। छाती, फेफड़ें, हृदय एवं थायमस ग्रंथि स्वस्थ रहती है। • यह मुद्रा आज्ञा एवं अनाहत चक्र को

जागृत करते हुए वक्तृत्व, कवित्व, इन्द्रियजय में वर्धन, हृदय सम्बन्धी रोगों का शमन, स्मरण शक्ति को तीव्र, बुद्धि को एकाग्र तथा चित्त को शान्त बनाती है। • पिच्युटरी एवं थायरॉइड ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा हिचकी, स्नायुओं की ऐंठन, सुस्ती, शारीरिक रूक्षता आदि में लाभ करती है।

द्वितीय प्रकार

वज्र मुद्रा का द्वितीय प्रकार हीरे (रत्न) का सूचक है। इस दूसरे प्रकार में दायीं हथेली को सामने की ओर अभिमुख कर अंगूठा और कनिष्ठिका के अग्रभागों को मिलायें तथा शेष अंगुलियों को ऊर्ध्व दिशा में प्रसरित करने पर वज्रमुद्रा का दूसरा प्रकार बनता है।[81]

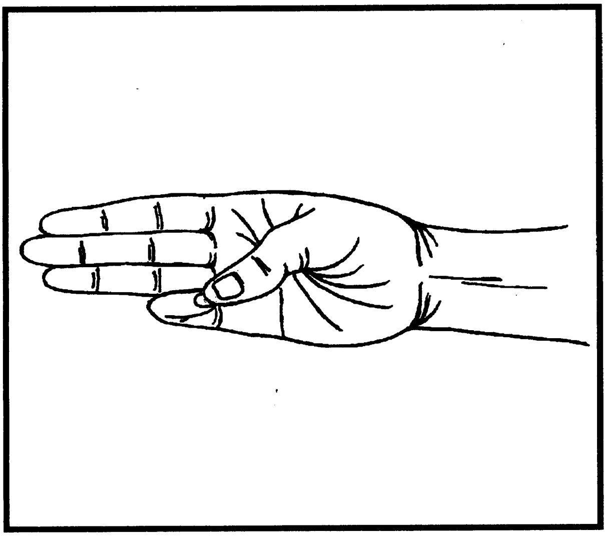

वज्र मुद्रा-2

सुपरिणाम

• जल एवं वायु तत्त्व को संतुलित कर यह मुद्रा प्रजनन अंग, ग्रंथि केन्द्र, मूत्र पिंड, हृदय, फेफड़ें आदि का नियमन करती है। शरीर को स्वस्थ, स्निग्ध एवं कांतियुक्त बनाती है। स्वभाव को शांत, मृदु एवं कोमल बनाती है। • स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र को सक्रिय बनाते हुए शरीर में तापमान एवं कैल्सियम का नियंत्रण कर शक्ति उत्पादन करती है। पेट के पर्दे के नीचे स्थित अवयवों के कार्य का नियमन करती है। कण्ठ को मधुर एवं सुरीला बनाती है।

• स्वास्थ्य एवं विशुद्धि केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा पाचन एवं अन्य शारीरिक प्रक्रियाओं में सहायक बनती है।

72. वज्र आकाशगर्भ मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा वज्र-आकाशगर्भ नामक देव से सम्बन्धित है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

हथेलियाँ अन्दर की तरफ समीप में रहें, दायां अंगूठा बायें अंगूठे को क्रॉस करता हुआ रहें, तर्जनी फैली हुई एवं हल्की सी झुकी हुई रहें, मध्यमा के अग्रभाग स्पर्श किये हुए तथा अनामिका और कनिष्ठिका बाहर की तरफ अन्तर्ग्रंथित रहने पर 'वज्र आकाशगर्भ' मुद्रा बनती है।[82]

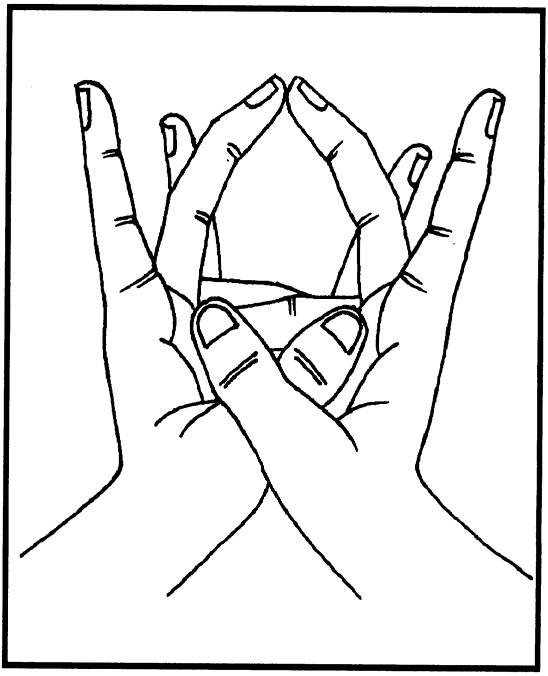

वज्र आकाशगर्भ मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के प्रयोग से वायु तत्त्व संतुलित रहता है। प्राण वायु स्थिर, फेफड़ें, हृदय एवं गुर्दे स्वस्थ बनते हैं। मानसिक शक्ति एवं स्मरण शक्ति का

विकास होता है। • यह मुद्रा अनाहत एवं विशुद्धि चक्र का जागरण कर बालकों के विकास एवं ज्ञान तंतुओं के जागरण में सहायक बनती है। यह साधक को महाज्ञानी, शान्त चित्त, निरोगी एवं शोकहीन बनाती है। • एक्युप्रेशर प्रणाली के अनुसार यह शरीरस्थ कैल्शियम एवं फास्फोरस का संतुलन और उद्दंडता पर नियंत्रण करती है तथा बालकों में उत्साह एवं उल्लास भाव का वर्धन करती है।

73. वज्रांजलि मुद्रा

यह जापान देश में अनुचरित एक विशिष्ट मुद्रा है। इसे भक्तिमय अभिवादन और आध्यात्मिक वशीकरण की सूचक माना गया है। शेष पूर्ववत।

विधि

दायीं हथेली को बायीं हथेली से स्पर्शित कर अंगुलियों एवं अंगूठों के प्रथम पोर को अन्तर्ग्रथित करने पर वज्रांजलि मुद्रा बनती है।[83]

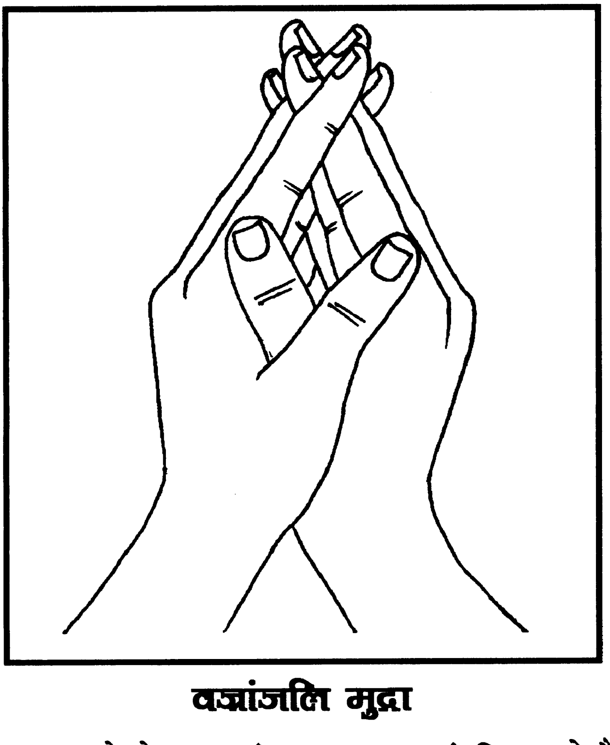

वज्रांजलि मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा करने से जल एवं आकाश तत्त्व संतुलित रहते हैं। यह हृदय सम्बन्धी रोगों पर नियंत्रण, शारीरिक दुर्बलता आदि का निवारण करते हुए शुभ

भावों को जागृत करती है। • स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा जिह्वा पर सरस्वती का वास करवाती है। दिमाग को शांत, कुशाग्र एवं शीघ्र ग्राही बनाती है। • नाभि एवं ललाट केन्द्र को सम्यक बनाते हुए अनुभूतियों में विकास करती है, परामनोवैज्ञानिक ज्ञान को विकसित करती है तथा नाभि चक्र को संतुलित एवं यथास्थान करती है।

74. वज्रकुल मुद्रा

यह मुद्रा वज्रकुल देवता से सम्बन्धित एवं वज्रकुल की सूचक है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

इस मुद्रा में दायीं हथेली ऊर्ध्वाभिमुख एवं अंगुलियाँ मध्य भाग की तरफ फैली हुई रहें। बायीं हथेली अधोमुख एवं अंगुलियाँ मध्यभाग की तरफ फैली रहें। दायें हाथ का पृष्ठ भाग बायें हाथ के पृष्ठ भाग पर रहें तथा दायां अंगूठा बायीं कनिष्ठिका के नीचे और दायीं कनिष्ठिका बायें अंगूठे के नीचे रहे। इस भाँति वज्रकुल मुद्रा बनती है।[84]

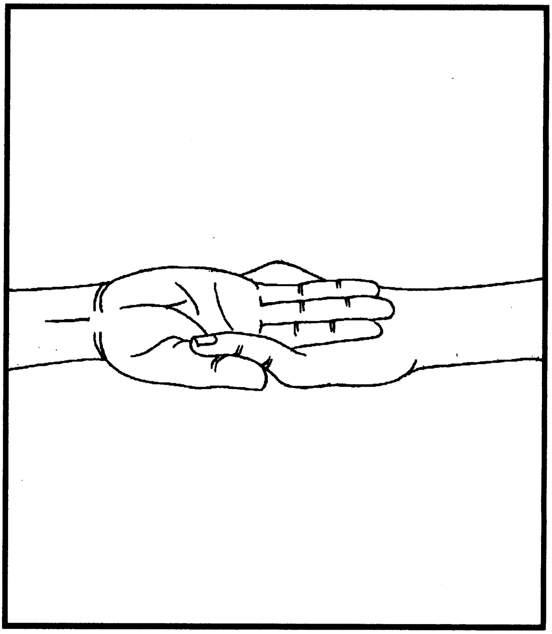

वज्रकुल मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं अग्नि तत्त्व का संतुलन स्थापित करती है। इनके संयोग से रक्त विकार दूर होते हैं। पित्त से उभरने वाली बीमारियों का उपशमन एवं मूत्र दोष का परिहार होता है। • स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा डायबिटीज, रक्तचाप, अपच, कब्ज, एसिडिटी आदि को दूर कर विशिष्ट शक्तियों का जागरण और काम वासनाओं को नियंत्रित करती है। • एड्रिनल एवं गोनाड्स को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा रक्तचाप, तेज सिरदर्द आदि का उपचार करती है तथा मासिक धर्म, प्रजनन, वंध्यत्व आदि से सम्बन्धित समस्याओं का निदान करती है।

75. वितर्क मुद्रा

यह मुद्रा चीन में 'अन्-वेइ-यिन्', जापान में 'अन्-आया-इन्' और तिब्बत में 'स्ब्यिन-फ्याग्-ग्र्या' के नाम से पहचानी जाती है। उपलब्ध सामग्री के अनुसार यह मुद्रा ईश्वर सम्बन्धी विवादों अथवा चर्चाओं की सूचक है।

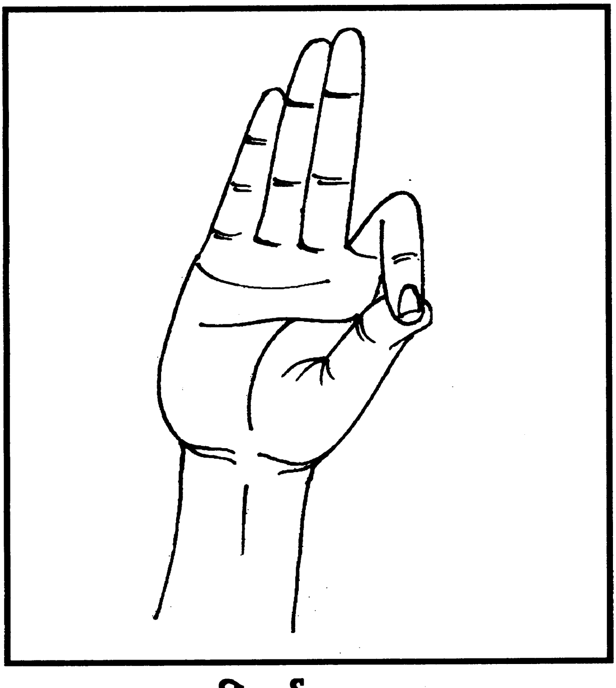

वितर्क मुद्रा

विधि

दायीं हथेली को बाहर की तरफ अभिमुख करें, अंगूठा और तर्जनी के अग्रभागों को मिलायें तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को शिथिल रूप से ऊपर दिशा में फैलाने पर वितर्क मुद्रा बनती है।[85]

सुपरिणाम

यह मुद्रा करने से अग्नि एवं आकाश तत्त्व प्रभावित होते हैं। इससे शरीर-नाड़ी शुद्धि, हृदय शक्तिशाली, पेट के विभिन्न अवयवों की क्षमता का वर्धन होता है। • मणिपुर एवं आज्ञा चक्र को जागृत करते हुए अग्नि तत्त्व एवं पाचक रसों का उत्पादन करती है। इससे शरीरस्थ रक्त, शर्करा, जल, सोडियम, वायु एवं आकाश तत्त्व का संतुलन होता है। • दर्शन एवं तैजस केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा पूर्वाभास एवं अतिन्द्रिय क्षमताओं का विकास करती है।

इस अध्याय में चर्चित मुद्राएँ यद्यपि विशेष रूप से जापानी बौद्ध परम्परा की पूजा-उपासना पद्धति में प्रचलित है परन्तु इनमें से अधिकांश मुद्राएँ नामान्तर के साथ अन्य परम्पराओं में भी प्राप्त होती है। इन मुद्राओं के प्रयोग का मुख्य ध्येय दैवी साधना में आंतरिक रमणता एवं उनके भावों का अधिग्रहण है। परन्तु जिस प्रकार खेती के साथ घास की प्राप्ति सहज रूप में हो जाती है वैसे ही मुद्रा साधना के द्वारा आंतरिक समाधि के साथ बाह्य स्वस्थता स्वयमेव ही प्राप्त हो जाती है।

सन्दर्भ-सूची

1. *LCS, पृ. 239*
2. *हिन्दी शब्द सागर, भाग-1, पृ. 173*
3. *LCS, पृ. 58*
4. *(क) GDE, एसोटेरिक मुद्राज़ ऑफ जापान, गौरी देवी, पृ. 334*
   (ख) LCS, पृ. 265
5. *LCS, पृ. 210*
6. *हिन्दी शब्द सागर, भाग-1, पृ. 100*
7. *(क) GDE, पृ. 333 (ख) LCS, पृ. 210*
8. *LCS, पृ. 64*
9. *(क) GDE, पृ. 398 (ख) LCS, पृ. 278*

10. EDS, मुद्रा ए स्टडी ऑफ सिम्बोलिक गेरचरस इन जेपनिज़ बुद्धिस्ट स्कल्पचर इ. डाले साउण्डर्स, पृ. 94
11. EDS, पृ. 74
12. वही, पृ. 74
13. वही, पृ. 74
14. वही, पृ. 74
15. वही, पृ. 74
16. वही, पृ. 74
17. वही, पृ. 66
18. वही, पृ. 69
19. (क) वही, पृ. 41 (ख) RSG, पृ. 3
(ग) AKG, पृ. 20
20. (क) GDE, पृ. 225 (ख) LCS, पृ. 238
21. EDS, पृ. 81
22. (क) EDS, पृ. 114 (ख) GDE, पृ. 244
23. LCS, पृ. 242
24. LCS, पृ. 215
25. (क) BCO, पृ. 206 (ख) GDE, पृ. 278
26. EDS, पृ. 113
27. (क) GDE, पृ. 298 (ख) LCS, पृ. 256
28. LCS, पृ. 215
29. EDS, पृ. 102
30. (क) GDE, पृ. 139 (ख) LCS, पृ. 61
31. GDE, पृ. 93
32. GDE, पृ. 198
33. GDE, पृ. 199
34. EDS, पृ. 94
35. (क) GDE, पृ. 324 (ख) LCS, पृ. 176
36. (क) EDS, पृ. 119 (ख) GDE, पृ. 8
(ग) LCS, पृ. 117
37. (क) GDE, पृ. 61 (ख) LCS, पृ. 121
38. (क) GDE, पृ. 62 (ख) LCS, पृ. 119
39. GDE, पृ. 399
40. GDE, पृ. 217
41. GDE, पृ. 248
42. EDS, पृ. 95
43. (क) GDE, पृ. 461 (ख) LCS, पृ. 184
44. MMR, पृ. 348

45. *GDE, पृ. 209*
46. *LCS, पृ. 248*
47. (क) *GDE, पृ. 281* (ख) *LCS, पृ. 31*
48. *EDS, पृ. 71*
49. *EDS, पृ. 76*
50. *EDS, पृ. 76*
51. *EDS, पृ. 114*
52. *EDS, पृ. 114*
53. (क) *EDS, पृ. 119* (ख) *GDE, पृ. 40*
54. (क) *GDE, पृ. 40* (ख) *LCS, पृ. 62*
55. *GDE, पृ. 40*
56. *EDS, पृ. 75*
57. *EDS, पृ. 40*
58. *EDS, पृ. 17*
59. *EDS, पृ. 397*
60. *GDE, पृ. 47*
61. *LCS, पृ. 261*
62. *GDE, पृ. 141*
63. *LCS, पृ. 247*
64. *EDS, पृ. 39*
65. *GDE, पृ. 449*
66. *GDE, पृ. 215*
67. *EDS, पृ. 114*
68. (क) *GDE, पृ. 15* (ख) *LCS, पृ. 58*
69. *EDS, पृ. 58*
70. *EDS, पृ. 55*
71. *SBE, पृ. 147*
72. *GDE, पृ. 450*
73. *LCS, पृ. 275*
74. *LCS, पृ. 213*
75. *GDE, पृ. 95*
76. *LCS, पृ. 84*
77. *SBE, पृ. 224*
78. *LCS, पृ. 225*
79. (क) *GDE, पृ. 156* (ख) *LCS, पृ. 83*
80. *GDE, पृ. 294*
81. (क) *GDE, पृ. 67* (ख) *LCS, पृ. 58*
82. *LCS, पृ. 247*
83. (क) *EDS, पृ. 76* (ख) *GDE, पृ. 6* (ग) *LCS, पृ. 57*
84. *LCS, पृ. 301*
85. (क) *GDE, पृ. 128* (ख) *LCS, पृ. 211*

अध्याय-9

भारतीय बौद्ध में प्रचलित मुद्राओं का स्वरूप एवं उनका महत्त्व

भारतीय वटवृक्ष की एक प्रमुख शाखा है बौद्ध संप्रदाय। भगवान बुद्ध का जन्म, विचरण, बोधि प्राप्ति एवं निर्वाण आदि प्रमुख घटनाएँ भारत से ही सम्बन्धित है। भारतीय बौद्ध परम्परा में वज्रायना देवी तारा की उपासना को अधिक प्रमुखता दी गई है एवं अधिकांश मुद्राएँ उन्हीं के समक्ष की जाती है। इनमें से अधिकतर मुद्राएँ द्रव्य अर्पण एवं तान्त्रिक साधना से सम्बन्धित है। प्राप्त ग्रन्थों के अनुसार उनका स्वरूप इस प्रकार है–

1. आलोक मुद्रा

यह तांत्रिक मुद्रा भारत के बौद्ध अनुयायियों द्वारा धारण की जाती है। आलोक का अर्थ है– प्रकाश, उजाला, चांदनी। तदनुसार यह मुद्रा दीपक की

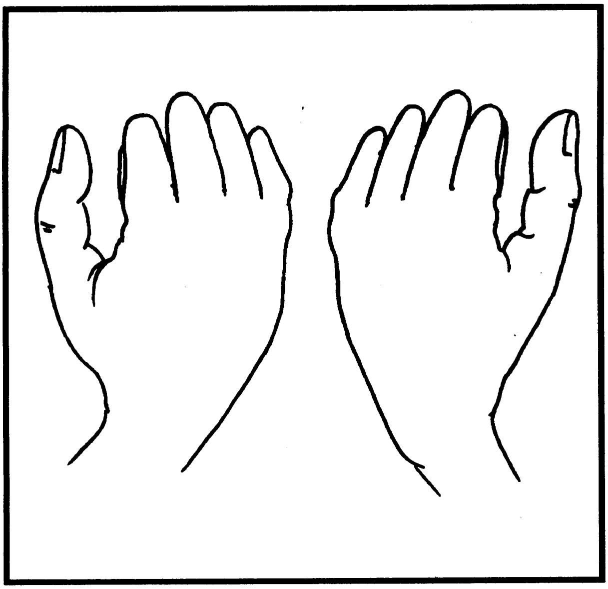

आलोक मुद्रा

सूचक है उसमें भी विशेष रूप से सुरा नामक गाय के घी का दीपक जानना चाहिए। इस परम्परा में वज्रायना देवी तारा अथवा अन्य देवी-देवताओं के समक्ष पाँच द्रव्य चढ़ाये जाते हैं- पुष्प, धूप, इत्र, आहार और दीपक। उनमें से यह मुद्रा एक का प्रतीक है। यह मुद्रा निम्न मन्त्र के साथ प्रयुक्त होती है- **'ॐ गुरु सर्व तथागत आलोक पूजा मेघा-समुद्र-स्फरन-समये हुम्।'**

विधि

दोनों हथेलियों को छाती की तरफ करते हुए अंगुलियों को हथेली की ओर मोड़ें और अंगूठों को ऊर्ध्व प्रसरित करें जो दीपक की ज्योति दर्शाते हैं। दोनों हाथ एक-दूसरे के लिए प्रतिबिंब की भाँति रहें, आलोक मुद्रा कहलाती है।[1]

सुपरिणाम

- इस मुद्रा की साधना से मूलाधार एवं आज्ञा चक्र सक्रिय एवं जागृत होते हैं। यह आन्तरिक दिव्य ज्ञान का जागरण कर परमानन्द की अनुभूति करवाती है और शक्ति का ऊर्ध्वारोहण करती है।
- पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व का संतुलन करते हुए यह मुद्रा मानसिक चेताओं का पोषण करती है तथा शरीर को पुष्ट एवं तंदरूस्त बनाती है।
- प्रजनन एवं पीयूष ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा प्रजनन अंगों के विकास एवं संचालन में सहायक बनती है। चेहरे के आकर्षण एवं तेज को बढ़ाती है। सिर के बाल एवं हड्डियों के विकास को संतुलित रखती है।

2. धर्म मुद्रा

भारतीय परम्परा में चढ़ाने योग्य जल आदि सामग्री को अर्घ्य कहा जाता है। यह तान्त्रिक मुद्रा भारत की बौद्ध परम्परा में अधिक प्रयुक्त होती है। किसी महापुरुष या देवी-देवता आदि के चरण प्रक्षालन हेतु अथवा द्रव्य पूजा के रूप में जो जल आदि चढ़ाया जाता है, यह मुद्रा उसकी सूचक है।

इस मुद्रा को ठुड्डी के नीचे और छाती के स्तर पर धारण करते हैं। इस मुद्रा के प्रयोग काल में निम्न मंत्र बोला जाता है- **'ओम् गुरु सर्व तथागत प्रवर सत्करा, महासत्करा, महाअर्घन् प्रतिच्छाहम् स्वाहा।'**

विधि

दोनों हथेलियों को आमने-सामने मिलाते हुए अंगूठा और तर्जनी के अग्रभागों को परस्पर संयुक्त करें तथा शेष अंगुलियों को आगे फैलाने पर अधर्म मुद्रा बनती है।[2]

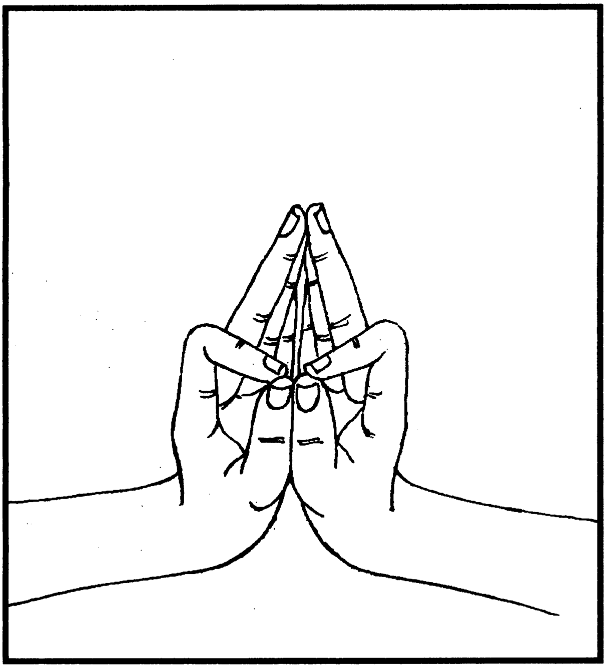

धर्म मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से पृथ्वी तत्त्व संतुलित होता है एवं अन्य तत्त्वों पर भी प्रभाव पड़ता है। इससे शरीर संतुलित एवं बलिष्ठ बनता है।
• मूलाधार चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा कार्य दक्षता, आरोग्य, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक ऊर्ध्वता प्रदान करता है। काम-वासनाओं को नियंत्रित करने में यह विशेष उपयोगी है।

3. बाम् मुद्रा

यह मुद्रा भारत की बौद्ध परम्परा में अधिक प्रचलित है। इस मुद्रा को करते समय आह्वान या प्रार्थना हेतु चार अक्षर का मन्त्र बोला जाता है। उसमें यह तीसरा अक्षर है। प्रार्थना आदि क्रियाओं के वक्त ही इस मुद्रा का प्रयोग होता है। यह मुद्रा बांधने की सूचक है तथा वज्रायना देवी तारा की पूजा से सम्बन्धित है। इस संयुक्त मुद्रा का मन्त्र निम्न है– **'जह् हुम् बाम् होह्।'**

यह मुद्रा ठुड्डी के नीचे और छाती के आगे धारण की जाती है।

विधि

मध्यमा और अनामिका के अग्रभागों को अंगूठों के अंतिम पोर से संयुक्त करें, तर्जनी और कनिष्ठिका को ऊपर की ओर उठाते हुए इनके अग्रभागों को परस्पर स्पर्शित करवाने पर बाम् मुद्रा बनती है।[3]

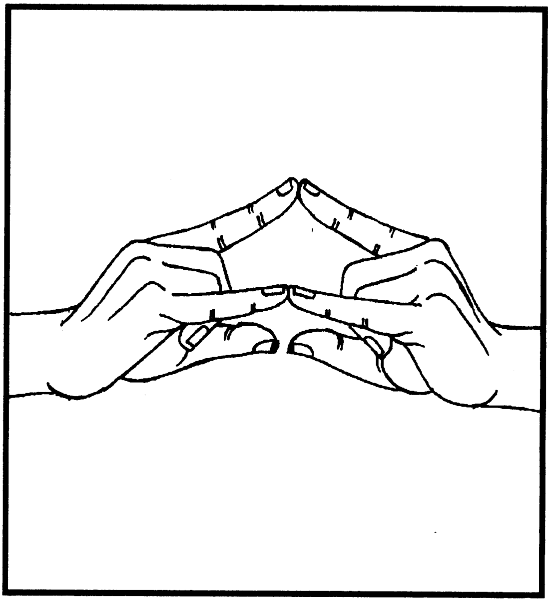

बाम् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा करने से आकाश एवं चेतन तत्त्व प्रभावित होते हैं, जिससे शरीरगत विकार जैसे फोड़ा-फुन्सी, पीप आदि का शमन होता है। हृदय शान्त एवं निर्मल बनता है। ध्यान सहजता से सधता है।

• आज्ञा एवं सहस्रार चक्र को जागृत कर यह मुद्रा बुद्धि को कुशाग्र एवं विकल्प रहित बनाती है तथा पिनियल एवं पीयूष ग्रंथि के स्राव को संतुलित और क्रोधादि कषाय को नियन्त्रित कर काम वासना को घटाती है।

4. भूतडामर मुद्रा

इस मुद्रा का अपर नाम त्रैलोक्य विजय मुद्रा है। यह मुद्रा भारतीय बौद्ध परम्परा में अधिक प्रसिद्ध है। अनुसंधान के आधार पर यह संयुक्त मुद्रा विस्मय

या आश्चर्य की प्रेरणा तथा पापों से छुटकारा पाने की सूचक है। इस मुद्रा को वज्रपानी मुद्रा भी कहते हैं।

विधि

हथेलियाँ बाहर की तरफ, तर्जनी और कनिष्ठिका ऊपर उठी हुई, अनामिका हथेली के भीतर मुड़ी हुई, मध्यमा किंचित मुड़ी हुई, अंगूठे का अग्रभाग मध्यमा के अग्रभाग के समीप रहें तथा हाथों को कलाई पर क्रॉस करते हुए दायें हाथ को आगे और बायें हाथ को शरीर के निकट रखने पर भूतडामर मुद्रा बनती है।[4]

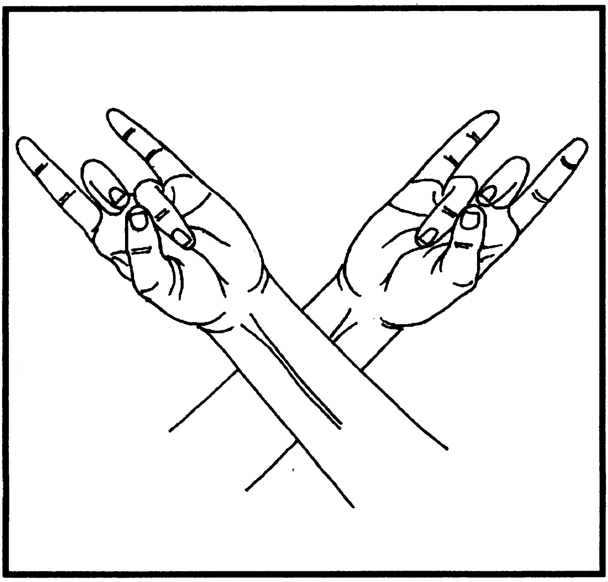

भूतडामर मुद्रा

सुपरिणाम

- इस मुद्रा के प्रयोग से जल एवं अग्नि तत्त्व संतुलित होकर पित्त से उभरने वाली बीमारियों, मूत्र दोष, गुर्दे की बीमारी आदि का परिष्कार होता है।
- स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा आत्मिक शक्ति का वर्धन करती है।
- गोनाड्स, एड्रिनल एवं पेन्क्रियाज के स्राव को संतुलित कर काम वासना को उपशान्त एवं शरीर के रासायनिक स्रावों को संतुलित करती है।

5. धूप मुद्रा

धूप मुद्रा के दो प्रकार हैं उनमें प्रथम प्रकार भारत की बौद्ध परम्परा में और दूसरा जापान की बौद्ध परम्परा में स्वीकृत है। वज्रायना देवी तारा या अन्य देवी-देवताओं के समक्ष पाँच प्रकार के द्रव्य अर्पित किये जाते हैं उनमें से यह एक है। धूप अर्पण का मन्त्र यह है– **'ओम् गुरु सर्वतथागत धूप-पूजा-मेघा-समुद्रा-स्फरण समये हुम्।'** दोनों हाथों में समान मुद्रा होने से एक-दूसरे के प्रतिबिंब भासित होते हैं।

विधि

दोनों हथेलियों को मध्य भाग में रखें, तर्जनी को नीचे की ओर प्रसरित करते हुए शेष अंगुलियों को मुट्ठी रूप में बांधें तथा हाथों को समीप लायें, तब धूप मुद्रा बनती है।[5]

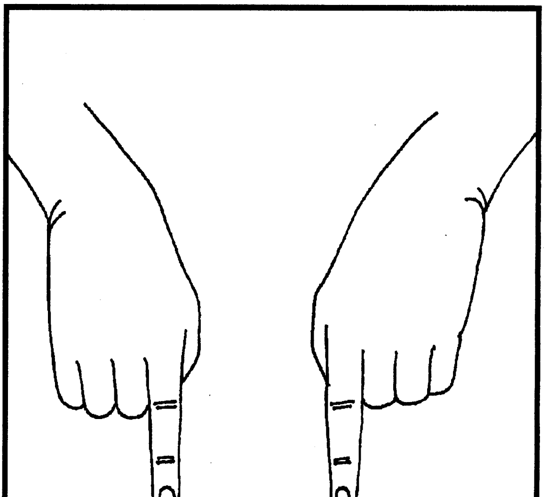

धूप मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि तत्त्व को संतुलित करते हुए स्वभाव को सौम्य बनाती है तथा उदर में पाचन अग्नि को दिप्त करती है।

• इस मुद्रा के द्वारा मणिपुर चक्र को जागृत कर साधक आध्यात्मिक शक्ति का विकास एवं पाचन संबंधी कार्य को सुचारू रूप से कर सकता है।

• यह मानसिक शान्ति एवं वैचारिक परिवर्तन में सहायक बनती है। ऊर्जा के ह्रास या विकास में भी यह सहयोगी है।

6. गंध मुद्रा-1

भारतीय बौद्ध की वज्रायन परम्परा में गंध मुद्रा के दो प्रकार प्रचलित हैं। प्रयोजन की दृष्टि से दोनों समान हैं, केवल मुद्राओं के तरीके में भिन्नता है। यह पाँच प्रकार की पूजाओं में से एक है तथा गंध (सुगंध) की सूचक है।

गंधपूजा मन्त्र- **'ओम् गुरु सर्व तथागत गन्ध पूजा मेघा-समुद्र-स्फरणा समये हुम्।'**

प्रथम प्रकार

यह संयुक्त हाथों से प्रतिबिम्ब की भाँति होती है। हथेलियों को अधोमुख करके उन्हें मुट्ठी रूप में बांधें। फिर ठुड्डी के नीचे दोनों मुट्ठियों को निकट रखने पर गंध मुद्रा बनती है।[6]

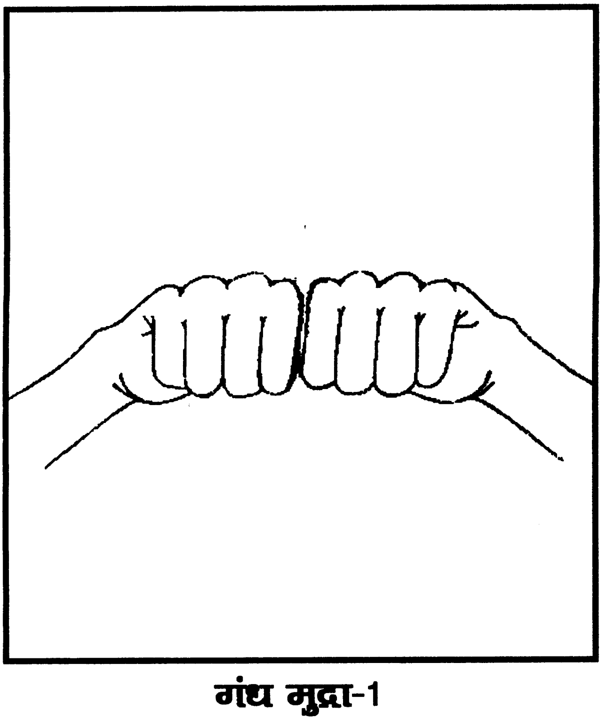

गंध मुद्रा-1

द्वितीय प्रकार

इस मुद्रा में दायीं हथेली को बायीं तरफ, बायीं हथेली को दायीं तरफ रखें, अंगूठें हथेली के भीतर मुड़े हुए, मध्यमा और अनामिका अंगूठों के ऊपर मुड़ी हुई, तर्जनी और कनिष्ठिका ऊर्ध्व प्रसरित एवं घुमी हुई तथा दायें हाथ का पिछला हिस्सा बायें हाथ के पिछले हिस्से को क्रॉस करता हुआ और तर्जनी एवं कनिष्ठिका आपस में अकड़ी हुई रहने पर द्वितीय गंध मुद्रा बनती है।[7]

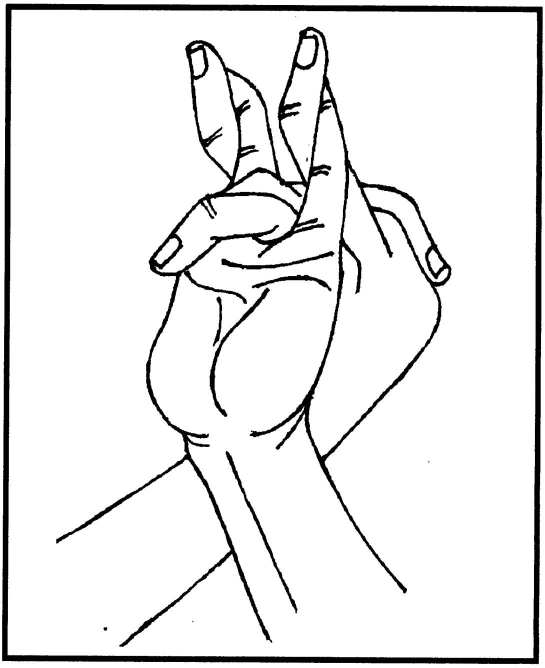

गंध मुद्रा-2

सुपरिणाम

- गन्ध मुद्रा को धारण करने से मणिपुर एवं आज्ञा चक्र सक्रिय बनते हैं। इससे साधक शारीरिक स्वस्थता आध्यात्मिक उच्चता और स्थिरता को प्राप्त करता है।
- यह मुद्रा अग्नि एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करती है। इससे स्नायुओं की स्थितिस्थापकता बनी रहती है। शरीरस्थ तीनों अग्नियाँ जागृत होकर ऊर्ध्वारोहित होती है। यह रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति को भी विकसित करती है।

तैजस दर्शन एवं ज्योति केन्द्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा ईर्ष्या, घृणा, भय, संघर्ष, तृष्णा आदि को नियंत्रित करती है। यह पूर्वाभास, अन्तर्दृष्टि एवं अतिन्द्रिय क्षमताओं को भी विकसित करती है।

- पृथ्वी तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा बौद्धिक क्षमता एवं स्मृति का विकास करती है।
- काम ग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा काम वासनाओं पर नियंत्रण करती है।

7. होह् मुद्रा

यह मुद्रा भारत की वज्रायन बौद्ध परम्परा में मान्य है। यह वज्रायना देवी तारा की प्रार्थना रस्म से संबंधित एवं प्रार्थना मन्त्र के चार बीजाक्षरों में से एक है। यह दोनों हाथों से ठुड्डी के नीचे धारण की जाती है। इसका मन्त्र है– **'जह् हुम् बम् होह्'**।

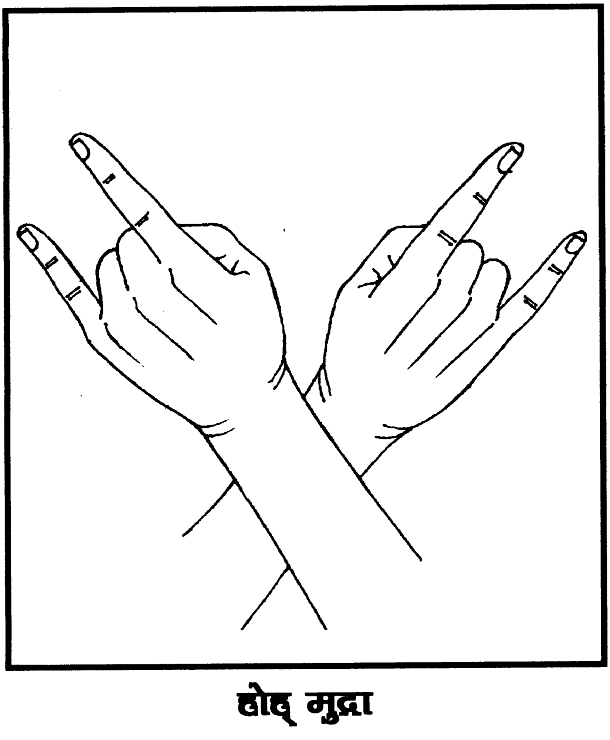

होह् मुद्रा

विधि

हथेलियाँ मध्यभाग की ओर, अंगूठे हथेली के भीतर मुड़े हुए, मध्यमा और अनामिका के अग्रभाग अंगूठों के अंतिम पोर को स्पर्श करते हुए, तर्जनी और कनिष्ठिका ऊपर उठी हुई रहें। बायां हाथ शरीर के निकट रहें और दायां हाथ उसको क्रॉस करता हुआ कलाई की जगह पर रहें, तब होह् मुद्रा कहलाती है।[8]

सुपरिणाम

• होह् मुद्रा करने से वायु तत्त्व संतुलित रहता है। यह कुपित वायु, गठिया, साइटिका, वायुशूल, लकवा आदि रोगों का निवारण करती है। • अनाहत चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा वक्तृत्व, कवित्व एवं इन्द्रिय निग्रह आदि में विकास करती है। • आनंद केन्द्र एवं थायमस ग्रंथि के स्राव को संतुलित कर मानसिक स्थिति को निर्मल एवं परिष्कृत करती है।

8. हूम् मुद्रा

यह मुद्रा भी भारत की वज्रायन बौद्ध परम्परा से सम्बन्धित है। यह वज्रायना देवी तारा के समक्ष प्रार्थना के रूप में की जाती है तथा प्रार्थना मन्त्र

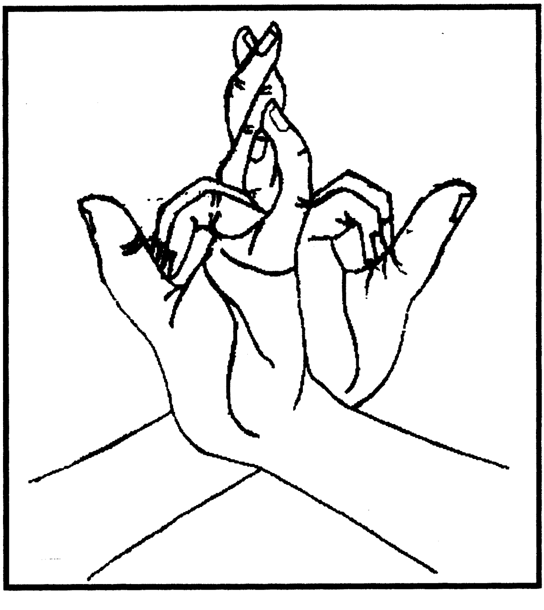

हूम् मुद्रा

के चार बीजाक्षरों में से एक है। इस मन्त्राक्षर रूप मुद्रा को सोखने या चूसने की सूचक माना गया है। दोनों हाथों में समान मुद्रा होती है। इसका मन्त्र है– **'जह् हूम् बम् होह्।'**

विधि

दोनों हाथों की मध्यमा और अनामिका के अग्रभाग अंगूठों के अंतिम पोर को स्पर्श करें, तर्जनी और कनिष्ठिका अपने प्रतिपक्षी अंगुलियों से क्रॉस करते हुए जुड़ें, बायां हाथ दायें हाथ के ऊपर कलाई के स्थान से क्रॉस करता हुआ रहे, इस भाँति हूम् मुद्रा बनती है।[9]

सुपरिणाम

- यह मुद्रा स्वाधिष्ठान, मूलाधार एवं सहस्रार चक्र को प्रभावित करते हुए शरीर को कांतिवान, वाणी को प्रखर, साधक को निर्विकल्प एवं निर्विकार बनाती है।
- प्रजनन एवं पिनियल ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह शरीरस्थ पोटैशियम, सोडियम एवं पानी को संतुलित रखती है, जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों का निवारण करती है तथा नेतृत्त्व शक्ति, नियंत्रण शक्ति एवं निर्णायक शक्ति का विकास करती है।
- इस मुद्रा के प्रयोग से शक्ति, स्वास्थ्य एवं ज्ञान केन्द्र सक्रिय होते हैं। इससे पूर्वजन्म की स्मृति एवं प्राग् अवबोध होता है। साथ ही आन्तरिक ऊर्जा एवं विद्युत का ऊर्ध्वारोहण भी होता है।

9. जह् मुद्रा

पूर्ववत यह मुद्रा वज्रायन बौद्ध परम्परा से सन्दर्भित है। यह मुद्रा वज्रायना देवी तारा के सामने प्रार्थना रूप में की जाती है तथा प्रार्थना या आह्वान के चार बीजाक्षरों में से प्रथम अक्षर है। इस मुद्रा को ठुड्डी के नीचे और छाती के सामने धारण करते हैं। इसका मन्त्र है– **'जह् हुम् बम् होह्।'**

विधि

दायें हाथ को सामने की तरफ रखें, मध्यमा और अनामिका के अग्रभागों को अंगूठे के अंतिम पोर से स्पर्श करवायें, तर्जनी और कनिष्ठिका को सीधी रखें। बायीं हथेली को मध्यभाग में दायें हाथ के सामने रखें, बायें हाथ की कनिष्ठिका के अग्रभाग को दायें हाथ की अनामिका के अग्रभाग से संयुक्त करें, मध्यमा और अनामिका दायें हाथ की तरह मुड़ी हुई एवं अंगूठे के अंतिम जोड़

को स्पर्श करती हुई रहें। इस तरह जह् मुद्रा निष्पन्न होती है।[10]

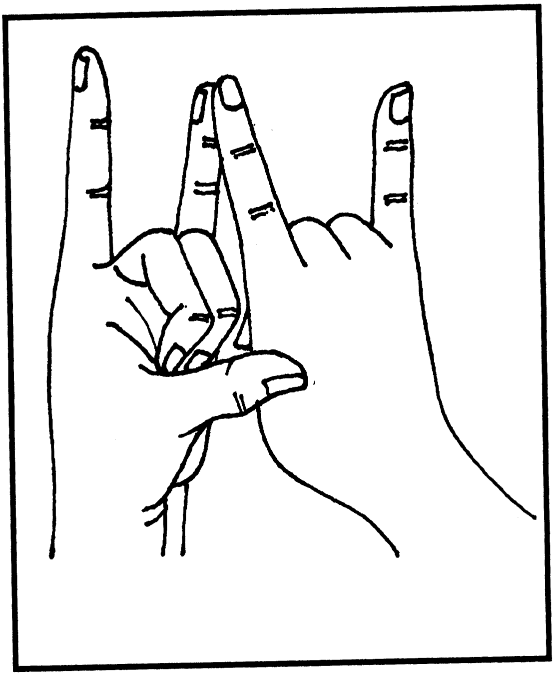

जह् मुद्रा

सुपरिणाम

- जह् मुद्रा को धारण कर साधक आकाश एवं चेतन तत्त्व में संतुलन स्थापित कर सकता है। इससे विचारधारा निर्मल एवं शांत होकर आत्म स्वरूप की प्राप्ति तथा सत्य के साक्षात्कार में सहायक बनती है।
- इस मुद्रा के प्रयोग से सहस्रार एवं विशुद्धि चक्र प्रभावित होते हैं। इसके द्वारा ऐन्द्रिक वृत्तियों का निरोध होता है। संकल्प-विकल्प आदि शान्त होकर परमज्ञान की उपलब्धि एवं आरोग्ययुक्त दीर्घ जीवन की प्राप्ति हो सकती है।
- इसके द्वारा विशुद्धि एवं ज्ञान केन्द्र सक्रिय होते हैं जिससे आन्तरिक क्षमताओं का विकास होता है।

10. करन् मुद्रा

मुद्राशास्त्र में दो प्रकार की करन् मुद्रा प्राप्त होती है उनमें से एक प्रकार हिन्दू और बौद्ध दोनों परम्पराओं में मान्य हैं दूसरा भारत की बौद्ध परम्परा में

प्रचलित है। करन् मुद्रा का यह दूसरा प्रकार भय या विस्मय का सूचक है।

विधि

दायीं हथेली बाहर की तरफ अभिमुख हो, तर्जनी और कनिष्ठिका भूमि के समानान्तर सीधी रहें, मध्यमा और अनामिका हथेली में मुड़ी हुई तथा अंगूठे का अग्रभाग मध्यमा के नाखून भाग को स्पर्श करता हुआ रहने पर करन् मुद्रा बनती है।[11]

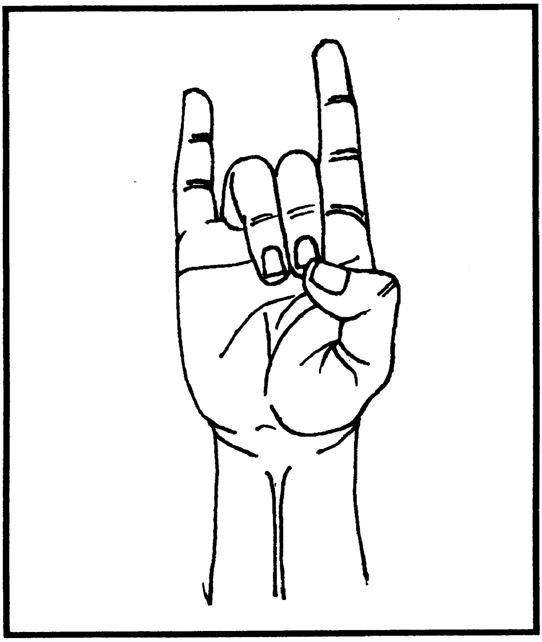

करन् मुद्रा

सुपरिणाम

- इस मुद्रा के प्रयोग से अग्नि तत्त्व संतुलित होता है। इससे आत्मिक एवं शारीरिक तेज में वृद्धि होती है।
- यह मुद्रा मणिपुर चक्र को जागृत कर डायबिटिज, कब्ज, अपच, गैस आदि को दूर करती है। इसके द्वारा गोनाड्स (कामग्रंथियों) का स्राव संतुलित होता है तथा काम वासनाएँ नियन्त्रित होती है।

11. क्षेपण मुद्रा

प्रस्तुत मुद्रा भारतीय बौद्ध की महायान परम्परा से सम्बन्धित है। यह शाश्वत अमृत को छांटने की सूचक है। यह कमर के स्तर पर धारण की जाती उत्तराबोधि मुद्रा के समान है। इस मुद्रा के दो रूप देखे जाते हैं। दोनों ही महायान परम्परा से सम्बद्ध है।

प्रथम विधि

हथेलियों को परस्पर में संयोजित करें, फिर तर्जनी को नीचे की ओर फैलाकर आपस में संयुक्त करें। मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को बाह्य तरफ अन्तर्ग्रथित करें तथा बायां अंगूठा दायें पर क्रॉस करता हुआ रहे, इस स्थिति में क्षेपण मुद्रा बनती है।[12]

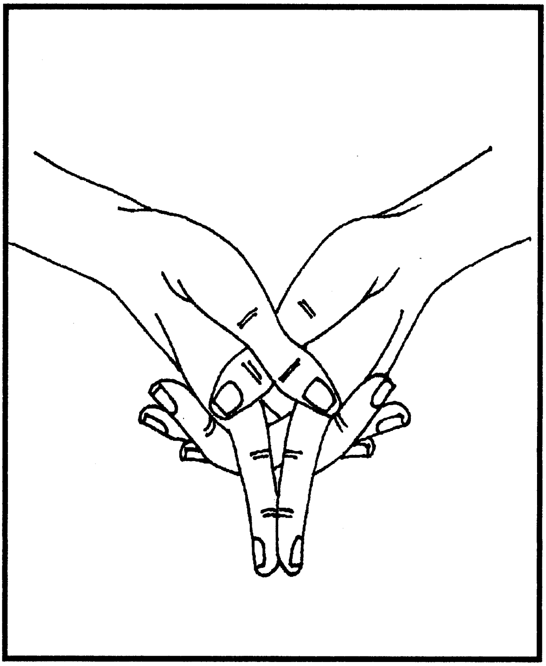

क्षेपण मुद्रा-1

सुपरिणाम

- यह मुद्रा जल एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए शिराओं एवं धमनियों में रक्त स्राव को सम्यक करती है। इससे हृदय मजबूत एवं शरीर की कान्ति एवं स्निग्धता बढ़ती है।

• स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र को जागृत कर यह मुद्रा बुद्धि को कुशाग्र, मस्तिष्क को शान्त, पिनियल एवं पीयूष ग्रंथि स्राव को संतुलित करती है।

• स्वास्थ्य एवं ज्योति केन्द्र को सक्रिय करते हुए इससे काम-वासना नियंत्रित होती है।

द्वितीय विधि

इस विधि में हथेली, अंगूठा और अंगुलियों को भीतरी तरफ से स्पर्श करते हुए नीचे की ओर फैलाते हैं, तब क्षेपण मुद्रा का दूसरा प्रकार निर्मित होता है।[13]

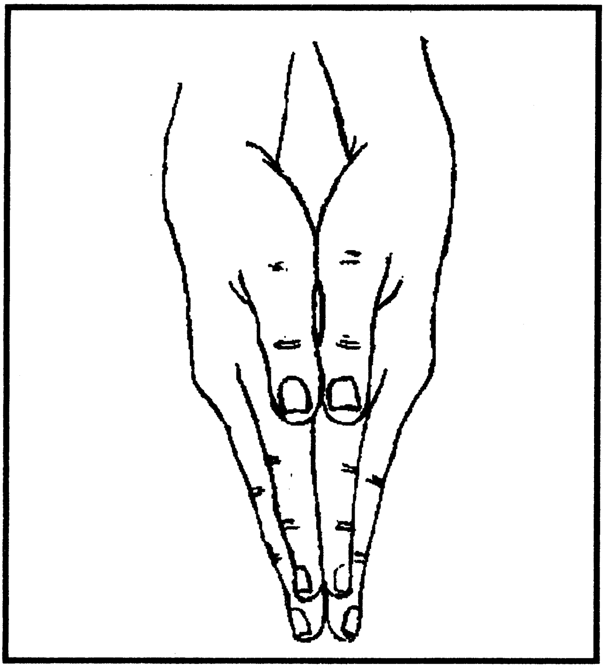

क्षेपण मुद्रा-2

सुपरिणाम

• क्षेपण मुद्रा की साधना से विशुद्धि, आज्ञा एवं सहस्रार चक्र जागृत होते हैं। इससे अतिन्द्रिय क्षमता के प्रसुप्त बीजांकुर फूट पड़ते हैं तथा अचेतन मन एवं चित्त संस्थान प्रभावित होते हैं।

• वायु एवं आकाश तत्त्व के संतुलन में यह मुद्रा विशेष सहायक है। यह मुख्य रूप से रूधिर अभिसंचरण, हृदय क्रिया आदि को नियंत्रित करती है।

• इस मुद्रा के प्रयोग से थायरॉइड, पेराथायरॉइड, पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि प्रभावित होती हैं। इससे यह मुद्रा कान, नाक, गला, मुँह, मस्तिष्क आदि के दोषों एवं कमियों को दूर करने में सहायक बनती है।

12. मण्डल मुद्रा

भारत की वज्रायना बौद्ध परम्परा से सम्बन्धित यह मुद्रा वज्रायना देवी तारा विषयक है। यह संयुक्त मुद्रा कुछ कठिन है। इस मुद्रा के द्वारा प्रतीक रूप में अपने अन्तर्भावों को आराध्य के समक्ष प्रकट किया जाता है इस मुद्रा का मन्त्र है- **'ओम् वज्र मुनि अह् हुम्' 'ओम् वज्र रेखे अह् हुम्।'**

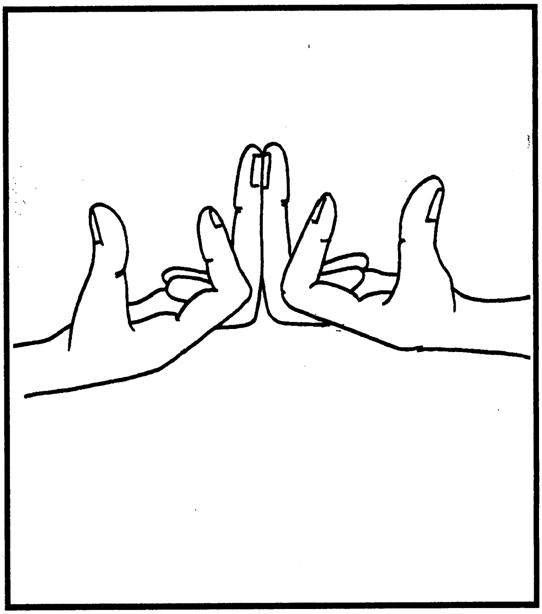

मण्डल मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से मणिपुर, आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र सक्रिय होते हैं। इन चक्रों के जागरण से साधक भूख-प्यास आदि पर नियंत्रण प्राप्त कर आत्मचिंतक, विचारक, दार्शनिक आदि बन सकता है। वह अन्य लोगों के मनोगत भावों को भी जान सकता है।

• अग्नि, आकाश एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा पाचन सम्बन्धी विकारों का शमन करती है तथा रक्त विकार, हृदय विकार, मानसिक

विकार आदि को दूर करती है।

• एड्रिनल, थायरॉइड एवं पीयूष ग्रन्थि के स्राव का नियंत्रण करते हुए आर्थराइटिस, रियुमेटिजम, लकवा, मोटापा, वाणी दोष, कोलेस्ट्रोल आदि को संतुलित करती है।

13. नैवेद्य मुद्रा

वज्रायना देवी तारा की पूजा करते समय प्रारंभ में पाँच द्रव्य चढ़ाये जाते हैं उनमें से यह एक है। यहाँ नैवेद्य शब्द अर्पण और भोजन उभय का बोधक है। इसका मंत्र है– **'ओम् गुरु सर्व तथागत नैवेद्य पूजा मेघा-समुद्र-स्फरणा समये हुम्।'**

यह संयुक्त मुद्रा है और दोनों हाथों में समान मुद्रा होती है।

विधि

हथेलियों को मध्यभाग की तरफ रखें, मध्यमा को छोड़कर शेष अंगुलियों की मुट्ठी बांधें, मध्यमा को ऊपर सीधा रखें तथा दोनों हाथों को छाती के स्तर पर समीप रखने से नैवेद्य मुद्रा बनती है।[15]

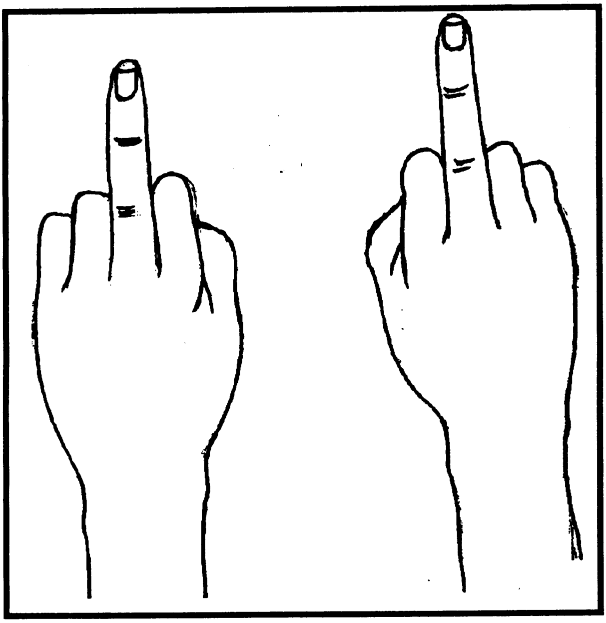

नैवेद्य मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– विशुद्धि एवं अनाहत चक्र **तत्त्व–** वायु तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** नाक, कान, गला, मुँह, स्वर यंत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ एवं रक्त संचार प्रणाली।

14. पाद्यम् मुद्रा

पैरों से सम्बन्धित मुद्रा पाद्यम् मुद्रा कहलाती है। पूजनीय व्यक्ति या देवता के पैर जिस जल से धोये जाते हैं वह पाद्यम् कहा जाता है अर्थात पाँव धोने का पानी पाद्यम् है। षोडशोपचार में आसन और स्वागत के पश्चात तथा पंचोपचार में सर्वप्रथम पाद्य की विधि की जाती है।[16]

यह मुद्रा वज्रायना देवी तारा की पूजा से सम्बन्धित है। इस संयुक्त मुद्रा को छाती के स्तर पर धारण करते हैं। पूजा मन्त्र है– **'ओम् गुरु सर्व तथागता महा पाद्यम् प्रतिच्छा हुम् स्वाहा।'**

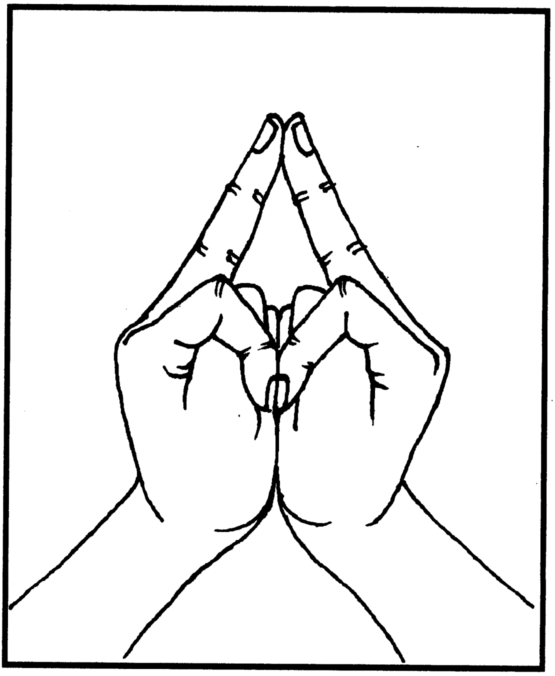

पाद्यम् मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को एक-दूसरे के सम्मुख रखें। अंगूठा, तर्जनी, अनामिका और कनिष्ठिका को संयुक्त कर मुट्ठी बांधें, मध्यमा को ऊर्ध्व मुखरित कर उनके अग्रभागों को मिलायें तथा हाथों को आपस में सटा देने पर पाद्यम् मुद्रा बनती है।[17]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का अभ्यासी साधक पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करता है। इनके संतुलन से शारीरिक जड़ता, मानसिक चंचलता, क्रोधादि कषाय क्षीण होते हैं।

• मूलाधार एवं आज्ञा चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा बौद्धिक एकाग्रता, कर्म कौशलता, ओजस्विता आदि में वृद्धि करती है।

• पिच्युटरी एवं गोनाड्स को सक्रिय करते हुए यह व्यक्ति को तनाव मुक्त, निरोगी, उत्साहित एवं स्नेहिल बनाती है।

15. पुष्पे मुद्रा

वज्रायना देवी तारा या अन्य देवी-देवता की पूजा करते हुए पाँच द्रव्य चढ़ाये जाते हैं। उनमें से यह पुष्प अर्पण करने की सूचक मुद्रा है। यह छाती के स्तर

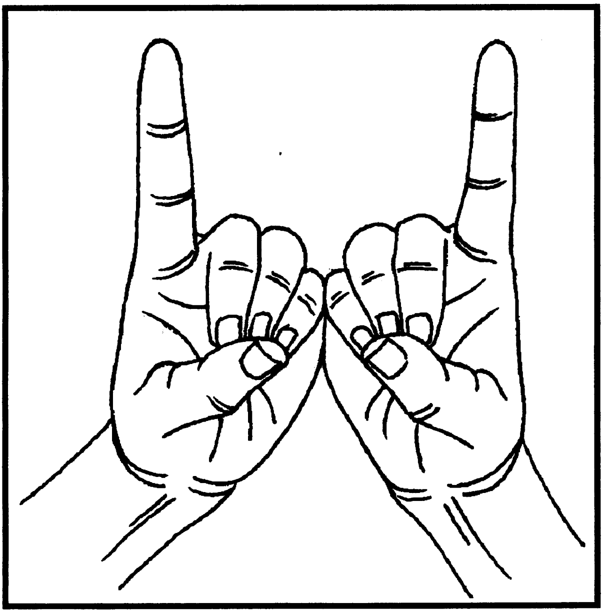

पुष्पे मुद्रा

पर धारण की जाती है। इसमें दोनों हाथ एक-दूसरे के प्रतिबिम्ब होते हैं। इसका मंत्र है– **'ओम् गुरु सर्व तथागत धूप पूजा-मेघा-समुद्र-स्फरणा समये हुम्।'**

विधि

हथेलियों को ऊपर की तरफ अभिमुख करें, अंगूठों का प्रथम पोर मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका के प्रथम पोर का स्पर्श करता हुआ उन्हें पकड़े हुए रहें, तर्जनी बाहर की तरफ फैली रहें तथा दोनों हाथों को समीप कर कनिष्ठिका के तीसरे पोरों को परस्पर स्पर्शित करने पर पुष्पे मुद्रा बनती है।[18]

सुपरिणाम

- इस मुद्रा को करने से वायु एवं चेतन तत्त्व संतुलित होते हैं जिससे प्राणवायु स्थिर होती है तथा चैतन्य शक्ति का ऊर्ध्वारोहण होता है।
- यह मुद्रा अनाहत एवं सहस्रार चक्र को जागृत करती है जिससे वक्तृत्व-कवित्व शक्ति का विकास, इन्द्रिय निग्रह आदि तथा मानसिक संकल्प-विकल्प, तनाव, अनिद्रा आदि से मुक्ति प्राप्त होती है। यह मुद्रा थायमस एवं पिनियल ग्रन्थि को संतुलित करते हुए बच्चों में रोग नियंत्रण, भावों का निर्मलीकरण, क्रोधादि का उपशमन एवं निर्णयात्मक शक्ति का विकास करती है।

16. सर्व बुद्ध-बोधिसत्त्वानाम् मुद्रा

भारत में यह मुद्रा उपर्युक्त नाम से उपदिष्ट है। तिब्बत में इसका नाम 'ब्या-ल्डिंग-फ्याग्रग्या' है। इस मुद्रा के द्वारा टोरमा के प्रथम स्तुति में मन्त्रोच्चार पूर्वक आह्वान किया जाता है जिससे उड़ते हुए पक्षी को शक्ति मिलती है। यह प्रमुखत: वज्रायना देवी तारा की पूजा से सम्बन्धित है। इस संयुक्त मुद्रा में दोनों हाथों में प्रतिबिम्ब मुद्रा होती है। पूजा मन्त्र निम्न है–

'नमः सर्व बुद्ध-बोधिसत्त्वनम्-अप्रतिहत शासनम् हे-हे भगवते महासत्त्व-सर्वबुद्ध अवलोकिते मविलम्ब-मविलम्ब इदम् बलिम् गृहन् पय गृहन् पय हुम्हुम् जा-जा सर्व विसन् छरे स्वाहा।'

विधि

इसमें हथेलियाँ मध्य भाग की तरफ अभिमुख, तर्जनी के अग्रभाग अंगूठों के अग्रभाग को स्पर्श करते हुए, शेष अंगुलियाँ ऊपर की तरफ फैलती हुई रहती हैं। पश्चात दोनों हाथों को समीप लाया जाता है तब 'सर्वबुद्ध-बोधि सत्त्वानाम्' मुद्रा रचती है।[19]

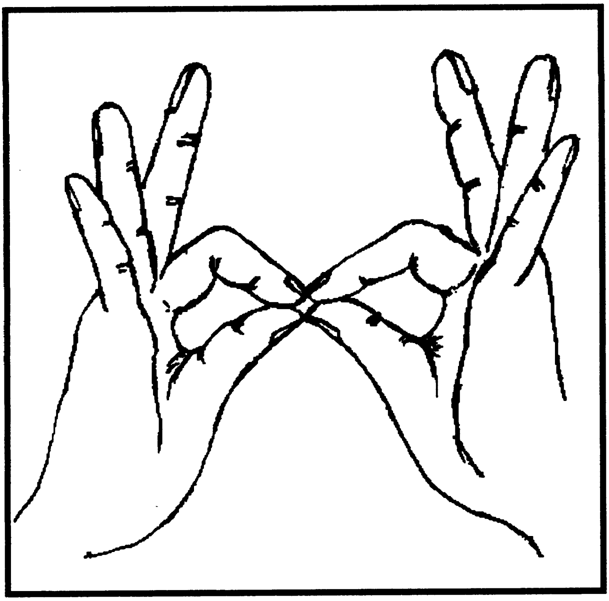

सर्व बुद्ध-बोधिसत्त्वानाम् मुद्रा

सुपरिणाम

- सर्वबुद्ध बोधि मुद्रा की साधना से अनाहत एवं सहस्रार चक्र में आए विकार दूर होते हैं।

यह मुद्रा वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए हृदय एवं रूधिर संचरण की क्रिया को नियंत्रित करती है, श्वसन एवं मल-मूत्र की गति में मदद करती है तथा हार्ट अटैक, लकवा आदि से रक्षण करती है।

- आनंद एवं ज्ञान केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा आन्तरिक विशिष्ट शक्तियों को जागृत करती है तथा भावधारा को निर्मल एवं परिष्कृत बनाती है।

17. तोर्म मुद्रा

यह मुद्रा बौद्ध परम्परा में 'सर्वबुद्ध बोधि सत्त्वम्' मुद्रा के अनन्तर एवं द्वितीय तोरमा अर्पण करने से पूर्व धारण की जाती है। यह मुद्रा दिखाते हुए उड़ते हुए पक्षीवत सामर्थ्यवान बनने की भावना प्रस्तुत की जाती है। तोर्म अर्पण का मन्त्र है- **'ओम् ए-करोमुखम् सर्व धर्मानम् आदि अनुत्पन्नत्वत् ओम् अह् हुम् फट् स्वाहा।'**

विधि

स्वयं के मुख के सामने दोनों हथेलियों को स्थिर कर अंगुलियों और अंगूठों को द्वितीय पोर से अन्तर्ग्रथित कर देना तोर्म मुद्रा है।[20]

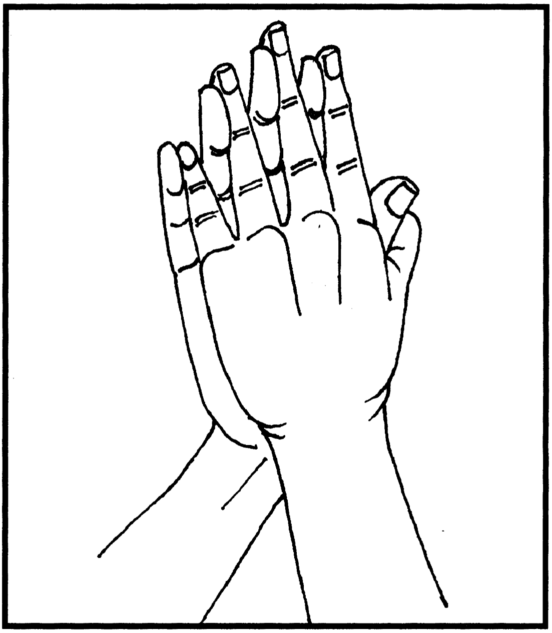

तोर्म मुद्रा

सुपरिणाम

• तोर्म मुद्रा करने से पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व संतुलित होते हैं। यह मुद्रा हड्डियाँ, मांसपेशियाँ, दाँत आदि के रोगों को नियंत्रित कर शारीरिक दुर्बलता एवं मोटापे को कम करती है।

• इस मुद्रा को धारण करने से मूलाधार एवं आज्ञा चक्र जागृत होते हैं जिससे शारीरिक आरोग्य, कर्म कौशलता एवं तेजस्विता में वृद्धि होती है।

• यह मुद्रा गोनाड्स, पिच्युटरी एवं पिनियल ग्रंथि को सक्रिय एवं संतुलित करती है जिससे शरीर की आन्तरिक क्रियाएँ संतुलित एवं मनोवृत्तियाँ शांत रहती है। यह कामेच्छा को दूर कर शरीर को एलर्जी से बचाती है एवं शारीरिक रसायनों का संतुलन बनाए रखती है।

18. त्रिशरणा मुद्रा

भारतीय बौद्ध परम्परा में प्रचलित यह मुद्रा तीन आश्रय या तीन शरण स्थल- बुद्ध, धर्म और संघ की सूचक है। इस मुद्रा चित्र में त्रिशरण के प्रतीक रूप में तीन अंगुलियाँ फैलायी हुई है।

विधि

दायीं हथेली को सामने की तरफ रखते हुए अंगूठा और तर्जनी के अग्रभागों को मिलायें तथा शेष अंगुलियों को पृथक-पृथक रूप में सीधी रखने पर त्रिशरणा मुद्रा बनती है।[21]

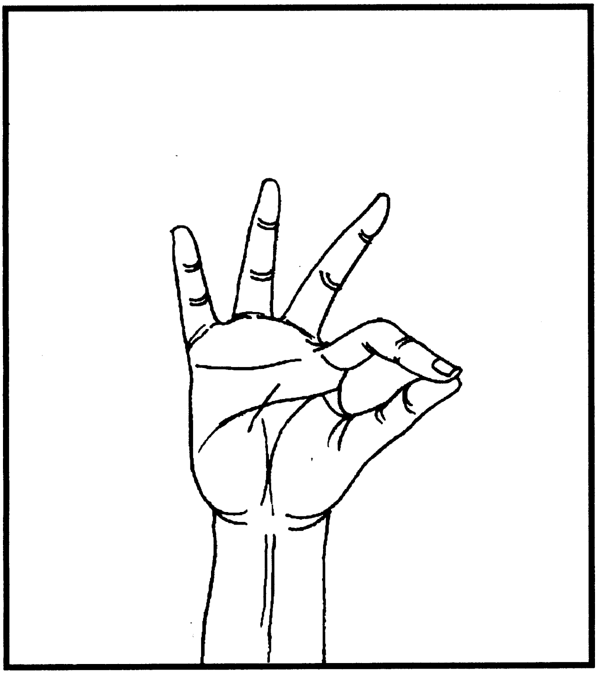

त्रिशरणा मुद्रा

सुपरिणाम

यह मुद्रा वायु तत्त्व को प्रभावित करती है। इससे प्राण वायु स्थिर होती है तथा हृदय, गुर्दे, फेफड़ें आदि के रोग उपशान्त होते हैं।

- यह मुद्रा आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र को जागृत करते हुए साधक की ज्ञान ग्रन्थियाँ खोलती है। इससे चित्त शान्त एवं स्थिर बनता है और क्रोधादि कषाय मन्द हो जाते हैं।

• यह मुद्रा विशुद्धि, दर्शन एवं ज्योति केन्द्र को सक्रिय करते हुए व्यक्ति को शांत, धैर्ययुक्त एवं स्थिर बनाती है। आवाज को नियंत्रित एवं कोलेस्ट्रोल, कैलशियम, आयोडीन आदि को संतुलित रखती है। इससे विल पावर मजबूत बनता है।

19. विकसित पद्म मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा भारत की बौद्ध परम्परा में धारण की जाती है। तिब्बत में इस मुद्रा का नाम 'उत्-पल्-ख-ब्ये-ब-आइ-फ्याग्-ग्र्य' है। उपलब्ध वर्णन के अनुसार यह मुद्रा इक्कीस तारा की पीढ़ियों के बाद धारण की जाती है। यह संयुक्त मुद्रा वज्रायना देवी तारा की पूजा से संबंधित है। इसमें दोनों हाथों में प्रतिबिम्ब की भाँति मुद्रा बनती है।

विधि

हथेलियों को मध्यभाग की तरफ रखें, अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका को ऊपर की ओर फैलायें, अनामिका को हथेली में मोड़ें, तदनन्तर दोनों हाथों को इस भाँति रखें कि अनामिका के द्वितीय पोर स्पर्श कर सकें, इस तरह विकसित पद्म मुद्रा बनती है।[22]

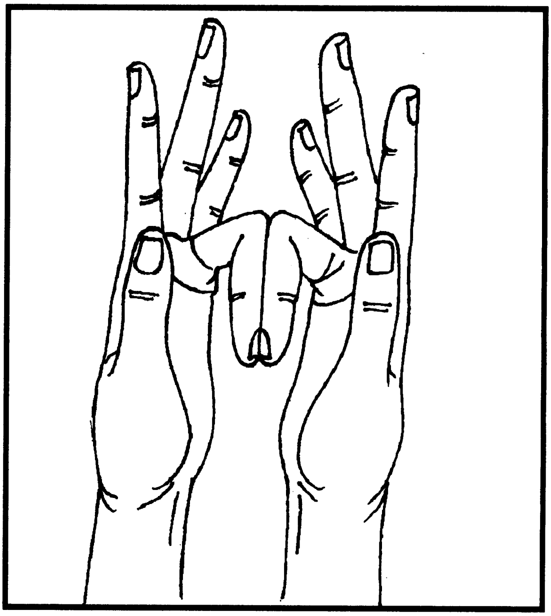

विकसित पद्म मुद्रा

सुपरिणाम

- यह मुद्रा करने वाला साधक जल एवं अग्नि तत्त्व को संतुलित करता है। इन दोनों के संयोग से शरीर की उष्णता एवं शीतलता में संतुलन, भूख-प्यास आदि का उपशमन होता है।
- इस मुद्रा से स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र जागृत होते हैं। जिससे शरीर एवं आत्मा को विशिष्ट शक्ति प्राप्त होती है। यह मुद्रा व्यक्ति को साहसी, निर्भीक, नियंत्रण कुशल, तनावमुक्त बनाते हुए जिह्वा पर सरस्वती का वास करवाती है।
- एड्रिनल एवं गोनाड्स ग्रंथियों को प्रभावित करते हुए यह प्रतिकारात्मक एवं रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास, रक्त परिसंचरण, मांसपेशियाँ, श्वसन प्रणाली आदि को सुचारू रूप से संचालित करने में सहायता करती है।

भारतीय बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का स्वरूप पूर्णरूपेण भारतीय संस्कृति से प्रभावित परिलक्षित होता है। देवी-देवताओं की आराधना-उपासना को दोनों स्थानों में महत्त्व प्राप्त है। यह मुद्राएँ साधना के क्षेत्र में ऊर्ध्वारोहण तो करती ही है वैचारिक एवं चारित्रिक सकारात्मकता में भी सहयोगी बनती है। उपरोक्त मुद्रा परिणामों से यह स्पष्ट है कि मुद्रा प्राकृतिक संतुलन का आवश्यक चरण है।

सन्दर्भ-सूची

1. *SBE, द कल्ट ऑफ तारा मेजिक एण्ड रिचूवल इन तिब्बत, स्टीफन बेयर, पृ. 147*
2. *वही, पृ. 147*
3. *वही, पृ. 102*
4. *(क) AKG, पृ. 20*
   (ख) BCO, पृ. 206
   (ग) RSG, पृ. 5
5. *SBE, पृ. 147*
6. *SBE, पृ. 147*
7. *GDE, पृ. 451*
8. *SBE, पृ. 102*
9. *SBE, पृ. 102*
10. *SBE, पृ. 102*

11. *RSG, पृ. 7*
12. *(क) AKG, पृ. 22*
    (ख) ERG, पृ. 9
    (ग) RSG, पृ. 3
13. *BBH, पृ. 193*
14. *SBE, पृ. 168*
15. *वही, पृ. 147*
16. *हिन्दी शब्द सागर भाग-6, पृ. 2946*
17. *SBE, पृ. 147*
18. *वही, पृ. 147*
19. *वही, पृ. 218*
20. *वही, पृ. 220*
21. *MMR, पृ. 351*
22. *SBE, पृ. 338*

●

अध्याय-10

गर्भधातु–वज्रधातु मण्डल सम्बन्धी मुद्राओं की विधियाँ एवं तात्कालिक प्रभाव

प्रत्येक धर्म परम्परा में कुछ यान्त्रिक मण्डलाकृतियों का महत्त्व रहा हुआ है। इन्हीं यन्त्रों के समक्ष साधना सिद्धि हेतु पूजा-उपासना, यज्ञ-जाप आदि किए जाते हैं। बौद्ध परम्परा में गर्भधातु मण्डल एवं वज्रधातु मण्डल दो प्रमुख यंत्र है। क्रिया-कांड युक्त अनुष्ठानों में इन यन्त्रों के सामने ही विविध विधान सम्पन्न किए जाते हैं। बौद्ध साहित्य के अनुशीलन से प्राप्त उन मुद्राओं की स्वरूप निम्नोक्त रूप में पाया जाता है–

1. अचल-अग्नि मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में भक्त एवं पुजारी के द्वारा धारण की जाती है। इस मुद्रा का प्रयोग गर्भधातु मण्डल, वज्रधातु मण्डल, होम आदि कार्यों में होता है। यह संयुक्त मुद्रा अग्नि, ज्वाला या अग्निशिखा की सूचक है।

अचल-अग्नि मुद्रा

यहाँ अचल अग्नि से तात्पर्य होम आदि के समय हवनकुंड में लगाई जाने वाली अग्नि से होना चाहिए, जिसे वातावरण की पवित्रता हेतु प्रकट किया जाता है।

विधि

दोनों हथेलियों को आमने-सामने रखकर अंगूठों को हथेली में मोड़ें, तर्जनी को छोड़कर शेष तीन अंगुलियों को अंगूठों के ऊपर मोड़ें, तर्जनी के अग्रभागों को मिलायें तथा कनिष्ठिकाओं का दूसरा पोर परस्पर स्पर्श करते हुए रहें। इस तरह अचल-अग्नि मुद्रा बनती है।[1]

सुपरिणाम

- अचल-अग्नि मुद्रा का प्रयोग जल और आकाश तत्त्व को संतुलित करता है। यह हृदय में रक्त संचरण की क्रिया को सुचारू, रक्त विकारों को दूर, हृदय रोग को उपशान्त एवं शीतलता की अनुभूति करवाती है।
- आज्ञा एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत कर यह मुद्रा वायु एवं आकाश तत्त्व का नियमन करती है तथा शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास में सहायक बनती है।
- दर्शन एवं स्वास्थ्य केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा असंयम, आसक्ति, कषाय, उत्तेजना आदि का उपशमन कर शरीर, मन और भावनाओं को स्वस्थ बनाती है।

2. अग्नि चक्र मुद्रा

यह एक तान्त्रिक मुद्रा है जिसे जापानी बौद्ध परम्परा के भक्त या पुजारी द्वारा गर्भधातु मण्डल एवं धार्मिक क्रियाओं में धारण की जाती है। योग साधना के अनुसार हमारे शरीर के भीतर छः चक्रों में से एक अग्नि चक्र (मणिपुर चक्र) है। संभवतः यह मुद्रा अग्नि चक्र को जागृत करने के उद्देश्य से की जाती है।

विधि

दोनों हथेलियों को एक-दूसरे के अभिमुख करते हुए मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली के भीतर मोड़ें, अंगूठों का ऊपरी भाग मध्यमा अंगुली के बीच के मुड़े हुए पोर को स्पर्श करता हुआ रहें, मुड़ी हुई तीनों अंगुलियों के नीचे के पोर दूसरे हाथ के पोर से स्पर्श करते हुए रहें तथा दोनों तर्जनियों के अग्रभाग परस्पर स्पर्शित रहने पर अग्नि-चक्र मुद्रा बनती है।[2]

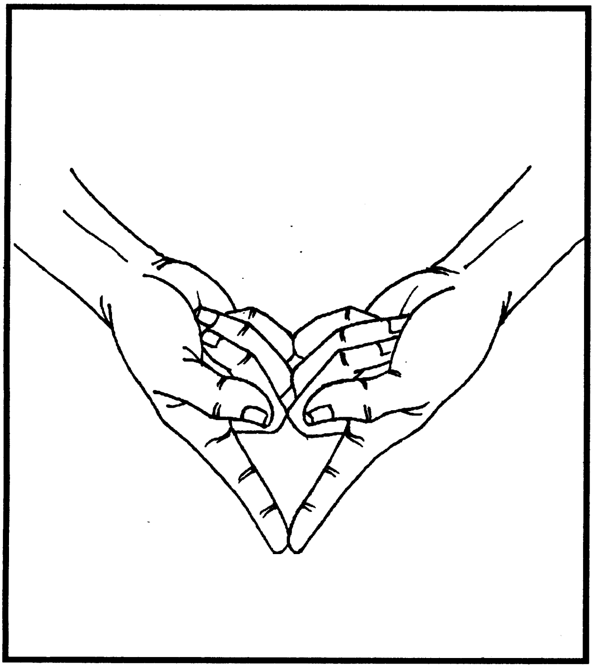

अग्नि चक्र मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से अग्नि एवं आकाश तत्त्व नियंत्रित होते हैं। अग्नि दीपन आदि से पाचन तंत्र स्वस्थ रहता है और श्रवण क्रिया तीव्र बनती है।

• यह मुद्रा मणिपुर एवं सहस्रार चक्र को प्रभावित करते हुए संशय, विपर्यय रहित निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त करवाती है। कब्ज, अपच, ऍसिडिटी आदि को नियंत्रित करती है।

• एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार यह पित्ताशय, लीवर, रक्त परिभ्रमण, रक्तचाप आदि का संतुलन, निर्णयात्मक एवं नेतृत्व गुण का विकास तथा कामेच्छाओं पर नियंत्रण करती है।

3. अग्रज मुद्रा

अग्रज अर्थात बड़ा भाई। संभवतः इस मुद्रा के द्वारा ज्येष्ठ भाई को अथवा क्रिया काण्डों में नियुक्त बड़े भाई के द्वारा की जाने वाली मुद्रा को सूचित किया जाता है।

उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर यह तान्त्रिक मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में गर्भधातु मण्डल की धार्मिक क्रियाओं के समय मन्त्रोच्चार के साथ प्रयुक्त की जाती है।

विधि

यह मुद्रा ध्यान मुद्रा से मिलती है और अनुज मुद्रा के विपरीत है। बायीं हथेली को ऊर्ध्वाभिमुख रखते हुए उसके ऊपर दायीं हथेली को अधोमुख रखना अग्रज मुद्रा है।[3]

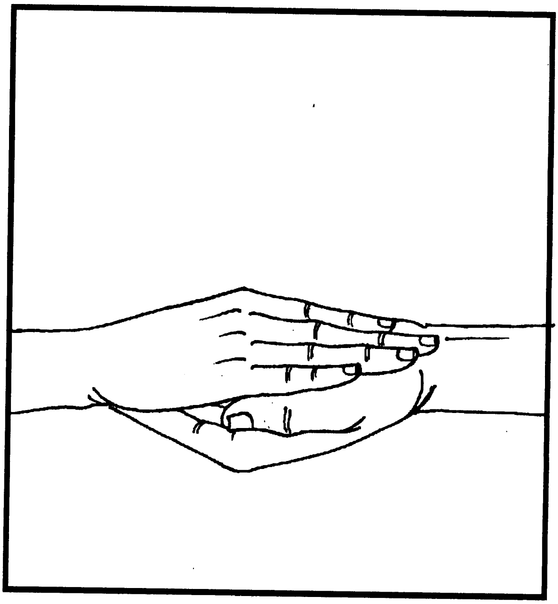

अग्रज मुद्रा

सुपरिणाम

- अग्नि एवं वायु तत्त्व का संतुलन करते हुए यह मुद्रा पाचन तंत्र सम्बन्धी विकृतियों एवं एसिडिटी में शीघ्र राहत देती है। मस्तिष्क स्नायुओं को शक्तिशाली करते हुए सिरदर्द, अनिद्रा, उग्रता आदि का शमन करती है।
- मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र को जागृत कर यह मुद्रा शरीरस्थ सोडियम, वायु, फेफड़ें और हृदय का नियमन करती है। तनाव प्रबन्धन करते हुए कार्य-शक्ति का विकास करती है। शक्ति-उत्पादन एवं ज्ञान तंतुओं के जागरण में सहायक बनती है।

• एड्रिनल एवं थायरॉइड ग्रंथियों को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा शारीरिक प्रणालियों का संचालन, हड्डियों का विकास, प्रतिरोधक क्षमता का वर्धन तथा करुणा आदि गुणों का विकास करती है।

4. अक्क-इन् मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा भारत में 'अर्घ मुद्रा' के नाम से प्रचलित है। सामान्य तौर पर जापानी बौद्ध परम्परा के धर्मगुरु एवं भक्त वर्ग इस मुद्रा का प्रयोग करते हैं। यह मुद्रा गर्भधातु मण्डल, वज्रधातु मण्डल, होम आदि अन्य धार्मिक क्रियाओं में की जाती है। यह मुद्रा अपने नाम के अनुसार अशुद्धताओं को धोने की अर्थात पाप नाश की सूचक है।

विधि

दोनों हाथों को स्वयं के अभिमुख करते हुए अंगुलियों की मुट्ठी बनायें, अंगूठों को अंगुलियों के भीतर रखें तथा दोनों मुट्ठियों को समीप लाते हुए कनिष्ठिका की बाह्य किनारियों को मिलायें, तब अक्क-इन् मुद्रा बनती है।[4]

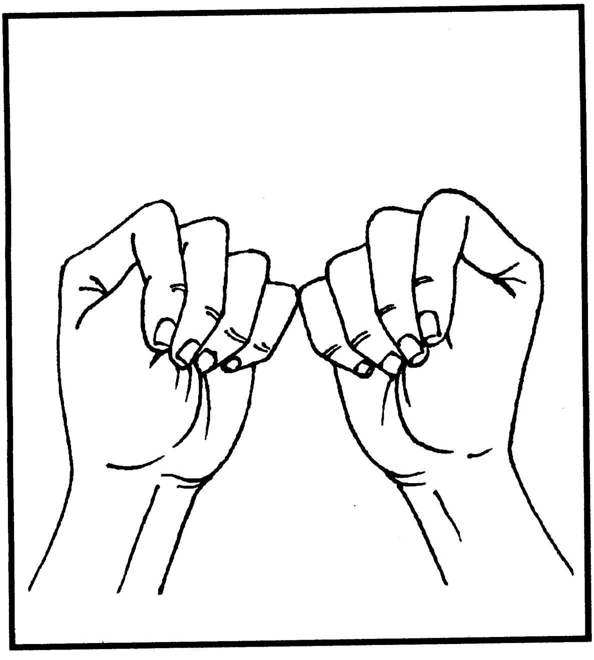

अक्क-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं वायु तत्त्व में संतुलन प्रस्थापित करते हुए रक्त, वीर्य, लसिका आदि से सम्बन्धित विकारों को दूर करती है। स्वाभाविक एवं शारीरिक रूक्षता को दूर कर शरीर को कान्तियुक्त एवं स्निग्ध बनाती है।

• स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा साधक को महाज्ञानी, कवि, शान्तचित्त, शोकहीन एवं दीर्घजीवी बनाती है तथा तंत्रशास्त्र के अनुसार सृजन, पालन और निधन में समर्थ बनाकर जिह्वा पर सरस्वती का वास करवाती है।

• स्वास्थ्य एवं विशुद्धि केन्द्र को सक्रिय रखते हुए काम ऊर्जा एवं शारीरिक ऊर्जा का नियमन करती है तथा वृत्तियों को शान्त कर उच्चतर चेतना एवं आत्मिक शक्तियों का विकास करती है।

5. अंकुश मुद्रा

लोक व्यवहार में अंकुश का अर्थ होता है वश में करना, नियन्त्रण रखना। हिन्दी कोश के अनुसार एक प्रकार का छोटा शस्त्र या टेढ़ा काँटा जिसे हाथी के

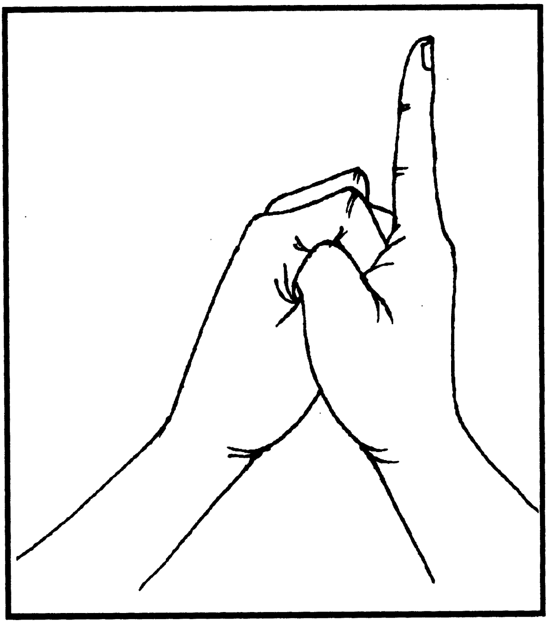

अंकुश मुद्रा

मस्तक में गोदकर उसे चलाया (हाँका) जाता है, वह अंकुश कहलाता है। यहाँ अंकुश का अभिप्राय सामान्य नियन्त्रण और शस्त्रकृत नियन्त्रण भी हो सकता है। इतना स्पष्ट है कि यह मुद्रा किसी को अपने अनुकूल बनाने अथवा नियन्त्रित करने के प्रयोजन से की जाती है।

इस तान्त्रिक मुद्रा का प्रयोग जापानी बौद्ध परम्परा में होता है तथा गर्भधातु मण्डल, वज्रधातु मण्डल, होम क्रिया तथा अन्य धार्मिक क्रियाओं में किया जाता है।

विधि

हथेलियों को एक-दूसरे की ओर अभिमुख करें। अंगुलियाँ और अंगूठे हथेली के अंदर एक-दूसरे में गुम्फित हो तथा दायें हाथ की तर्जनी ऊपर की ओर उठी हुई और हल्की सी मुट्ठी की ओर झुकी हुई रहने पर अंकुश मुद्रा बनती है।[5]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं पृथ्वी तत्त्व को संतुलित करते हुए शरीर को शक्तिशाली, कान्तियुक्त, स्निग्ध बनाती है तथा रूक्षता, जड़ता, मोटापा, दुर्बलता आदि को दूर करती है।

• स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा शारीरिक आरोग्य, कार्य दक्षता एवं कुशलता प्रकट करती है तथा शरीरस्थ जल एवं फॉस्फोरस का नियमन कर नाभि को यथास्थान स्थित करती है।

• गोनाड्स् के स्राव को नियंत्रित करते हुए शारीरिक विकास को सहज एवं सरल बनाती है तथा प्रजनन कार्य, वन्ध्यत्व निवारण एवं स्त्रित्व सम्बन्धी समस्याओं का उन्मूलन करती है।

6. अनुज मुद्रा

अनुज अर्थात छोटा भाई। इस मुद्रा के द्वारा संभवत: छोटे भाई का स्मरण अथवा अपनी लघुता को प्रदर्शित किया जा सकता है। यह एक तान्त्रिक मुद्रा है जिसे जापान के बौद्ध अनुयायियों द्वारा गर्भधातु मण्डल के धार्मिक क्रियाओं के दरम्यान मंत्रोच्चार पूर्वक धारण की जाती है। दर्शाये चित्र से स्पष्ट होता है कि यह मुद्रा ध्यान मुद्रा से मिलती-जुलती और अग्रज मुद्रा के विपरीत है।

विधि

दायीं हथेली को मध्य भाग तक नीचे की ओर अभिमुख करते हुए, उस पर बायीं हथेली दायें हाथ पर विश्राम करती हुई रहें। अंगूठे और अंगुलियाँ मध्यभाग की ओर फैले हुए रहें, इस भाँति अनुज मुद्रा बनती है।[6]

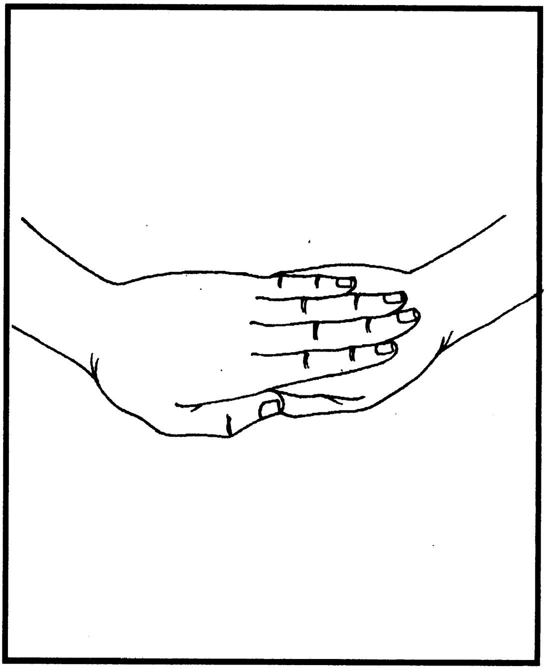

अनुज मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं अग्नि तत्त्व में संतुलन स्थापित कर पित्त से उभरने वाली बीमारियों एवं मूत्र दोष आदि का परिहार कर गुर्दे को स्वस्थ बनाती है। चिड़चिड़ापन, रूक्षता, उग्रता आदि का निवारण कर सौम्यता आदि गुणों का विकास करती है।

• इस मुद्रा का प्रयोग स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र को जागृत करते हुए पेट के पर्दे के नीचे स्थित सभी अवयवों का नियमन करता है तथा शरीरस्थ सोडियम आदि का संतुलन कर तनाव प्रबंधन करता है।

• एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार यह मुद्रा एड्रिनल, पेन्क्रियाज एवं नाभि

चक्र को सक्रिय करती है। एसिडिटी, उल्टी, तेज सिरदर्द आदि में राहत देती है और नाभि खिसकने पर लाभ पहुँचाती है।

7. अष्टदल पद्म मुद्रा

इस मुद्रा में आठ अंगुलियाँ अष्ट दल कमल के समान दिखती हैं अतः यह आठ पत्तियों वाला कमल अष्ट दल कमल कहलाता है। यह तान्त्रिक मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में प्रचलित है। इसे गर्भधातु मण्डल, वज्रधातु मण्डल, होम आदि धार्मिक क्रियाओं के समय धारण करते हैं। यह संयुक्त मुद्रा है अतः दोनों हाथों से की जाती है। इस मुद्रा का बाह्य स्वरूप परमानन्द और इच्छा तृप्ति को दर्शाता है। इसकी विधि निम्न है-

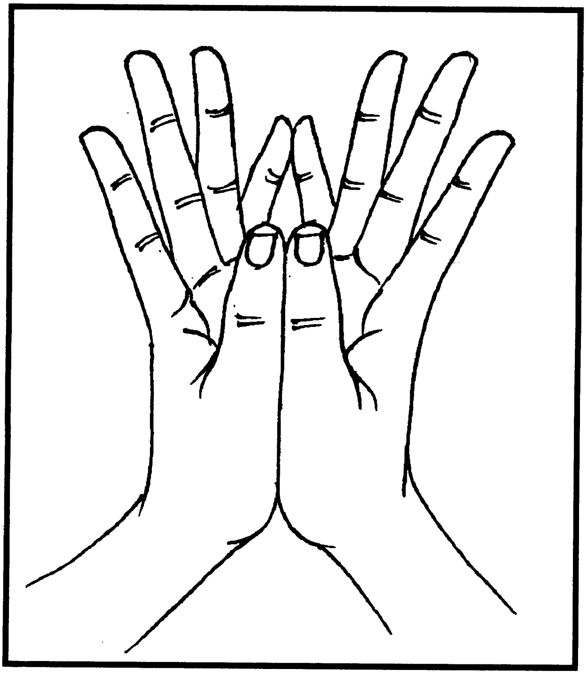

अष्टदल पद्म मुद्रा

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखते हुए अंगुलियों और अंगूठों को हल्का सा तिरछा घुमायें और उन्हें ऊपर की ओर अभिमुख करें। फिर दोनों हाथों के अंगूठों, हाथ की एड़ियों एवं कनिष्ठिका के अग्रभागों को जोड़ते हुए बीच में खाली जगह छोड़ें तब इस भाँति अष्टदल पद्म मुद्रा बनती है।[7]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश एवं अग्नि तत्त्व को संतुलित करते हुए शरीरस्थ विजातीय द्रव्यों का निकास करती है। अग्नि रस, पाचक रस, लार रस आदि को नियंत्रित करती है और नि:स्वार्थभाव एवं शारीरिक स्वस्थता प्रदान करती है।

• मणिपुर एवं आज्ञा चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा डायबिटिज, कब्ज, अपच, गैस एवं पाचन विकृतियों में राहत देती है और आन्तरिक ज्ञान को जागृत करती है।

तैजस एवं दर्शन केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा अतिन्द्रिय क्षमता एवं अन्तर्दृष्टि का विकास करती है तथा घृणा, भय, ईर्ष्या, संघर्ष, तृष्णा आदि पर नियंत्रण रखती है।

8. बाह्य बंध मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा जापान की बौद्ध परम्परा में वहाँ के धर्म गुरुओं और भक्तों के द्वारा वज्रधातु मण्डल से सम्बन्धित धार्मिक कार्यों के समय धारण की जाती है। यह संयुक्त मुद्रा ग्रथितम् मुद्रा के समान है। इस मुद्रा में दोनों हाथ बाह्य रूप से बंधे रहते हैं अत: इसका नाम बाह्य बंध मुद्रा है।

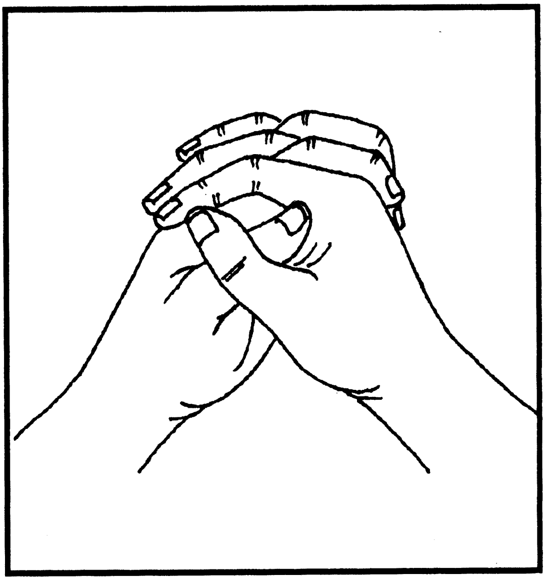

बाह्य मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को सम्मिलित कर अंगुलियों को एक-दूसरे में गुम्फित करें तथा दायें अंगूठे को बायें अंगूठे पर Cross करते हुए रखने पर बाह्य बंध मुद्रा बनती है।[8]

सुपरिणाम

• वायु एवं अग्नि तत्त्व में संतुलन स्थापित करते हुए यह मुद्रा कुपित वायु को प्रशान्त करती है। गठिया, साइटिका, वायुशूल, लकवा आदि रोगों का निवारण करती है और वायु के दर्द, सन्धिवात, अपच आदि को दूर करती है।

• इस मुद्रा के प्रयोग से अनाहत एवं विशुद्धि केन्द्र प्रभावित होते हैं जिससे विशेष शक्तियों का जागरण होता है।

थायरॉइड एवं थायमस ग्रंथियों को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा कैल्सियम, आयोडीन, कॉलेस्ट्राल के संतुलन एवं हड्डियों के विकास आदि में सहायक बनती है। आवाज को मधुर, मोहक एवं सुरीला बनाती है तथा बच्चों के विकास एवं जीवन निर्माण में भी विशेष लाभकारी है।

9. बकु-जौ-इन् मुद्रा

जापान देश में बौद्ध धर्म का अनुसरण करने वाले श्रद्धालु वर्ग इस मुद्रा को धारण करते हैं। यह मुद्रा मुख्यत: वज्रधातु मण्डल के धार्मिक क्रियाकलापों के वक्त प्रदर्शित की जाती है। यह संयुक्त मुद्रा 'जौ इन्' मुद्रा के समान कही गई है।

विधि

दोनों हथेलियों को मध्य भाग में इस तरह रखें कि अंगुलियाँ मध्य दिशा की ओर फैली हुई, दूसरे पोर तक एक-दूसरे में अन्तर्ग्रथित हुई और अंगूठे के अग्रभाग एक-दूसरे को स्पर्श करते हुए रहने पर बकु-जौ-इन् मुद्रा बनती है।[9]

सुपरिणाम

यह मुद्रा जल एवं आकाश तत्त्व का नियमन करती है। इससे शरीरस्थ विषद्रव्यों एवं विजातीय तत्त्वों का निष्कासन होता है।

यह मुद्रा सहस्रार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए संशय, विपर्यय एवं विकल्पमय स्थिति को शान्त कर निर्विकल्प एवं असम्प्रज्ञात

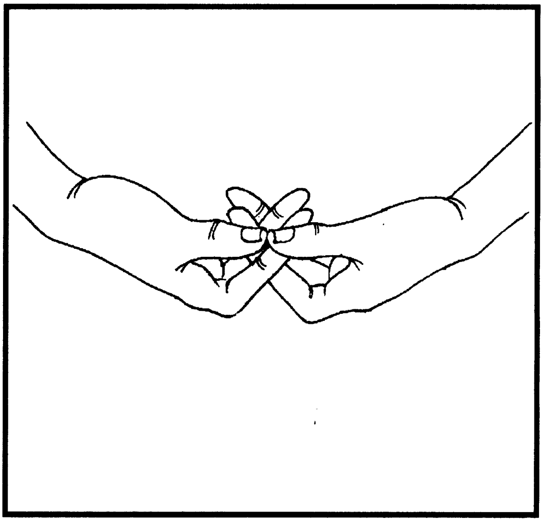

बकु-जी-इन् मुद्रा

समाधि की प्राप्ति करवाती है।

एक्युप्रेशर स्पेशलिस्ट के अनुसार यह मुद्रा कामेच्छा पर नियंत्रण, निर्णयात्मक शक्ति एवं नेतृत्व गुण का विकास करती है। यह स्वप्नदोष, हस्तदोष, शारीरिक गर्मी आदि का भी शमन करती है।

10. बाण मुद्रा

एक लम्बा और नुकिला अस्त्र जो धनुष पर चढ़ाकर चलाया जाता है वह बाण कहलाता है। यह मुद्रा बाण के प्रतीक रूप में वज्रधातु मण्डल के समक्ष धारण की जाती है। इस मुद्रा का सर्वाधिक प्रयोग जापानी बौद्ध परम्परा में देखा जाता है। यह मुद्रा युगल हाथों से निम्न प्रकार की जाती है-

विधि

दोनों हाथों को एक-दूसरे के समीप कर तर्जनी और अनामिका को हथेली के पृष्ठ भाग की ओर अन्तर्ग्रथित करें, मध्यमा को अन्दर तरफ मोड़ते हुए हथेली से स्पर्श करवायें तथा दोनों मध्यमाओं के मध्य भाग का पोर स्पर्श करता हुआ रहे तथा अंगूठे और कनिष्ठिका के अग्रभाग भी एक-दूसरे से जुड़े हुए रहने पर बाण मुद्रा बनती है।[10]

इस मुद्रा में हथेलियों को कमर के पीछे बार-बार घुमाया जाता है।

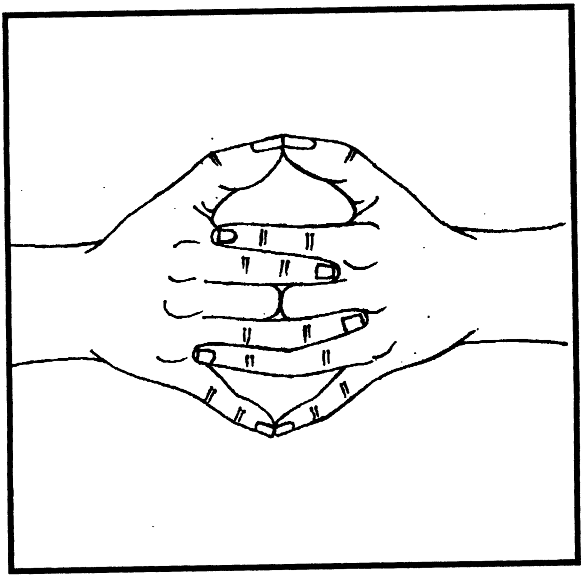

बाण मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं वायु तत्त्वों को संतुलित करती है। इससे हृदय में रूधिरअभिसंचरण की क्रिया संतुलित एवं रक्त विकार आदि दूर होते हैं।

• स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा पेट के पर्दे के नीचे स्थित अवयवों के कार्यों का नियमन करती है तथा वक्तृत्व, कवित्व, इन्द्रिय निग्रह आदि शक्तियों को जागृत करती है।

• एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार बालकों में उच्छृंखलता आदि को नियंत्रित करती है तथा नाभि चक्र से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान होता है।

11. बोन्-जिकि-इन् मुद्रा

यह जापान में बोन्-जिकि-इन् मुद्रा और भारत में उत्तराबोधि या क्षेपण मुद्रा के नाम से पहचानी जाती है। इस तान्त्रिक मुद्रा को जापानी बौद्ध परम्परा के अनुयायी धारण करते हैं। यह मुद्रा विशेष रूप से वज्र धातु मण्डल से सम्बन्धित क्रियाओं के समय की जाती है। इस संयुक्त मुद्रा को छाती के स्तर पर धारण करते हैं।

विधि

दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलियों को छोड़कर शेष अंगुलियों को अन्तर्ग्रथित करें तथा तर्जनी को ऊर्ध्व प्रसरित करते हुए उनके अग्रभागों को मिलाने पर बोन्-जिकि-इन् मुद्रा बनती है।[11]

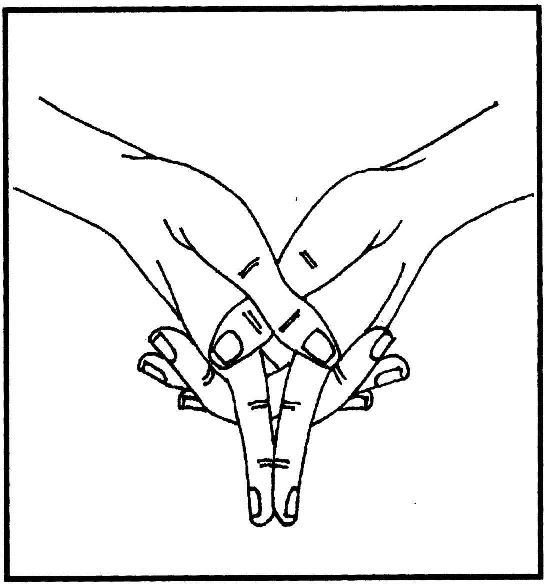

बोन्-जिकि-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

- इस मुद्रा का प्रयोग आकाश तत्त्व को संतुलित करता है। इससे हृदय स्वस्थ रहता है, तत्सम्बन्धी रोगों का निदान होता है और त्याग एवं अध्यात्म भावना में वृद्धि होती है।
- सहस्रार एवं आज्ञा चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा मस्तिष्क में मेरुजल का संचालन कर कामेच्छाओं को नियंत्रित करती है, शक्ति एवं ऊर्जा का वर्धन करती है और असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति करवाती है।
- ज्ञान एवं दर्शन केन्द्र को सक्रिय करते हुए पूर्वजन्म का अवबोध करवाती है तथा कामवृत्तियों को अनुशासित कर अपूर्व आनंद को प्रकट करती है।

12. बु-बोसत्सु-इन् मुद्रा

भारत में इस मुद्रा को नृत्य मुद्रा या बोधिसत्त्व नृत्य मुद्रा कहते हैं। यह तान्त्रिक मुद्रा पूर्ववत जापानी बौद्ध परम्परा में श्रद्धालुओं द्वारा धारण की जाती है तथा इसे वज्रधातु मण्डल, होम एवं अन्य धार्मिक क्रियाओं के समय करते हैं। यह नृत्य पूजा की सूचक है।

विधि

हथेलियों को शरीर की तरफ रखें, अनामिका और अंगूठों को हथेली की ओर मोड़ते हुए उनके अग्रभागों को मिलायें, शेष अंगुलियों को ऊर्ध्व प्रसरित करें तथा दोनों हाथों में थोड़ी दूरी रखने पर 'बु-बोसत्सु-इन्' मुद्रा कहलाती है।[12]

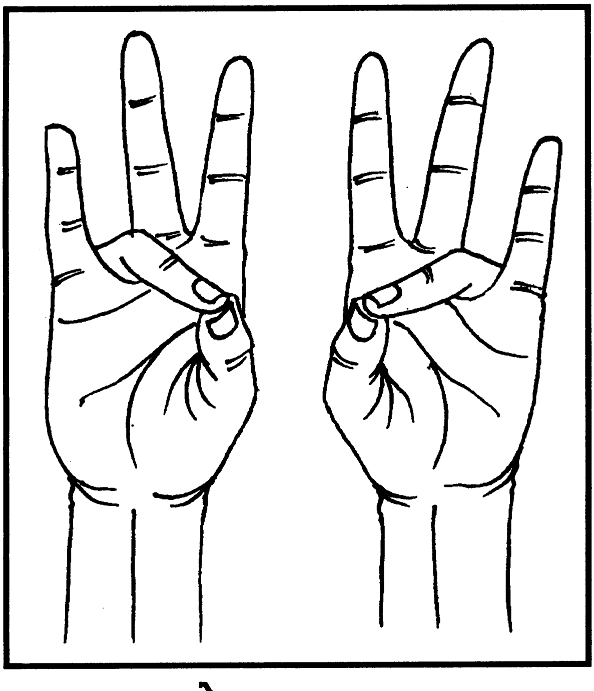

बु-बोसत्सु-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

- अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व का संतुलन कर यह मुद्रा शरीर को बलिष्ठ, शक्तिशाली, कान्तियुक्त, स्फूर्तिमय एवं तेजस्वी बनाती है तथा क्रोध, उग्रता, प्रमाद आदि को दूर करती है।

• मणिपुर एवं मूलाधार चक्र को जागृत कर यह मुद्रा मधुमेह, कब्ज, अपच आदि रोगों में लाभ पहुँचाती है।

• एड्रिनल, पेन्क्रियाज एवं कामग्रंथियों के स्राव को संतुलित कर बी.पी, पित्त प्रकृति, एसिडिटी, उल्टी, सिरदर्द, रक्त शर्करा, शारीरिक गर्मी, मासिक स्राव आदि को नियंत्रित करती है तथा व्यक्ति को साहसी, निर्भयी, सहनशील एवं आशावादी बनाती है।

13. बू-मौ-इन् मुद्रा

यह मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में गर्भधातु मण्डल, वज्रधातु मण्डल, होम आदि धार्मिक क्रियाओं को सुसम्पादित करने के प्रयोजन से की जाती है। यह बुद्ध के पाँच नेत्रों की सूचक है।

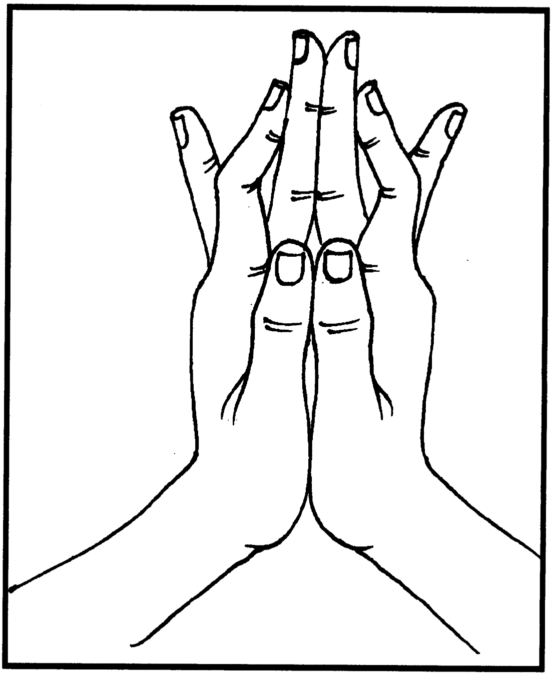

बू-मौ-इन् मुद्रा

विधि

दोनों हाथों को मध्यभाग में निकट रखें, अंगूठों को ऊर्ध्व प्रसरित कर उनकी बाह्य किनारियों को मिलायें, मध्यमा और अनामिका को ऊपर की ओर उठाते हुए अग्रभागों को परस्पर संयुक्त करें, तर्जनी को किंचित मोड़ते हुए उनके

अग्रभागों को मध्यमा के प्रथम जोड़ पर रखें तथा कनिष्ठिका ऊपर उठी हुई रहें। इस प्रकार बू-मौ-इन् मुद्रा बनती है।[13]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग आकाश एवं जल तत्त्व का नियमन करता है। इससे शरीर का आवश्यक संतुलन बना रहता है। हृदय में रक्त संचरण की क्रिया सम्यक रूप से होती है और क्रोधादि कषायों का शमन होता है।

• आज्ञा एवं स्वाधिष्ठान चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा बुद्धि एवं मन को शांत, शीघ्रग्राही एवं कुशाग्र बनाती है, यथार्थ ज्ञान की उपलब्धि करवाती है और नाभि को यथास्थान स्थापित करती है।

• पीयूष एवं प्रजनन ग्रन्थियों को संतुलित कर मनोबल, निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति, देखने-सुनने की शक्ति का वर्धन करती है। समस्त ग्रंथियों के कार्य में संतुलन बनाए रखती है तथा वंध्यत्व, प्रजनन, मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याओं का निवारण करती है।

14. बु-जौ-इन् मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में वज्रधातु मण्डल, गर्भधातु मण्डल, होम आदि विविध धार्मिक क्रियाओं के दरम्यान प्रदर्शित की जाती है। उपलब्ध ग्रन्थों में इसका अर्थ सम्मान पूर्वक मार्ग से हट जाना बतलाया है। इसका अभिप्राय यह हो सकता है कि जब भगवान बुद्ध किसी मार्ग से लौटते थे, तब इस मुद्रा का प्रयोग कर उनका सम्मान किया जाता था और उनके लिए पर्याप्त मार्ग को रिक्त कर दिया जाता था।

आज यह देवी-देवताओं के मंदिर दर्शन की सूचक है। इसमें हाथों की मुद्रा अर्थ संगत प्रतीत होती है।

विधि

दोनों हाथों को निकट लायें, तदनन्तर अंगूठों को Cross करते हुए एवं तर्जनी, अनामिका और कनिष्ठिका को हाथ के बाह्य भाग की तरफ अन्तर्ग्रथित करते हुए तथा मध्यमा को ऊपर की ओर उठाकर अग्रभागों को स्पर्शित करने पर बु-जौ-इन् मुद्रा बनती है।[14]

सुपरिणाम

• वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा हृदय, रक्त

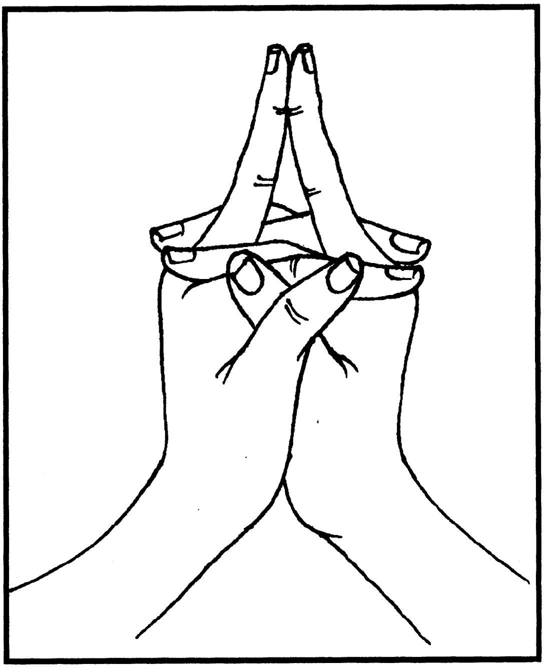

बु-जी-इन् मुद्रा

अभिसंचरण, श्वसन क्रिया, मल-मूत्र की गति आदि का नियमन करती है, शारीरिक संतुलन बनाए रखती है और अनहद आनंद एवं शांति की प्राप्ति करवाती है।

- अनाहत एवं सहस्रार चक्र को जागृत कर यह मुद्रा बालकों के विकास एवं नियंत्रण में सहायक बनती है तथा जल तत्त्व एवं शेष ग्रंथियों का संतुलन करती है।
- एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह समस्त शरीर के पोषण एवं शक्ति वर्धन में सहायक बनती है, अनेक दिव्यगुणों एवं कलाओं को विकसित करती है तथा बालकों में रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास करती है।

15. चकषुर मुद्रा

भारत में इस तान्त्रिक मुद्रा को मूल गुह्य मुद्रा भी कहते हैं। यह मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा के अनुयायियों द्वारा मान्य है तथा गर्भधातु मण्डल, वज्रधातु मण्डल, होम आदि धार्मिक क्रियाओं के उद्देश्य से की जाती है। इसे

आँखों की सूचक कहा गया है। यह उत्तराबोधि मुद्रा से मिलती-जुलती है।

विधि

दोनों हाथों को एक-दूसरे के सन्मुख रखते हुए तर्जनी को छोड़कर शेष अंगुलियों को अन्दर की ओर अन्तर्ग्रथित करें तथा तर्जनी के अग्रभाग ऊपर की ओर परस्पर संयुक्त रहें, इस भाँति चकषुर मुद्रा बनती है।[15]

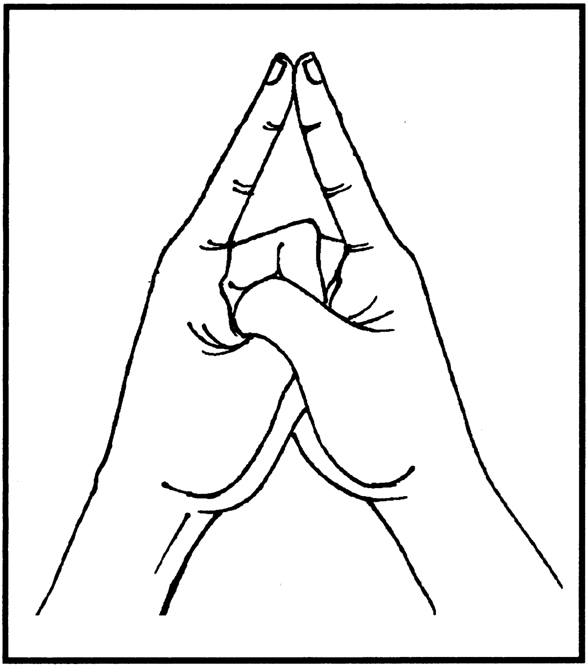

चकषुर मुद्रा

सुपरिणाम

• पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व को संतुलित कर यह मुद्रा हड्डी आदि ठोस तत्त्वों को मजबूत बनाती है तथा मोटापा, दुर्बलता आदि को न्यून करती है।

• मूलाधार एवं आज्ञा चक्र को संतुलित करते हुए यह मुद्रा प्रजनन ग्रंथि, मेरुदण्ड, गुर्दे, मस्तिष्क एवं स्नायुतंत्र के कार्यों को सम्यक करती है।

• दर्शन एवं शक्ति केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा पूर्वाभास एवं अतिन्द्रिय क्षमता को जागृत करती है, कामवृत्तियों को शान्त रखती है तथा कुण्डलिनी का स्थान होने से साधना में सहायक बनती है।

16. चिंतामणि मुद्रा (प्रथम रीति)

इस मुद्रा का अभिप्राय चिन्तामणि रत्न की याचना एवं उसकी प्राप्ति से भी हो सकता है। सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला रत्न चिंतामणि कहलाता है। यह चिन्तामणि रत्न से सम्बन्धित हर्ष और संतोष की मुद्रा है। जिसे चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति हो जाती है उसके हर्ष का पारावार नहीं रहता। यह मुद्रा भी प्रतीक रूप में प्रसन्नता की अभिवृद्धि करती है।

यह जापानी बौद्ध परंपरा में श्रद्धालुओं द्वारा गर्भधातु मण्डल, वज्रधातु मण्डल, होम आदि धार्मिक क्रियाओं के प्रसंग पर धारण की जाती है। यह संयुक्त मुद्रा दोनों हाथों में समान रूप से होती है।

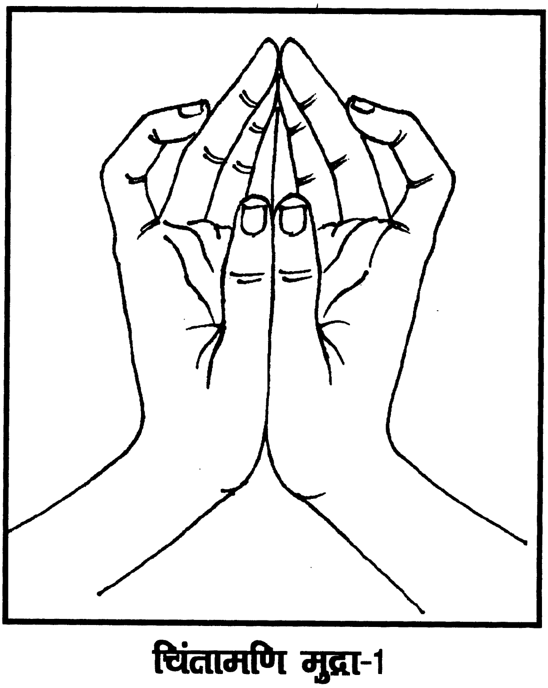

चिंतामणि मुद्रा-1

विधि

दोनों हथेलियों को मध्यभाग की तरफ रखें, अंगूठों को ऊर्ध्व प्रसरित कर उन्हें बाह्य किनारियों से मिलायें, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका के अग्रभागों का परस्पर स्पर्श करवायें तथा तर्जनी को हल्की सी मोड़ते हुए मध्यमा के मध्य जोड़ पर स्थिर करें। इस भाँति चिंतामणि मुद्रा बनती है।[16]

सुपरिणाम

• यह अग्नि एवं जल तत्त्व को संतुलित करते हुए पित्त से उभरने वाली बीमारियों एवं मूत्र दोष का परिहार करती है। गुर्दे को स्वस्थ रखती है। शरीर को स्निग्ध, कान्तियुक्त एवं ओजस्वी बनाती है।

• मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा रक्त, जल और सोडियम का नियंत्रण कर तनाव विसर्जन एवं शक्ति उत्पादन करती है।

• एक्युप्रेशर सिद्धान्त के अनुसार शराब की आदत छुड़वाने में सहायक बनती है और स्थानांतरित नाभि को स्थान पर लाती है।

17. चिन्तामणि मुद्रा (दूसरी रीति)

ध्यातव्य है कि बौद्ध परम्परा में अनेक तरह की धार्मिक क्रियाएँ होती है उनमें गर्भधातु मण्डल, वज्रधातु मण्डल, होम आदि क्रियाएँ विशिष्ट फलदायी मानी गई हैं। इन क्रिया कलापों को प्रभावशाली बनाने हेतु मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है उनमें चिन्तामणि मुद्रा पाँच प्रकार से दिखायी जाती है। उनका सचित्र वर्णन निम्न प्रकार है–

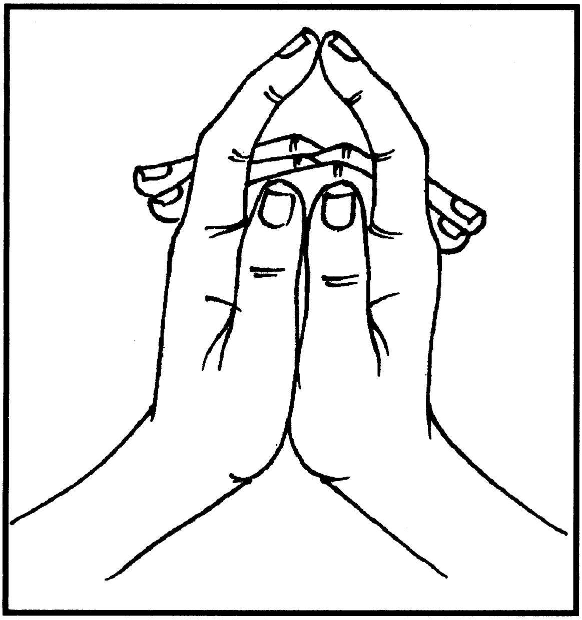

चिंतामणि मुद्रा-2

विधि

इसमें हथेलियाँ मध्य भाग में, अंगूठे ऊपर की ओर एवं उनके बाह्य किनारियाँ स्पर्श करती हुई, तर्जनी मुड़ी हुई एवं अग्रभाग स्पर्श करते हुए तथा शेष तीनों अंगुलियाँ बाहर की ओर अन्तर्ग्रथित हुई रहती है।[17]

शेष वर्णन पूर्ववत।

सुपणिाम

• अग्नि और आकाश तत्त्व का संतुलन करते हुए, शरीर-नाड़ी का शोधन, पेट के विभिन्न अवयवों का शक्ति वर्धन, हृदय को शक्तिशाली एवं कब्ज को दूर करती है।

• मणिपुर एवं आज्ञा चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा मधुमेह, कब्ज, अपच, पाचन विकृतियों आदि में राहत देतीं है। ज्ञान तंतुओं को जागृत करती है तथा स्मरण शक्ति के विकास के साथ-साथ चित्त को शांत एवं एकाग्र बनाती है।

• दर्शन एवं तैजस केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा काम वृत्तियों को शांत, शक्तियों का संचय, ईर्ष्या, घृणा, भय, मत्सरता, तृष्णा आदि पर नियंत्रण और अन्तर्दृष्टि का विकास करती है।

18. चिन्तामणि मुद्रा (तीसरी रीति)

विधि

इसमें हथेलियाँ मध्यभाग में, अंगूठे क्रॉस करते हुए, तर्जनी मुड़ी हुई एवं उनके अग्रभाग स्पर्श करते हुए, शेष तीन अंगुलियाँ अग्रभाग पर अन्तर्ग्रथित हुई रहती हैं।[18]

शेष प्रथम रीति के समान जानना।

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग आकाश तत्त्व का नियमन करते हुए हृदय सम्बन्धी रोगों का निवारण, मन को एकाग्र एवं आन्तरिक आनंद का वर्धन करता है।

• यह मुद्रा आज्ञा एवं सहस्रार चक्र को जागृत कर निर्विकल्प समाधिमय अवस्था की प्राप्ति करवाती है तथा बुद्धि को शांत, एकाग्र, कुशाग्र एवं तीव्रग्राही बनाती है।

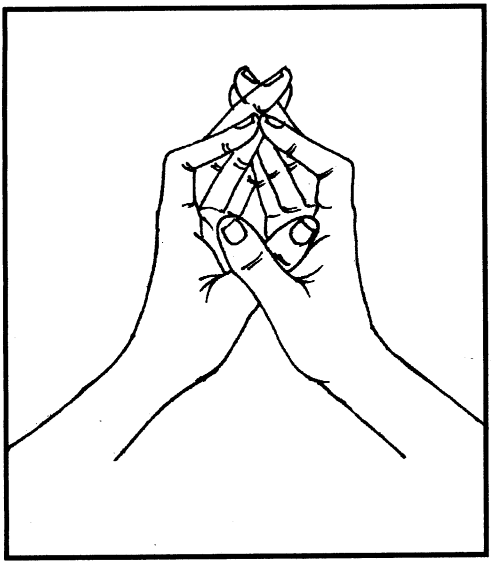

चिंतामणि मुद्रा-3

• पिच्युटरी एवं पिनियल ग्रंथियों को सक्रिय कर यह मुद्रा शेष सभी ग्रंथियों के स्राव का नियमन करती है। अनेक आन्तरिक उपलब्धियाँ तथा मानसिक, बौद्धिक एवं शारीरिक उत्थान करती है।

19. चिन्तामणि मुद्रा (चौथी रीति)

इसमें हथेलियाँ मध्य भाग में, अंगूठे Cross करते हुए, तर्जनी, अनामिका और कनिष्ठिका बाहर की तरफ अन्तर्ग्रथित हुई और मध्यमा एक-दूसरे के अग्रभागों से स्पर्श करती हुई रहती हैं।[19]

सुपरिणाम

• अग्नि एवं वायु तत्त्व के संयोग से कुपित वायु, गठिया, साइटिका, वायुशूल, लकवा आदि रोगों का निराकरण, मानसिक एकाग्रता में विकास और वायु सम्बन्धी विकृतियों का उपशमन होता है।

• इस मुद्रा को धारण करने से मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र जागृत होते हैं।

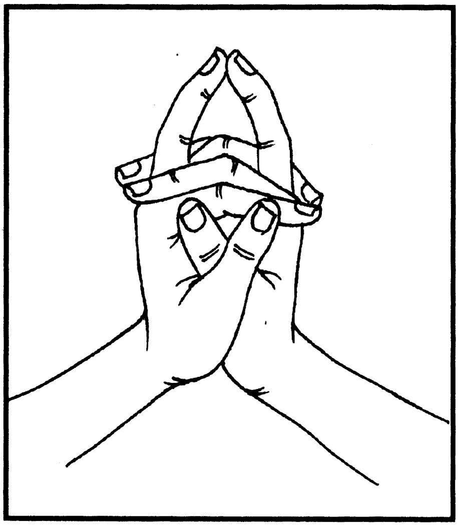

चिंतामणि मुद्रा-4

इससे अग्नि तत्त्व, वायु तत्त्व, फेफड़ें और हृदय का नियमन, पाचन रसों का उत्पादन तथा शरीररस्थ तापमान का संतुलन होता है।

• एक्युप्रेशर प्रणाली के अनुसार यह शरीरस्थ विजातीय द्रव्यों का निकास करती है।

20. चिन्तामणि मुद्रा (पाँचवीं रीति)

इसमें भी दोनों हथेलियाँ मध्य भाग में, अंगूठे ऊपर उठे हुए और परस्पर स्पर्श करते हुए, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका थोड़ी मुड़ी हुई तथा कनिष्ठिका अग्रभागों से स्पर्श करती हुई रहती हैं।[20]

शेष वर्णन प्रथम रीतिवत।

सुपरिणाम

• पृथ्वी एवं वायु तत्त्व का संतुलन कर यह मुद्रा हड्डी, मांसपेशी, त्वचा, नाखुन, बाल आदि ठोस तत्त्वों सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करती है।

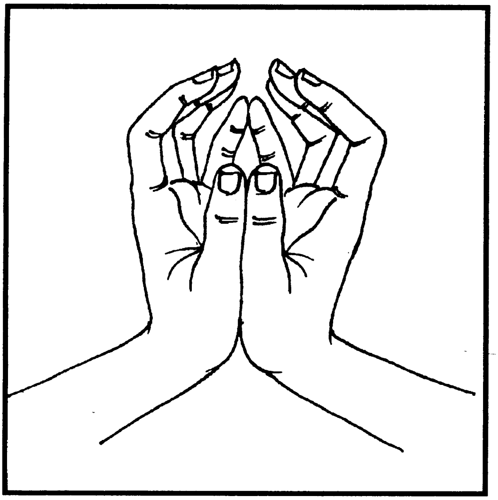

चिंतामणि मुद्रा-5

- मूलाधार एवं अनाहत चक्रों को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा इन्द्रिय नियंत्रण कर शारीरिक आरोग्य प्रदान करती है।
- शक्ति एवं आनंद केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह काम वासनाओं का परिशोधन एवं बाह्य जगत से आभ्यंतर के जगत की ओर अभिमुख करती है।

21. चित्त गुह्य मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा भी जापानी बौद्धों के द्वारा गर्भधातु मण्डल आदि क्रियाओं के अवसर पर की जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखें, अंगूठों को ऊर्ध्व प्रसरित करते हुए उन्हें बाह्य किनारियों से मिलायें, तर्जनी और मध्यमा के अग्रभागों को सम्पृक्त करें तथा अनामिका और कनिष्ठिका को बाह्य भाग से अन्तर्ग्रथित करने पर चित्त गुह्य मुद्रा बनती है।[21]

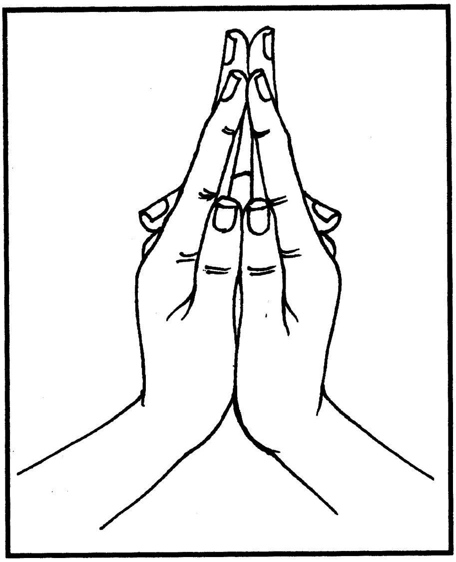

चित्त गुह्य मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग अग्नि एवं वायु तत्त्व को संतुलित करता है। यह गैस की नाना विकृतियों को दूर कर तत्क्षण शांति का अनुभव करवाती है एवं तथा सिरदर्द, अनिद्रा आदि रोगों में लाभ पहुँचाती है।

• मणिपुर एवं अनाहत चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस एवं पाचन विकृतियों को दूर करती है और बालकों के विकास में सहयोगी बनती है।

• थायमस एवं एड्रिनल ग्रंथियों को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा बालकों की रोगों से रक्षा करती है। उनमें सुस्ती आदि का शमन कर उत्साह एवं स्फूर्ति लाती है।

22. चौ-बुत्सु-फु-इन् मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा भी पूर्ववत जापानी बौद्ध परम्परा में मान्य है तथा गर्भधातु मण्डल आदि धार्मिक क्रियाओं के दौरान की जाती है। इस मुद्रा का अभिप्राय यह है कि बुद्ध और सामान्य लोग आत्मशक्ति की अपेक्षा एक है,

केवल अभिव्यक्ति की अपेक्षा से अन्तर है। यह मुद्रा अन्दर आने के लिए आज्ञा और शक्ति प्राप्त करने की सूचक है। यह अंजलि मुद्रा के समान है।

विधि

नमस्कार मुद्रा की भाँति हथेलियों को मिलायें और अंगुलियों को ऊर्ध्व प्रसरित करें तथा अंगूठों को तर्जनी के निचले हिस्से के जोड़ पर स्पर्श करते हुए रखें, तब चौ-बुत्सु-फु-इन् मुद्रा कहलाती है।[22]

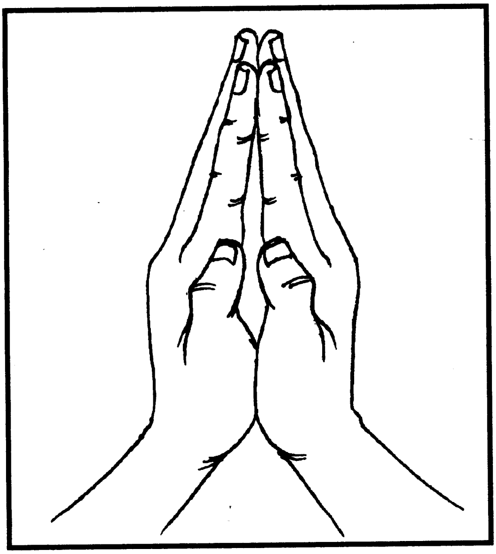

चौ-बुत्सु-फु-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• आकाश एवं जल तत्त्व को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा रक्त विकार, शारीरिक रूक्षता, हृदय रोग, लसिका, वीर्य प्रवाह से सम्बन्धित समस्याओं का निवारण कर शरीर को कान्तिमय, स्निग्ध एवं हृदय को शक्तिशाली बनाती है।

• सहस्रार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को प्रभावित करते हुए मस्तिष्क में मेरुजल का संचालन एवं कामेच्छाओं पर नियंत्रण करती है। अन्य ग्रंथियों के संचालन में सहायक बनती है और पेट के पर्दे के नीचे स्थित अवयवों के कार्यों का नियमन करती है।

• एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह मुद्रा कामेच्छा नियंत्रण, निर्णयात्मक एवं नेतृत्व गुण का विकास करती है तथा पोटेशियम, सोडियम और जल के प्रमाण को संतुलित करती है।

23. चौ-कोंगौ-रेंजे-इन् मुद्रा

यह मुद्रा भी पूर्ववत गर्भधातु मण्डल आदि धर्म क्रियाओं के दरम्यान धारण की जाती है। यह संयुक्त मुद्रा दोनों हाथों में समान होती है। इसकी विधि यह है-

विधि

कनिष्ठिका अंगुलियों और अंगूठों को हथेली के भीतर मोड़ते हुए परस्पर में अग्रभागों से स्पर्श करवायें और शेष तीन अंगुलियों को ऊपर की ओर सीधी रखें। तत्पश्चात बायीं हथेली को अधोमुख और दायीं हथेली को ऊर्ध्वमुख करें तथा बायें हाथ की अंगुलियाँ दायें हाथ की अंगुलियों पर 90^0 कोण की दूरी पर रहें तब चौ-कोंगौ-रेंजे-इन् मुद्रा कहलाती है।[23]

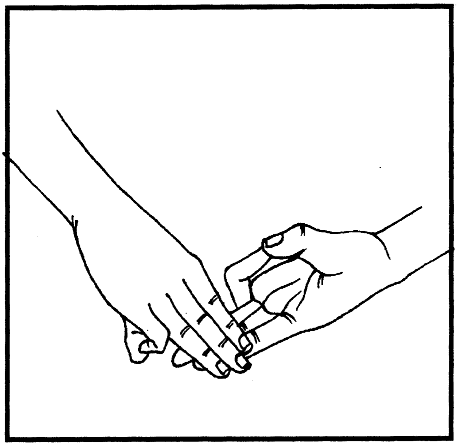

चौ-कोंगौ-रेंजे-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा से आकाश तत्त्व प्रभावित होकर हृदय के साथ तादात्म्य का अनुभव होता है तथा स्वयं में लीन होने से अध्यात्म एवं ध्यान में प्रगति होती है।

• सहस्रार एवं आज्ञा चक्र को जागृत कर यह शारीरिक, मानसिक एवं

बुद्धि के विकास में सहयोगी बनती है तथा सम्यक ज्ञान को उपलब्ध करवाती है।

• पिच्युटरी एवं पिनियल ग्रंथियों के स्राव को नियंत्रित कर यह मुद्रा स्मरण शक्ति का विकास करती है।

24. चौ-नेन्-जु-इन् मुद्रा

उपलब्ध वर्णन के अनुसार यह मुद्रा प्रार्थनाएँ, पाठ स्मरण, मन्त्र जाप एवं सम्यक ध्यान से सम्बन्धित है। अत: कहा गया है कि यह मुद्रा सच्चे ध्यान की सूचक है। इसका प्रयोग गर्भधातु मण्डल, वज्रधातु मण्डल आदि धार्मिक विधानों के प्रसंग पर किया जाता है।

विधि

इसमें अंगूठें झुके हुए एवं अनामिका के अग्रभाग को स्पर्श करते हुए, तर्जनी सीधी तथा मध्यमा और कनिष्ठिका अपने प्रतिपक्ष के अग्रभाग को स्पर्श करते हुए रहते हैं इस तरह चौ-नेन्-जु-इन् मुद्रा की रचना होती है।

चौ-नेन्-जु-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• अग्नि एवं वायु तत्त्व को प्रभावित कर यह मुद्रा कुपित वायु, गठिया, साइटिका, वायुशूल, लकवा, घुटने-जोड़ों के सन्धिवात आदि रोगों का निवारण

करती है।

• यह मणिपुर एवं अनाहत चक्र को प्रभावित कर शक्ति प्रदान करती है तथा मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस एवं पाचन विकृतियों को दूर करती है।

• तैजस एवं आनंद केंद्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा भावों को निर्मल एवं परिष्कृत कर वृत्तियों का शोधन एवं शक्ति का संचय करती है।

25. चौ-जइ-इन् मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा भी मुख्य रूप से जापानी बौद्ध परम्परा में प्रचलित है। इसे वहाँ के श्रद्धालु वर्ग वज्रधातु मण्डल से सम्बन्धित क्रियाओं में प्रयुक्त करते हैं। इस मुद्रा के द्वारा पापों का नाश करने के लिए उन्हें एक साथ किया जाता है।

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखते हुए एक-दूसरे से मिलायें, अंगूठे Cross करते हुए और तर्जनी अंगूठों के नाखूनों का स्पर्श करती हुई रहें, मध्यमा ऊपर उठी हुई और अपने प्रतिपक्ष के अग्रभाग का स्पर्श करती हुई रहें तथा अनामिका और कनिष्ठिका अन्तर्ग्रंथित हुई और उनके अग्रभाग अपने प्रतिरूप के तीसरे जोड़ का स्पर्श करती हुई रहने पर चौ-जइ-इन् मुद्रा का निर्माण होता है।[25]

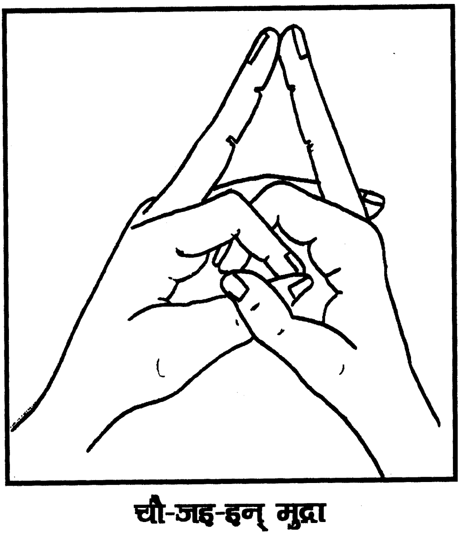

चौ-जइ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

चौ-जइ-इन् मुद्रा को धारण करने से मणिपुर एवं अनाहत चक्र जागृत होते हैं। इससे मनोविकार घटते हैं एवं परमार्थ रुचि बढ़ती है।

यह मुद्रा अग्नि एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए पित्त प्रकृति को नियंत्रित करती है और एनीमिया, पीलिया, पाचन विकार, श्वसन विकार आदि को दूर करती है।

एड्रिनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि के स्राव को संतुलित करते हुए यह बालकों के विकास में सहायक बनती है, शारीरिक विकास एवं जननेन्द्रियों के विकास पर नियंत्रण रखती है तथा व्यक्ति को साहसी, निर्भीक एवं सहिष्णु बनाती है।

26. दै-कै-इन् मुद्रा

इस मुद्रा का प्रयोग भी गर्भधातु मण्डल, वज्रधातु मण्डल आदि धार्मिक क्रियाओं को विधिवत सम्पन्न करने हेतु किया जाता है। प्रस्तुत मुद्रा का अर्थ विशाल महासागर है। इसका प्रतीकात्मक अर्थ आत्मशक्ति की व्यापकता हो सकता है। यह मुद्रा मंदिर के पवित्रीकरण और शुद्धिकरण की सूचक है। जैसे सागर की गहराई अतुल है वैसे ही आत्मा की शक्ति भी असीम है। इस मुद्रा द्वारा आत्मशक्ति को पहचानने का उपक्रम किया जाता है इसीलिए यह मुद्रा मंदिर पवित्रता की सूचक मानी गई है।

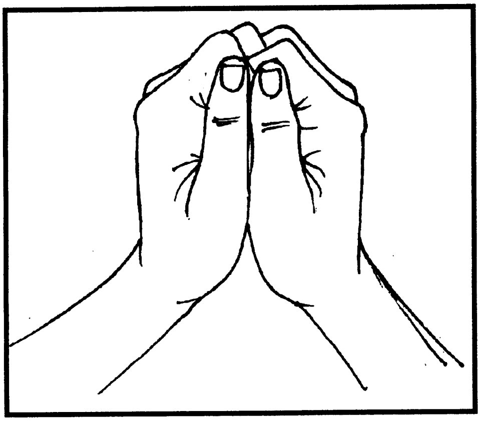

दै-कै-इन् मुद्रा

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में योजित करें, अंगूठों को बाह्य किनारियों से मिलायें, अंगुलियों को अन्दर की तरफ अन्तर्ग्रथित करें, फिर हाथों को नीचे की तरफ घुमायें जिससे अंगुलियाँ धरती की तरफ हो जायें, उसे दै-कै-इन् मुद्रा कहते हैं।[26]

सुपरिणाम

- यह मुद्रा वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित कर हृदय, फेफड़ें, गुर्दे से सम्बन्धित रोगों का उपशमन करती है तथा विजातीय द्रव्यों का परिहार करती है।
- अनाहत एवं सहस्रार चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा मस्तिष्क में मेरूजल का संचालन कर कामवासनाओं को नियंत्रित करती है। ग्रंथियों के संचालन में सहायक बनती है। असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति करवाती है।
- ज्ञान एवं आनंद केन्द्र को जागृत कर यह मुद्रा चैतन्य जागरण, नाड़ी-ग्रन्थि संस्थान का नियमन एवं इन्द्रिय संवेदन की अनुभूति करवाती है तथा ईर्ष्या, घृणा, भय आदि के भावों का शमन कर निर्मल भावों का जागरण करती है।

27. दै-ये-तो-नो-इन् मुद्रा

इस मुद्रा का अर्थ है महाज्ञान की तलवार। सम्यकज्ञान रूपी तलवार से मिथ्यात्व रूपी शत्रुओं का नाश आसानी से किया जा सकता है अत: यह मुद्रा पापों से बचने एवं उनके विनाश की सूचक है। यह संयुक्त मुद्रा गर्भधातु मण्डल, वज्रधातु मण्डल आदि क्रियाओं में धारण की जाती है।

विधि

हथेलियों के गद्दी के स्थानों को परस्पर में मिलाएं, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को अग्रभागों से अन्तर्ग्रथित करें, दोनों हाथों के मध्य रिक्त स्थान रहें, तर्जनी दूसरे जोड़ से झुकती हुई अपने अग्रभागों से अंगूठों के अग्रभागों का स्पर्श करें तथा अंगूठे सीधे रहें, इस भाँति 'दै-ये-तो-नो-इन्' मुद्रा बनती है।[27]

सुपरिणाम

- यह मुद्रा अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्वों को संतुलित करती है। इससे शरीर में जोश, स्फूर्ति, उष्णता, शक्ति आदि का वर्धन होता है।

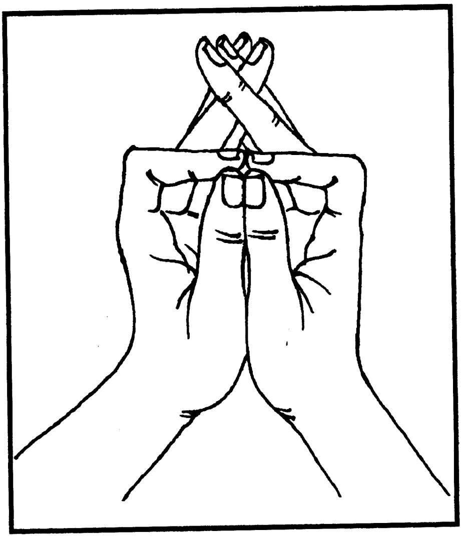

दै-ये-तो-नो-इन् मुद्रा

- इस मुद्रा के प्रयोग से मूलाधार एवं मणिपुर चक्र प्रभावित होते हैं। यह अग्नि तत्त्व पर नियंत्रण कर पाचक रसों का उत्पादन एवं ज्ञान तंतुओं का जागरण करती है।
- एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह मुद्रा रक्तचाप, बी.पी., पित्त, एसिडिटी, सिरदर्द आदि में राहत देकर चारित्र गठन करती है तथा शरीर की गर्मी का संतुलन एवं मासिक स्राव का नियमन करती है।

28. धारणी अवलोकितेश्वर मुद्रा

यह मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में गर्भधातु मण्डल की क्रियाओं के समय की जाती है। इस मुद्रा का प्रयोजन रहस्यमय एवं गोपनीय है। इसकी विधि निम्न है-

विधि

दोनों हथेलियों को मध्यभाग में रखें, अंगूठों को ऊर्ध्व प्रसरित करते हुए बाह्य किनारियों से मिलायें, तर्जनी, अनामिका और कनिष्ठिका को अपने प्रतिपक्ष के अग्रभागों का स्पर्श करवायें तथा मध्यमा को हथेली के भीतर मोड़े हुए रखने पर धारणी अवलोकितेश्वर मुद्रा बनती है।[28]

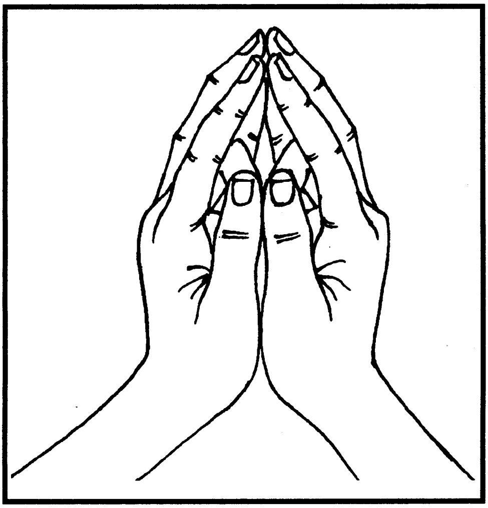

धारणी अवलोकितेश्वर मुद्रा

सुपरिणाम

अग्नि एवं वायु तत्त्व का नियमन करते हुए यह मुद्रा वायु सम्बन्धी विकारों एवं लकवा आदि रोगों का निवारण,पाचन विकृतियों का शमन, वायुशूल, सन्धिवात आदि की समस्या को दूर करती है।

मणिपुर तथा अनाहत चक्र को जागृत कर मधुमेह, कब्ज, अपच, एसिडिटी आदि का निरोध करती है।

एड्रिनल, पेन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थियों को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा शरीरस्थ शर्करा, रक्तचाप, प्राणवायु, पित्त आदि का संतुलन, रोग प्रतिरोधक शक्ति का विकास एवं बालकों में सत्प्रवृत्तियों का वर्धन करती है।

29. धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा

धर्मचक्र का घूमना धर्मचक्र प्रवर्त्तन कहलाता है अत: यह मुद्रा धर्मचक्र की गतिशीलता को दर्शाती है। विद्वानों ने इसे नियमों के स्थापना की सूचक माना है।

इस मुद्रा का उपयोग पूर्ववत गर्भधातुमण्डल आदि धार्मिक क्रियाओं के समय किया जाता है। जापानी बौद्ध परम्परा इस मुद्रा को महत्त्व देती है और यथाप्रसंग उसका प्रयोग भी करती है।

विधि

दायीं हथेली का पृष्ठ भाग बायीं हथेली के पृष्ठभाग से स्पर्शित रहे, अंगुलियाँ परस्पर गूंथी हुई रहें तथा बायां अंगूठा दायें अंगूठे के अग्रभाग से स्पर्श करता हुआ रहने पर धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा बनती है।[29]

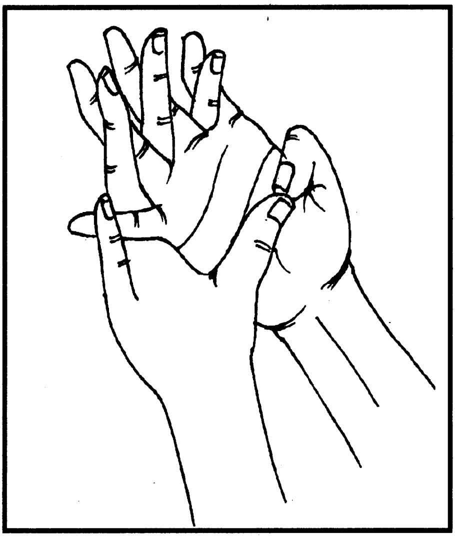

धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा

सुपरिणाम

- वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा थायरॉइड, पैराथायरॉइड, पाचक रस, लार रस, थायमस आदि के स्राव का संतुलन करती है तथा सद्भावों का निर्माण करती है।
- यह मुद्रा करने से अनाहत एवं सहस्रार चक्र जागृत होते हैं, इससे आन्तरिक ज्ञान प्रकट होकर निर्विकल्प स्थिति को प्रकट करता है।

• एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार यह मुद्रा पोटैशियम, सोडियम और जल की मात्रा को संतुलित कर कामेच्छाओं को नियंत्रित एवं नेतृत्व शक्ति का विकास करती है। बालकों में रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास होता है।

30 धर्मचक्र प्रवर्त्तन बोधिसत्त्व वर्ग मुद्रा

बौद्ध भिक्षुओं का एक प्रकार बोधिसत्त्व कहलाता है। उस वर्ग द्वारा की गई नियम स्थापनाएँ अथवा आचार व्यवस्थाएँ धर्मचक्र प्रवर्त्तन बोधिसत्त्व वर्ग मुद्रा कहलाती है। शेष वर्णन पूर्व मुद्रावत।

विधि

दोनों हाथों की मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली के भीतर मोड़ें, अंगूठा मध्यमा के प्रथम पोर का स्पर्श करता हुआ रहे, तर्जनी प्रथम एवं दूसरे जोड़ पर से झुकी हुई एवं प्रतिपक्षी अग्रभाग को स्पर्श करती हुई रहने पर उपरोक्त मुद्रा बनती है।[30]

धर्मचक्र प्रवर्त्तन बोधिसत्त्व वर्ग मुद्रा

31. धर्म प्रवर्त्तन मुद्रा

यह मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में अधिक प्रचलित है। उस देश के श्रद्धालु वर्ग गर्भधातु मण्डल, होम आदि क्रियाओं में इस मुद्रा का सविधि प्रयोग करते हैं। यह नाम के अभिरूप धर्मचक्र से संबंधित और नियमों को गति देने की सूचक है।

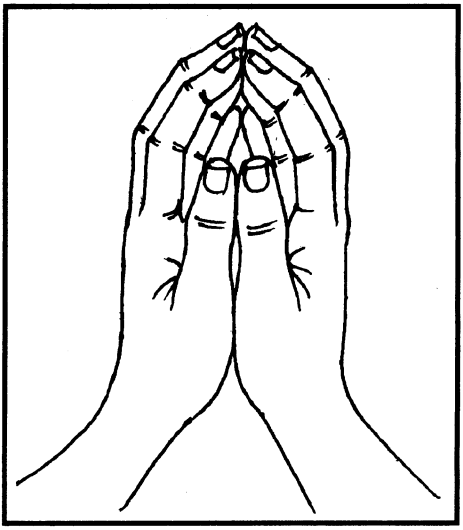

धर्म प्रवर्त्तन मुद्रा

विधि

हथेलियों को मध्य भाग में रखें, अंगूठों को ऊपर उठाते हुए बाह्य किनारियों से मिलायें तथा अंगुलियों को मोड़ते हुए अपने प्रतिपक्ष के अग्रभागों का स्पर्श करवायें, इस भाँति धर्म प्रवर्त्तन मुद्रा बनती है।[31]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग अग्नि तत्त्व का नियमन करता है। इससे मस्तिष्क, सूर्य केन्द्र एवं प्रजनन सम्बन्धी रोगों का निदान होता है।

• मणिपुर चक्र को जागृत कर यह मुद्रा मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस एवं पाचन तंत्र को सुचारू करती है। इससे आन्तरिक शक्ति का वर्धन करती है।

• तैजस केन्द्र को प्रभावित कर यह मुद्रा शरीर, मन और भावनाओं को स्वस्थ रखती है तथा शक्ति का संचय एवं वृत्तियों को शान्त करती है।

32. धृतराष्ट्र मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में प्रचलित एवं श्रद्धालुओं द्वारा आचरित विशिष्ट मुद्रा है। यह मुद्रा गर्भधातु मण्डल एवं धार्मिक गतिविधियों के समय अपनायी जाती है। यह संयुक्त मुद्रा कौरवों के पिता धृतराष्ट्र से संबंधित है। इसमें दोनों हाथों में समान मुद्रा होती है।

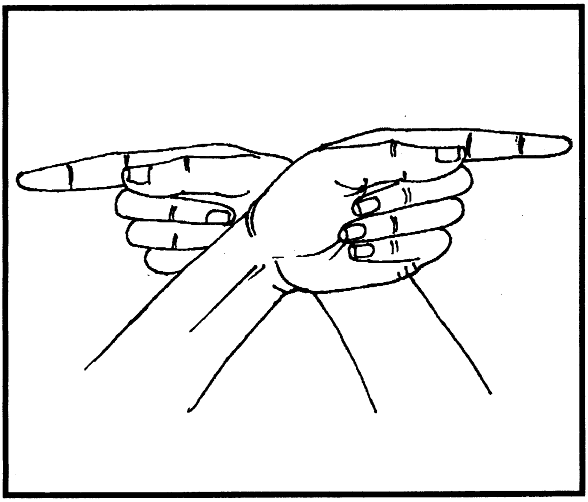

धृतराष्ट्र मुद्रा

विधि

हथेलियों को स्वयं के अभिमुख कर मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली के भीतर मोड़ें, अंगूठों को मध्यमा से स्पर्शित करें, तर्जनी को भूमि से समानान्तर आगे की ओर फैलायें। तत्पश्चात दोनों हाथों को Cross करते हुए दायें हाथ के पिछले हिस्से को बायीं हथेली के गद्दी वाले भाग पर रखें। तब धृतराष्ट्र मुद्रा बनती है।[32]

सुपरिणाम

- यह मुद्रा जल एवं आकाश तत्त्व का संतुलन करते हुए शरीरस्थ विजातीय द्रव्यों का निष्कासन करती है। शरीर को तंदुरूस्त एवं मजबूत बनाती है तथा थायरॉइड, पैराथायरॉइड, टॉन्सिल, लार रस आदि पर नियंत्रण रखती है।
- आज्ञा एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत कर यह मुद्रा पेट के पर्दे के नीचे

स्थित सभी अवयवों के कार्यों का नियमन करती है। इससे शारीरिक, बौद्धिक एवं मानसिक शक्ति का विकास एवं संतुलन बना रहता है।

- पिच्युटरी एवं कामग्रंथियों को प्रभावित कर यह मुद्रा साधक को प्रसिद्ध लेखक, कवि, वैज्ञानिक, तत्त्वज्ञानी और मानव जाति का प्रेमी बनाती है तथा स्त्री सम्बन्धी एवं यौन सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करती है।

33. धूप मुद्रा

धूप मुद्रा के दो प्रकार हैं, उनमें निम्न प्रकार जापानी बौद्ध परम्परा में प्रचलित है तथा उसका प्रयोग गर्भधातु मण्डल एवं अन्य धार्मिक क्रियाओं के दरम्यान किया जाता है। उसकी विधि यह है-

विधि

दोनों हथेलियों को बाहर की ओर अभिमुख करें, अंगूठों को ऊपर की तरफ फैलायें तथा अंगुलियों की बाह्य किनारियों को प्रतिपक्ष से स्पर्श करते हुए रखने पर धूप मुद्रा बनती है।[33]

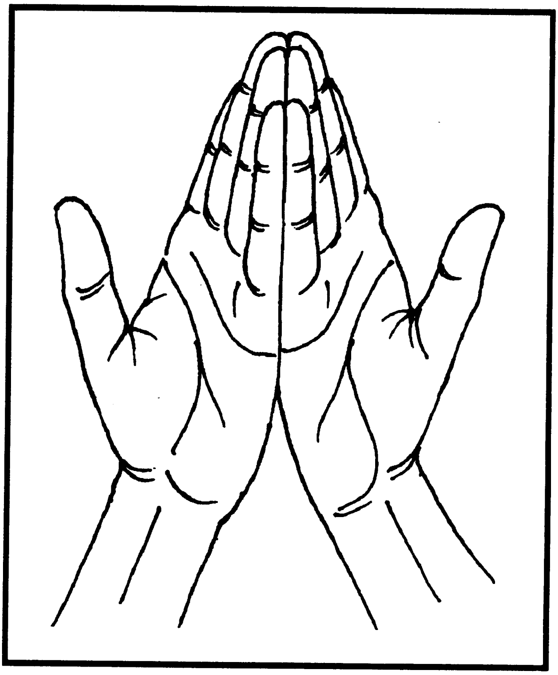

धूप मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करता है। यह शरीर को बलशाली एवं हृदय को शक्तिशाली बनाते हुए अस्थि, मज्जा आदि से सम्बन्धित रोगों का उपशमन करती है।

• मूलाधार एवं सहस्रार चक्र को प्रभावित करते हुए यौन हार्मोन उत्पन्न करती है, कामेच्छाओं पर नियंत्रण रखती है तथा काया को निरोगी एवं चित्त को स्थिर बनाती है।

• एक्युप्रेशर चिकित्सकों के अनुसार यह मुद्रा अनेक दिव्य गुणों को प्रकट कर आन्तरिक ज्ञान की स्फुरणा करती है तथा वंध्यत्व, प्रजनन, मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करती है।

34. फु-कौ-इन् मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा से संबंधित है। इसे श्रद्धालु वर्ग गर्भधातु मण्डल पूजा के प्रसंग पर धारण करते हैं। यह मुद्रा दोनों हाथों से की जाती है तथा नाम के अनुरूप यह शाश्वत प्रकाश की सूचक है।

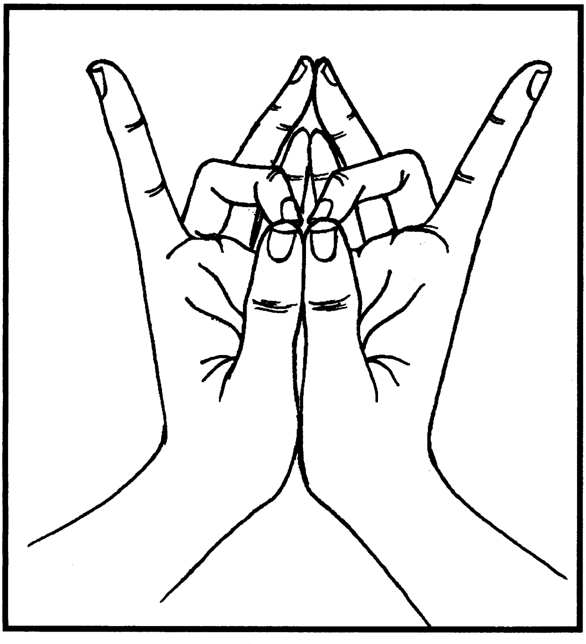

फु-कौ-इन् मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को निकट करते हुए मध्यभाग में रखें, फिर अंगूठों को समीप कर हथेली के भीतर की ओर ले जायें, तर्जनी को सीधी फैलायें, मध्यमा को उभय जोड़ों से झुकाते हुए अंगूठे के अग्रभाग का स्पर्श करवायें तथा अनामिका और कनिष्ठिका का अपने प्रतिपक्षी अग्रभाग का स्पर्श करते हुए रहना 'फु-कौ-इन्' मुद्रा है।[34]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल, वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करती है। इससे हृदय, रक्त आपूर्ति, अस्थि तंत्र, बोन मेरो, फेफड़ें और गुर्दे सम्बन्धी रोगों का निदान होता है।

• स्वाधिष्ठान, सहस्रार एवं विशुद्धि चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा विकल्पात्मक स्थिति को शांत करती है तथा निर्विकल्पात्मक असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति करवाती है।

• स्वास्थ्य विशुद्धि एवं ज्ञान केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा शारीरिक ऊर्जा एवं जैविक विद्युत का संचय करती है। उच्चतर चेतना और आत्मिक शक्तियों का विकास, इन्द्रिय संवेदन की अनुभूति, प्राग अवबोध एवं अतिन्द्रिय उपलब्धियों में सहायक बनती है।

35. फु-कु-यौ-इन् मुद्रा

जापानी बौद्ध परम्परा के अनुयायी यह मुद्रा वज्रधातु मण्डल और होम आदि धार्मिक क्रियाओं के प्रसंग पर दर्शाते हैं। इस मुद्रा का सामान्य अर्थ है वैश्विक चढ़ावा। स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत मुद्रा के माध्यम से वज्रायना देवी तारा अथवा गर्भधातु मण्डल आदि के समक्ष विश्व स्तर की अमूल्य सामग्री चढ़ाई जाती है। यह संयुक्त मुद्रा निम्न प्रकार से होती है–

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखें, अंगूठों को एक साथ मिलायें, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को अग्रभाग से अन्तर्ग्रथित करें तथा तर्जनी को पहले-दूसरे जोड़ से मोड़कर उनके अग्रभागों का स्पर्श करवाने पर फु-कु-यौ-इन् मुद्रा बनती है।[35]

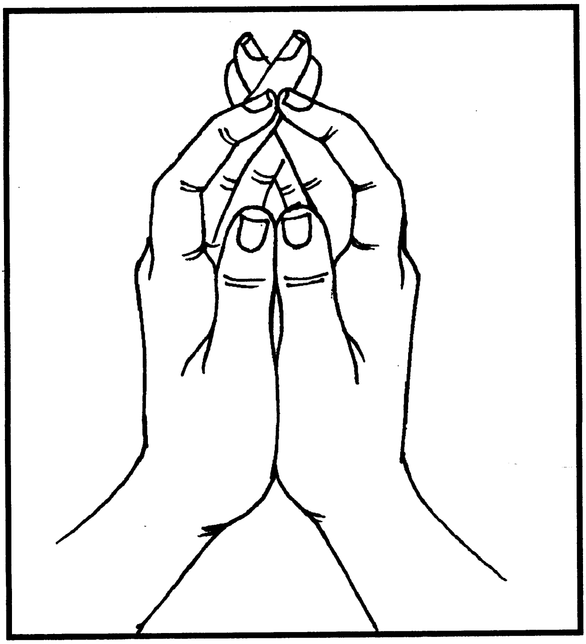

फु-कु-यौ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

- पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीर-नाड़ी शोधन, कब्ज निवारण एवं शारीरिक स्वस्थता में सहायक बनती है। यह क्रोधादि कषायों एवं दुर्भावों का शमन भी करती है।
- मूलाधार एवं सहस्रार चक्र का जागरण कर भौतिक वृत्तियों का निरोध एवं समाधिस्थ अवस्था की प्राप्ति करवाती है।
- गोनाड्स एवं पिनियल ग्रंथियों के स्राव को संतुलित कर यह मुद्रा देहस्थित पोटेशियम, जल एवं सोडियम के प्रमाण को संतुलित रखती है। अन्य ग्रन्थियों के संचालन में सहायक बनती है तथा मानसिक बल, निर्णयात्मक एवं नेतृत्व शक्ति का विकास करती है।

36. फुन्नु-केन-इन् मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा भी जापानी बौद्ध वर्ग के श्रद्धालुओं द्वारा धारण की जाती है। इस मुद्रा के द्वारा गर्भधातु मण्डल-वज्रधातु मण्डल सम्बन्धी क्रियाओं को सुविधि पूर्वक सम्पन्न किया जाता है। भारत में इसे क्रोध मुद्रा भी कहते हैं इसलिए यह क्रोध की सूचक मानी गई है। यह एक हाथ से निम्न विधि पूर्वक की जाती है–

विधि

दायीं हथेली को बाहर की ओर अभिमुख करें, अंगूठे को हथेली में मोड़ें, मध्यमा और अनामिका को अंगूठे के ऊपर मुड़ा हुआ रखें तथा तर्जनी और कनिष्ठिका को ऊर्ध्व में सीधा रखने, 'फुन्नु-केन-इन् मुद्रा बनती है।[36]

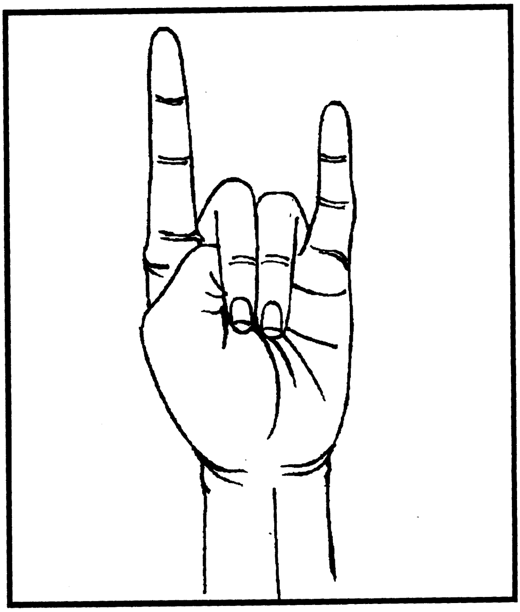

फुन्नु-केन-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

- इस मुद्रा का प्रयोग पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्वों के संतुलन के लिए किया जा सकता है। इससे शरीर स्वस्थ, मजबूत, बलशाली, ओजस्वी एवं कान्तियुक्त बनता है तथा स्वाभाविक रूक्षता, मोटापा आदि कम होते हैं।
- यह मुद्रा मणिपुर एवं मूलाधार चक्र को प्रभावित करते हुए अग्नि, जल, फॉस्फोरस, रक्त शर्करा का नियमन करती है। तनाव पर नियंत्रण करते हुए कार्य शक्ति का वर्धन एवं यौन हार्मोन का उत्पादन करती है।
- एक्युप्रेशर सिद्धान्त के अनुसार यह मुद्रा लीवर, पित्ताशय, रक्त परिसंचरण, रक्तचाप, प्राणवायु, डायबिटीज आदि पर नियंत्रण तथा शारीरिक गर्मी एवं प्रजनन कार्य का संतुलन करती है।

37. फु-त्सु-कु-यौ-इन् मुद्रा

उपर्युक्त मुद्रा गर्भधातुमण्डल आदि धार्मिक क्रियाओं के प्रयोजन से ही की जाती है। उपलब्ध साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि यह विश्वव्यापी चढ़ावे की सूचक है अर्थात इसके प्रयोग से विश्वस्तरीय द्रव्य चढ़ाये जाते हैं, जिससे मन्दिर परिसर का एक भाग अथवा मण्डल आदि का स्थान सजावट से भर जाता है। यह संयुक्त मुद्रा निम्न है–

विधि

हथेलियों को समीप कर मध्यभाग में रखें, अंगूठों को ऊर्ध्व प्रसरित कर बाह्य किनारियों से जोड़ दें, तर्जनी को झुकाकर उसके प्रतिरूप के अग्रभाग का स्पर्श करवायें, मध्यमा को बाह्य भाग से अन्तर्ग्रथित करें तथा अनामिका और कनिष्ठिका अग्र भागों का स्पर्श करते हुए रहें, इस तरह 'फु-त्सु-कु-यौ-इन्' मुद्रा बनती है।[37]

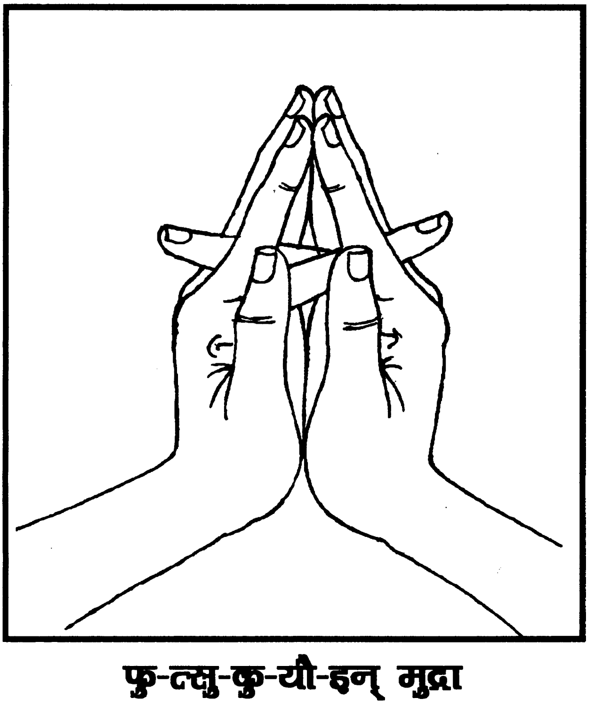

फु-त्सु-कु-यौ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

- जल एवं आकाश तत्त्व का संतुलन कर यह मुद्रा शरीर एवं जीवन प्रवाह को सुरक्षित रखती है। इससे रक्त आपूर्ति से सम्बन्धित समस्याओं एवं हार्ट अटैक, लकवा, मूर्च्छा, मल-मूत्र सम्बन्धी समस्याओं का समाधान होता है।
- स्वाधिष्ठान एवं सहस्रार चक्र को सक्रिय कर यह मुद्रा पेट के पर्दे के नीचे स्थित अवयवों का नियमन तथा मस्तिष्क में मेरुजल का संचालन कर कामेच्छाओं पर नियंत्रण करती है।
- स्वास्थ्य एवं ज्ञान केन्द्र को प्रभावित कर चिन्तन शक्ति का विकास एवं इन्द्रिय संवेदनाओं की अनुभूति करवाती है तथा शरीर, मन और भावनाओं को स्वस्थ बनाती है।

38. गे-बकु-गोकौ (गस्सहौ) मुद्रा

यह मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में गर्भधातु मण्डल-वज्रधातु मण्डल आदि धार्मिक कृत्यों के उद्देश्य से की जाती है। यह पाँच भुजाओं वाला वज्र अथवा पवित्रीकरण की सूचक मुद्रा है। इस संयुक्त मुद्रा को छाती के स्तर पर करते हैं।

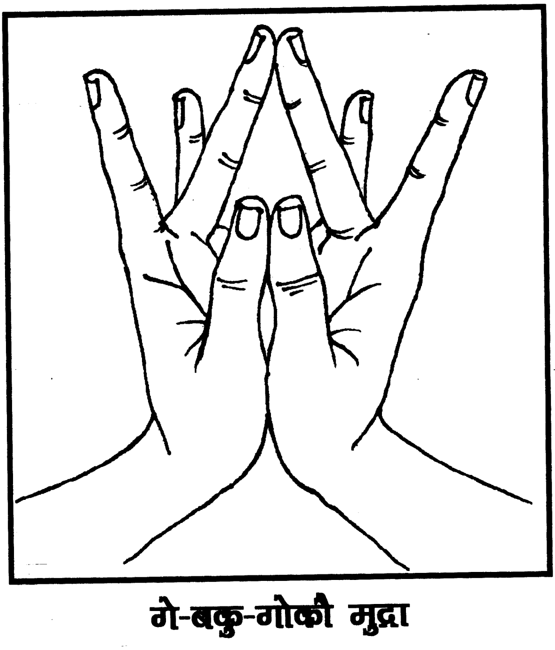

गे-बकु-गोकौ मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को समीप करें, अंगूठों को एक साथ ऊपर उठायें, तर्जनी को भी ऊपर उठायें, मध्यमा को प्रतिपक्ष के अग्रभाग से संयुक्त करें, अनामिका को हथेली के बाहर मोड़ें तथा कनिष्ठिका को सीधी रखने पर 'गे-बकु-गोकौ' मुद्रा बनती है।[38]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व का संतुलन स्थापित करते हुए हड्डी, त्वचा, मांसपेशी, नाखुन, हृदय आदि का संतुलन करती है तथा विष द्रव्यों एवं विजातीय तत्त्वों का निकास करती है।

• मूलाधार एवं सहस्रार चक्र को जागृत कर यह मुद्रा शारीरिक आरोग्य, कार्य दक्षता, ओजस्विता आदि में वर्धन कर आन्तरिक ज्ञान को प्रकट करती है तथा समाधिस्थ अवस्था की प्राप्ति करवाती है।

• गोनाड्स एवं पिनियल ग्रंथियों को जागृत कर यह मुद्रा वंध्यत्व, प्रजनन, मासिक धर्म, हस्तदोष, स्वप्न दोष आदि समस्याओं का निवारण करती है तथा कामेच्छाओं पर नियंत्रण, निर्णयात्मक एवं नेतृत्व शक्ति का विकास करती है।

39. गे-इन्-मुद्रा

यह मुद्रा गर्भधातु मण्डल एवं अन्य धार्मिक क्रियाओं में चार प्रकारों से दर्शायी जाती है। इनमें प्रासंगिक साम्यता है किन्तु प्रयोजन एवं प्रविधि में अन्तर है।

प्रथम विधि

यह मुद्रा एक हाथ से करते हैं और यह धर्मशत्रुओं के विनाश की सूचक है। हथेली को सामने की तरफ कर अंगूठे को हथेली में मोड़ें, मध्यमा और अनामिका को अंगूठे के ऊपर मोड़ें तथा तर्जनी और कनिष्ठिका को पहले जोड़ से मोड़ने पर गे-इन् मुद्रा बनती है।[39]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रभाव पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व पर पड़ता है। इससे थायरॉइड, पेराथायरॉइड, टान्सिल्स, लार रस आदि पर नियंत्रण होता है। मानसिक चेतनाओं का पोषण होता है। शरीर बलशाली एवं सत्त्वशाली बनता है।

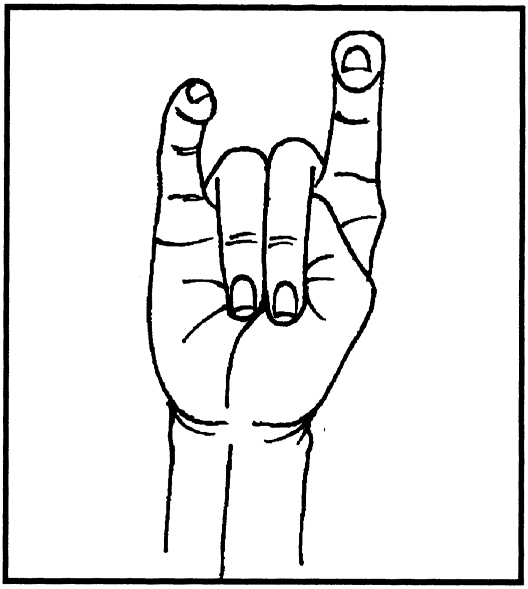

गे-इन् मुद्रा-1

• मूलाधार एवं आज्ञा चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा जल, वायु, आकाश तत्त्व एवं फास्फोरस का नियमन करती है। यह शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास करते हुए एकाग्रता एवं कुशाग्रता में सहायक बनती है।

• दर्शन एवं शक्ति केन्द्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा असंयम का निरून्धन, अतिन्द्रिय क्षमता का वर्धन तथा कुण्डलिनी का जागरण कर साधना पक्ष को मजबूत बनाती है।

द्वितीय विधि

भारत में गे-इन् मुद्रा के इस प्रकार को क्रोध मुद्रा एवं वज्रमुष्टि मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा भी जापानी बौद्ध परम्परा के अनुयायी वर्ग ही धारण करते हैं। इसकी विधि निम्न है– हथेलियाँ पीछे की ओर मुड़ी हों, अंगूठों को हथेली के अंदर मोड़कर रखें, मध्यमा और अनामिका को अंगूठों के ऊपर झुकाकर रखें, तर्जनी और कनिष्ठिका के प्रथम-द्वितीय पोर को सख्तता के साथ मोड़ते हुए तीसरे पोर को एकदम सीधा रखें इस प्रकार गे-इन् मुद्रा का दूसरा प्रकार बनता है।[40]

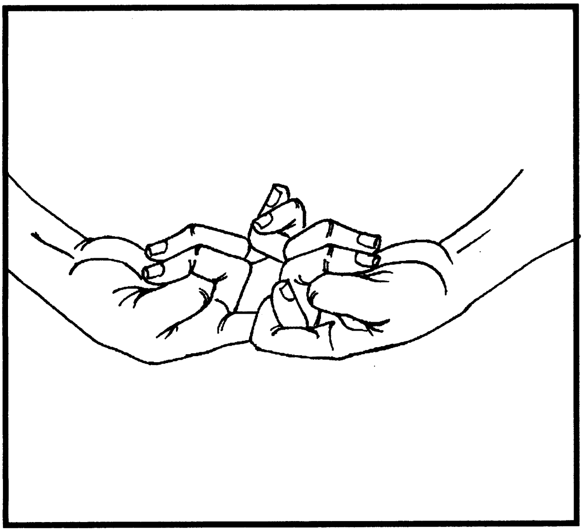

गे-इन् मुद्रा-2

सुपरिणाम

- यह मुद्रा वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित कर छाती, फेफड़ें, हृदय, थायमस, थायरॉइड, टान्सिल आदि का नियंत्रण करती है।
- अनाहत एवं आज्ञा चक्र को जागृत कर यह मुद्रा वाक्पटु, कवि, इन्द्रियजयी बनाती है तथा हृदय रोग आदि का उपशमन करती है।
- एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार बालकों में जड़ता, सुस्ती, आलस्य आदि का निवारण एवं रोग प्रतिरोधक शक्ति का विकास करती है। यह मुद्रा देखने-सुनने की शक्ति, मनोबल, निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति में भी वर्धन करती है।

तृतीय विधि

हथेलियाँ पीछे की तरफ हों, अंगूठा उसमें मुड़ा हुआ हों, मध्यमा और अनामिका अंगूठे पर झुकी हुई हों, तर्जनी और कनिष्ठिका प्रथम पोर से झुकी हुई, किन्तु एकदम सख्त हों, फिर दोनों हाथों को समीप लाकर तर्जनी और कनिष्ठिका के प्रथम पोर का भाग (नाखून वाला) परस्पर में स्पर्शित करवाने पर गे-इन् मुद्रा का तीसरा प्रकार बनता है।[41] शेष वर्णन पूर्ववत।

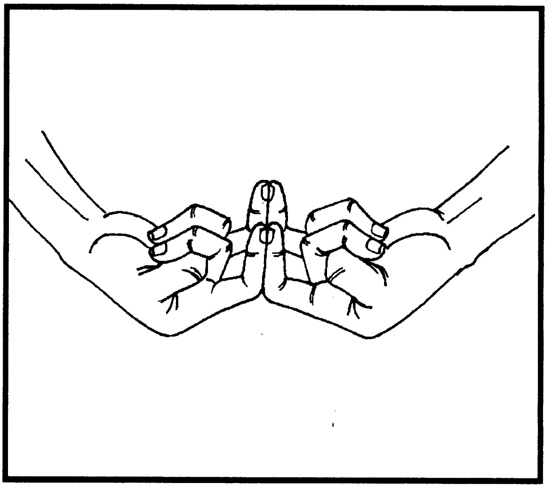

गे-इन् मुद्रा-3

सुपरिणाम

इस मुद्रा का प्रयोग अग्नि एवं जल तत्त्व को संतुलित करते हुए उग्रता, क्रोध, आलस्य, निद्रा, प्रमाद आदि का शमन कर तीव्र दृष्टि, शारीरिक बल, कान्ति, ओजस्विता को बढ़ाती है।

- मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र का जागरण कर यह मुद्रा मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस एवं पाचन विकृतियों में लाभ पहुँचाती है।
- एड्रिनल एवं नाभिचक्र को सक्रिय करते हुए यह एसिडिटी, रक्तचाप, पित्त, प्राणवायु, रक्त परिभ्रमण आदि पर नियंत्रण करती है तथा स्थानांतरित नाभि को स्थान पर लाती है।

चतुर्थ विधि

हथेलियों को बाहर की तरफ रखते हुए गे-इन् मुद्रा का प्रथम प्रकार बनायें और फिर दोनों हाथों को कलाई की जगह पर क्रॉस करने से गे-इन् मुद्रा का चौथा प्रकार बनता है।[42]

सुपरिणाम

- यह मुद्रा अग्नि एवं वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए कुपित वायु, गठिया, वायुशूल, साइटिका, लकवा, सिरदर्द, अनिद्रा आदि रोगों में राहत देती है।

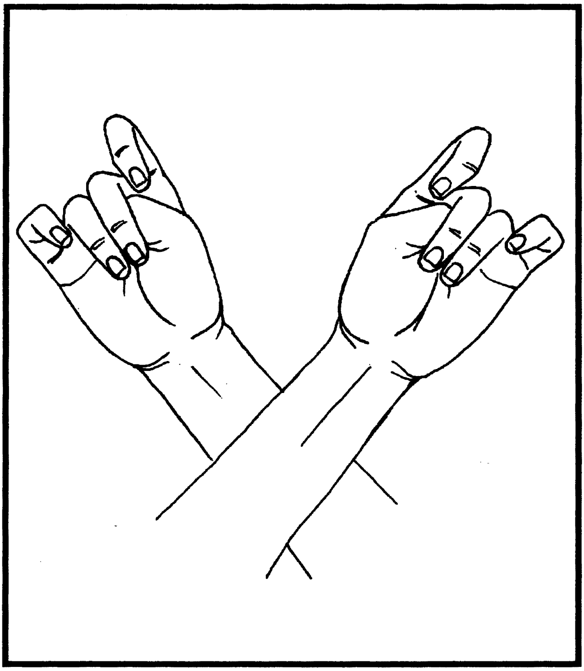

गे-इन् मुद्रा-4

• इस मुद्रा का प्रयोग मणिपुर एवं अनाहत चक्र को प्रभावित करते हुए अग्नि तत्त्व एवं पाचन तन्त्र की ऊर्जा को बढ़ाता है। तनाव नियंत्रण कर कार्य क्षमता का वर्धन करता है। हृदय में सद्भावों का प्रस्फुटन करता है और बालकों का चारित्रिक विकास करता है।

• तैजस एवं आनंद केन्द्र को सक्रिय करते हुए क्रोध आदि पर नियंत्रण कर वृत्तियों को शांत एवं शक्ति का संचय करती है। काम वासनाओं का परिशोधन कर भावों को निर्मल एवं परिष्कृत करती है।

40. गे-कै-इन् मुद्रा

जापानी बौद्ध परम्परा में इस मुद्रा का अत्यन्त महत्त्व है। यह मुद्रा मुख्यत: भूत-प्रेत के उपद्रवों से छुटकारा पाने हेतु की जाती है। इसलिए यह दुष्ट शक्तियों के निवारण की सूचक है। उक्त मुद्रा गर्भधातु मण्डल-वज्रधातु मण्डल के सामने करते हैं जिससे यन्त्र अधिष्ठित देवी-देवताओं की शक्ति द्वारा प्रेत आदि बाधाओं का आसानी से निवारण हो सकता है।

विधि

हथेलियों को बाहर की ओर अभिमुख करें, अंगूठों को हथेली में मोड़कर मध्यमा और अनामिका को उनके ऊपर मोड़ते हुए रखें, तर्जनी एकदम सीधी तथा कनिष्ठिका प्रथम दो पोर के स्थान से मुड़ी हुई हों। फिर दोनों हाथों को Cross करते हुए बायें को दायें के आगे रखें तथा कनिष्ठिका को आपस में अकड़ी हुई रखें। इस भाँति गे-कै-इन् मुद्रा बनती है।[43]

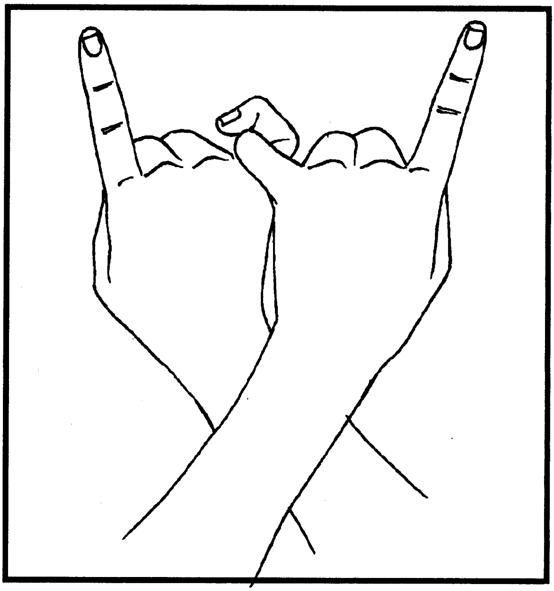

गे-कै-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश तत्त्व को संतुलित बनाए रखती है तथा हृदय को मजबूत एवं हार्ट अटैक, लकवा, मूर्च्छा आदि का निवारण करती है।

• आज्ञा चक्र एवं सहस्रार चक्र का जागरण कर यह मुद्रा ज्ञान को विकसित करती है। बुद्धि को कुशाग्र एवं एकाग्र बनाती है। विकल्पों का नाश कर निर्विकल्प स्थिति की प्राप्ति करवाती है।

• एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार यह स्मरण शक्ति, देखने-सुनने की शक्ति में वर्धन करती है। रक्तचाप एवं यौन शक्ति का नियमन करती है तथा निर्णय एवं नियंत्रण शक्ति का विकास करती है।

41. घण्टा वदना मुद्रा

धातु का एक यंत्र जो केवल ध्वनि उत्पन्न करता है वह घण्टा कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है एक आधे बरतन के आकार का, जिसमें एक लंगर लटकता रहता है और हिलाने से ध्वनि करता है। दूसरा जिसे घड़ियाल कहते हैं, थाली की तरह गोल होता है और मुंगेरी से ठोककर बजाया जाता है। यह मुद्रा प्रथम प्रकार के घण्टे से सम्बन्धित है।

विद्वानों के अनुसार यह अभिषेक (एक प्रकार की पूजा) करने की सूचक मुद्रा है। यह पूर्ववत गर्भधातुमण्डल आदि क्रियाओं के समय की जाती है।

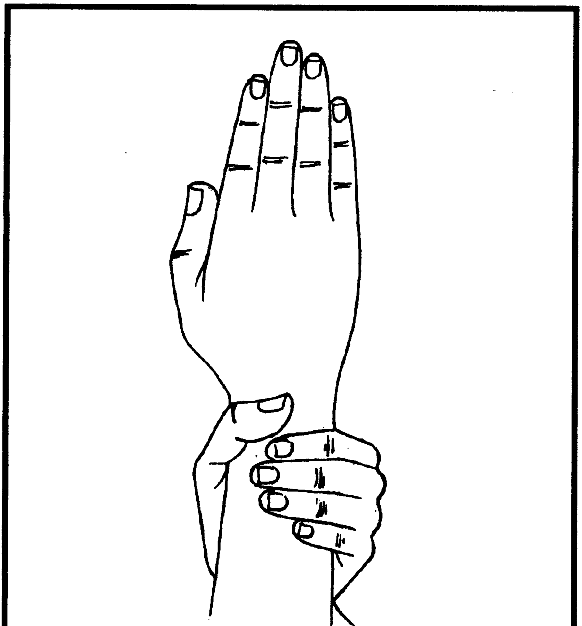

घंटा-वदना मुद्रा

विधि

दाहिना हाथ आगे की ओर, अंगुलियाँ और अंगूठा ऊपर उठे हुए हों। बायाँ हाथ दायें हाथ के कलाई के नीचे के हिस्से को पकड़ा हुआ हो, इस तरह घण्टा वदना मुद्रा बनती है।[44]

सुपरिणाम

- यह मुद्रा पृथ्वी, जल एवं वायु तत्त्व का संतुलन करती है। इससे शरीर

बलशाली, कान्तियुक्त एवं हृदय स्वस्थ बनता है और श्वसन क्रिया रक्त परिसंचरण, मल-मूत्र गति आदि नियन्त्रित होती है।

• विशुद्धि, स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा निरोगी, कार्य कुशल, ओजस्वी, शोकहीन, शान्तचित्त, दीर्घजीवी एवं महाज्ञानी बनाती है तथा स्थानच्युत नाभि को अपने स्थान पर लाती है।

एक्युप्रेशर चिकित्सकों के अनुसार इस मुद्रा को करने से हिचकी, वात विकार, शरीरस्थ कैल्शियम एवं फॉस्फोरस आदि का संतुलन होता है और स्त्री सम्बन्धी समस्याओं का निवारण होता है।

42. गो-सन्-जे मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा पूर्ववत मण्डल विधान एवं धार्मिक क्रियाओं के अवसर पर की जाती है। इस मुद्रा का अर्थ-तीन जीवन समाप्त करना बतलाया है। प्रस्तुत अर्थ का अभिप्राय अज्ञात है। इसे त्रैलोक्य विजय देव की सूचक मुद्रा माना गया है।

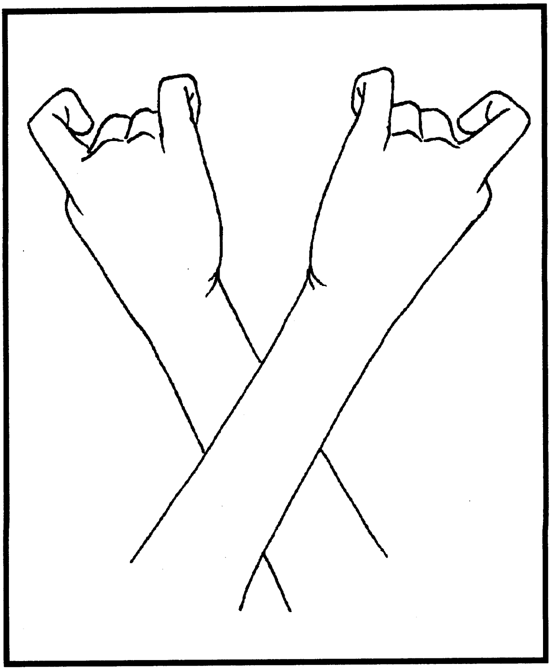

गो-सन्-जे मुद्रा

विधि

हथेलियाँ बाहर की तरफ अभिमुख, अंगूठें हथेली तरफ मुड़े हुए, मध्यमा और अनामिका अंगूठे के ऊपर मुड़ी हुई, तर्जनी और कनिष्ठिका प्रथम दो जोड़ों पर से मुड़ी हुई रहें। फिर दोनों हाथों को Cross करते हुए बायें को दायें के सामने रखने पर 'गो-सन्-जे' मुद्रा बनती है।[45]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं वायु तत्त्व को नियंत्रित करते हुए गैस की नाना विकृतियों को दूर कर तत्क्षण शान्ति का अनुभव करवाती है। मन: स्थिरता एवं एकाग्रता का विकास करती है, मस्तिष्क स्नायुओं को शक्तिशाली तथा सिरदर्द-अनिद्रा आदि रोगों को उपशान्त करती है। • इस मुद्रा के प्रयोग से मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र का जागरण होता है। यह शारीरिक एवं मानसिक शक्ति में वर्धन करते हुए कवित्व, शान्तचित्तता, निरोगी दीर्घ जीवन एवं परम ज्ञान को उपलब्ध करवाती है। इससे एड्रिनल एवं थायरॉइड ग्रन्थियों का विकास होने के कारण एसिडिटी, उल्टी, तेज सिरदर्द, रक्तचाप, पित्ताशय, लीवर, प्राणवायु आदि के विकार समाप्त होते हैं।

43. हकु-शौ-इन् मुद्रा

इस मुद्रा के दो रूप प्रचलित हैं। दोनों ही प्रकार तान्त्रिक एवं जापानी बौद्ध परम्परा से सम्बन्ध रखते हैं। ये मुद्राएँ प्रमुखत: गर्भधातु मण्डल-वज्रधातु मण्डल आदि की पूजोपासना हेतु की जाती है और इन्हें देवताओं के प्रशंसा की सूचक माना गया है तथा क्षुद्र (तुच्छ) शक्तियों को भगाने के लिए इसका प्रयोग करते हैं। इसमें दोनों हाथों को समीप कर ताली बजाते हैं जिससे हर्षाभिव्यक्ति और उपद्रव रक्षा दोनों कार्य सिद्ध हो जाते हैं।

प्रथम विधि

बायीं हथेली को स्वयं के अभिमुख कर अंगुलियों को ऊर्ध्व प्रसरित करें तथा दायीं हथेली को सामने की तरफ कर अंगुलियों द्वारा बायीं हथेली का हठात स्पर्श करने पर हकु-शौ-इन् मुद्रा कहलाती है।[46]

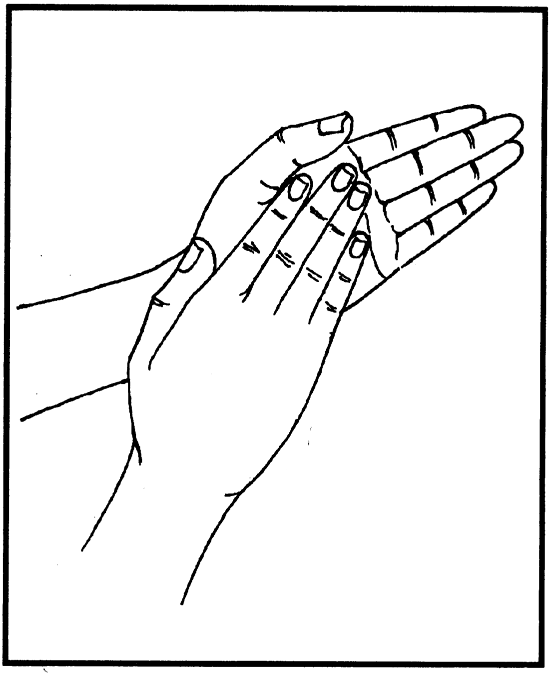

हकु-शी-इन् मुद्रा-1

सुपरिणाम

• जल एवं आकाश तत्त्व का संतुलन कर यह मुद्रा हृदय को स्वस्थ बनाती है। रक्त विकारों को दूर करते हुए वीर्य, लसिका, मल-मूत्र, पसीना, कफ आदि को संतुलित रखती है।

• स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र को जागृत कर यह पेट के पर्दे के नीचे स्थित सभी अवयवों के कार्यों का नियमन करती है। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास करते हुए एकाग्रता बढ़ाती है।

• स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा शारीरिक ऊर्जा एवं जैविक विद्युत का संचय करती है। शरीर, मन और भावनाओं को स्वस्थ बनाती है तथा कषाय नियंत्रण, कामवृत्तियों पर अनुशासन करते हुए अपूर्व आनंद की प्राप्ति करवाती है।

द्वितीय विधि

इसमें दोनों हाथों के अंगूठों को हथेली के भीतर मोड़ते हैं शेष वर्णन पूर्ववत।[47]

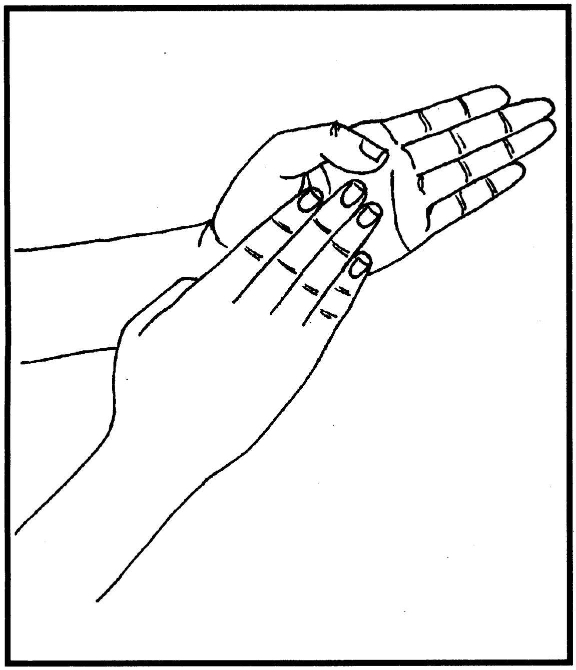

हकु-शी-इन् मुद्रा-2

सुपरिणाम

• पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व को संतुलित कर यह मुद्रा शरीर-नाड़ी शोधन एवं कब्ज को दूर करते हुए पेट के विभिन्न अवयवों का क्षमता वर्धन करती है तथा हृदय को शक्तिशाली बनाती है।

• मणिपुर एवं मूलाधार चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा अग्नि तत्त्व पर नियंत्रण, पाचक रसों का उत्पादन, शरीरस्थ सोडियम आदि का नियमन करती है। यह तनाव पर नियंत्रण करते हुए कार्य शक्ति में विकास भी करती है।

• एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह मुद्रा कपट, अहंकार, अनीति आदि को नियन्त्रित करती है तथा तीव्र परख शक्ति एवं अथक कार्य शक्ति का विकास करती है।

44. हाय-कौ-इन् मुद्रा

प्रस्तुत मुद्रा पूर्व निर्देशों की भाँति गर्भधातु मण्डल एवं अन्य धार्मिक क्रियाओं के निमित्त दिखायी जाती है। यह मुद्रा कवच पहनने की सूचक है।

विधि

हथेलियाँ मध्यभाग में परस्पर कुछ दूरी पर हों, दोनों अंगूठे बाह्य किनारियों से सम्पृक्त हों, मध्यमा एक-दूसरे के अग्रभाग से स्पर्श करती हुई हों, अनामिका और कनिष्ठिका हथेली के बीच मुड़ी हुई हों तथा तर्जनी सीधी पर हल्की सी घुमी हुई होने पर हाय-कौ-इन् मुद्रा बनती है।[48]

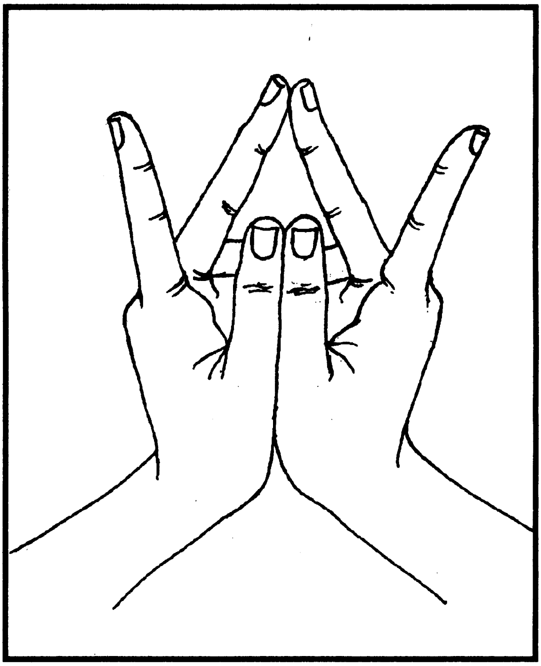

हाय-कौ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं अग्नि तत्त्व को प्रभावित करती है। इससे रक्त, वीर्य, लसिका, मल-मूत्र, पसीना,पाचन शक्ति आदि संतुलित होते हैं। क्रोध, चिड़चिड़ापन, आलस्य, निद्रा, उग्रता आदि का निवारण होता है और शरीर स्निग्ध, ओजस्वी एवं कान्तियुक्त बनता है।

• मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत कर यह मुद्रा शरीरस्थ सोडियम आदि का नियंत्रण करती है तथा पेट के पर्दे के नीचे स्थित सभी अवयवों के कार्य का नियमन करती है।

• एड्रिनल और नाभिचक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा पित्ताशय, लीवर, रक्तचाप, प्राणवायु, एसिडिटी आदि को नियंत्रित रखती है। नाभि स्थानच्युत होने पर उसे यथास्थान लाने में भी सहायक बनती है।

45. होनजोन-बु-जौ-नो-इन् मुद्रा

यह मुद्रा मुख्य देवता को प्रसन्न करने के लिए की जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

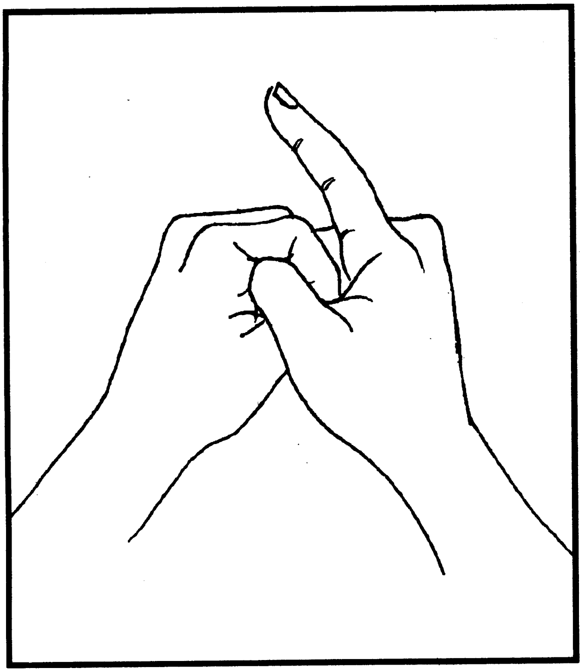

होनजोन-बु-जौ-नो-इन् मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को एक-दूसरे के सन्मुख रखें, अंगुलियों और अंगूठों को हथेली के भीतर आपस में अन्तर्ग्रथित करें तथा दायीं तर्जनी को बायीं तर्जनी के ऊपर झुकाये रखें, इस भाँति होनजोन-बु-जौ-नो-इन् मुद्रा बनती है।[49]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से पृथ्वी एवं वायु तत्त्व संतुलित रहते हैं। यह मानसिक शक्ति एवं स्मरण शक्ति की नजाकत का पोषण करती है और शरीर को बलशाली एवं शक्तिशाली बनाती है।

• यह मुद्रा करने से मूलाधार एवं अनाहत चक्र जागृत होते हैं। इससे शरीर निरोगी, कार्य में दक्षता, वक्तृत्व, कवित्व आदि शक्तियों का जागरण एवं हृदय में दया, करूणा, मैत्री आदि के भावों का प्रस्फुटन होता है।

• शक्ति एवं आनंद केन्द्र को जागृत कर यह मुद्रा कुण्डलिनी शक्ति को प्रकट कर साधना को विकसित करती है।

46. होरनो-इन् मुद्रा

भारत में इसे शंख मुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा किसी विश्वसनीय के आह्वान एवं धर्म संघ के हस्तांतरण की सूचक है। दोनों हाथों में समान मुद्रा की जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

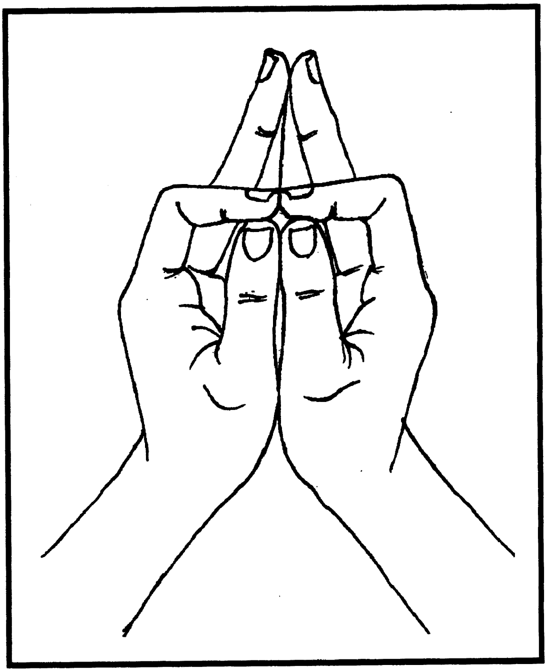

होरनो-इन् मुद्रा

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखें, अंगूठों को आपस में स्पर्श करते हुए सीधे रखें, तर्जनी को मोड़कर अंगूठे के प्रथम बाह्य जोड़ से स्पर्श करवायें तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका के अग्रभागों को परस्पर जोड़ने से होरनो-इन् मुद्रा बनती है।[50]

सुपरिणाम

• आकाश एवं वायु तत्त्व को संतुलित कर यह मुद्रा हार्ट, गुर्दे एवं फेफड़ों से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करती है और लकवा, हार्ट-अटैक आदि में लाभदायी है।

• आज्ञा एवं अनाहत चक्र का जागरण कर यह मुद्रा बालकों के मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास में सहयोगी बनती है, ज्ञान ग्रंथियों को जागृत करती है तथा हृदय में सद्भावों को प्रस्थापित करती है।

• एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार यह मनोबल, निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति, श्रवण एवं दर्शन शक्ति का विकास करती है।

47. इस्सइ-हौ-ब्यो-दौ-कै-गो मुद्रा

यह मुद्रा जापान की बौद्ध परम्परा में गर्भधातु मण्डल-वज्रधातु मण्डल आदि धार्मिक क्रियाओं से सम्बन्धित है। दोनों हाथों में समान मुद्रा बनती है।

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखें, अंगूठा और अनामिका को हथेली में मोड़ें तथा शेष अंगुलियों को ऊपर की तरफ सीधी कर उनके अग्रभागों को संयुक्त करें इस तरह यह मुद्रा बनती है।[51]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करती है। इससे पाचनतंत्र एवं हृदय सम्बन्धी विकार दूर होते हैं। शरीर-नाड़ी शोधन, उदर के विभिन्न अवयवों का क्षमता वर्धन, हृदय शक्तिशाली एवं कब्ज दूर होती है।

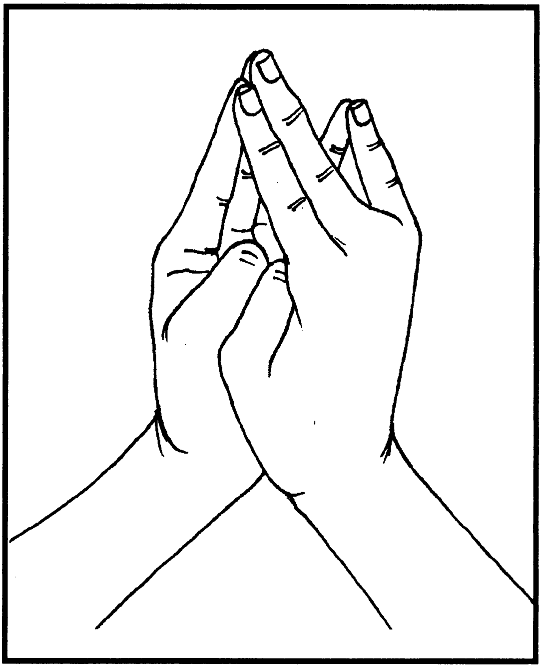

इस्साइ-ही-ब्यो-दी-कै-गो मुद्रा

• मणिपुर एवं आज्ञा चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस एवं पाचन विकृतियों को दूर करती है। शक्ति का वर्धन करती है। बुद्धि को एकाग्र एवं कुशाग्र बनाती है।

• तैजस एवं दर्शन केन्द्र को सक्रिय कर यह मुद्रा नौ कषाय, काम-वासना, उत्तेजना आदि का उपशमन कर सर्वज्ञता को प्राप्त करवाती है।

48. जौ-रेंजे-इन् मुद्रा

गर्भधातु मण्डल-वज्रधातु मण्डल आदि धार्मिक क्रियाओं के प्रसंग पर प्रयुक्त यह मुद्रा युगल हाथों से की जाती है। इसकी विधि इस प्रकार है–

विधि

इस मुद्रा में कनिष्ठिका और अंगूठों को हथेली के भीतर मोड़कर आपस में संयुक्त करें। मध्यमा, तर्जनी और अनामिका को सीधा रखें, फिर बायीं हथेली को ऊपर की ओर करते हुए दायीं अंगुलियों को बायीं अंगुलियों पर रखें इस तरह 'जौ-रेंजे-इन्' मुद्रा बनती है।[52]

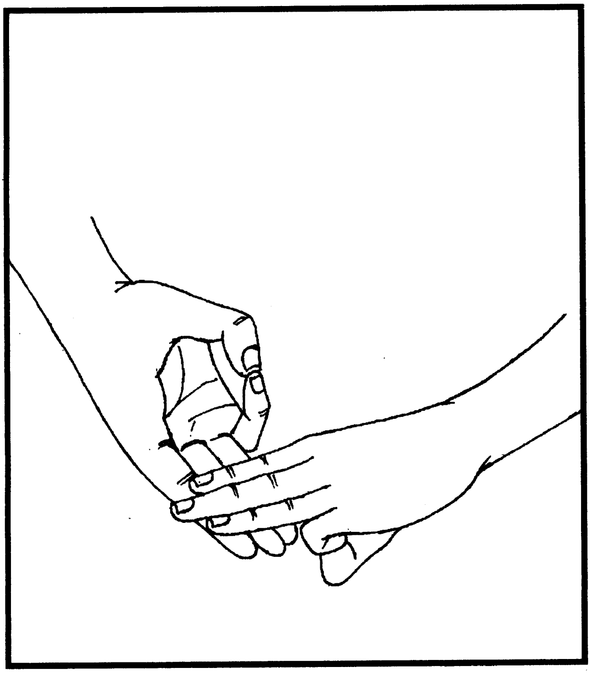

जी-रेंजे-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं आकाश तत्त्व का संतुलन कर पाचन अग्नि को दुगुनी करती है। हृदय विकारों को दूर कर शरीर में ओजस्विता एवं स्फूर्ति का संचार करती है।

• मणिपुर एवं सहस्रार चक्र को जागृत कर यह मुद्रा संशयात्मक स्थिति का निराकरण, निर्विकल्प आत्म अवस्था का प्रकटीकरण, मधुमेह, कब्ज, अपच, एसिडिटी एवं पाचन विकारों का उपशमन करती है।

• एड्रिनल एवं पिनियल के स्राव को संतुलित कर यह मुद्रा कामवासना का उपशमन, निर्णायक शक्ति में वर्धन तथा साधक को साहसी, निर्भयी एवं आशावादी बनाती है।

49. ज्ञान श्री मुद्रा

यह मुद्रा ज्ञान अभिवृद्धि के प्रयोजन से की जाती है। इसे गर्भधातु मण्डल आदि के सामने करते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दायीं हथेली को नीचे की तरफ और बायीं हथेली को ऊपर की तरफ रखें, अंगूठा और मध्यमा को हथेली तरफ मोड़ते हुए उनके अग्रभागों को जोड़ें तथा तर्जनी, अनामिका और कनिष्ठिका को मध्यभाग की तरफ सीधा रखने पर ज्ञानश्री मुद्रा बनती है।[53]

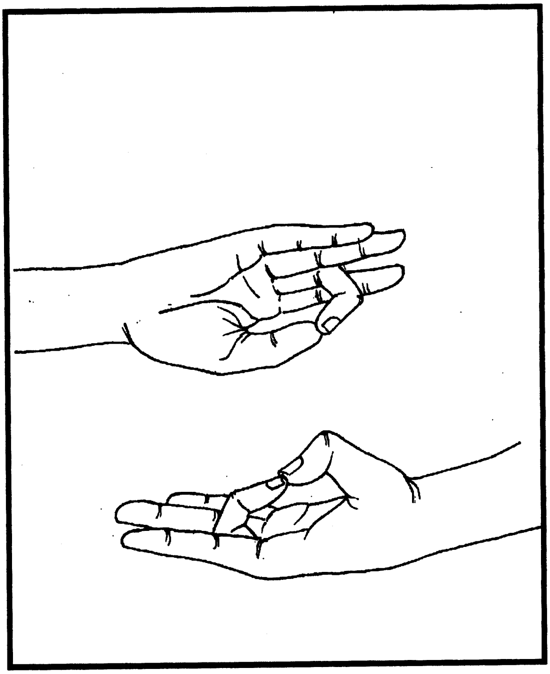

ज्ञान श्री मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा करने से पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व प्रभावित होते हैं। इससे शरीर की जड़ता, भारीपन, दुर्बलता आदि का निवारण होता है। शरीर स्वस्थ, शक्तिशाली एवं मजबूत बनता है।

• आज्ञा एवं मूलाधार चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा कार्य दक्षता, कर्म कुशलता एवं कुशाग्र बुद्धि प्रदान करती है।

• एक्युप्रेशर प्रणाली के अनुसार यह निर्णायक शक्ति, स्मरणशक्ति एवं देखने-सुनने की शक्तियों को जागृत करती है तथा स्त्री सम्बन्धी रोगों का शमन करती है।

50. जौ-फ्यूदौ-इन् मुद्रा

यह मुद्रा पूर्ववत गर्भधातु मण्डल से सम्बन्धित क्रियाओं के दौरान की जाती है। इसकी रचना युगल हाथों से इस प्रकार होती है–

विधि

हथेलियाँ मध्यभाग की तरफ, अंगूठे हथेली में मुड़े हुए, मध्यमा और अनामिका अंगूठे के ऊपर मुड़ी हुई, तर्जनी और कनिष्ठिका पहले एवं दूसरे जोड़ पर मुड़ी हुई एवं अपने प्रतिरूप का स्पर्श करती हुई रहें इस भाँति जौ-फ्युदौ-इन् मुद्रा बनती है।[54]

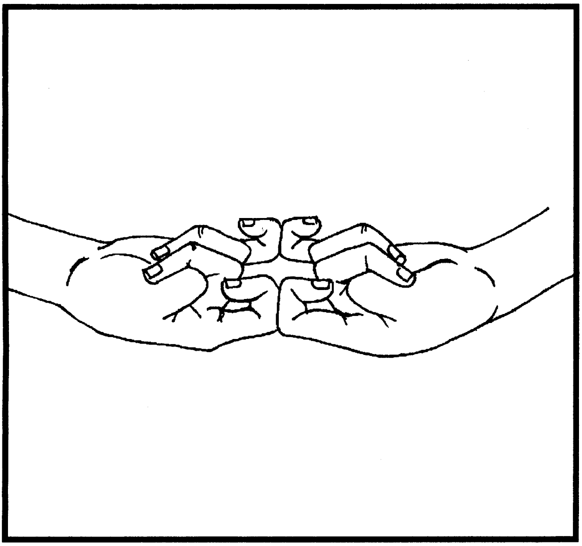

जौ-फ्यूदौ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं आकाश तत्त्व को संतुलित कर हृदय एवं रक्त सम्बन्धी विकारों को दूर करती है। शारीरिक रूक्षता, हार्ट अटैक, लकवा, मूर्च्छा आदि रोगों का निवारण करती है।

• स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा पेट के पर्दे के नीचे स्थित सभी अवयवों के कार्य का नियमन करती है। जल और फॉस्फोरस को नियंत्रित करते हुए यौन हार्मोन उत्पन्न करती है।

• कामग्रंथियों को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा मासिक स्राव का संतुलन तथा मज्जा, कोष, मांस,हड्डियाँ, बोन-मेरो, ज्ञान तंतुओं का नियमन करती है।

51. जौ-इन् मुद्रा

इसे जापान में 'जौ-इन्', चीन में 'तिंग्-यिन्' भारत में ध्यान, ध्यानहस्त, समाधि मुद्रा, थायलैण्ड में 'पेंग्-फ्र-नंग्', तिब्बत में 'ब्स्म-ग्तन्-फ्याग्-ग्र्या' कहते हैं। दर्शाये चित्र के आधार पर यह ध्यान मुद्रा के समान है। जापान की बौद्ध परम्परा में प्रस्तुत मुद्रा के आठ प्रकारान्तर प्रचलित हैं। उनका सामान्य वर्णन निम्न हैं–

प्रथम विधि

दायीं हथेली को बायीं हथेली के ऊपर रखने से जौ-इन् मुद्रा का प्रथम प्रकार बनता है।[55]

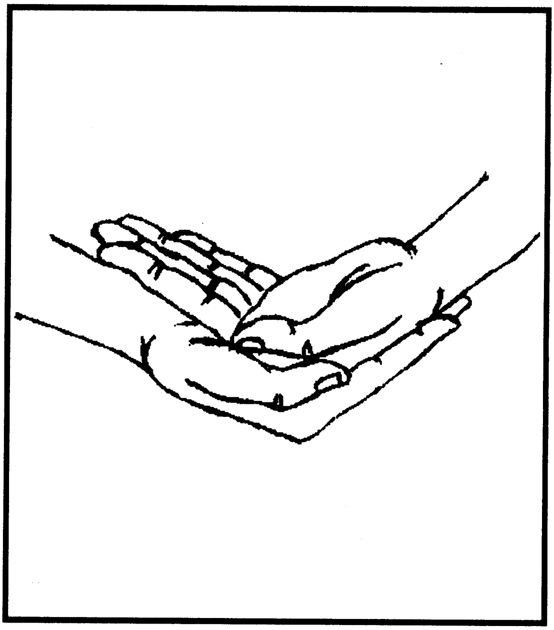

जौ-इन् मुद्रा-1

सुपरिणाम

• अग्नि तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा देहस्थ अग्नि को प्रदीप्त कर पाचन संस्थान को मजबूत एवं सुचारू बनाती है। • तैजस केन्द्र को सक्रिय कर यह मुद्रा वृत्ति शमन और शक्ति संचय करते हुए ईर्ष्या, घृणा, द्वेष, क्रोध, संघर्ष, भय आदि का नाश करती है।

द्वितीय विधि

'जौ-इन्' मुद्रा का यह प्रकार भी पूर्ववत कई नामों से जाना जाता है। यह संयुक्त मुद्रा है। इसमें हथेलियाँ ऊपर की ओर अभिमुख, अंगुलियाँ और अंगूठे सीधे फैलाये हुए तथा दायां हाथ बायें हाथ के ऊपर 45^0 का कोण बनाते हुए रहता है।[56]

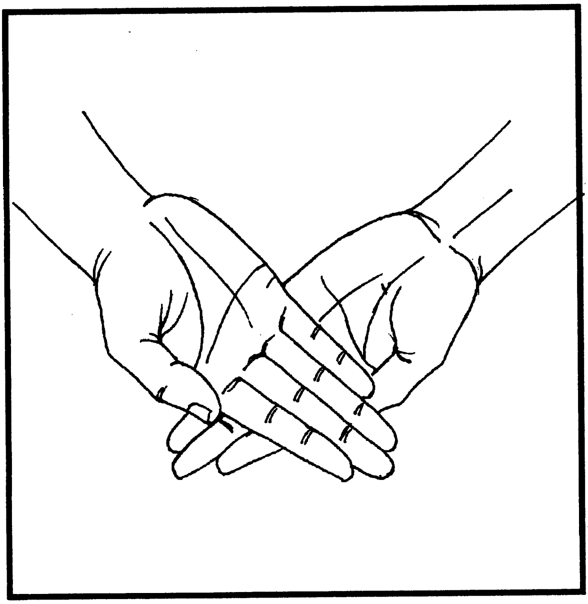

जौ-इन् मुद्रा-2

सुपरिणाम

• जौ-इन् मुद्रा की साधना अनाहत एवं मणिपुर चक्र को सक्रिय करती है। इससे हृदय रोग, श्वास-विकार, रक्त विकार, पाचन गड़बड़ी आदि से राहत मिलती है। • वायु एवं अग्नि तत्त्व का नियमन करते हुए यह मुद्रा शरीर के

तापमान को नियंत्रित तथा अंगों को सक्रिय रखती है। शारीरिक विकास के संरक्षक एवं सहकारी बल को उत्पन्न करती है। तथा मांस, चरबी, अस्थि आदि के निर्माण में सहायता करती है। तैजस एवं आनंद केन्द्र को संतुलित करते हुए यह मुद्रा काम वासना को नियंत्रित करती है और भावधारा को निर्मल एवं परिष्कृत करती है।

तृतीय विधि

इस तीसरे प्रकार में बायां हाथ दायें हाथ के ऊपर रहता है शेष विधि पूर्व मुद्रा के समान है।[57]

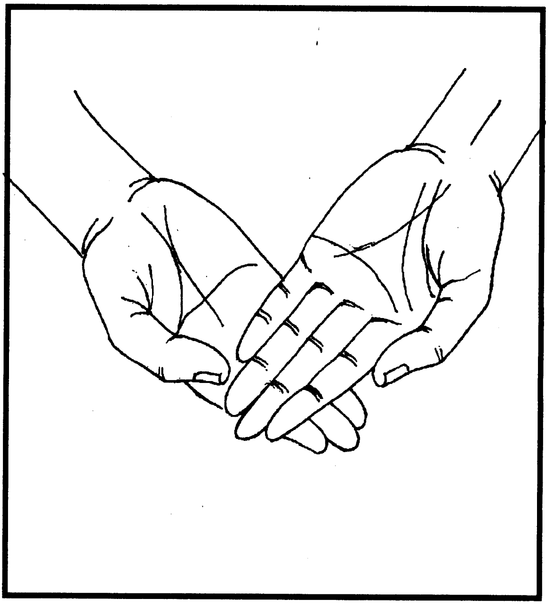

जौ-इन् मुद्रा-3

सुपरिणाम

• अग्नि एवं जल तत्त्व को संतुलित कर यह मुद्रा शरीर में हो रहे रासायनिक परिवर्त्तनों को नियंत्रित कर व्यक्तित्व को संतुलित एवं विकसित करती है। शरीर कान्तियुक्त, स्निग्ध एवं ओजस्वी बनता है। • मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को संतुलित कर यह मुद्रा नाभि चक्र को यथास्थान स्थित कर, सृजन, पालन एवं निधन में समर्थ बनाती है। पाचन तंत्र को मजबूत करती है।

एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह मुद्रा पित्ताशय, लीवर, प्राणवायु, बी.पी. आदि का संतुलन करती है।

चतुर्थ विधि

इस चौथे प्रकार में दायां हाथ बायें हाथ के ऊपर रहता है तथा अंगूठे 45^0 ऊपर उठे हुए और एक-दूसरे के अग्रभाग को स्पर्श करते हुए रहते हैं।[58]

शेष वर्णन पूर्ववत।

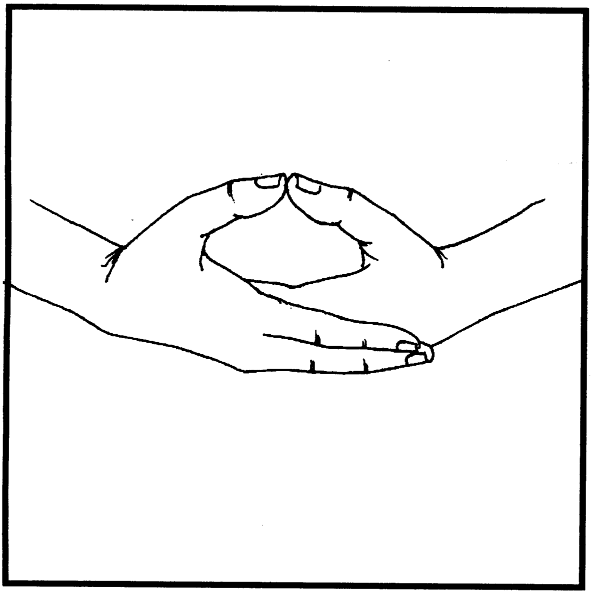

जी-इन् मुद्रा-4

सुपरिणाम

• वायु एवं आकाश तत्त्व का नियंत्रण कर यह मुद्रा विजातीय द्रव्यों का निष्कासन करती है। शरीर को तंदुरुस्त, बलशाली एवं सुदृढ़ बनाती है तथा छाती, फेफड़ें और हृदय सम्बन्धी रोगों का उपशमन करती है। • अनाहत एवं सहस्रार चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा मस्तिष्क में मेरूजल का संचालन, कामेच्छाओं का नियमन एवं बालकों के विकास में सहयोगी बनती है। • थायमस एवं पिनियल ग्रंथि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा साधक में अनेक दिव्य गुणों को प्रकट कर महान व्यक्तित्व का सिंचन करती है।

पंचम विधि

पाँचवें प्रकार में बायां हाथ दायें हाथ के ऊपर रहता है तथा अंगूठे 45^0 ऊपर उठे हुए और एक-दूसरे के अग्रभाग को स्पर्श करते हुए रहते हैं।[59]

शेष वर्णन पूर्ववत।

षष्ठम् विधि

इस छठवें प्रकार में तर्जनी के प्रथम एवं द्वितीय पोर पृष्ठ भाग से स्पर्श करते हुए एवं ऊपर उठे हुए रहते हैं, अंगूठों के अग्रभाग तर्जनी के अग्रभाग से स्पर्शित रहते हैं तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका फैलाई हुई एवं गोद में धारण की हुई रहती है।[60]

शेष वर्णन पूर्ववत।

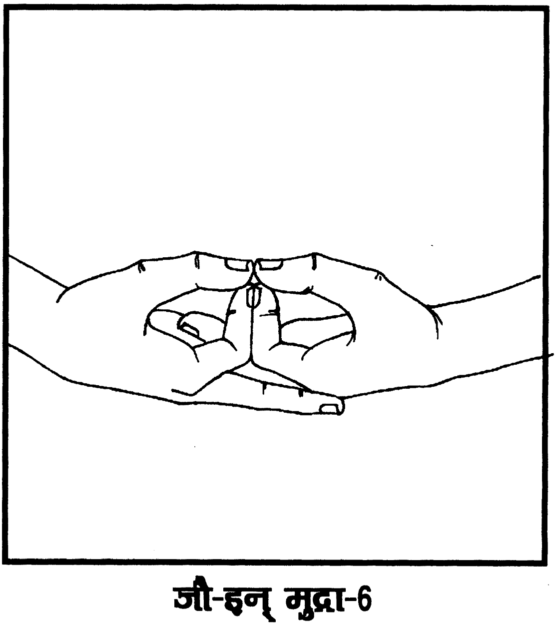

जी-इन् मुद्रा-6

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग वायु एवं आकाश तत्त्व का संतुलन करते हुए हृदय रुधिराभिसंचरण, शारीरिक संतुलन तथा हार्ट अटैक, लकवा आदि रोगों का निवारण करता है। • आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र का जागरण करते हुए यह मुद्रा व्यक्ति को ज्ञानी, पंडित, कवि, शान्तचित, निरोगी, शोकहीन एवं दीर्घ जीवी

बनाकर बुद्धि एवं मन को एकाग्र बनाती है। • विशुद्धि एवं दर्शन केन्द्र को प्रभावित कर यह मुद्रा शारीरिक विकास, चयापचय पाचन एवं आध्यात्मिक उत्थान में सहयोगी बनती है।

सप्तम विधि

इस सातवें प्रकार में मध्यमा के प्रथम एवं द्वितीय पोर पृष्ठ भाग से स्पर्श करते हुए एवं ऊपर उठे हुए रहते हैं। शेष विधि षष्ठम प्रकार के समान जाननी चाहिए।[61]

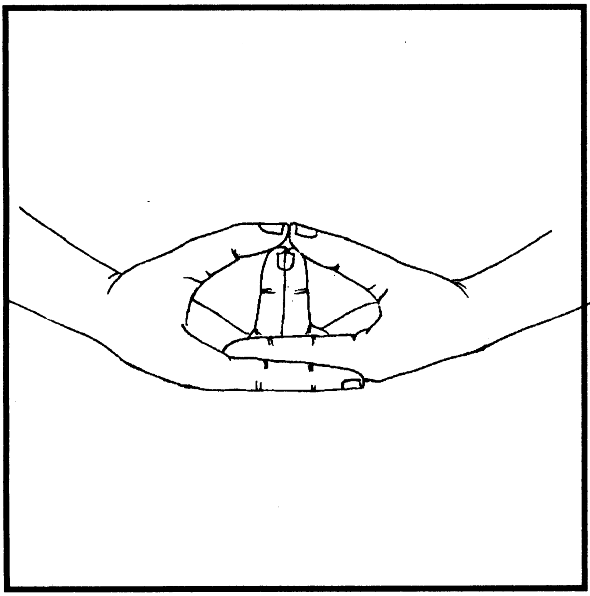

जी-इन् मुद्रा-7

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं जल तत्त्व का संतुलन करते हुए शरीर को तेजस्वी, कान्तियुक्त एवं बलशाली बनाती है। • मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा नाभिचक्र की शक्ति में वर्धन एवं संतुलन तथा शरीरस्थ रक्त, जल, सोडियम आदि का नियंत्रण कर कार्य शक्ति का विकास करती है। • एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार इस मुद्रा के प्रयोग से रक्तचाप (B.P.), पित्त, एसिडिटी, प्राणवायु, रक्त, शर्करा एवं गर्मी का संतुलन एवं नियमन होता है।

अष्टम विधि

इस आठवें प्रकार में अनामिका के प्रथम एवं द्वितीय पोर पृष्ठ भाग से स्पर्श करते हुए एवं ऊपर उठे हुए रहते हैं। शेष विधि षष्ठम प्रकार के समान जाननी चाहिए।[62]

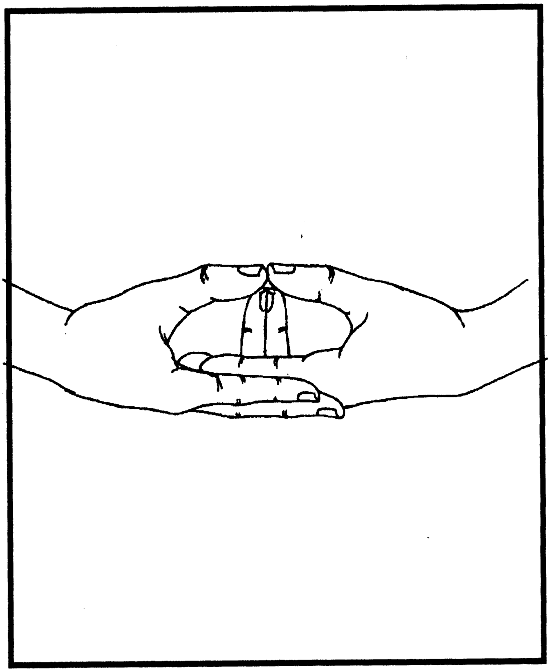

जी-इन् मुद्रा-8

सुपरिणाम

• अग्नि एवं वायु तत्त्व के संयोग एवं संतुलन से वायु सम्बन्धी विकार-वायुशूल, एसिडिटी, सन्धिवात, जोड़ों का दर्द आदि समाप्त होते हैं। • मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र को जागृत कर यह मुद्रा मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस,पाचन विकृति, उग्रता, कषाय आदि का निवारण करती है। थायरॉइड पेराथायरॉइड, एड्रिनल एवं पेन्क्रियाज के स्राव का नियमन कर सुकतान (Rickets), हिचकी, दाँतों की तकलीफ, स्नायुओं की मोच, सिरदर्द, उल्टी, एसिडिटी, शराब की लत आदि को नियंत्रित करती है।

52. जु-नि-कुशि-जि-शिन्-इन् मुद्रा

भारत में इस मुद्रा का नाम महाबंध मुद्रा है। प्रायोगिक दृष्टि से यह मुद्रा जापान देश के बौद्धधर्मी परम्परा में धारण की जाती है। विद्वद् लेखकों के अनुसार यह सम्पूर्ण शरीर के पवित्रीकरण की मुद्रा है।

विधि

हथेलियों को अधोमुख करते हुए अंगूठे और कनिष्ठिका के अग्रभागों को आपस में मिलायें, तर्जनी और मध्यमा को प्रतिपक्षी हाथ के पृष्ठ भाग पर रखें, अनामिका को दूसरे जोड़ से नीचे की तरफ झुकायें एवं पहले-दूसरे जोड़ को पृष्ठ भाग से मिलायें इस भाँति उपरोक्त मुद्रा बनती है।[63]

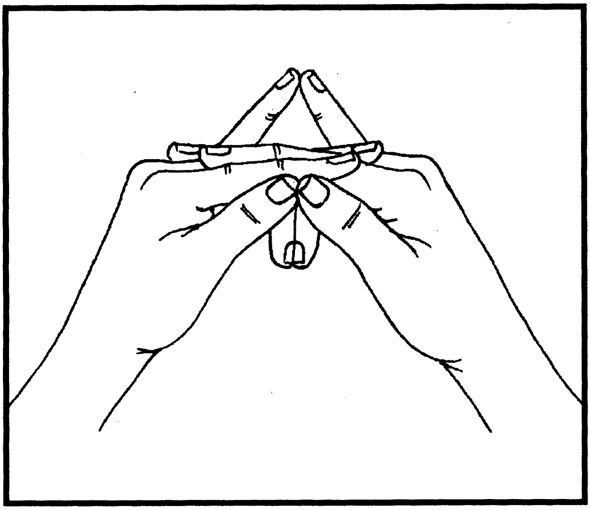

जु-नि-कुशि-जि-शिन्-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा करने से शरीरस्थ अग्नि एवं जल तत्त्व संतुलित होते हैं। यह एनिमिया, पीलिया, पाचन, दृष्टि कमजोरी, मोतियाबिंद, एसिडिटी आदि की तकलीफों का निवारण करती है। • मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को सक्रिय करते हुए कब्ज, अपच आदि रोगों का भी निवारण करती है। • तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र को प्रभावित कर यह मुद्रा शरीर, मन और भावनाओं को स्वस्थ बनाती है तथा शारीरिक ऊर्जा एवं जैविक विद्युत का संचय करती है।

53. कै-मोन्-इन् मुद्रा

गर्भधातुमण्डल-वज्रधातुमण्डल आदि धार्मिक क्रियाओं से सम्बन्धित यह मुद्रा मण्डल (यन्त्र) का दरवाजा खोलने की सूचक है। इसमें दोनों हाथों में समान मुद्रा इस प्रकार की जाती है–

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में बाहर की ओर रखें, पश्चात मध्यमा और अनामिका को हथेलियों में मोड़कर अंगूठों को उनके ऊपर झुकायें, तर्जनी को फैलाकर एक-दूसरे के अग्रभागों का स्पर्श करवायें तथा कनिष्ठिका को ऊपरी दो जोड़ों से झुकाते हुए एक-दूसरे में अटका देने पर 'कै-मोन्-इन्' मुद्रा बनती है।[64]

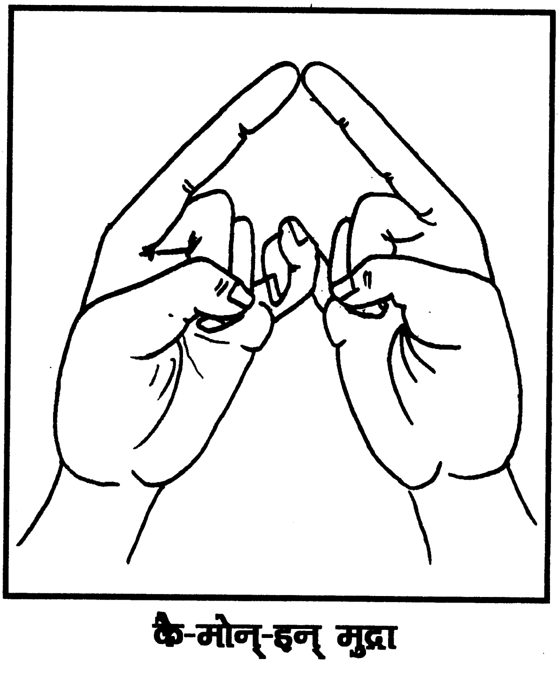

कै-मोन्-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र को प्रभावित करती है। इससे साधक कांतिवान, तेजस्वी, उदार एवं निर्मल बनता है। वाणी प्रखर एवं व्यक्ति प्रभावी बनता है। • जल एवं वायु तत्त्व को नियंत्रित करने में यह मुद्रा विशेष उपयोगी है। यह स्मरण शक्ति की नजाकत एवं क्षमता का पोषण करती है तथा मल-मूत्र, रक्त, हृदय, श्वसन आदि की समस्याओं को नियंत्रित रखती है।

• एड्रिनल, पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि के स्राव को संतुलित करते हुए यह शरीर को सभी प्रकार की एलर्जी एवं रोगों से बचाती है और शरीर में आवश्यक दवा रूप रसायनों का निर्माण करती है।

54. कै-शिन्-इन् मुद्रा

जापानी बौद्ध परम्परा में स्वीकृत एवं गर्भधातु मण्डल आदि धार्मिक कृत्यों के समय अनुचरित उपर्युक्त मुद्रा भक्त के श्रद्धा जागृति की सूचक है। इसकी विधि निम्न है–

विधि

हथेलियों को नीचे की ओर करते हुए अंगुलियों को थोड़ी सी दूर मध्यभाग की तरफ करें तथा अंगुलियों और अंगूठों के अग्रभाग को अन्तर्ग्रथित कर देने पर 'कै-शिन्-इन्' मुद्रा बनती है।[65]

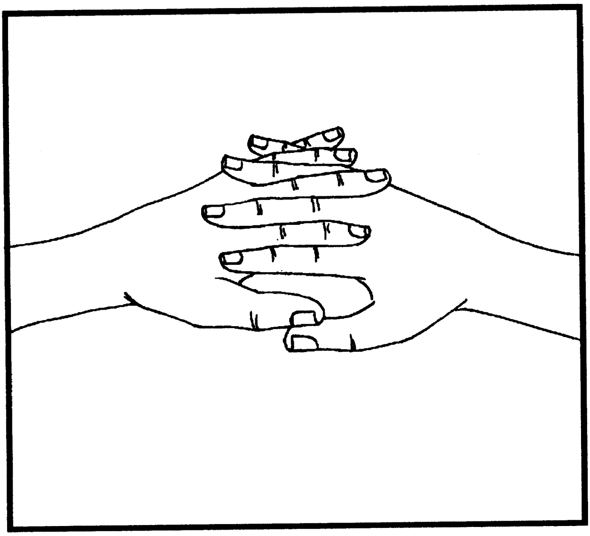

कै-शिन्-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• आकाश एवं वायु तत्त्व का नियमन कर यह मुद्रा प्राणवायु को स्थिर तथा फेफड़ें, हृदय और गुर्दे की कार्यशक्ति को विशेष प्रभावित करती है।
• विशुद्धि एवं आज्ञा चक्र का जागरण कर यह मुद्रा शरीर के तापमान, कैल्शियम, वायु, फेफड़ें और हृदय का नियमन करती है, शक्ति उत्पादन का

कार्य करती है और ज्ञान तंतुओं को बल प्रदान करती है। • एक्युप्रेशर चिकित्सा के अनुसार व्यक्ति के समग्र विकास, बालकों के चारित्रिक विकास एवं आध्यात्मिक चेतना के जागरण में यह मुद्रा विशेष सहायक बनती है।

55. काजि-कौ-सुइ-इन् मुद्रा

यह मुद्रा सुगंधित जल को पवित्र करने, उसे समर्पित करने या अभिषेक करने के उद्देश्य से की जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत। यह एक हाथ से की जाने वाली मुद्रा है। इसमें दायें हाथ में पद्म मुष्टि बनाई जाती है और उसमें एक भुजा वाला वज्र धारण किया जाता है।[66]

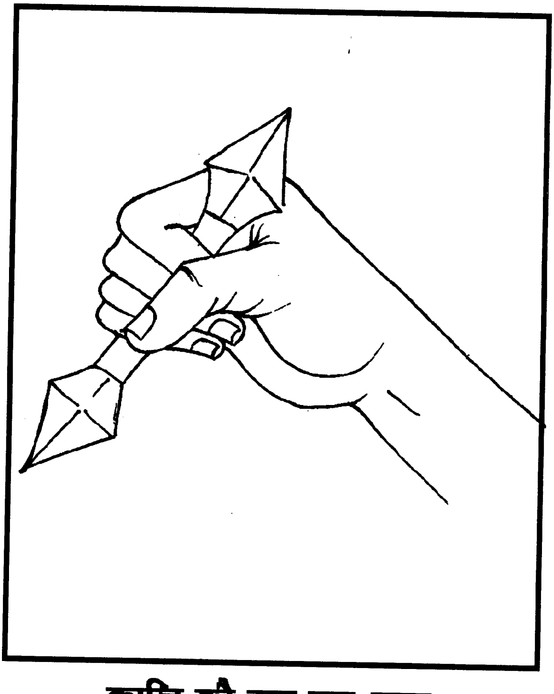

काजि-कौ-सुइ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग अग्नि, पृथ्वी एवं जल तत्त्वों को संतुलित करता है। यह शरीरस्थ रासायनिक परिवर्तनों को नियंत्रित करती है, व्यक्तित्व विकास में सहायक बनती है और शरीर को बलशाली, तंदुरूस्त एवं सुंदर बनाती है। • मणिपुर, मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को प्रभावित कर शारीरिक स्वस्थता,

दीर्घ जीवन, अतिन्द्रिय शक्तियों का विकास एवं वचन सिद्धि प्राप्त करवाती है।
- शक्ति, स्वास्थ्य एवं तैजस केन्द्र को सक्रिय कर यह मुद्रा काम वासनाओं पर नियंत्रण, क्रोध आदि पर नियंत्रण तथा आंतरिक आनंद एवं शांति की अनुभूति करवाती है।

56. कवच मुद्रा-1

भारत में यह मुद्रा कवच और काय कवच दोनों नामों से मानी जाती है। कवच रक्षा का प्रतीक है अत: यह मुद्रा धार्मिक ज्ञान के संरक्षण और उसे स्वीकारने की सूचक है। यह पूर्ववत गर्भधातु मण्डल आदि धार्मिक कृत्यों के प्रसंग पर दर्शायी जाती है। दोनों हाथों में समान मुद्रा बनती है।

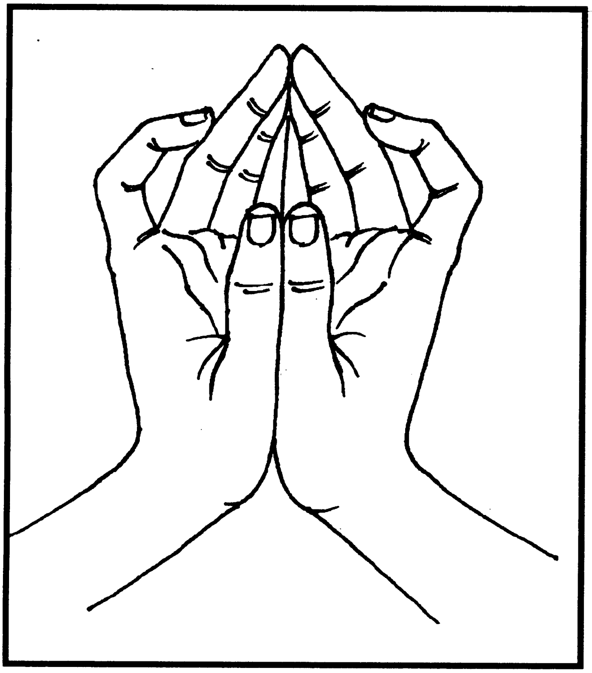

कवच मुद्रा-1

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखें, अंगूठों को बाह्य किनारियों से मिलायें, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को ऊर्ध्व प्रसारित कर उनके अग्रभागों को योजित करें तथा तर्जनी को हल्की सी झुकायी हुई रखने पर कवच मुद्रा बनती है।[67]

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग अग्नि एवं वायु तत्त्व का नियमन करते हुए कुपित वायु, गठिया, साइटिका, वायुशूल, लकवा आदि रोगों का निवारण करता है।
• मणिपुर एवं अनाहत चक्र को जागृत कर यह मुद्रा शरीरस्थ रक्त, शर्करा, जल, सोडियम आदि का नियंत्रण एवं तनाव का शमन कर शक्ति उत्पादन करती है। इससे वक्तृत्व, कवित्व, इन्द्रिय निग्रह आदि गुणों का वर्धन होता है।
• थायमस एवं एड्रिनल ग्रंथि के स्राव को संतुलित कर आत्म शक्ति का विकास करती है।

57. कवच मुद्रा-2

कवच मुद्रा का दूसरा प्रकार भी जापान देश की बौद्ध सम्प्रदाय में स्वीकृत है। यह पूर्ववत संरक्षण की सूचक है और दोनों हाथों से की जाती है।

विधि

इसमें हथेलियाँ मध्यभाग की तरफ, अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका ऊपर की ओर तथा अनामिका अपने प्रतिरूप अग्रभाग का स्पर्श करती हुई रहती है।[68]

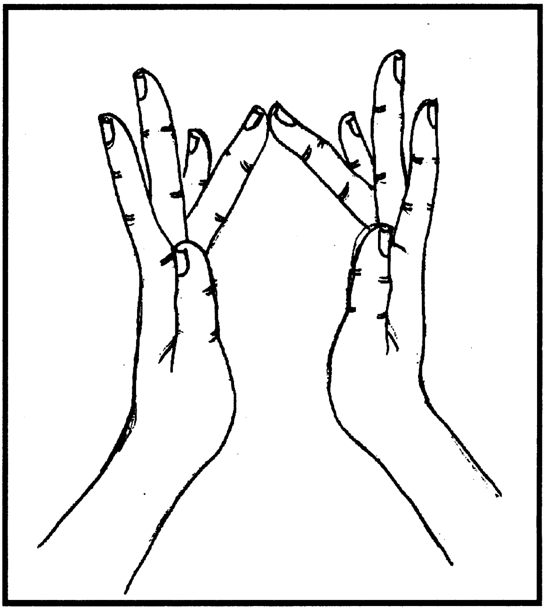

कवच मुद्रा-2

सुपरिणाम

चक्र— मूलाधार एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व**— पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि**— प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र**— शक्ति एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**— मेरुदण्ड, गुर्दे, पैर, स्नायु तंत्र एवं निचला मस्तिष्क।

58. कयेन शौ-इन् मुद्रा

गर्भधातुमण्डल, वज्रधातुमण्डल, होम आदि धार्मिक क्रियाओं के निमित्त की जाने वाली यह मुद्रा अग्नि या ज्वाला की प्रतीक है जो सभी अशुद्धियों का नाश कर देती है। इसकी विधि यह है—

विधि

दोनों हथेलियों को सामने की ओर अभिमुख कर अंगूठों को हथेली के भीतर मोड़ें, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को अंगूठे के ऊपर मोड़ें तथा तर्जनी को आगे की ओर फैलाकर उनके अग्रभागों को संयुक्त करने पर 'कयेन-शौ-इन्' मुद्रा बनती है।

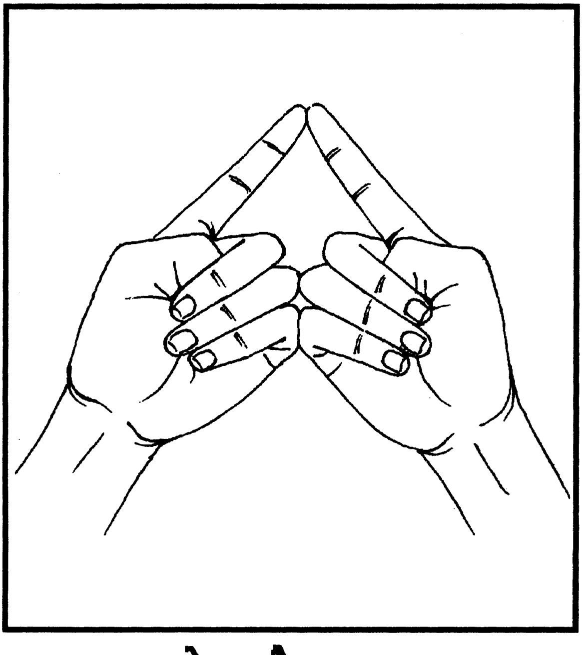

कयेन-शौ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• आकाश तत्त्व का नियमन कर यह मुद्रा शरीरस्थ विषद्रव्य एवं विजातीय तत्त्वों का निकास करती है और भावधारा को निर्मल बनाती है। • इस मुद्रा के प्रयोग से सहस्रार एवं आज्ञा चक्र का जागरण होता है। • ज्ञान एवं दर्शन केन्द्र को प्रभावित कर यह मुद्रा इन्द्रिय संवेदनाओं की अनुभूति, प्राग्-अवबोध, अतिन्द्रिय ज्ञान को प्रकट करती है।

59. के-बोसत्सु इन् मुद्रा

यह संयुक्त मुद्रा पुष्पपूजा की सूचक कही गई है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

उभय हथेलियों को ऊर्ध्वाभिमुख करते हुए अंगुलियों को मध्यभाग की ओर फैलायें तथा किंचित झुकाने एवं अंगुलियों को समीप करने पर 'के-बोसत्सु-इन्' मुद्रा बनती है।[70]

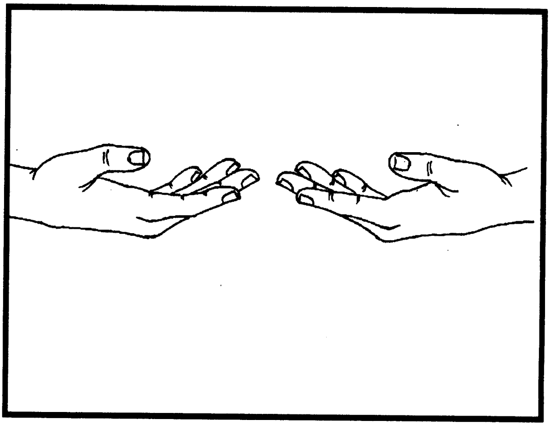

के-बोसत्सु-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा वायु तत्त्व को संतुलित रखती है। इससे हृदय में रक्त अभिसंचरण, श्वसन, मल-मूत्र आदि का नियमन होता है। • अनाहत एवं विशुद्धि चक्र के संप्रभावित होने से आन्तरिक ज्ञान, कवित्व, वक्तृत्व आदि कलाओं का जागरण, हृदयरोग पर नियंत्रण, शोकहीन जीवन एवं शान्तचित्त की प्राप्ति होती है। • एक्युप्रेशर प्रणाली के अनुसार इस मुद्रा के प्रयोग से बालकों

में रोग-प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास, चारित्रिक गठन, असत प्रवृत्तियों का उन्मूलन आदि होता है। शरीरस्थ कैल्शियम, आयोडीन, कोलेस्ट्राल आदि का संतुलन होता है तथा चित्त धैर्यशील एवं स्थिर बनता है।

60. खड्ग मुद्रा

मुद्रा शास्त्र की परम्परा में खड्ग मुद्रा के अनेक प्रकार हैं उनमें से तीन जापानी बौद्ध परम्परा में प्रचलित हैं। ये त्रिविध मुद्राएँ गर्भधातु मण्डल-होम आदि के समय ही धारण की जाती है। खड्ग अर्थात तलवार। तलवार सुरक्षा का प्रतीक है अत: यह धर्मशत्रुओं से संरक्षण की सूचक मुद्राएँ हैं।

प्रथम विधि

इसमें अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली के भीतर मोड़ें, अंगूठा उन दोनों पर मुड़ा हुआ रहें, तर्जनी और मध्यमा को ऊर्ध्व प्रसरित करने पर खड्ग-1 मुद्रा बनती है।

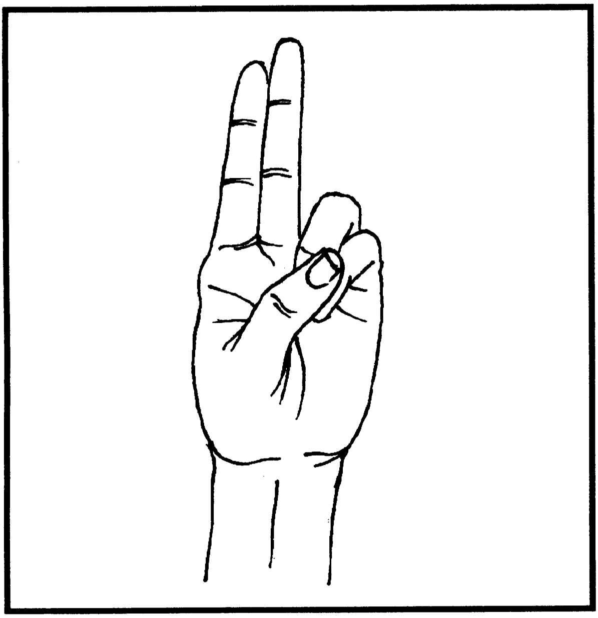

खड्ग मुद्रा-1

सुपरिणाम

- यह मुद्रा आकाश तत्त्व को प्रभावित करते हुए थायरॉइड, पेराथायरॉइड, टॉन्सिल्स, लार रस आदि पर नियंत्रण रखती है और मानसिक

चेतना का पोषण करती है। सहस्रार एवं आज्ञा चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा ग्रंथि तंत्र के संचालन में सहायक बनती हैं। मस्तिष्क में मेरूजल का संचालन एवं कामेच्छा का नियमन करती है तथा शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास में सहायक बनती है। • एक्युप्रेशर टेक्नॉलोजी के अनुसार यह मुद्रा निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति और देखने सुनने की शक्ति का नियमन करती है तथा अन्य ग्रंथियों के कार्य का भी संचालन करती है।

द्वितीय विधि

बायाँ हाथ मध्य भाग में, तर्जनी एवं मध्यमा ऊपर की तरफ, दायां हाथ बाहर की तरफ तथा मध्यमा एवं तर्जनी बाएँ हाथ के मुड़े हुए अंगूठे, कनिष्ठिका एवं अनामिका के भीतर डालने पर दूसरे प्रकार की खड्ग मुद्रा बनती है।

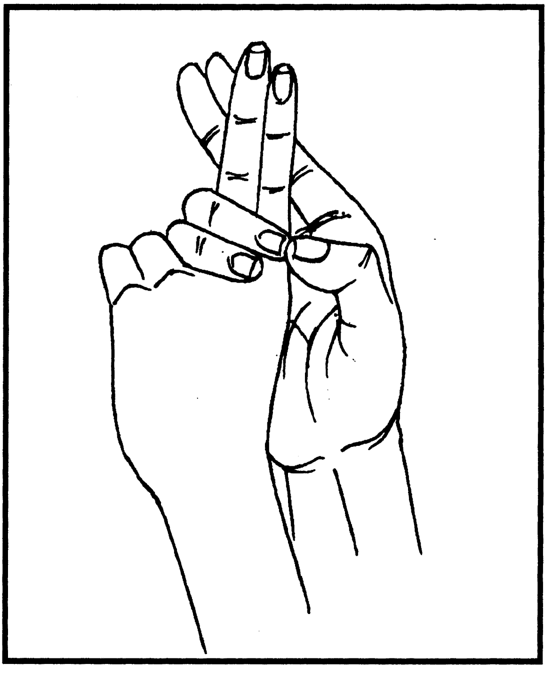

खड्ग मुद्रा-2

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के प्रयोग से वायु तत्त्व संतुलित रहता है। यह हृदय, फेफड़ें और गुर्दे के कार्यों का नियमन करते हुए प्राण वायु को स्थिर एवं स्मरण शक्ति

को विकसित करती है। • अनाहत एवं विशुद्धि चक्र का जागरण कर अनेक गुणों एवं कलाओं का विकास करती है। चित्त को शांत, काया को निरोगी एवं दीर्घ जीवन की प्राप्ति करवाती है। यह मुद्रा थायरॉइड एवं थायमस ग्रंथियों के स्राव का संतुलन कर घाव भरने, हड्डियों के विकास, समस्त शरीर के संचालन आदि में सहयोगी बनती है।

तृतीय विधि

खड्ग मुद्रा का तीसरा प्रकार महा वैरोचन का सूचक है। इसमें हथेलियों को मध्य भाग की ओर अभिमुख करें, अंगूठे एक-दूसरे से क्रॉस करते हुए रहें, तर्जनी मध्यमा के पृष्ठभाग को दबाते हुए रहें, मध्यमा प्रथम दो जोड़ों पर झुकती हुई प्रतिपक्षी अग्रभाग का स्पर्श करें तथा अनामिका और कनिष्ठिका अन्तर्ग्रथित होती हुई विरोधी हाथों के पृष्ठ भाग का स्पर्श करें तब खड्ग मुद्रा का तीसरा प्रकार बनता है।[73]

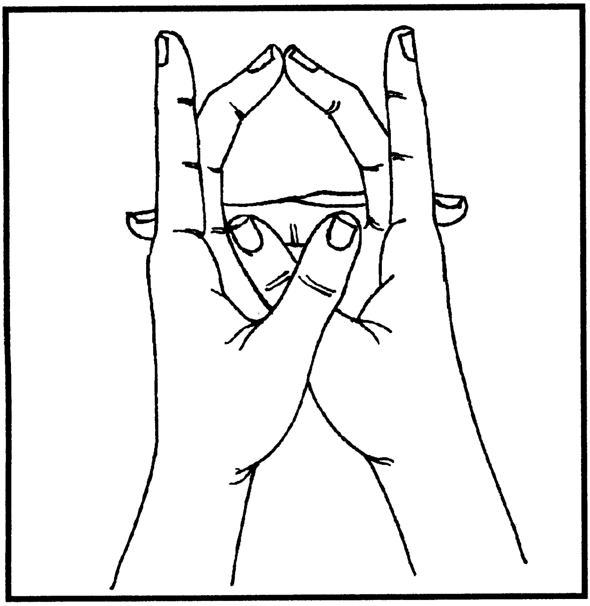

खड्ग मुद्रा-3

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं आकाश तत्त्व का संतुलन करती है। इससे शरीर-नाड़ी शोधन, पेट के विभिन्न अवयवों का क्षमता वर्धन होता है। • मणिपुर एवं आज्ञा चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा ऊर्जा का विधेयात्मक विकास,

मधुमेह, कब्ज, अपच, एसिडिटी आदि का निवारण कर बुद्धि को एकाग्र एवं कुशाग्र बनाती है। अतिन्द्रिय शक्ति का विकास करती है। • तैजस एवं दर्शन केन्द्र को प्रभावित कर यह मुद्रा विषय-कषायों का शमन करती है तथा असद् प्रवृत्तियों का निर्गमन कर सद्भावों का सर्जन करती है।

61. किम्बेइ-इन् मुद्रा

गर्भधातु मण्डल से सम्बन्धित यह मुद्रा करुणा दृष्टि अथवा सहानुभूति की सूचक है।

विधि

दायीं हथेली सामने की तरफ, तर्जनी और कनिष्ठिका हथेली के भीतर मुड़ी हुई, अंगूठा उन दोनों पर मुड़ा हुआ तथा मध्यमा और अनामिका सीधी रहने पर किम्बेइ-इन् मुद्रा बनती है।[74]

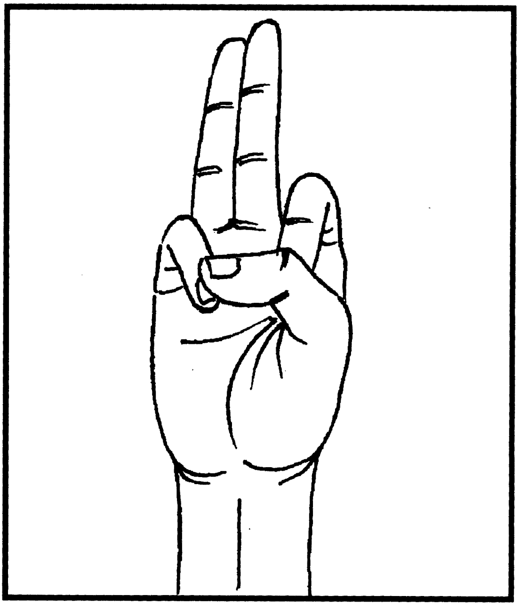

किम्बेइ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• जल एवं वायु तत्त्व का संतुलन कर यह मुद्रा हृदय, रक्त, मूत्र, लसिका, वीर्य, प्राण वायु सम्बन्धी रोगों का शमन करती है। शरीर को स्निग्ध, निरोगी एवं कान्तिमय बनाती है। • स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र का नियमन

कर यह मुद्रा अभ्यासी को महाज्ञानी, कवि, शान्तचित्त, निरोगी एवं दीर्घ जीवी बनाती है। • एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार सुकतान Rickets हिचकी, स्नायुतंत्र की मोच, चर्बी बढ़ने आदि में यह संतुलन का कार्य करती है तथा नाभि को यथास्थान स्थित करती है।

62. कौ-तकु मुद्रा

इस मुद्रा शब्द का सामान्य अर्थ है उत्तम प्रकाश। गर्भधातु मण्डल आदि धार्मिक क्रियाओं से अनुबन्धित यह मुद्रा त्रिशूल की सूचक है जो विघ्न, संकट आदि से रक्षा करती है।

विधि

दोनों हाथों में समान मुद्रा होती है। कनिष्ठिका और अंगूठे को हथेली के भीतर मोड़ें, अंगूठा-कनिष्ठिका के ऊपर रहें। तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को सीधी रखें। दायें हाथ की तीन अंगुलियाँ बायें हाथ की कोहनी के विपरीत रखें इस प्रकार 'कौ-तकु' मुद्रा बनती है।

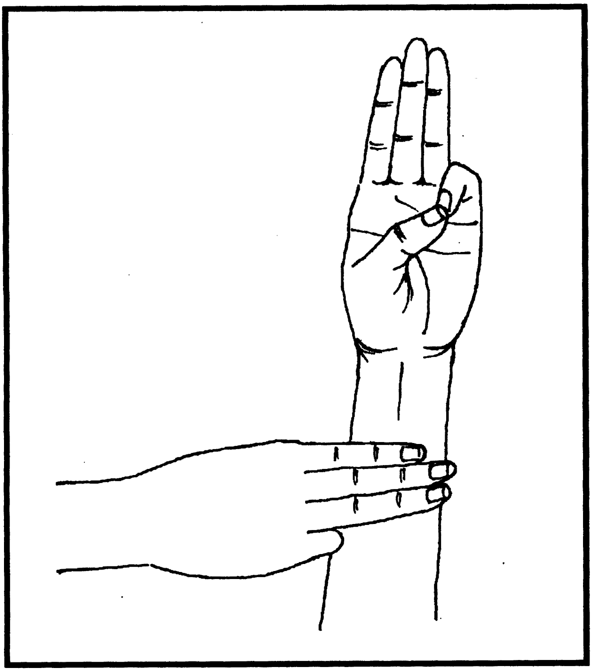

कौ-तकु मुद्रा

सुपरिणाम

• पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व में संतुलन स्थापित कर यह मुद्रा पाचन तंत्र, अस्थि तंत्र, मांसपेशी, शारीरिक संरचना का संतुलन बनाए रखती है। • मूलाधार एवं मणिपुर चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा शरीरस्थ जल, अग्नि, फॉस्फोरस, रक्त, शर्करा, सोडियम आदि का नियमन करती है और तनाव को नियंत्रित कर कार्य शक्ति का विकास करती है। • गोनाड्स एवं एड्रिनल को प्रभावित कर यह मुद्रा रक्तचाप, यकृत, लीवर, गोल ब्लडर, पाचक रस एवं पित्त का संतुलन करती है तथा मासिक धर्म आदि स्त्रित्व सम्बन्धी रोगों का निवारण भी करती है।

63. कोंगौ-रिन्-इन् मुद्रा

जापानी बौद्ध परम्परा में प्रचलित यह मुद्रा सत्य क्षमता की सूचक है। गर्भधातु मण्डल आदि धार्मिक कृत्यों में इसका बहुलता से उपयोग होता है।

विधि

दोनों हथेलियों को मध्य भाग में रखें, मध्यमा और अनामिका हथेली के ऊपर मुड़ी हुई, अंगूठा उन दोनों पर मुड़ा हुआ तथा तर्जनी और कनिष्ठिका प्रथम दो जोड़ों पर झुकी हुई एवं अपने प्रतिरूप से सटी हुई रहें तब 'कोंगौ-रिन्-इन्' मुद्रा बनती है।[76]

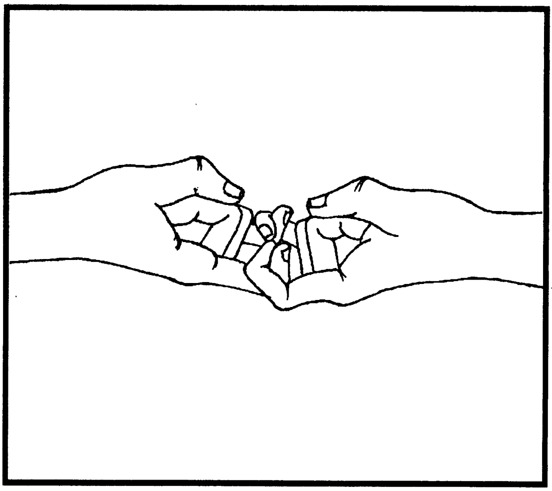

कोंगौ-रिन्-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं जल तत्त्व में संतुलन करती है। इससे शरीर जोशयुक्त, स्फूर्तिमय, ओजस्वी, कान्तियुक्त एवं शक्तिशाली बनता है। • मणिपुर एवं स्वाधिष्ठान चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा डायबिटीज, बी.पी., अपच, एसिडिटी, पाचन विकृतियों का निदान करती है। पेट के पर्दे के नीचे स्थित सभी अवयवों के कार्य का नियमन करती है। • तैजस एवं स्वास्थ्य केन्द्र को संतुलित कर यह मुद्रा शारीरिक ऊर्जा एवं जैविक विद्युत का संचय करती है तथा भावनाओं को स्वस्थ बनाती है।

64. लोचन मुद्रा

गर्भधातुमण्डल-वज्रधातुमण्डल से सम्बन्धित यह मुद्रा निम्न प्रकार से होती है–

विधि

हथेलियाँ मध्यभाग में, अंगूठे फैले हुए एवं बाह्य किनारियों से मिले हुए, तर्जनी फैली हुई एवं हल्की सी घुमी हुई, मध्यमा और अनामिका फैली हुई एवं अग्रभाग पर स्पर्श करती हुई तथा कनिष्ठिका सीधी रहने पर लोचन मुद्रा है।[77]

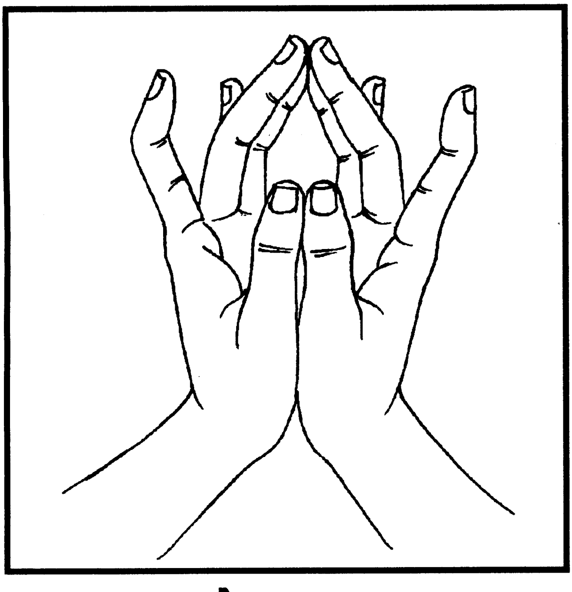

लोचन मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश एवं वायु तत्त्व का संतुलन करते हुए हृदय, गुर्दे, फेफड़ें आदि को स्वस्थ रखती है तथा विष द्रव्य एवं विजातीय तत्त्वों का शरीर से निकास करती है। • इस मुद्रा के प्रयोग से आज्ञा एवं अनाहत चक्र का जागरण होता है। यह मुख्य रूप से बालकों के विकास में सहयोगी बनती है। वायु एवं आकाश तत्त्व का नियमन कर शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास में सहायक बनती है। • एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार इस मुद्रा के प्रयोग से व्यक्ति बुद्धिशाली, प्रसिद्ध लेखक, कवि, वैज्ञानिक, तत्त्वज्ञानी एवं मानव जाति का प्रेमी बनता है।

65. महा आकाश गर्भ मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा गर्भधातु मण्डल आदि के सन्दर्भ में की जाती है। इस मुद्रा का अर्थ गोपनीय है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

युगल हथेलियों को समीप रखें। अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका

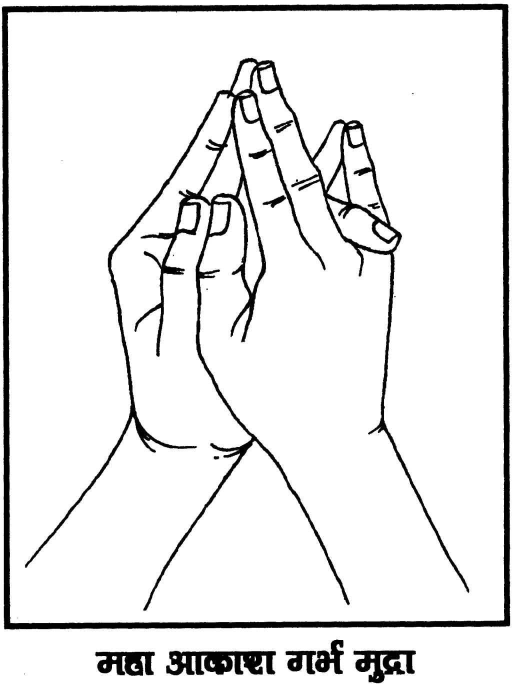

महा आकाश गर्भ मुद्रा

को ऊपर की ओर फैलाकर अग्रभागों का स्पर्श करवायें तथा अनामिका बाहर की ओर मुड़ी हुई रहने पर महा आकाश गर्भ मुद्रा बनती है।[78]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि तत्त्व का संतुलन कर शरीर में उष्णता, आहार पाचन, स्नायु तंत्र की स्थिति स्थापकता एवं चेहरे की सुंदरता में वर्धन करती है। • मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा दीर्घ जीवन प्रदान करती है। • एड्रिनल एवं थायरॉइड ग्रंथियों को प्रभावित कर यह मुद्रा रक्तचाप, पित्त, प्राणवायु,रक्त शर्करा, कैल्शियम एवं फॉस्फोरस आदि का संतुलन करती है।

66. महाज्ञान खड्ग मुद्रा

इस मुद्रा का सामान्य वर्णन पूर्ववत समझें।

विधि

दोनों हथेलियों को समीप कर अंगूठों को बाह्य किनारियों से मिलाते हुए सीधा रखें, तर्जनी को किंचित झुकाते हुए अग्रभागों का स्पर्श करवायें तथा शेष तीन अंगुलियाँ आपस में अग्रभाग पर अन्तर्ग्रथित रहने पर महाज्ञान खड्ग मुद्रा बनती है।[79]

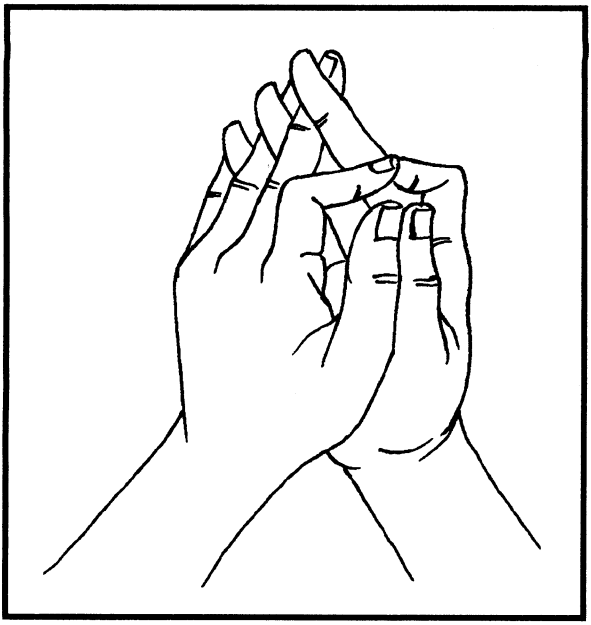

महा ज्ञान खड्ग मुद्रा

सुपरिणाम

• वायु एवं आकाश तत्त्व का संतुलन कर यह मुद्रा रुधिर अभिसंचरण, श्वसन क्रिया, मल-मूत्र की सम्यक गति में मदद करती है और हार्ट अटैक, लकवा, मूर्च्छा आदि रोगों का शमन करती है। • इस मुद्रा को धारण करने से अनाहत एवं सहस्रार चक्र प्रभावित होते है। आनंद एवं ज्ञान केन्द्र का जागरण कर यह मुद्रा कामवासनाओं का परिशोधन एवं अतिन्द्रिय ज्ञान का जागरण करती है।

67. महाकाल मुद्रा

यह मुद्रा महाकाल की सूचक है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

इस मुद्रा में हथेलियाँ मध्य भाग में, अंगूठा, तर्जनी और मध्यमा अन्दर की तरफ अन्तर्ग्रंथित तथा अनामिका और कनिष्ठिका सीधी रहती है।[80]

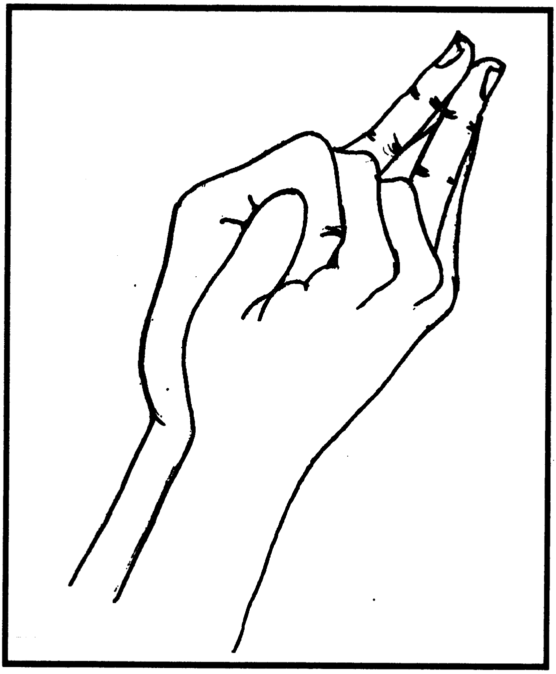

महाकाल मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र- आज्ञा, स्वाधिष्ठान एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व-** जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि-** पीयूष, प्रजनन एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र-** दर्शन, स्वास्थ्य एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग-** मस्तिष्क, आँख, स्नायु तंत्र, मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग आदि।

68. महाकर्म मुद्रा

इस मुद्रा का सामान्य वर्णन पूर्ववत।

विधि

इस मुद्रा में दोनों हथेलियाँ नीचे की तरफ, अंगूठा और कनिष्ठिका फैली हुई और अपने प्रतिरूप के अग्रभागों का स्पर्श करती हुई तथा शेष अंगुलियाँ बाहर से अन्तर्ग्रथित हुई रहती है।[81]

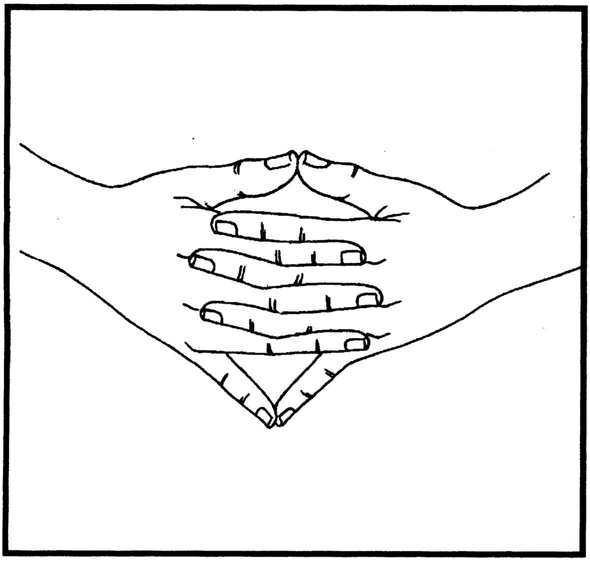

महाकर्म मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं वायु तत्त्व में संतुलन स्थापित करते हुए गैस संबंधी विकृतियों में तत्क्षण राहत देती है। मस्तिष्क स्नायु को शक्तिशाली एवं सिरदर्द-अनिद्रा आदि का उपशमन करती है। • मणिपुर एवं अनाहत चक्र को जागृत कर इन्द्रिय निग्रह, कवित्व, वक्तृत्व आदि गुणों का जागरण एवं हृदय रोग का

निवारण करती है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार शर्करा, पाचन संस्थान, रक्तचाप, रक्त परिभ्रमण, एसिडिटी आदि का संतुलन करती है।

69. मु-नो-शौ-शु-गौ-इन् मुद्रा

जापानी बौद्ध परम्परा एवं होमादि धार्मिक क्रियाओं से सम्बन्धित यह मुद्रा पापियों के बुराईयों के नाश की सूचक है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

बायीं हथेली बाहर की तरफ, अंगूठा भीतर मुड़ा हुआ, मध्यमा और अनामिका अंगूठे के ऊपर मुड़ी हुई, तर्जनी और कनिष्ठिका प्रथम दो जोड़ पर मुड़ी हुई एवं तीसरा पोर सीधा रहें। दायाँ अंगूठा हथेली के भीतर, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगूठे के ऊपर मुड़ी हुई तथा तर्जनी बाहर फैलती हुई बायें हाथ को इंगित करें तब उपर्युक्त मुद्रा बनती है।[82]

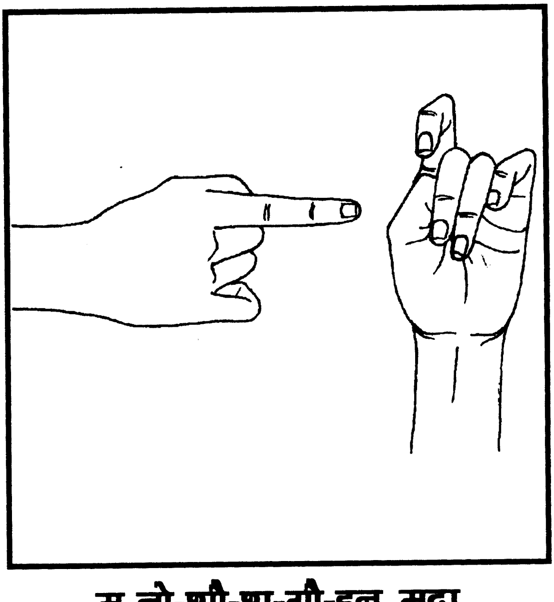

मु-नो-शौ-शु-गौ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग करने से शरीरस्थ आकाश तत्त्व नियंत्रित रहता है। यह हृदय रोग एवं तत्सम्बन्धी विकारों को दूर करती है और मन में अनहद आनंद की अनुभूति करवाती है। • सहस्रार एवं आज्ञा चक्र को जागृत कर यह

मुद्रा, अनिर्णयात्मक स्थिति का शमन कर असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति करवाती है तथा दिमाग को शांत रखती है। • पिच्युटरी एवं पिनियल ग्रंथि के स्राव को संतुलित कर यह मुद्रा आध्यात्मिक एवं भौतिक विकास में सहायक बनती है। शेष ग्रंथियों के कार्य संचालन में मदद करती है तथा अतिन्द्रिय ज्ञान को विकसित कर विशिष्ट शक्ति एवं गुणों को उत्पन्न करती है।

70. मुशोफुशि-इन् मुद्रा

प्रस्तुत मुद्रा जापान और चीन, दोनों स्थानों में समान रूप से धारण की जाती है। यह संयुक्त मुद्रा है जो तीन गूढ़ रहस्यों की एवं सृष्टि नियमों की सूचक है। शेष वर्णन पूर्ववत। इस मुद्रा के तीन प्रकारान्तर निम्न हैं–

प्रथम प्रकार

जिस मुद्रा में हथेलियाँ अंगूठे के तल वाले (गद्दी) स्थान से स्पर्श करती हुई, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका ऊपर की ओर फैलती एवं अग्रभागों का स्पर्श करती हुई तथा तर्जनी दूसरे जोड़ से झुकती एवं अंगूठों के अग्रभागों का स्पर्श करती हुई रहती है उसे 'मुशो फुशि-इन्' मुद्रा कहते हैं।[83]

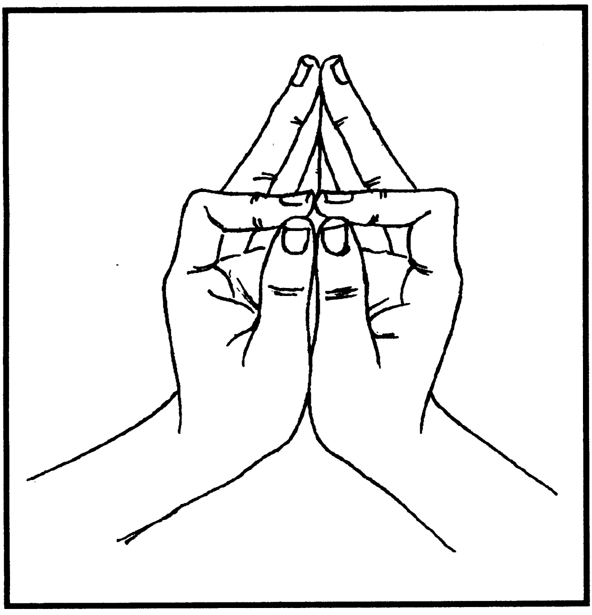

मुशो फुशि-इन् मुद्रा-1

सुपरिणाम

• यह मुद्रा वायु एवं आकाश तत्त्व का संतुलन करते हुए शरीरस्थ विष द्रव्य, विजातीय तत्त्व एवं विकृत भावों का परिहार करती है तथा हृदय, गुर्दे एवं फेफड़ें से सम्बन्धित समस्याओं का निराकरण करती है। • अनाहत एवं आज्ञा चक्र के जागरण में सहयोगी बनते हुए वक्तृत्व, कवित्व, इन्द्रिय निग्रह, प्रेम, करुणा, सेवा, सहानुभूति आदि का विकास करती है। चित्त को एकाग्र एवं बुद्धि को कुशाग्र बनाती है। • आनंद एवं दर्शन केन्द्र को सक्रिय करते हुए असंयम, उत्तेजना, क्रोधादि कषायों आदि का उपशमन करती है। भावों को निर्मल एवं परिष्कृत कर बाह्यजगत से अन्तर्जगत की ओर अभिमुख करती है।

द्वितीय प्रकार

दूसरे प्रकार में मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अग्रभागों पर अन्तर्ग्रथित हुई रहती है। शेष वर्णन पूर्व मुद्रा के समान है।[84]

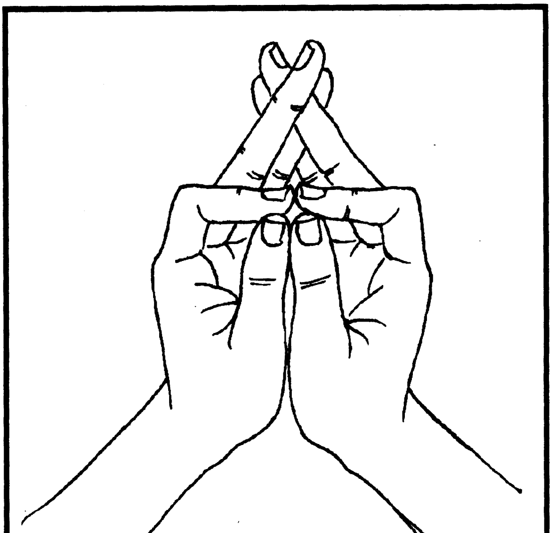

मुशो फुशि-इन् मुद्रा-2

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व को नियंत्रित करते हुए जठर, तिल्ली, यकृत, स्वादुपिंड, वीर्य, लसिका आदि के कार्यों का संतुलन करती है। पाचन

संस्थान को सक्रिय एवं स्वस्थ बनाती है। शरीर को ओजस्वी, कान्तियुक्त, बलशाली तथा स्वभाव को शांत, शीतल एवं फुर्तीला बनाती है। • मणिपुर एवं मूलाधार चक्र को जाग्रत कर अग्नि, जल, फॉस्फोरस, रक्त, शर्करा, सोडियम आदि तत्त्वों का नियमन करती है। • एड्रिनल एवं कामग्रंथियों के स्राव को संतुलित कर संचार व्यवस्था, श्वसनप्रणाली, रक्त परिभ्रमण आदि को नियंत्रित, प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास तथा स्त्रित्व सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण करती है।

तृतीय प्रकार

तीसरे प्रकार में मध्यमा अग्रभाग पर स्पर्श करती है तथा अनामिका और कनिष्ठिका हथेली के भीतर मुड़ी रहती है। शेष वर्णन पूर्व मुद्रा के समान है।[85]

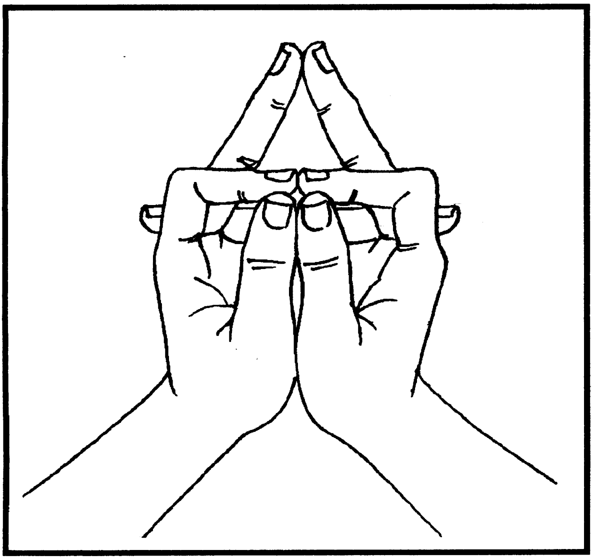

मुशो फुशि-इन् मुद्रा-3

सुपरिणाम

• यह मुद्रा वायु तत्त्व को प्रभावित करते हुए हृदय की रक्त अभिसंचरण क्रिया आदि का नियमन करती है। • अनाहत एवं विशुद्धि चक्र को जागृत कर शरीर के तापमान का नियंत्रण, देहस्थित वायु, कैल्शियम, फेफड़ें और हृदय का नियमन एवं शक्ति उत्पादन का कार्य करती है। • एक्युप्रेशर पद्धति के अनुसार बालकों के सर्वांगीण विकास, स्नायुओं की ऐंठन, हिचकी, कमजोरी, थकान, सुस्ती आदि का निवारण करती है।

71. नन्-कन्-निन्-इन् मुद्रा

यह संयुक्त मुद्रा मुश्किल एवं धैर्य की सूचक है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दोनों हथेलियों को समीप कर अंगूठों को स्पर्शित करते हुए ऊपर उठायें, तर्जनी को पहले-दूसरे जोड़ से मोड़कर अंगूठों के पीछे ले जायें, मध्यमा और कनिष्ठिका को ऊपर फैलाते हुए अपने प्रतिरूप अग्रभाग का स्पर्श करवायें तथा अनामिका अलग-अलग ऊर्ध्व प्रसरित रहें इस प्रकार 'नन्-कन्-निन्-इन्' मुद्रा बनती है।[86]

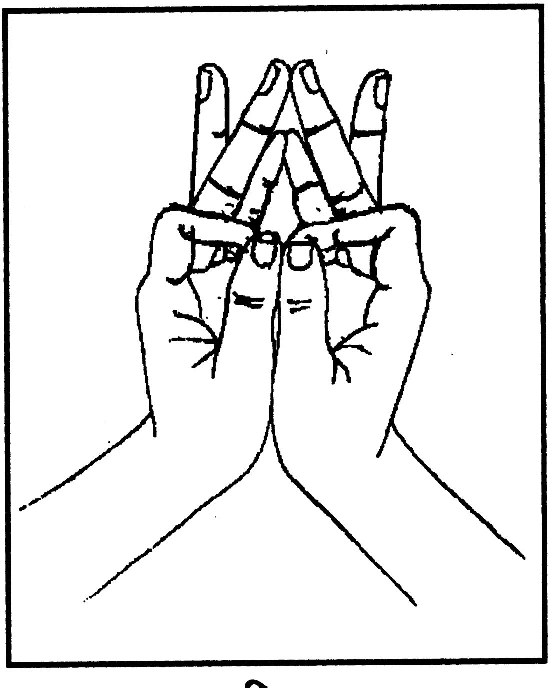

नन्-कन्-निन्-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा को धारण करने से आज्ञा, विशुद्धि एवं अनाहत चक्र के स्थान सक्रिय बनते हैं। यह विशिष्ट अतिन्द्रिय शक्तियों को जागृत करती है, अचेतन मन एवं चित्त संस्थान को प्रभावित करती है तथा कलात्मक उमंगे, रसानुभूति और कोमल संवेदनाओं को उत्पन्न करती है। • यह मुद्रा शरीरस्थ आकाश एवं वायु तत्त्व को संतुलित रखते हुए हृदय शुद्धि में सहायक बनती है। • विशुद्धि

एवं दर्शन केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा पूर्वाभास, अन्तर्दृष्टि एवं आन्तरिक दिव्यज्ञान को प्रकट करती है, कामवृत्तियों को अनुशासित करती है तथा चित्त की एकाग्रता बढ़ाती है।

72. न्योरै-होस्सौ-इन् मुद्रा

यह संयुक्त मुद्रा आनन्द और शन्ति प्राप्ति की सूचक हैं। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दोनों हथेलियों को समीप कर अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका को अन्दर की ओर अन्तर्ग्रथित करें तथा अनामिका को ऊर्ध्व मुखरित कर आपस में अग्रभागों का स्पर्श करवायें तब 'न्यारै-होस्सौ-इन्' मुद्रा बनती है।

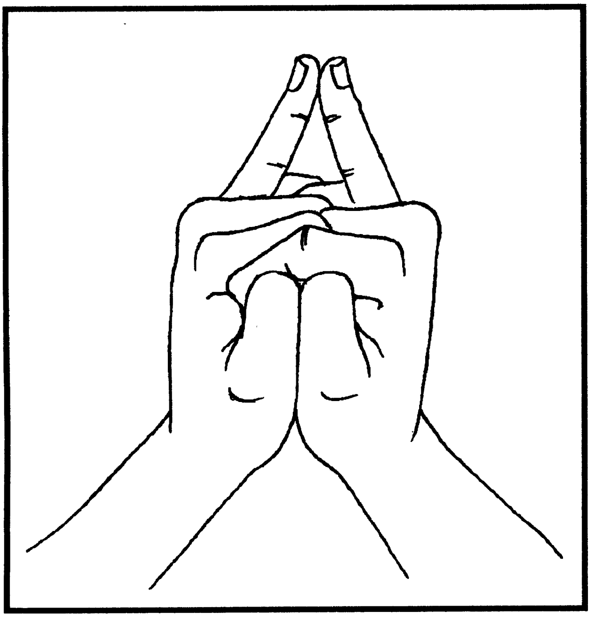

न्योरै-होस्सौ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग अग्नि एवं आकाश तत्त्वों का नियमन करते हुए शरीर-नाड़ी शोधन, उदर के अवयवों का शक्ति वर्धन, हृदय को शक्तिशाली एवं कब्ज को दूर करती है। • यह मुद्रा मणिपुर एवं आज्ञा चक्र को जागृत कर

अग्नि, वायु एवं आकाश तत्त्व का नियमन करती है। • एक्युप्रेशर चिकित्सा पद्धति के अनुसार रक्तचाप, एसिडिटी, रक्त, शर्करा, पित्ताशय, लीवर, प्राणवायु आदि में संतुलन बनाए रखती है। यह निर्णायक शक्ति, स्मरण शक्ति एवं देखने-सुनने की शक्ति में भी वर्धन करती है।

73. न्यारै-सकु-इन् मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा अनुकम्पा, करुणा या संवेदन की सूचक है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दोनों हथेलियों को समीप कर अंगूठा, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को अन्दर की तरफ अन्तर्ग्रथित करें तथा तर्जनी ऊपर उठी हुई और अग्रभागों का स्पर्श करती हुई रहें इस भाँति 'न्यारै-सकु-इन्' मुद्रा बनती है।[88]

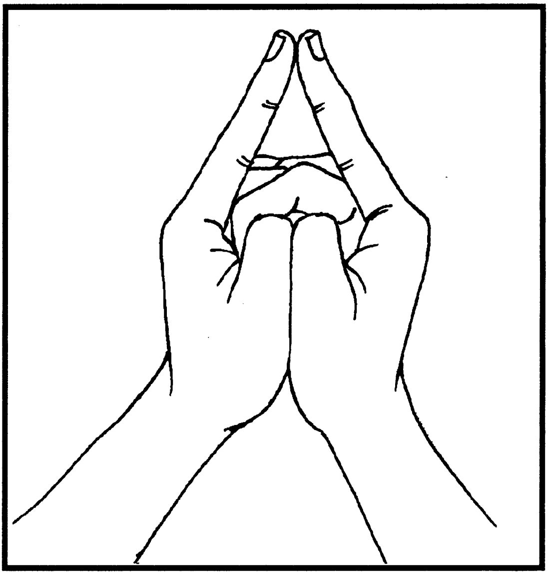

न्यारै-सकु-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा करने से वायु तत्त्व संतुलित रहता है। इससे हृदय, फेफड़ें और गुर्दे के कार्यों का नियमन होता है और शरीर का प्रमुख सहकारी एवं संरक्षक बल उत्पन्न होता है। • अनाहत एवं विशुद्धि चक्र का जागरण कर यह मुद्रा

वक्तृत्व, कवित्व आदि कलाओं का विकास करती है तथा प्रेम, करुणा, मैत्री, सेवा एवं सहानुभूति के भाव विकसित करती है। • आनंद एवं विशुद्धि केन्द्र को प्रभावित कर यह मुद्रा क्रोधादि कषाय भावों को नियंत्रित रखती है तथा उच्चतर चेतना एवं आत्मिक शक्तियों का विकास करती है।

74. न्यारै-शिन्- इन् मुद्रा

यह बुद्ध के परम ज्ञान उपलब्धि की सूचक मुद्रा है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

युगल हथेलियों को एक साथ करके अंगूठा, तर्जनी, अनामिका और कनिष्ठिका को भीतर की तरफ अन्तर्ग्रथित करें तथा मध्यमा को ऊर्ध्व मुखरित कर अग्रभागों का स्पर्श करवायें। इस भाँति 'न्यारै-शिन्-इन्' मुद्रा बनती है।[89]

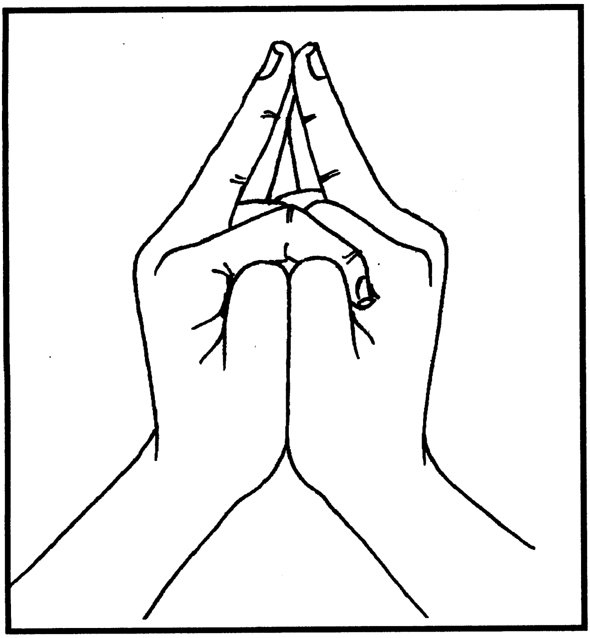

न्यारै-शिन्-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश एवं पृथ्वी तत्त्व को संतुलित करते हुए अस्थि तंत्र, मांसपेशी, त्वचा आदि को सुदृढ़ बनाती है। • मूलाधार एवं सहस्रार चक्र को प्रभावित करते हुए विकल्पात्मक स्थिति का दमन कर निर्विकल्प स्थिति को

प्रकट करती है। • पिनियल एवं कामग्रंथियों के स्राव को संतुलित करते हुए भोगेच्छा का नियंत्रण, निर्णायक एवं नेतृत्व शक्ति का विकास तथा स्त्रित्व सम्बन्धी समस्याओं का निराकरण करती है।

75. न्यारै-जौ-इन् मुद्रा

यह संयुक्त मुद्रा भगवान बुद्ध के लिए पात्र की सूचक है तथा इसे जापान देश के बौद्ध अनुयायियों द्वारा धारण किया जाता है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

हथेलियों को संयोजित कर अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका को भीतर की तरफ अन्तर्ग्रंथित करें तथा अनामिका के अग्रभागों को आपस में मिलायें इस भाँति उपर्युक्त मुद्रा बनती है।[90]

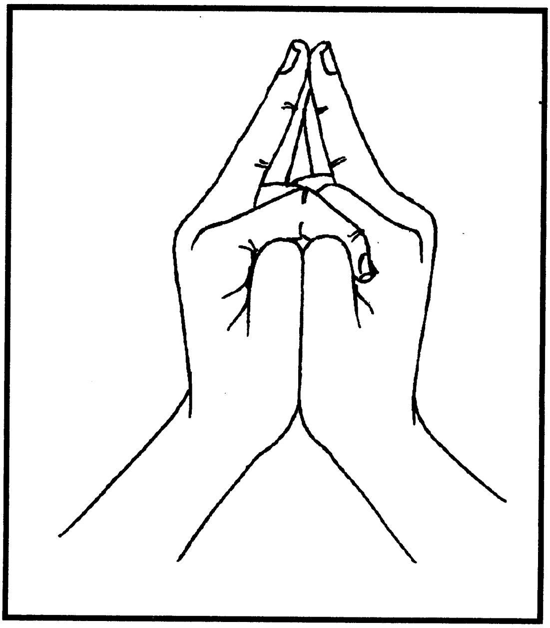

न्यारै-जौ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

इसके सुपरिणाम पूर्व मुद्रा के समान ही है।

76. पाश मुद्रा

मुद्रा विज्ञान में पाश मुद्रा के अनेक रूप हैं उनमें प्रस्तुत मुद्रा जापानी बौद्ध परम्परा में व्यवहृत है तथा इसे गर्भधातु मण्डल, होम आदि धार्मिक क्रियाओं के प्रसंग पर धारण करते हैं। यह संयुक्त मुद्रा दुष्ट शक्तियों को वश में करने एवं उनका दमन करने की सूचक है।

विधि

हथेलियों को एक-दूसरे के सम्मुख कर अंगूठा, तर्जनी, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली के भीतर की तरफ अन्तर्ग्रंथित करें तथा मध्यमा ऊपर उठी हुई और अग्रभागों का स्पर्श करती हुई रहें, इस भाँति पाश मुद्रा बनती है।[91]

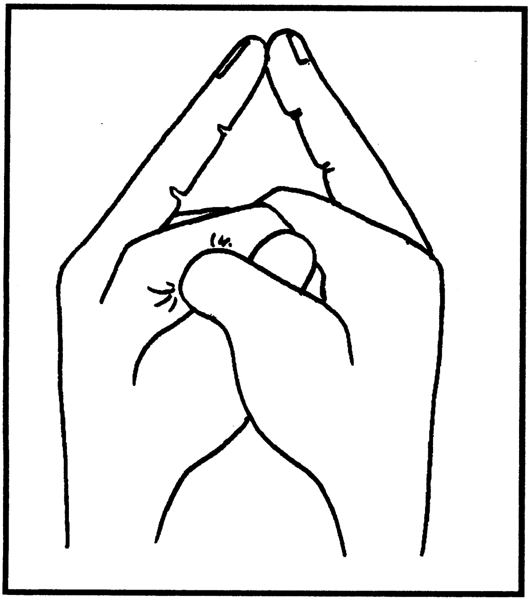

पाश मुद्रा

सुपरिणाम

यह मुद्रा मणिपुर एवं मूलाधार चक्र को प्रभावित करती है। इन चक्रों के स्वस्थ रहने से रक्त विकार, हृदय विकार, मानसिक विकार काम विकार, त्वचा विकार आदि का निदान होता है। • इसके सहयोग से पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व संतुलित रहते हैं। जिससे प्रतिरोधक शक्ति का विकास होता है। • तैजस एवं शक्ति केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा शक्ति का संचय करती है, वृत्तियों का निरोध करती है और ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण करती है।

77. पोथी मुद्रा

यह मुद्रा जापान में मा-नो-चो-जो-इन् मुद्रा और भारत में पोथी मुद्रा एवं त्रिपिटक मुद्रा के नाम से कही जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

ऊर्ध्वाभिमुख बायीं हथेली के ऊपर दायीं हथेली को रखना पोथी मुद्रा कहलाता है। यह मुद्रा गोद में धारण की जाती है।[92]

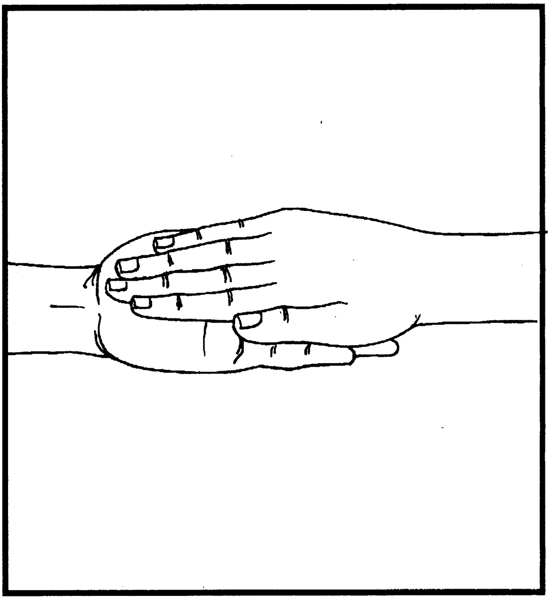

पोथी मुद्रा

सुपरिणाम

• पोथी मुद्रा पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व में संतुलन स्थापित करती है। इससे शरीर-नाड़ी शोधन, पेट के अवयवों का क्षमता वर्धन, हृदय शक्तिशाली एवं अनहद आनंद की अनुभूति होती है। • मूलाधार एवं आज्ञा चक्र को जागृत कर यह मुद्रा चित्त को शान्त करती है तथा बुद्धि को एकाग्र एवं शीघ्रग्राही बनाती है। • गोनाड्स एवं पिनियल को प्रभावित कर यह मुद्रा शेष ग्रंथियों के संतुलन में सहायक बनती है। हस्तदोष, स्वप्न दोष, मासिक धर्म, स्त्रित्व एवं यौन सम्बन्धी समस्याओं का निवारण करती है।

78. पूण मुद्रा

यह जापान में 'बोद गस्सहौ' मुद्रा के नाम से प्रसिद्ध है। यह संयुक्त मुद्रा बौद्ध परम्परा में स्वीकृत अंजलि मुद्रा के समान ही है। इस मुद्रा को शुद्धिकरण के उद्देश्य से किया जाता है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

युगल हथेलियों को सटाकर ऊपर की तरफ फैली हुई अंगुलियों और अंगूठों को एक साथ अपने प्रतिरूप का स्पर्श करवायें तथा अनामिका और मध्यमा अंगुलियों को हल्के से पृथक करें इस प्रकार पूण मुद्रा होती है।[93]

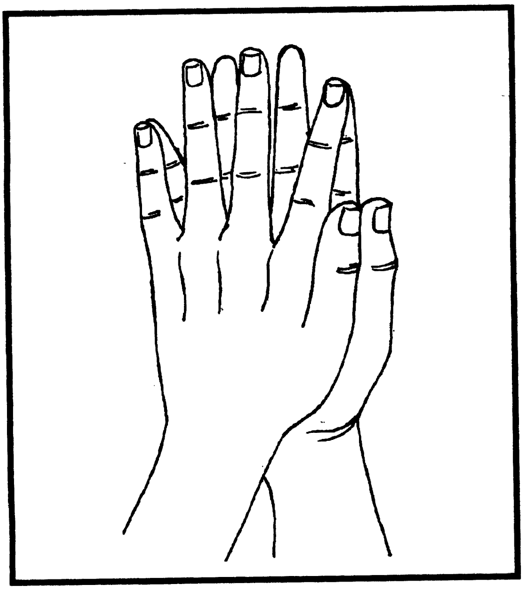

पूण मुद्रा

सुपरिणाम

• जल एवं अग्नि तत्त्व को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा पित्त से उभरने वाली बीमारियों एवं मूत्र-दोष का परिहार करती है तथा गुर्दे को स्वस्थ रखती है। • स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा पेट के पर्दे के नीचे स्थित सभी अवयवों का नियमन, शरीरस्थ रक्त, शर्करा, जल, सोडियम आदि का संतुलन एवं क्रोध पर नियंत्रण कर कार्य शक्ति का वर्धन करती है। • स्वास्थ्य एवं तैजस केन्द्र को संतुलित कर शरीर, मन और भावनाओं को स्वस्थ बनाती है तथा क्रोध, ईर्ष्या, घृणा आदि से मुक्त करती है।

79. रत्न मुद्रा

इस मुद्रा के दो प्रकार हैं। यह मुद्रा नाम के अनुरूप रत्न की सूचक है और उसे रत्नसंभव नामक व्यक्ति विशेष से जोड़ा गया है। शेष वर्णन पूर्ववत।

प्रथम प्रकार

हथेलियों को समीप कर अंगूठों को Cross करें, तर्जनी, अनामिका और कनिष्ठिका को बाहर की तरफ अन्तर्ग्रथित करें तथा मध्यमा को ऊर्ध्व प्रसरित कर उनके अग्रभागों को जोड़ने पर प्रथम प्रकार की रत्न मुद्रा बनती है।[94]

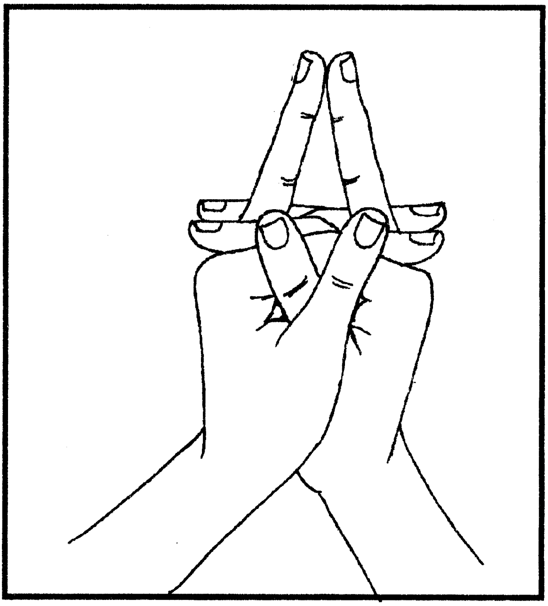

रत्न मुद्रा-1

सुपरिणाम

• रत्न मुद्रा को धारण करने से पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व का संतुलन होता है। इसी के साथ आलस्य, निद्रा, प्रमाद, उग्रता, चिड़चिड़ापन, शारीरिक दुर्बलता आदि का निर्गमन होता है। • मूलाधार एवं मणिपुर चक्र को प्रभावित करते हुए मधुमेह, कब्ज, अपच, गैस एवं पाचन विकृतियों को दूर कर शक्तिवर्धन करती है। • एक्युप्रेशर चिकित्सा के अनुसार एसिडिटी, उल्टी, सिरदर्द को ठीक करती है। प्राणवायु, पित्ताशय, लीवर, रक्त परिभ्रमण आदि का संतुलन करती है।

द्वितीय प्रकार

दूसरे प्रकार में भी हथेलियों को एक साथ कर अंगूठों को Cross करें, किन्तु बायां अंगूठा अन्दर की तरफ रहें। तर्जनी, अनामिका एवं कनिष्ठिका को बाहर की तरफ अन्तर्ग्रथित करें तथा मध्यमा हल्की सी घुमती हुई अग्रभागों को स्पर्श करने पर रत्न मुद्रा का द्वितीय प्रकार बनता है।[95]

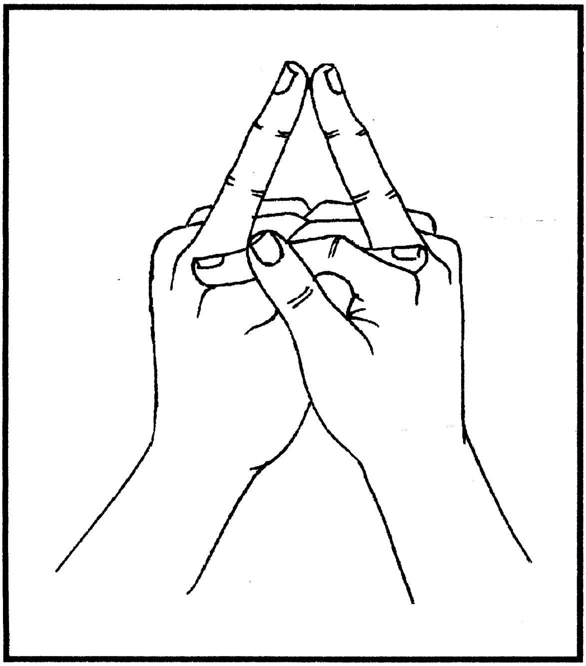

रत्न मुद्रा-2

सुपरिणाम

• अग्नि एवं आकाश तत्त्व का संतुलन कर यह मुद्रा पेट के विभिन्न अवयवों की क्षमता का वर्धन करती है। इससे हृदय शक्तिशाली एवं कब्ज दूर होती है। • मणिपुर एवं सहस्रार चक्र को जागृत कर यह मुद्रा मस्तिष्क में मेरुजल का संचालन करते हुए कामेच्छाओं का नियमन करती है। चित्त को शांत एवं समाधिमय बनाती है। • तैजस एवं ज्ञान केन्द्र को सक्रिय कर पूर्वजन्म स्मृति एवं इन्द्रिय संवेदनाओं की अनुभूति करवाती है तथा शक्ति संचय एवं वृत्तियों को शांत रखती है।

80. रत्न कलश मुद्रा

मुद्रा नाम के अनुरूप यह मुद्रा रत्नों से पूरित कलश को सूचित करती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दोनों हथेलियों को सटाकर मध्यभाग में रखें, अंगूठे ऊपर उठे हुए रहें, तर्जनी मुड़कर अंगूठों के अग्रभागीय प्रथम पोर का स्पर्श करें तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका एक-दूसरे के अग्रभागों का स्पर्श किये रहने पर रत्नकलश मुद्रा बनती है।[96]

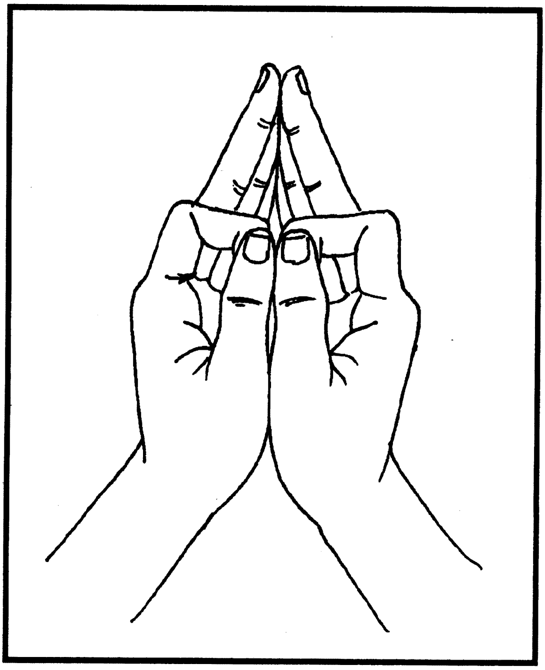

रत्न कलश मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा के प्रयोग से अग्नि एवं आकाश तत्त्व संतुलित रहते हैं। जिससे हृदय एवं पाचन तंत्र के कार्य का नियमन होता है। • आज्ञा, सहस्रार एवं मणिपुर चक्र को जागृत कर यह मुद्रा कार्य शक्ति का वर्धन, स्मरण शक्ति का संतुलन एवं कामेच्छाओं का नियंत्रण करती है। • पिनियल, पिच्युटरी एवं

एड्रिनल के स्राव को संतुलित कर पोटेशियम, सोडियम और जल के प्रमाण को संतुलित रखती है। व्यक्ति को साहसी, निर्भयी, सहनशील एवं आशावादी बनाती है तथा आन्तरिक तंत्रों के कार्यों का सुचारू संचालन करती है।

81. रै-इन् मुद्रा

भारत में इसे घण्टा मुद्रा कहते हैं क्योंकि इस मुद्रा में घण्टा जैसी आकृति दिखती है। यह एक हाथ से की जाती है और यह मुद्रा हर्ष, संतोष एवं मन्दिर में देवी-देवताओं के आगमन की सूचक है। शेष पूर्ववत।

विधि

दायें हाथ की अंगुलियों को एक साथ कर, अंगूठे को अन्दर की तरफ मध्यमा से स्पर्श करवायें फिर हाथ को कलाई क्षेत्र से नीचे मोड़ते हुए मध्यभाग की ओर घुमाने पर 'रै-इन्' मुद्रा बनती है।[97]

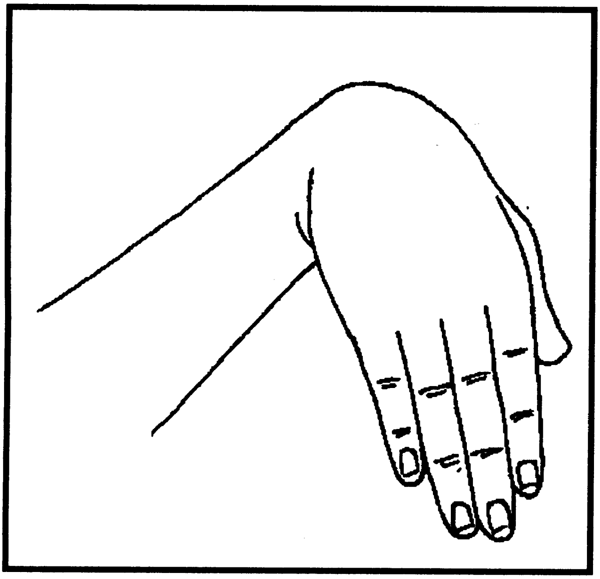

रै-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• यह मुद्रा जल एवं वायु तत्त्व का संतुलन करते हुए स्वाभाविक रुक्षता को दूर कर शीतलता का अनुभव करवाती है। • स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र को जागृत कर व्यक्ति को महाज्ञानी, कवि, शान्तचित्त निरोगी एवं दीर्घ जीवी

बनाती है। • एक्युप्रेशर विशेषज्ञों के अनुसार यह नाभि चक्र के स्थानांतरित होने पर यथास्थान स्थित करती है, सुकतान, हिचकी, स्नायु ऐंठन तथा जड़ता आदि का निवारण करती है।

82. रेंजे-बु-शु-इन् मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा गर्भधातु मण्डल, वज्रधातु मण्डल आदि धार्मिक क्रियाओं से सम्बन्धित है। शेष पूर्ववत।

विधि

दोनों हथेलियों को सटाकर तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को बाहर की तरफ अन्तर्ग्रथित करें तथा अंगूठा और कनिष्ठिका को सीधा कर एवं उनके अग्रभागों को परस्पर जोड़ने पर 'रेंजे-बु-शु-इन्' मुद्रा बनती है।[98]

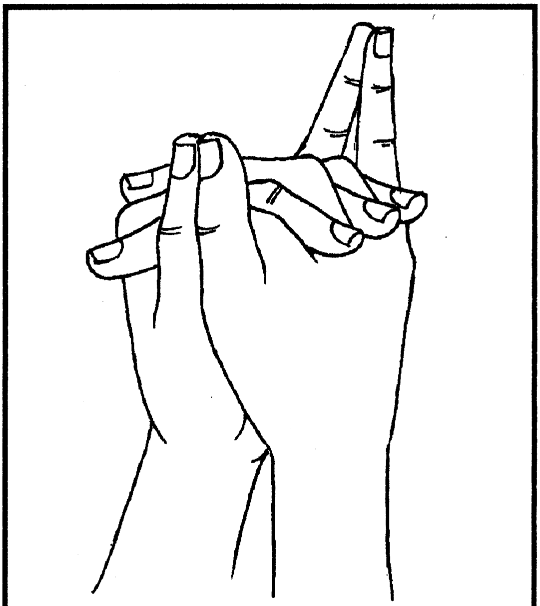

रेंजे-बु-शु-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

यह मुद्रा वायु तत्त्व को संतुलित करते हुए रुधिरअभिसंचरण, श्वसन, मल-मूत्र गति आदि को सम्यक एवं सक्रिय रखती है। • अनाहत एवं विशुद्धि चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा बालकों के विकास में सहयोगी बनती है। शरीर

के तापमान का नियंत्रण, फेफड़ें और हृदय के कार्यों का नियमन तथा शक्ति उत्पादन में सहायक बनती है। • आनंद एवं विशुद्धि केन्द्र को जागृत कर कामवासनाओं का परिशोधन करती है और चयापचय एवं पाचन क्रिया को सुचारू बनाती है।

83. रेन्-रेंजे-इन् मुद्रा

यह मुद्रा गर्भधातु मण्डल आदि धार्मिक क्रियाओं से सम्बन्धित है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दोनों हथेलियों को सामने की तरफ मध्यभाग में रखें, कनिष्ठिका और अंगूठों के अग्रभागों को आपस में जोड़ें तथा तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को ऊपर की ओर प्रसरित करे एवं अग्रभागों से परस्पर मिलाने पर 'रेन्-रेंजे-इन्' मुद्रा का निर्माण होता है।[99]

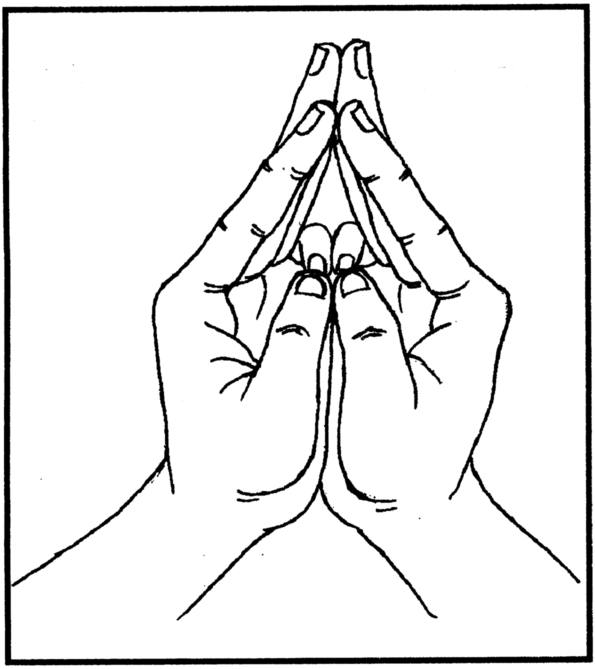

रेंन्-रेंजे-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर, अनाहत एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** अग्नि, वायु एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल, पैन्क्रियाज, थायमस एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस, आनंद एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, रक्त संचरण तत्र, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर।

84. स-इन् मुद्रा

प्रस्तुत मुद्रा भारत में वज्र श्रृंखला मुद्रा के नाम से प्रचलित है। स्वरूपत: यह मुद्रा देवी-देवता के मंदिरों की सीमा में रहने की सूचक है। इसे छाती के स्तर पर धारण करते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दोनों हाथों को मुट्ठी रूप में बनाकर उन्हें कलाई पर Cross करते हुए रखना 'स-इन्' मुद्रा है। इसमें अंगूठें बाहर, बायीं मुट्ठी दायीं के सामने तथा अंगूठे स्पर्शित रहते हैं।[100]

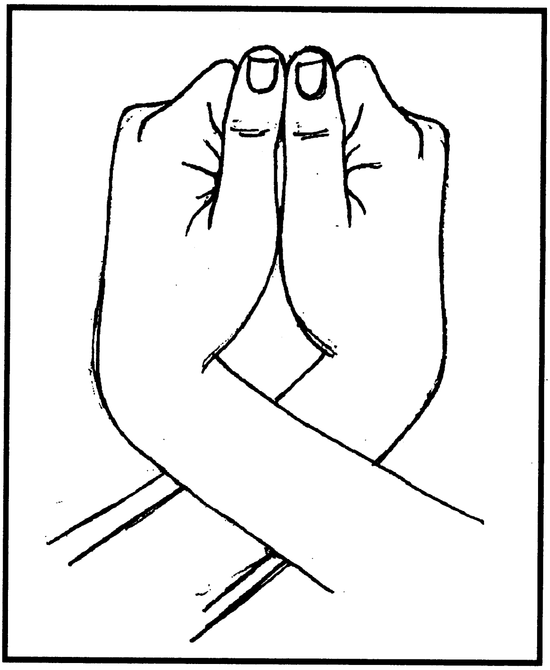

स-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार एवं मणिपुर चक्र **तत्त्व–** पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज ग्रन्थ **केन्द्र–** शक्ति एवं तैजस केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, यकृत, तिल्ली एवं आँतें।

85. सै-जै-इन् मुद्रा

धार्मिक क्रियाओं के अवसर पर यह मुद्रा गुनाहों के विनाश की सूचक है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

युगल हथेलियों को संयोजित कर मध्यभाग में रखें, अंगूठे Cross करते हुए रहें, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका बाहर की तरफ इस तरह अन्तर्ग्रंथित होकर रहें कि उनके अग्रभाग अंगुलियों के अंतिम जोड़ को स्पर्श कर सकें तथा कनिष्ठिका को सीधा कर उनके अग्रभागों को आपस में मिलाने पर 'सै-जै-इन्' मुद्रा बनती है।[101]

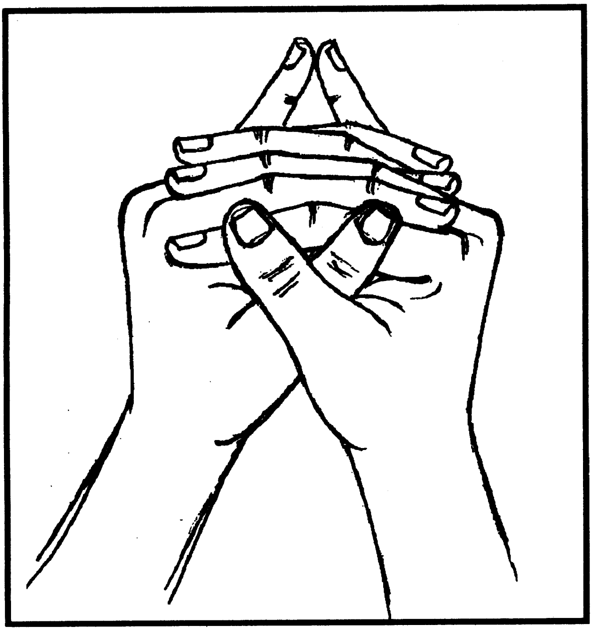

सै-जै-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र **तत्त्व–** जल एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि **केन्द्र–** स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मल-मूत्र अंग, प्रजनन अंग, गुर्दे, निचला मस्तिष्क, स्नायु तंत्र।

86. सकु-इन् मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा देवी-देवताओं को अपनी पवित्र सीमा में धारण करने की सूचक है। यह मुद्रा दिखाकर अथवा इस मुद्रा के द्वारा देवी-देवताओं को निर्धारित सीमा में रहने का निर्देश दिया जाता है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दोनों हथेलियों को समीप कर अंगूठा, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को हथेली के भीतरी तरफ अन्तर्ग्रथित करें तथा तर्जनी के अग्रभागों को संयुक्त करने पर 'सकु-इन्' मुद्रा रचती है।[102]

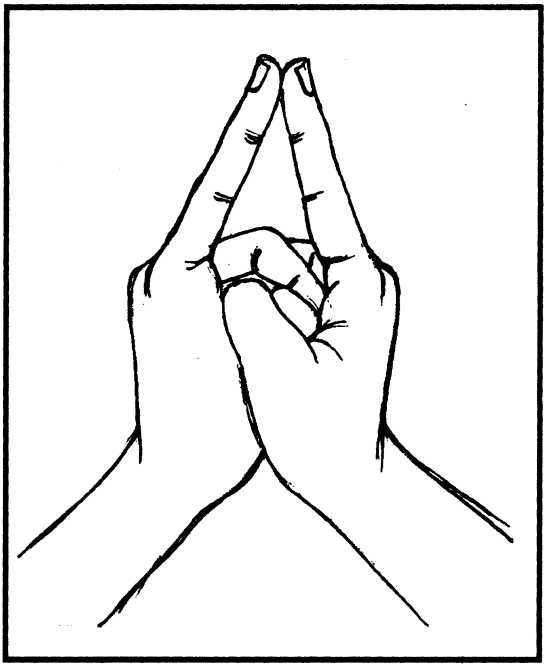

सकु-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– विशुद्धि एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायरॉइड, पेराथायरॉइड एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** विशुद्धि एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ,रक्त संचरण तंत्र, ऊपरी मस्तिष्क, आँख।

87. सन्-कौ-इन् मुद्रा

प्रस्तुत मुद्रा के दो प्रकारान्तर हैं। यह गर्भधातुमण्डल-वज्रधातुमण्डल आदि धार्मिक क्रियाओं में तीन कांटा युक्त वज्र को दर्शाने के उद्देश्य से की जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

प्रथम प्रकार

अंगूठा और कनिष्ठिका के अग्रभागों को संयुक्त कर शेष तीन अंगुलियों को ऊपर की तरफ सीधा फैलाने पर 'सन्-कौ-इन्' मुद्रा का प्रथम प्रकार बनता है।[103]

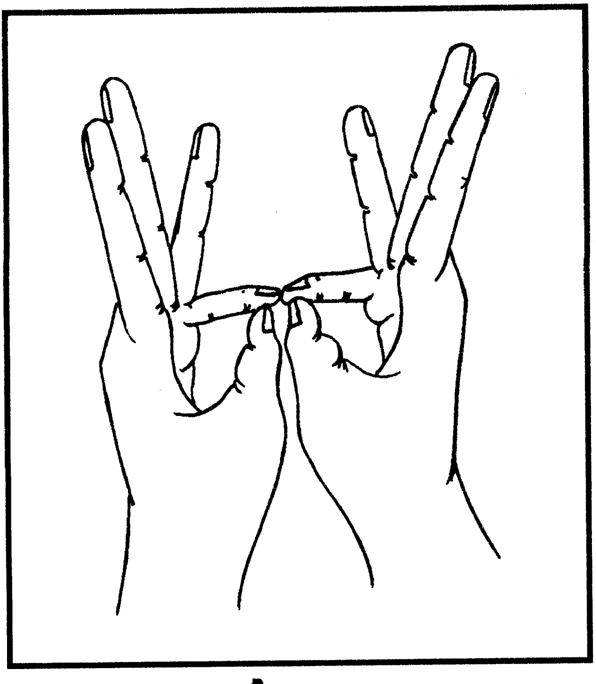

सन्-कौ-इन् मुद्रा-1

सुपरिणाम

• यह मुद्रा अनाहत, विशुद्धि एवं आज्ञा चक्रों के सुचारू संचालन में सहायक है। • वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा छाती, फेफड़ें, हृदय, थायमस, थायरॉइड आदि के विकारों पर नियंत्रण करती है। शरीर में स्थित विष द्रव्यों को हटाकर शरीर को स्वस्थ बनाती है। • थायमस, एड्रिनल, पैन्क्रियाज एवं पीयूष ग्रन्थि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा बालकों के विकास में सहायक बनती है। रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास करती है तथा साधक को तनाव मुक्त, उत्साही एवं प्रसन्न बनाती है।

द्वितीय प्रकार

हथेलियों को समीप रखते हुए अंगूठों को एक साथ फैलायें, तर्जनी को सीधी कर हल्की सी पीछे की ओर झुकायें, मध्यमा के अग्रभागों को परस्पर में स्पर्श करवायें तथा अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली के भीतर की तरफ अन्तर्ग्रथित करें तब 'सन्-कौ-इन्' मुद्रा का दूसरा प्रकार बनता है।[104]

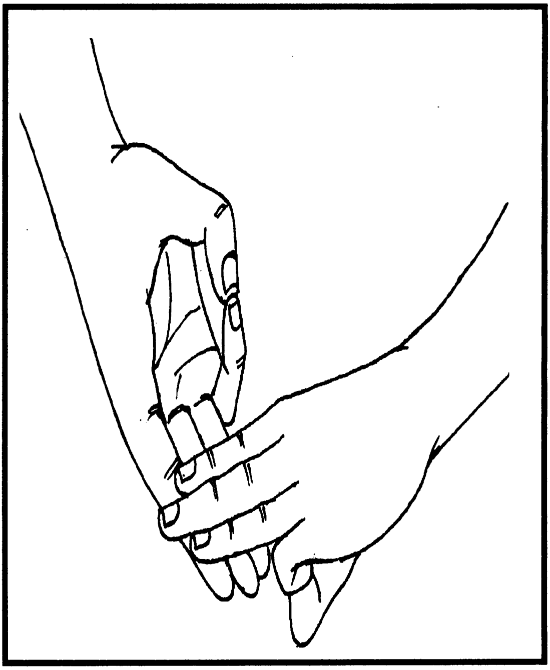

सन्-कौ-इन् मुद्रा-2

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर, आज्ञा एवं विशुद्धि चक्र **तत्त्व**– अग्नि, आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**– एड्रिनल, पैन्क्रियाज, पिनियल, थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थि **केन्द्र**– तैजस, दर्शन एवं विशुद्धि केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**– यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, स्नायु तंत्र, स्वर तंत्र, निचला मस्तिष्क, गला, मुँह, कान, नाक आदि।

88. शंख मुद्रा

शंख मुद्रा के कई प्रकार हैं। प्राय: सभी परम्पराओं में इस मुद्रा का प्रयोग होता है। जापानी बौद्ध वर्ग में दो प्रकार की शंख मुद्राएँ की जाती है जो शंख ध्वनि की सूचक हैं। उनकी विधियाँ निम्न हैं–

प्रथम प्रकार

इस मुद्रा में दोनों मध्यमाएँ अग्रभाग पर स्पर्श करती हुई, तर्जनी प्रसरित एवं हल्की सी झुकी हुई, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियाँ हथेली में मुड़ी हुई, अंगूठे हथेली में मुड़े हुए तथा अनामिका के अग्रभाग को स्पर्श करते हुए रहते हैं।[105]

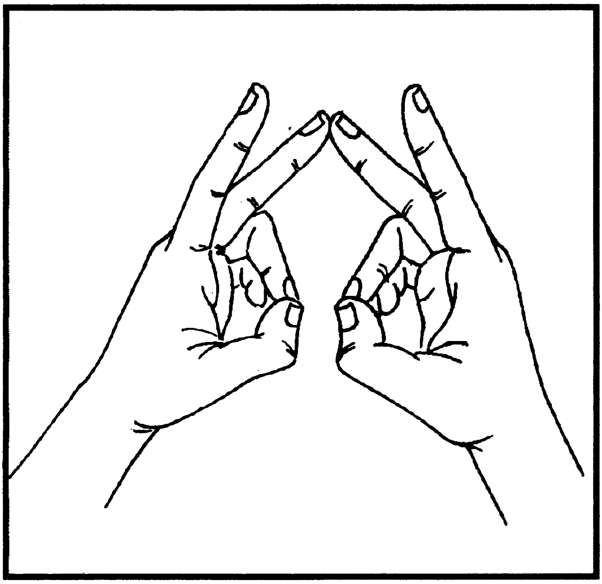

शंख मुद्रा-1

सुपरिणाम

चक्र– मणिपुर एवं मूलाधार चक्र **तत्त्व–** अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व **ग्रन्थि–** एड्रीनल,पैन्क्रियाज एवं प्रजनन ग्रन्थि **केन्द्र–** तैजस एवं शक्ति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** यकृत, तिल्ली, आँतें, नाड़ी तंत्र, पाचन तंत्र, मेरूदण्ड, गुर्दे, पैर।

द्वितीय प्रकार

दूसरे प्रकार में हथेलियाँ मध्यभाग की तरफ,अनामिका, मध्यमा और कनिष्ठिका हथेली में मुड़ी हुई, अंगूठा अनामिका के अग्रभाग को स्पर्श करता हुआ, दोनों हाथ झुकी हुई कनिष्ठिका पर स्पर्श करते हुए तथा मध्यमा अग्रभाग पर स्पर्श करती हुई रहती है इस भाँति शंख मुद्रा बनती है।[106]

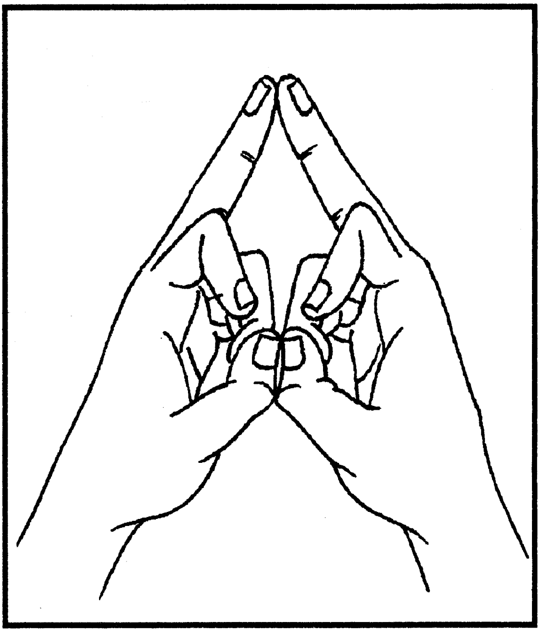

शंख मुद्रा-2

सुपरिणाम

चक्र– अनाहत एवं सहस्रार चक्र **तत्त्व–** वायु एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** थायमस एवं पिनियल ग्रन्थि **केन्द्र–** आनंद एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

89. शै-कौ-इन् मुद्रा

यह संयुक्त मुद्रा गर्भधातु मण्डल, वज्रधातु मण्डल आदि धार्मिक क्रियाओं के समय धारण की जाती है जो देवताओं को भोग लगाने या अर्पण करने की सूचक है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

इस मुद्रा को बनाने के लिए हथेलियों को ऊर्ध्वाभिमुख, तर्जनी को सीधी, अंगूठे तर्जनी के साथ शिथिल मुद्रा में, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को हथेली की तरफ आधे मोड़े हुए रखें। तत्पश्चात दोनों हाथों को समीप कर आपस में स्पर्शित कर देने पर 'शै-कौ-इन्' मुद्रा बनती है।[107]

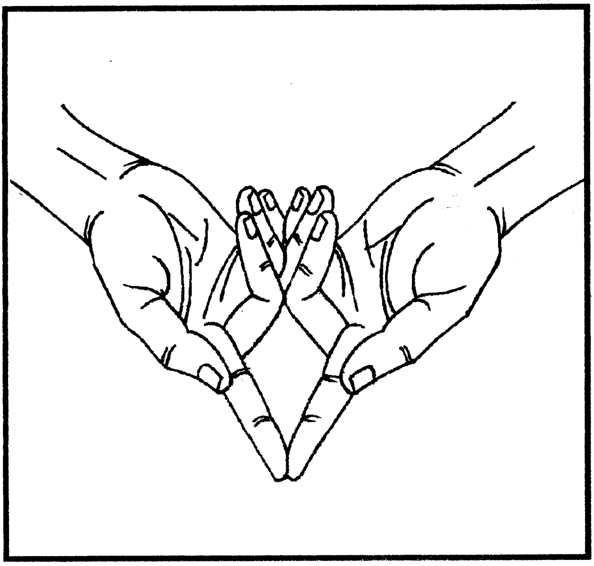

शै-कौ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र— आज्ञा, सहस्त्रार एवं अनाहत चक्र **तत्त्व**— आकाश एवं वायु तत्त्व **ग्रन्थि**— पीयूष, पिनियल एवं थायमस ग्रन्थि **केन्द्र**— दर्शन, ज्योति एवं आनंद केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग**— मस्तिष्क, स्नायु तंत्र, आँख, हृदय, फेफड़ें, भुजाएँ, रक्त संचार प्रणाली।

90. सीमाबन्ध मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा वज्रधातु मण्डल की पूजोपासना से सम्बन्धित एवं 'जेन्-इन्' मुद्रा के समान है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

उभय हथेलियों को बाहर की तरफ रखते हुए तर्जनियों को सीधा रखें, शेष अंगुलियों को अंगूठे के साथ हथेली की तरफ मोड़ें। पश्चात दोनों हाथों को थोड़ा सा इस भाँति घुमायें जिससे दोनों तर्जनियाँ मध्यभाग की तरफ इंगित कर सकें तथा बायां हाथ दायें हाथ से थोड़ा नीचे रह सकें, यह सीमाबन्ध मुद्रा कहलाती है।[108]

सीमाबन्ध मुद्रा का दूसरा प्रकार वज्रबंध मुद्रा के समान जानना चाहिए।

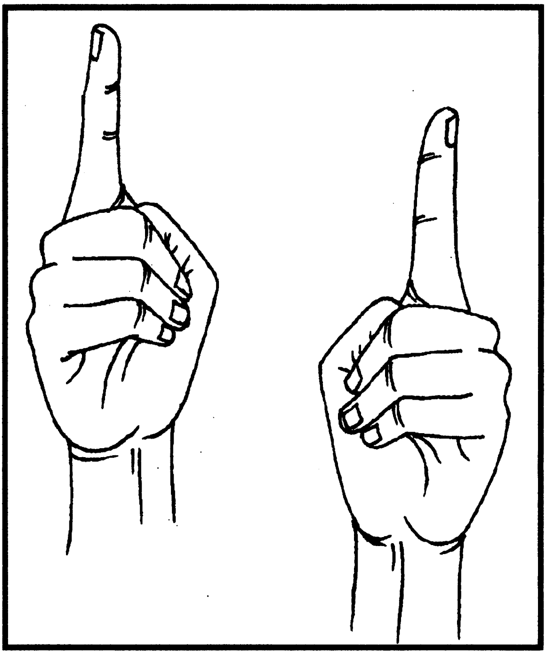

सीमाबन्ध मुद्रा

सुपरिणाम

चक्र– मूलाधार एवं सहस्रार **तत्त्व–** पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व **ग्रन्थि–** प्रजनन एवं पिनियल ग्रंथि **केन्द्र–** शक्ति एवं ज्योति केन्द्र **विशेष प्रभावित अंग–** मेरुदण्ड, गुर्दे, पैर, ऊपरी मस्तिष्क एवं आँख।

91. सौ-कौ-शु-गौ-इन् मुद्रा

धर्म क्रियाओं से सम्बन्धित यह मुद्रा बुराईयों एवं राक्षसों के विनाश की सूचक मुद्रा है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

बायीं हथेली को बाहर की तरफ रखते हुए अंगूठे को हथेली में मोड़े, मध्यमा और अनामिका को अंगूठे के ऊपर मोड़े रखें, तर्जनी और कनिष्ठिका को प्रथम एवं द्वितीय जोड़ से झुकायें, तीसरे को सीधा रखें।

दायें अंगूठे को भी हथेली के अन्दर मोड़ते हुए मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को अंगूठे के ऊपर झुकायें रखें तथा तर्जनी बायें हाथ की तरफ दर्शाती रहें, तब उपरोक्त मुद्रा बनती है।[109]

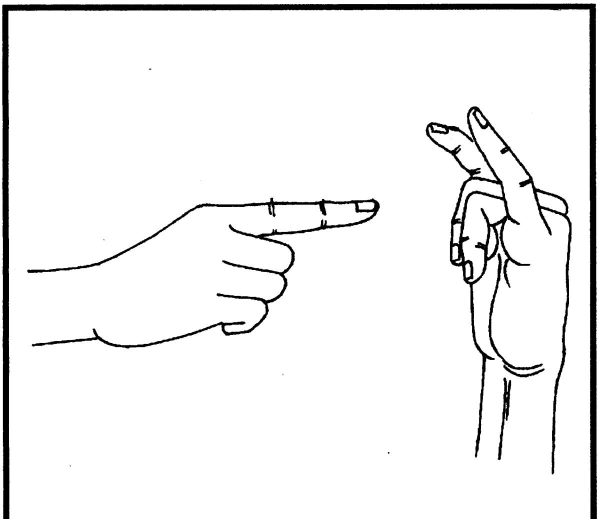

सौ-कौ-शु-गौ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

- इस मुद्रा को धारण करने से जल एवं वायु तत्त्व प्रभावित होते हैं। यह शरीर को निरोगता प्रदान करते हुए मूत्र पिंड, प्रजनन अंग, लसिका ग्रंथियों को स्वस्थ रखती है।
- स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा उत्सर्जन एवं विसर्जन के कार्य को नियंत्रित करती है। इससे बलिष्ठता एवं स्फूर्ति बढ़ती है। यह अतिरिक्त ऊर्जा देकर उदारता, सहकारिता, संवेदनशीलता

आदि गुणों में वृद्धि करती है। • यह मुद्रा स्वास्थ्य एवं आनंद केन्द्र को संतुलित करते हुए शारीरिक ऊर्जा एवं जैविक विद्युत का संचय करती है। काम वासना का परिशोधन करते हुए बाह्य जगत से आन्तरिक जगत में प्रवेश करवाती है। • प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा बालकों के शारीरिक एवं मानसिक विकास में सहायक बनती है तथा मासिक धर्म एवं काम ग्रन्थियों के संतुलन में सहयोग करती है।

92. स्थिराबोधि मुद्रा

यह मुद्रा अपने नाम के अनुरूप स्थायी बोध को प्राप्त करवाती है अतः इसका नाम स्थिराबोधि है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दोनों हाथों को समीप कर अंगूठों को ऊपर फैलायें, तर्जनी को भी ऊर्ध्व प्रसरित रखें तथा शेष अंगुलियों को अन्दर की तरफ अन्तर्ग्रथित करने पर स्थिराबोधि मुद्रा बनती है।[110]

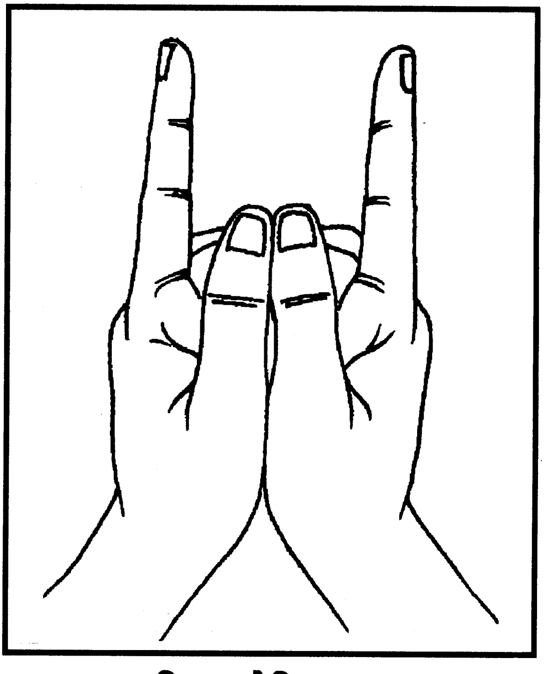

स्थिराबोधि मुद्रा

सुपरिणाम

स्थिराबोधि मुद्रा की साधना पृथ्वी तत्त्व को संतुलित करते हुए शरीर वजन, चर्बी, स्थूलता को संतुलित एवं भावों को तटस्थ रखती है। मूलाधार चक्र को जागृत करते हुए यह व्यक्तित्व बोध करवाती है। भावों की अभिव्यक्ति में सहायक बनती है। क्रोध, निराशा, घृणा एवं विपरीत परिस्थितियों का संतुलन करते हुए सहजानन्द की प्राप्ति करवाती है। • इस मुद्रा का प्रभाव शक्ति केन्द्र पर पड़ता है इससे विद्युत प्रवाह का ऊर्ध्वीकरण होता है। प्रजनन ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित करते हुए शरीरस्थ जल एवं फॉस्फोरस तत्त्व का नियमन कर यौन हार्मोन उत्पन्न करती है।

93. तथागत दंष्ट्र मुद्रा

तथागत शब्द का एक अर्थ 'बुद्ध' है। अभिप्रायतः यह मुद्रा भगवान बुद्ध के दाँतों से सम्बन्धित होनी चाहिए अर्थात भगवान बुद्ध की दन्त पंक्तियों को दर्शाने हेतु यह मुद्रा की जाती होगी। शेष वर्णन पूर्ववत।

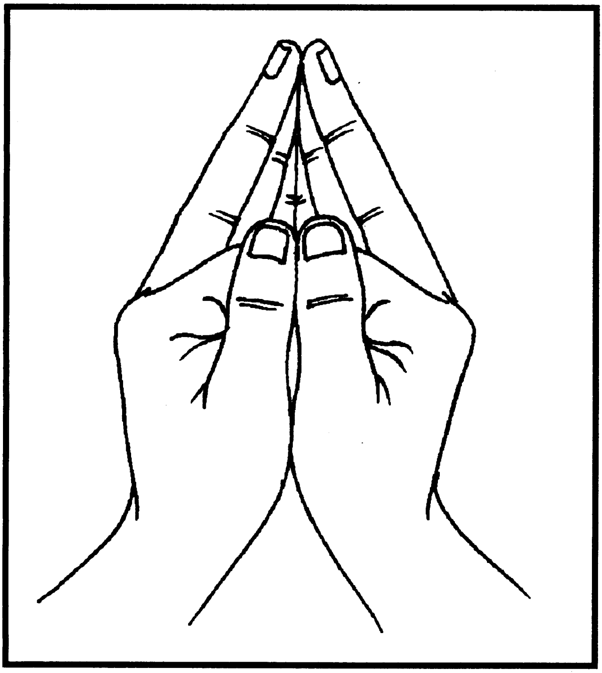

तथागत दंष्ट्र मुद्रा

विधि

हथेलियों को मध्य भाग की तरफ रखते हुए अंगूठों को सीधा रखें, तर्जनी को हथेली में मोड़ें तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को ऊपर में फैलाते हुए उनके अग्रभागों को जोड़ने पर तथागत दंष्ट्र मुद्रा रचती है।[111]

सुपरिणाम

• आकाश तत्त्व को नियंत्रित करते हुए यह मुद्रा शरीरस्थ विष द्रव्यों को दूर कर शरीर को तंदुरूस्थ बनाती है। आज्ञा एवं सहस्रार चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा शारीरिक विकास, मस्तिष्क और स्मरण शक्ति का संतुलन करती है। • इस मुद्रा की साधना दर्शन एवं ज्योति केन्द्र को प्रभावित करते हुए क्रोधादि कषाय, नोकषाय, काम-वासना, आसक्ति आदि संज्ञाओं का उपशमन करती है। • इससे मानसिक स्थिरता एवं वैचारिक एकाग्रता बढ़ती है। • पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह शरीर की आन्तरिक हलन-चलन शारीरिक तापक्रम एवं शर्करा को नियंत्रित रखती है।

94. तथागत कुक्षि मुद्रा

पूर्व निर्देशानुसार संभवत: यह मुद्रा भगवान बुद्ध के उदर भाग को दर्शाती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

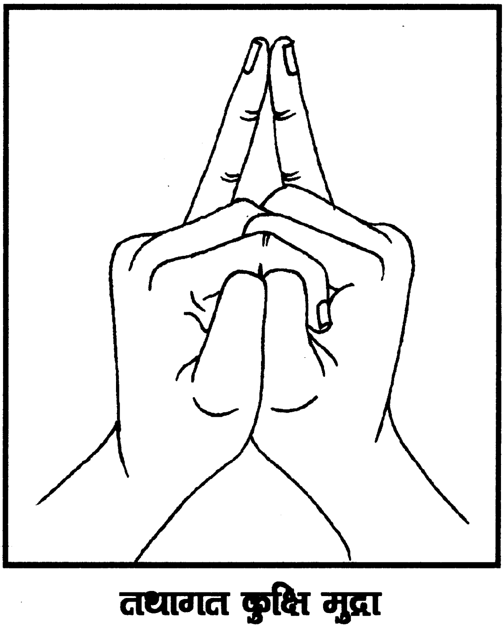

तथागत कुक्षि मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को आमने-सामने करके अंगूठा, तर्जनी, मध्यमा और कनिष्ठिका को अन्दर की तरफ अन्तर्ग्रथित करें तथा अनामिका को फैलाते हुए उनके अग्रभागों को जोड़ने पर तथागत कुक्षि मुद्रा बनती है।[122]

सुपरिणाम

• तथागत कुक्षि मुद्रा की साधना शरीरस्थ जल एवं वायु तत्त्व को संतुलित तथा जीवन प्रवाह को सुरक्षित रखती है। शारीरिक तापमान एवं रुधिर आदि की कार्यपद्धति में सहायक बनते हुए श्वसन, मल-मूत्र, रुधिर अभिसंचरण और स्वर नियंत्रण में सहायक बनती है। • स्वाधिष्ठान एवं विशुद्धि चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा प्रसुप्त अतिन्द्रिय क्षमता को प्रस्फुटित करती है। इससे खून की कमी, योनि विकार, गले, मुँह, कंठ आदि का विकार, गठिया, बहरापन आदि दूर होता है। • स्वास्थ्य एवं विशुद्धि केन्द्र को जागृत करते हुए जीवन की क्षमता एवं तीव्रता को बढ़ाती है। थायरॉइड, पैराथायरॉइड एवं प्रजनन ग्रन्थि के स्रावों को संतुलित करते हुए यह मुद्रा स्वभाव नियंत्रण, आवाज नियंत्रण में सहायक बनती है। शरीरस्थ आयोडीन, कैल्शियम, कोलेस्ट्राल का नियंत्रण करती है तथा जननेन्द्रिय सम्बन्धी विकारों का शमन करती है।

95. तथागत वचन मुद्रा

भगवान बुद्ध के वचनों से सम्बन्धित यह मुद्रा गर्भधातु मण्डल के समक्ष धारण की जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दोनों हथेलियों को मध्यभाग में रखें, अंगूठा, तर्जनी और कनिष्ठिका को अपने सीध पर खड़ा रखें तथा अनामिका और मध्यमा के अग्रभागों को परस्पर मिलाने से तथागत वचन मुद्रा बनती है।[113]

सुपरिणाम

• तथागत वचन मुद्रा के प्रयोग से शरीरस्थ अग्नि एवं वायु तत्त्व संतुलित रहते हैं। यह स्नायु तंत्र की स्थिति स्थापकता बनाए रखती है और विचार शक्ति को सुदृढ़ कर श्वसन एवं मल-मूत्र की गति में सहायक बनती है। • मणिपुर एवं

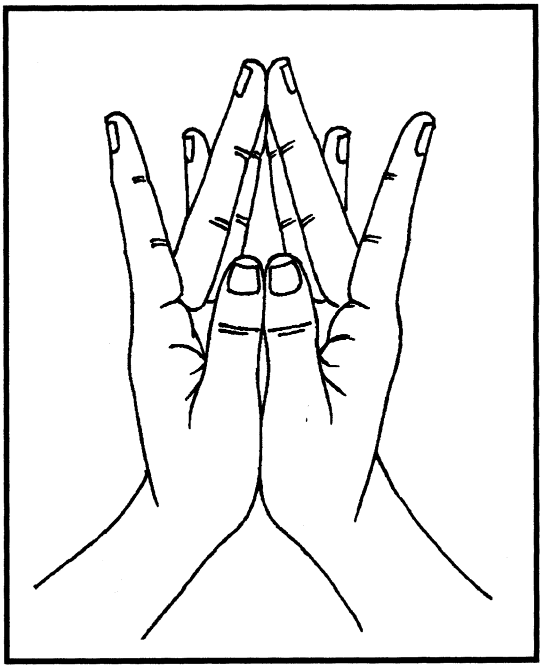

तथागत वचन मुद्रा

अनाहत चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा संकल्प बल एवं पराक्रम को बढ़ाती है तथा उदारता, सहकारिता, परमार्थ वृत्ति जैसे भावों का निर्माण करती है। मनोविकारों का उपशमन करती है। • तैजस एवं आनंद केन्द्र को जागृत करते हुए हृदय एवं पाचन तन्त्र सम्बन्धी कार्यों को नियमित एवं नियंत्रित रखती है। एड्रिनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा साधक को साहसी, निर्भयी, सहनशील एवं आशावादी बनाती है।

96. तेजस्-बोधिसत्त्व मुद्रा

यह एक आध्यात्मिक मुद्रा है। इसे गर्भधातु मण्डल आदि धार्मिक क्रियाओं के दौरान करते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दोनों हथेलियों को बाहर की तरफ करते हुए अंगुलियों को पृथक-पथक फैलायें, अंगूठों को परस्पर स्पर्श किये हुए सीधा रखें तथा तर्जनी के अग्रभागों को मिलाने पर तेजस्-बोधिसत्त्व मुद्रा बनती है।[114]

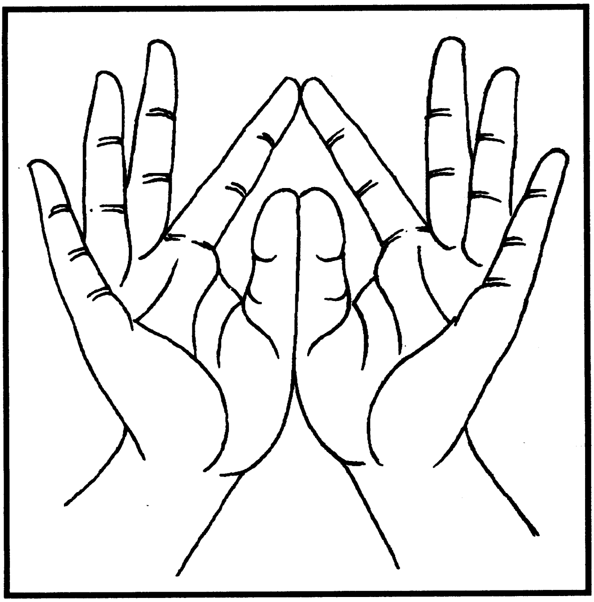

तेजस्-बोधिसत्त्व मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा की निरंतर साधना आकाश तत्त्व को संतुलित रखती है तथा शरीर से विषाक्त द्रव्यों को निकालती है। • आज्ञा एवं सहस्रार चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा आन्तरिक ज्ञान एवं दिव्य चक्षुओं को जागृत करती है। कामेच्छाओं का नियमन करती है। शारीरिक विकास, मस्तिष्क और स्मरण शक्ति का संतुलन रखती है। • यह मुद्रा दर्शन एवं ज्योति केन्द्र को सक्रिय करते हुए कषाय, नो कषाय, काम वासना, आसक्ति आदि संज्ञाओं के उपशमन में सहायक बनती है और अपराधी मनोवृत्ति को शांत करती है। • पीयूष एवं पिनियल ग्रन्थि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीर की आन्तरिक हलन-चलन, हृदय की धड़कन, शरीर तापक्रम एवं शक्कर की मात्रा को नियंत्रित करती है तथा जीवन प्रवृत्ति एवं स्वभाव को सम्यक बनाती है।

97. तेम्बौरिन्-इन् मुद्रा

जापान में इस मुद्रा के तीन नाम हैं- तेम्बौरिन्-इन्, गंधरन्-तैम्बौरिन् इन् और होरयुजि तेम्बौरिन्-इन्। इसे चीन में चुआँ-फा-लुन्-यिन् मुद्रा तथा भारत में धर्मचक्र एवं धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा कहते हैं। मुख्यत: यह जापानी और चीनी

बौद्ध परम्परा में धारण की जाती है। यह धर्मचक्र मुद्रा का ही प्रकारान्तर होने से धर्मचक्र की गति एवं प्रवर्त्तन की सूचक है।

विधि

दायीं हथेली बाहर की तरफ अभिमुख और बायीं हथेली ऊर्ध्वाभिमुख रहें, अंगूठें और तर्जनी के अग्रभाग स्पर्श करें, शेष अंगुलियाँ फैली हुई रहें। तत्पश्चात उभय हाथों को इस प्रकार सेट करें कि वह धर्मचक्र मुद्रा का प्रकारान्तर दिखने लगे, तब तेम्बौरिन् मुद्रा बनती है।[115]

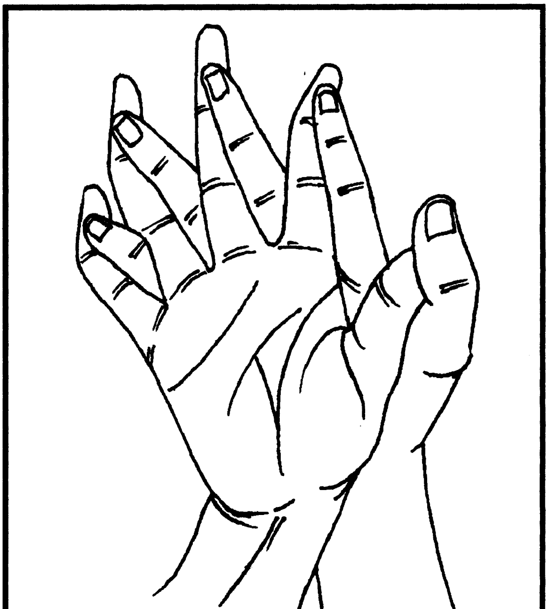

तेम्बौरिन्-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• तैम्बोरिन्-इन् मुद्रा जल एवं वायु तत्त्व संतुलित करते हुए शरीर एवं जीवन प्रवाह को सुरक्षित रखती है। शरीर का तापक्रम एवं रुधिर आदि की कार्य पद्धति को नियमित रखती है। • स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा हृदय क्षेत्र को ऊर्जा प्रदान करती है। कलात्मक उमंगें, रसानुभूति एवं कोमल संवेदनाओं को उत्पन्न करती है। • स्वास्थ्य एवं आनंद

केन्द्र के कार्यों को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा कामग्रन्थियों, वृषण एवं डिम्बाशय की क्रियाओं का निरोध करती है। इससे भाव धारा निर्मल एवं परिष्कृत बनती है। विद्युत धारा का ऊर्ध्वीकरण होता है और असत वृत्तियों का उपशमन होता है। • प्रजनन एवं थायमस ग्रन्थि के कार्यों को नियमित करते हुए यह मुद्रा कामवासना का मुख्य रूप से संतुलन करती है तथा शारीरिक जड़ता को दूर कर उसे क्रियाशील बनाती है।

98. तौ-म्यौ-इन् मुद्रा

भारत में यह मुद्रा, दीप मुद्रा के नाम से पहचानी जाती है इसलिए अंधकार और उपेक्षा के विलीन होने की सूचक है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दायीं हथेली को सामने की तरफ अभिमुख कर अनामिका और कनिष्ठिका को अच्छे से झुकायें, अंगूठे को उनके अग्रभाग पर स्पर्श किये हुए रखें तथा तर्जनी और मध्यमा को प्रथम एवं द्वितीय जोड़ पर मोड़ते हुए खूंटी जैसा बनाने पर 'तौ-म्यो-इन्' मुद्रा बनती है।[116]

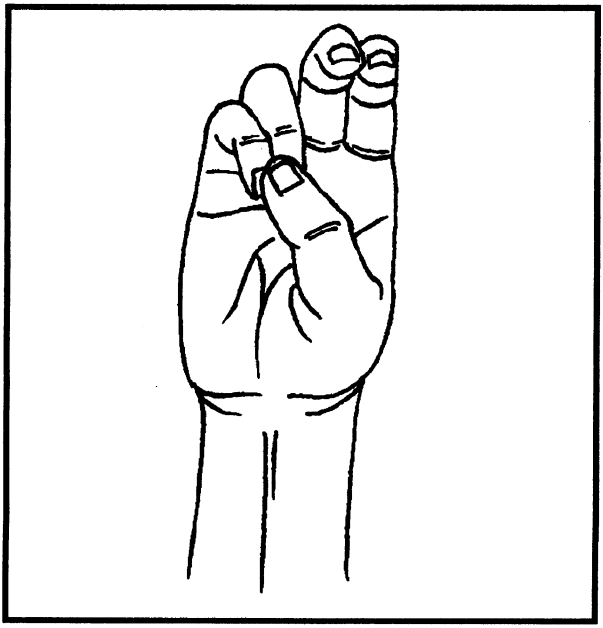

तौ-म्यो-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग शरीरस्थ अग्नि तत्त्व को संतुलित करते हुए शक्ति प्रदान करती है, स्नायुतंत्र की स्थिति स्थापकता बनाए रखती है और विचार शक्ति में सहायक बनती हैं। बेहोशी, दृष्टि-विकार, एसिडिटी आदि तकलीफों को दूर करती हैं। • मणिपुर चक्र को प्रभावित कर यह मुद्रा मनोविकारों को घटाती है। संकल्प बल का जागरण एवं परमार्थ कार्य में वृद्धि करती है। पाचन क्रिया का नियमन करती है तथा शक्तियों के ऊर्ध्वगमन में सहायक बनती है। • एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज के स्राव को संतुलित कर यह मुद्रा संचार व्यवस्था, हलन-चलन, श्वसन, रक्त परिभ्रमण, अनावश्यक पदार्थों के निष्कासन, तनाव नियंत्रण में विशेष सहायक बनती है।

99. त्रिशूल मुद्रा

यह मुद्रा अनेक रूपों में प्राप्त होती है, जिनमें भिन्न-भिन्न दो स्थितियाँ जापानी बौद्ध परम्परा के धार्मिक क्रियाओं में अपनायी जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

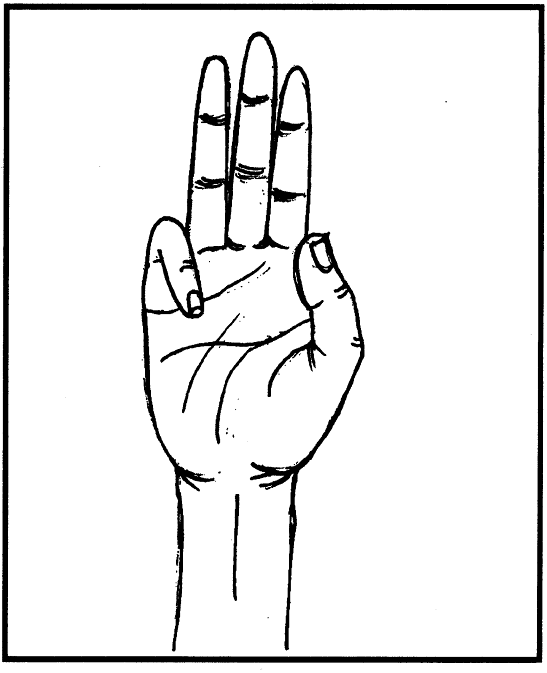

त्रिशूल मुद्रा-1

प्रथम स्थिति

इस प्रकार में एक हाथ का उपयोग होता है तथा यह मुद्रा त्रिशूल एवं बाधाओं के नाश की सूचक है। इस मुद्रा में हथेली सामने की तरफ, अंगूठे का अग्रभाग कनिष्ठिका के नाखून भाग को दबाता हुआ तथा शेष अंगुलियाँ सम्मिलित रूप से ऊपर फैली हुई रहती हैं।[117]

सुपरिणाम

• आकाश तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा मानसिक चेतनाओं को पोषण देती है। नि:स्वार्थ भावना का निर्माण कर अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के विकारों को दूर करती है। • त्रिशूल मुद्रा का प्रयोग आज्ञा चक्र को जागृत करते हुए बुद्धि को तीक्ष्ण एवं व्यापक बनाता है। • दर्शन केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा वीतरागता की ओर अग्रसर करती है। इससे पूर्वाभास, अन्तर्दृष्टि आदि अतिन्द्रिय क्षमताओं का विकास होता है तथा आध्यात्मिक उन्नति एवं चित्त की स्थिरता में विशेष सहायता प्राप्त होती है। • पीयूष ग्रन्थि को प्रभावित करते हुए यह शारीरिक हलन-चलन, हृदय की धड़कन, शरीर तापक्रम, रक्त शर्करा आदि को नियन्त्रित रखती है।

द्वितीय स्थिति

त्रिशूल एक आक्रामक शस्त्र है जो धर्मशत्रुओं के विनाश का सूचक है। इस दूसरे प्रकार में हथेलियाँ आपस में सटी हुई मध्यभाग में रहती है, कनिष्ठिका हथेली में मुड़ती है तथा शेष अंगुलियाँ परस्पर में किंचित अन्तर रखती हुई अग्रभागों का स्पर्श करती है।[118]

सुपरिणाम

• इस त्रिशूल मुद्रा को धारण करने से शरीरस्थ जल एवं वायु तत्त्व संतुलित रहते हैं। जिसके कारण शरीर एवं जीवन की सुरक्षा होती है। यह मुद्रा शारीरिक तापमान, रुधिर अभिसंचरण एवं हृदय की कार्यपद्धति को विशेष रूप से नियंत्रित रखती है। • स्वाधिष्ठान एवं अनाहत चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा कलात्मक एवं सृजनात्मक कार्यों में प्रवृत्त करती है। उदारता, सहकारिता, पापभीरूता आदि भावों को जागृत करती है। शंकालु वृत्ति, भावात्मक अस्थिरता, नशे की आदत आदि पर नियंत्रण करती है। • स्वास्थ्य एवं आनंद केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा कामवासनाओं के परिशोधन एवं

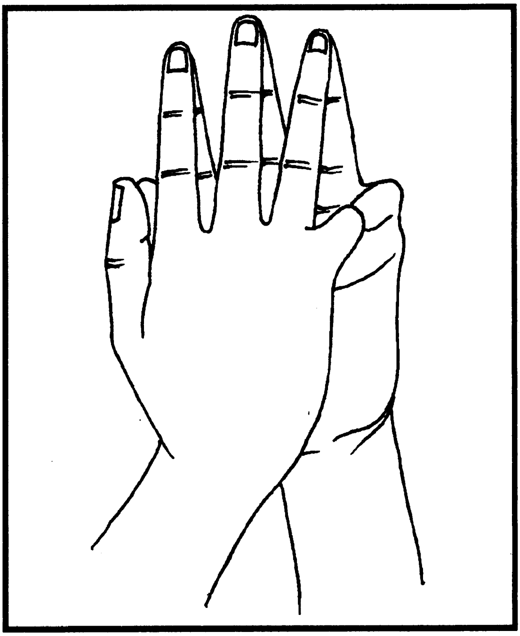

त्रिशूल मुद्रा-2

संतुलन में सहायक बनती है। यह मुद्रा शारीरिक ऊर्जा एवं जैविक विद्युत का संचय गृह है। साधना की दृष्टि से आध्यात्मिक उन्नति में सहायक बनती है।

100. उपकेशिनी मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा जापानी बौद्ध की धार्मिक क्रियाओं में मंत्र पठन के साथ उपासक या पुजारी द्वारा धारण की जाती है। यह मुद्रा अपने नाम के अनुसार उपकेशिनी देवता से सम्बन्धित है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

इस असंयुक्त मुद्रा में एक हाथ की तीन अंगुलियाँ मुड़ी होती है, अंगूठा अंगुलियों के ऊपर रखा होता है तथा मध्यमा अंगुली सीधी ऊपर की दिशा में रहती है।[119]

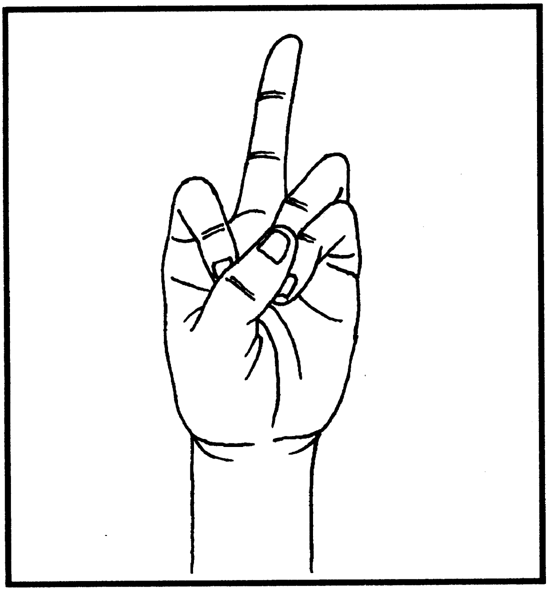

उपकेशिनी मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का नियमित प्रयोग पृथ्वी एवं आकाश तत्त्व को संतुलित रखता है। यह शरीर के वजन, अस्थितंत्र एवं स्थूलता आदि को नियंत्रित रखती है। • मूलाधार एवं आज्ञा चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण करती है। सहजानन्द की प्राप्ति करवाती है एवं अतिन्द्रिय शक्तियों का जागरण करती है। • शक्ति एवं दर्शन केन्द्र को सक्रिय करने में यह मुद्रा विशेष उपयोगी है। यह उत्तेजना आदि को नियंत्रित कर पूर्वाभास, अतिन्द्रिय शक्ति एवं अन्तर्दृष्टि का विकास करती है। • प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि के कार्यों का नियमन करते हुए यह मुद्रा शारीरिक गर्मी को संतुलित रखती है तथा व्यवहार को सुंदर एवं वाणी को मधुर बनाती है। यौन विकार एवं प्रजनन अंग की समस्याओं का निवारण करती है। साधक बुद्धिशाली, तत्त्वज्ञानी, कवि, लेखक, मानव जाति का प्रेमी बनता है।

101. उपाय पारमिता मुद्रा

यह मुद्रा गर्भधातु मण्डल से सम्बन्धित है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दोनों हथेलियों को शरीर की दिशा में करके अंगूठों को भीतर मोड़ें, मध्यमा और अनामिका अंगूठे पर मुड़ी हुई रहें तथा उभय हाथों की तर्जनी एवं कनिष्ठिका के अग्रभाग आपस में संलग्न रहने पर उपाय पारमिता मुद्रा बनती है।[120]

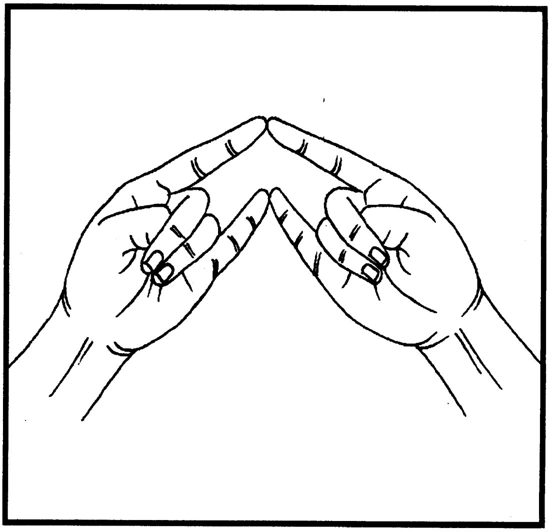

उपाय पारमिता मुद्रा

सुपरिणाम

• उपाय पारमिता मुद्रा की साधना अग्नि एवं वायु तत्त्व में संतुलन प्रस्थापित करते हुए स्नायुतंत्र की स्थिति स्थापकता बनाए रखती है विचार शक्ति में सहायक बनती है और त्वचा एवं दृष्टि सम्बन्धी विकारों को दूर करती है। • मणिपुर एवं विशुद्धि चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा मनोविकारों का शमन एवं परमार्थ रूचि का वर्धन करती है, अतिन्द्रिय क्षमता के प्रसुप्त बीजांकुरों को प्रस्फुटित करती है तथा अचेतन मन एवं चित्त संस्थान को प्रभावित करती है। • तैजस एवं विशुद्धि केन्द्र को जागृत करते हुए उच्चतर चेतना और आत्मिक शक्तियों के विकास में उपयोगी है। • एड्रिनल, पेन्क्रियाज,

थायरॉइड एवं पेराथायरॉइड ग्रन्थियों के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीर के सभी अंगों में शक्ति उत्पन्न करती है। यह हड्डियों के विकास, घाव भरने एवं रक्त प्रवाह को नियंत्रित करने में भी सहायक बनती है।

102. उष्णीष मुद्रा

विधि

दोनों हथेलियों को आमने-सामने कर अंगूठों को भीतर की ओर मोड़ें, दोनों अंगूठे बाहर की तरफ से एक-दूसरे को स्पर्श करें, शेष सभी अंगुलियाँ अंगूठों को स्पर्श करती हुई रहें, इस तरह उष्णीष मुद्रा बनती है।[121]

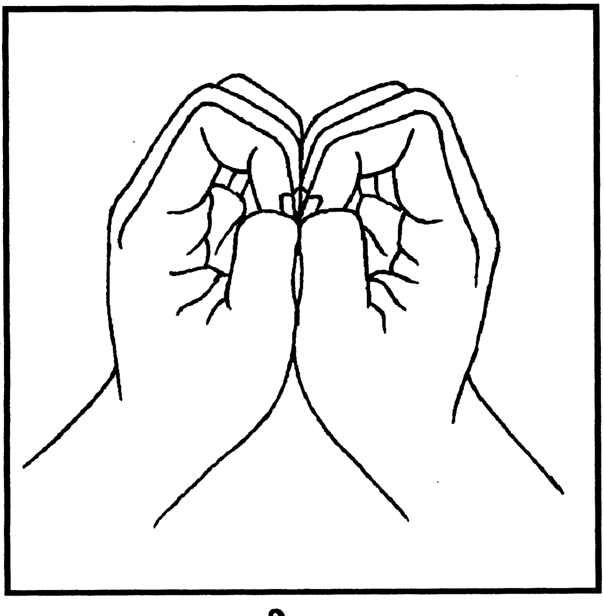

उष्णीष मुद्रा

सुपरिणाम

• इस मुद्रा का प्रयोग अग्नि एवं पृथ्वी तत्त्व को संतुलित रखता है। यह मुद्रा शारीरिक तापमान को नियंत्रित रखते हुए सभी अंगों को सक्रिय रखती है। रुधिर, मांस, चर्बी, अस्थि आदि के निर्माण में सहायक बनती है। शरीर को शक्तिशाली एवं सुदृढ़ बनाती है। स्नायु तंत्र की स्थिति स्थापकता बढ़ाती है।
• मणिपुर एवं मूलाधार चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा आत्मविश्वास को

बढ़ाती है और व्यक्तित्व बोध करवाती है। भावनात्मक अस्थिरता, क्रोध आदि को दूर करती है। • तैजस एवं शक्ति केन्द्र ऊर्जा का स्रोत और पाचन क्रिया के समग्र रसों एवं स्रावों का मूलभूत आधार है। इनसे ऊर्जा का ऊर्ध्वीकरण एवं साधना में निखार आता है।

103. वैश्रवण मुद्रा

वैश्रवण का एक अर्थ है कुबेर। कुबेर को धन का देवता माना जाता है। इस मुद्रा के द्वारा उस देव को संतुष्ट कर बाह्य धन की कामना को पूर्ण किया जाता है।

विधि

हथेलियाँ मध्य भाग में स्पर्श करती हुई, अंगूठा और तर्जनी ऊपर उठी हुई, अंगूठों की बाह्य किनारियाँ मिली हुई, मध्यमा और अनामिका अग्रभाग पर स्पर्श करती हुई तथा कनिष्ठिका हथेली में मुड़ी हुई रहने पर वैश्रवण मुद्रा बनती है।[122]

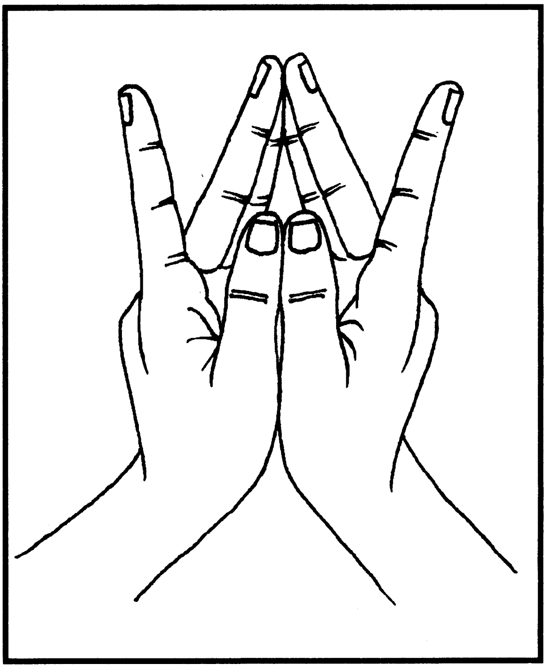

वैश्रवण मुद्रा

सुपरिणाम

● आकाश तत्त्व को प्रभावित करते हुए वैश्रवण मुद्रा शरीरस्थ विष द्रव्यों को दूर करती है तथा दृष्टि श्रवण एवं स्मरण शक्ति का विकास करती है। ● वैश्रवण मुद्रा आज्ञा चक्र को जागृत करते हुए अतिन्द्रिय शक्ति का विकास करती है। ● पीयूष ग्रन्थि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा मानसिक विकास, रक्त के दबाव, प्रजनन अंगों के विकास को प्रभावित करती है।

104. वज्र कश्यप मुद्रा

जापानी बौद्ध धर्म में इस मुद्रा के निम्न दो प्रकार प्रचलित हैं-

प्रथम प्रकार

हथेलियों को एक-दूसरे की विपरीत दिशा में रखते हुए मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को लगभग 30^0 कोण पर फैलाते हुए अन्तर्ग्रथित करें, तर्जनी को फैलाते हुए उनके अग्रभागों को जोड़ें तथा अंगूठों को सीधा रखने पर वज्र कश्यप मुद्रा का प्रथम प्रकार बनता है।[123]

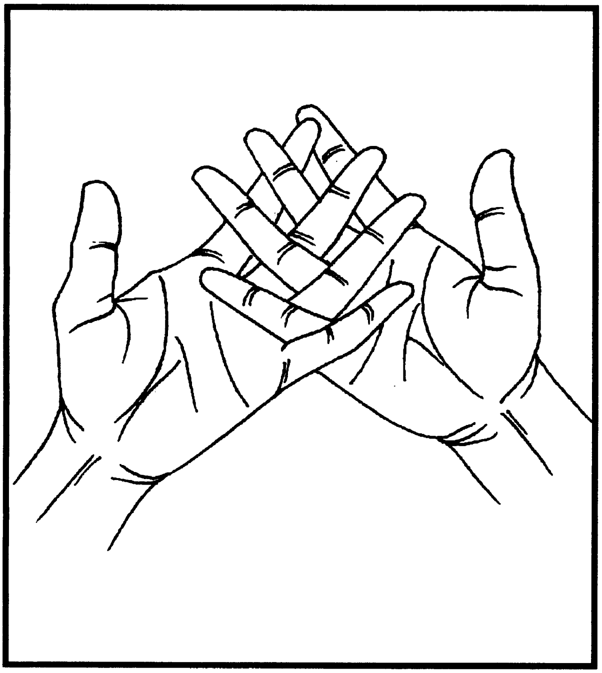

वज्र कश्यप मुद्रा-1

सुपरिणाम

वज्र कश्यप मुद्रा की नियमित साधना से अग्नि एवं वायु संतुलित रहते हैं। यह छाती, फेफड़ें, हृदय, पाचन तंत्र, जठर, तिल्ली, यकृत आदि अंगों को प्रभावित करती है। रोग प्रतिरोधक शक्ति का विकास करती है। एसिडिटी, दृष्टि विकार, एनीमिया, पीलिया, पाचन गड़बड़ी को दूर करती है। • इस मुद्रा के द्वारा मणिपुर एवं अनाहत चक्र प्रभावित होते हैं। • तैजस एवं आनंद केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा काम-वासनाओं पर नियंत्रण करती है। • एड्रीनल, पैन्क्रियाज एवं थायमस ग्रन्थि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा व्यक्ति को साहसी, निर्भयी, सहनशील, आशावादी, आत्म विश्वासी एवं सक्रिय बनाती है। रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास करती है और कामवासनाओं को नियंत्रित रखती है।

द्वितीय

दूसरे प्रकार में हथेलियाँ ऊपर की तरफ रहती है शेष पूर्व मुद्रा के समान है।[124]

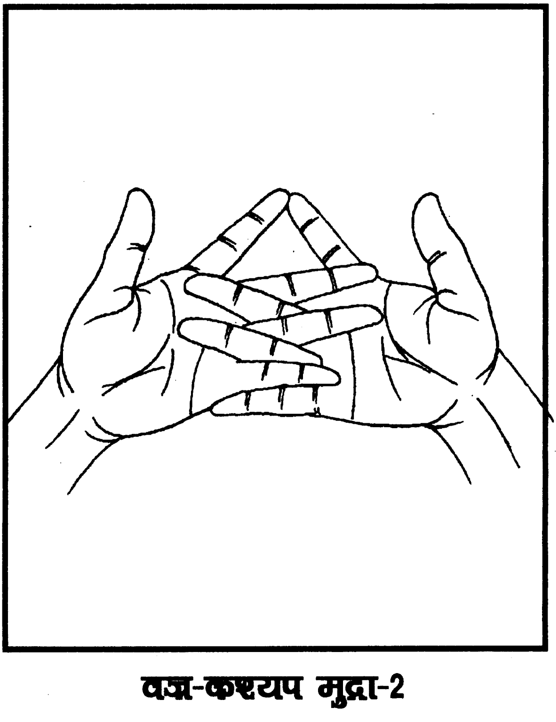

वज्र-कश्यप मुद्रा-2

सुपरिणाम

• पृथ्वी एवं अग्नि तत्त्व को संतुलित रखते हुए यह मुद्रा शरीर को बलशाली, स्वस्थ, तंदुरूस्त एवं तेजयुक्त बनाती है तथा स्नायु तंत्र की स्थिति स्थापकता बनाए रखती है। • वज्र कश्यप मुद्रा मूलाधार एवं मणिपुर चक्र को प्रभावित करते हुए संकल्प बल एवं पराक्रम बढ़ाती है। मनोविकारों का शमन करती है। ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण कर सहजानन्द की प्राप्ति करवाती है। • शक्ति एवं तैजस केन्द्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा क्रोधादि कषाय एवं काम वृत्तियों को नियंत्रित रखती है। कामवासनाओं को संतुलित रखती है। ऊर्जा का संचय एवं ऊर्ध्वीकरण कर वैयक्तिक विकास में सहायक बनती है। • प्रजनन, एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा संचार व्यवस्था, हलन-चलन, श्वसन, रक्त परिभ्रमण, पाचन, अनावश्यक पदार्थों के निष्कासन, प्रजनन अंगों सम्बन्धी रोगों के निवारण में विशेष सहायक बनती है।

105. वज्र माला मुद्रा

यहाँ वज्रमाला से तात्पर्य पुष्पमाला है। यह मुद्रा प्रतीक रूप में गूंथी हुई माला की आकृति दर्शाती है। अत: इसे वज्रमाला मुद्रा कहते हैं। शेष वर्णन पूर्ववत।

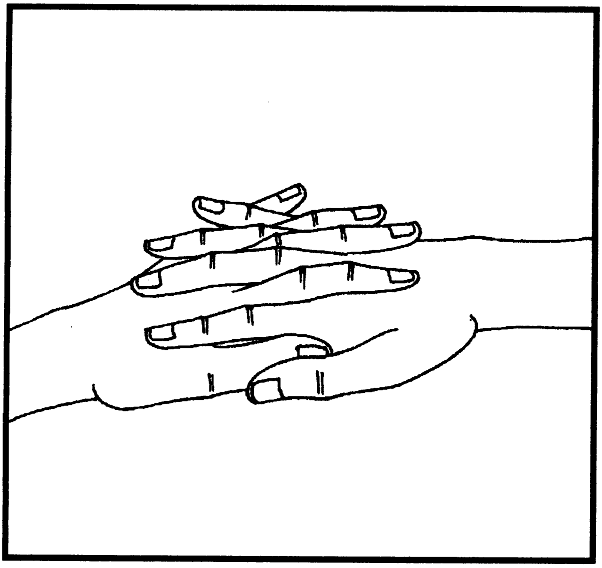

वज्रमाला मुद्रा

विधि

हथेलियों को अधोमुख कर अंगुलियों और अंगूठों को परस्पर में पृष्ठ भाग की तरफ अन्तर्ग्रथित करने पर वज्र माला मुद्रा बनती है।[125]

सुपरिणाम

• वज्रमाला मुद्रा की साधना जल एवं अग्नि तत्त्व में संतुलन स्थापित करती है। यह शरीर को स्वस्थता प्रदान करते हुए यौन ग्रन्थियों, चेता कोषों, मांस, रजवीर्य में अस्थिमज्जा को उत्पन्न करती है। अग्निरस, पाचक रस एवं पित्त रस आदि का संतुलन रखती है। • स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा यौन विकारों का शमन एवं समाज के प्रति जागरूक बनाती है। • स्वास्थ्य एवं तैजस केन्द्र को प्रभावित कर यह मुद्रा काम वृत्ति का शोधन एवं ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन करती है।

106. वज्रमुष्टि मुद्रा

बौद्ध परम्परा में यह मुद्रा तीन रूपों में दर्शायी जाती है। प्रथम शक्ति-सामर्थ्य की सूचक है, द्वितीय मातृचिह्न समझी जाती है और तीसरा रूप दरवाजा खोलने का सूचक है। शेष वर्णन पूर्ववत।

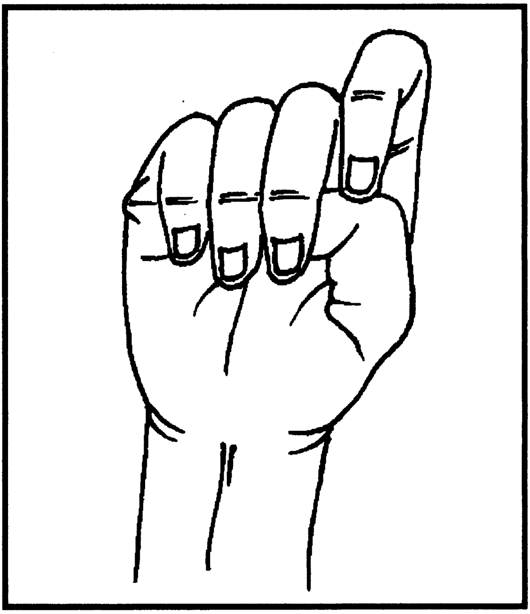

वज्रमुष्टि मुद्रा-1

प्रथम प्रकार

दायें अंगूठे को हथेली में मोड़कर मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका को अंगूठे के ऊपर स्थापित करें तथा तर्जनी को मोड़ उसे अंगूठे के जोड़ से स्पर्शित करवाने पर वज्रमुष्टि का प्रथम प्रकार बनता है।[126]

सुपरिणाम

वज्रमुष्टि मुद्रा के प्रयोग से शरीरस्थ पृथ्वी एवं जल तत्त्व संतुलित रहते हैं। यह शरीर को मजबूत, स्वस्थ एवं तंदुरूस्त रखती है। शरीर के तापमान एवं रूधिर आदि की कार्यपद्धति को नियमित रखती है। • मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा पेट के पर्दे के नीचे स्थित सभी अवयवों के कार्यों का नियमन करती है। यौन हार्मोन उत्पन्न करती है। तनाव एवं प्रतिकूलताओं से लड़ने की क्षमता को उत्पन्न तथा उत्सर्जन एवं विसर्जन के कार्य में सहायक बनती है। • शक्ति एवं स्वास्थ्य केन्द्र को जागृत करते हुए यह शारीरिक एवं जैविक विद्युत का उत्पादन एवं संचय करती है। • प्रजनन ग्रंथि के स्राव का संतुलन करते हुए यह ज्ञानतंतुओं, मज्जा कोषों, हड्डियों, बोन मेरो का नियमन करती है।

द्वितीय प्रकार

दूसरे प्रकार में अंगूठा हथेली में प्रविष्ट हुआ और चारों अंगुलियाँ, अंगूठे के ऊपर मुड़ी हुई रहती है।[127]

तृतीय प्रकार

जापान में वज्रमुष्टि मुद्रा का यह प्रकार 'कोंगो-केन्-इन्' से प्रसिद्ध है। इसमें हथेलियाँ अन्दर की तरफ, मध्यमा और अनामिका हथेली में मुड़ी हुई, अंगूठा द्वयांगुलियों के नीचे दबा हुआ, तर्जनी और कनिष्ठिका फैली हुई, तर्जनी के अग्रभाग स्पर्श करते हुए तथा कनिष्ठिकाएँ प्रथम जोड़ पर गूंथी हुई रहती है तब वज्रमुष्टि मुद्रा का तीसरा प्रकार बनता है।[128]

सुपरिणाम

• यह मुद्रा आकाश एवं जल तत्त्व का संतुलन एवं नियमन करते हुए हृदय में रक्त आपूर्ति सम्बन्धी समस्याओं को पूर्ण करती है। • आज्ञा एवं स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत कर यह मुद्रा वायु एवं आकाश तत्त्व का नियमन

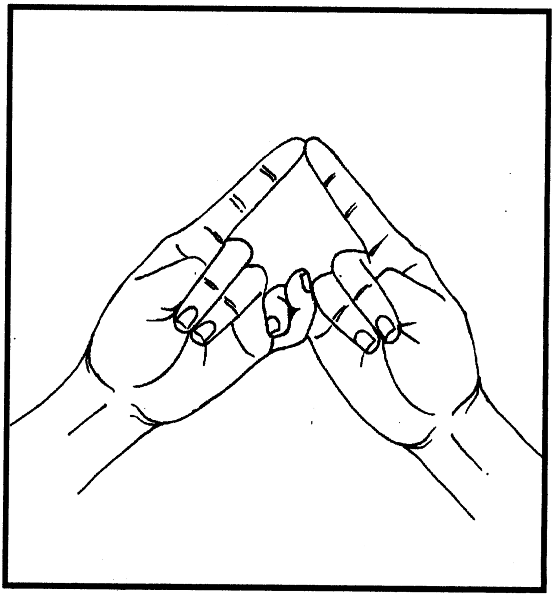

वज्रमुष्टि मुद्रा-3

करती है। इसी के साथ पेट के पर्दे के नीचे स्थित सभी अवयवों के कार्य का भी नियमन करती है। • पिच्युटरी एवं नाभि केन्द्र के स्राव को सक्रिय कर निर्णायक शक्ति, स्मरणशक्ति, देखने-सुनने की शक्ति का नियमन करती है। बालकों में हीन वृत्ति, स्वच्छंदता, भावशून्यता एवं शरारतों पर नियंत्रण करती है।

107. वज्रसत्त्व मुद्रा

यह मुद्रा गर्भधातु मण्डल, वज्रधातु मण्डल आदि धार्मिक क्रियाओं के दौरान दिखायी जाती है। यह वज्र सत्त्व मुद्रा बोधिसत्त्व की सूचक है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में करके द्वयांगुष्ठों को ऊपर उठायें, तर्जनी को बाहर की तरफ से अन्तर्ग्रथित करें, मध्यमा को ऊर्ध्वदिशा में सीधा रखें तथा अनामिका और कनिष्ठिका को अग्रभाग पर अन्तर्ग्रथित करने पर वज्रसत्त्व मुद्रा बनती है।[129]

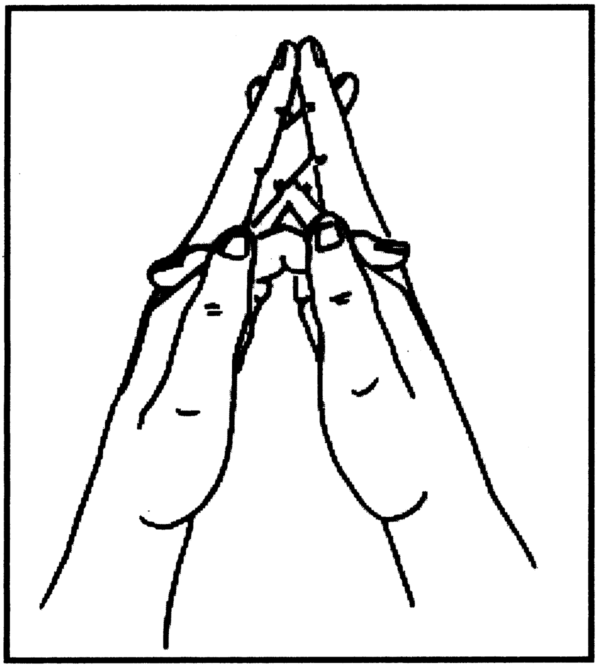

वज्रसत्त्व मुद्रा

108. वज्र श्री मुद्रा

इस मुद्रा का सामान्य वर्णन पूर्ववत है।

विधि

हथेलियों को परस्पर में स्पर्शित कर मध्यभाग की तरफ अभिमुख करें। अंगूठे ऊपर की ओर प्रसरित, तर्जनी हल्की सी मुड़ी हुई, मध्यमा के अग्रभाग स्पर्श करते हुए तथा अनामिका और कनिष्ठिका हथेली की तरफ मुड़ी हुई एवं अपने प्रतिरूप को दूसरे पोर पर स्पर्श करती हुई रहें, तब वज्रश्री मुद्रा बनती है।[130]

सुपरिणाम

• वज्रश्री मुद्रा का प्रयोग जल एवं पृथ्वी तत्त्व को संतुलित करते हुए शरीर एवं जीवन प्रवाह को सुरक्षित रखता है। शरीर के तापमान को संतुलित रखता है तथा रूधिर आदि की कार्य पद्धति का नियमन करता है। • स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा विपरीत परिस्थितियों के प्राप्त

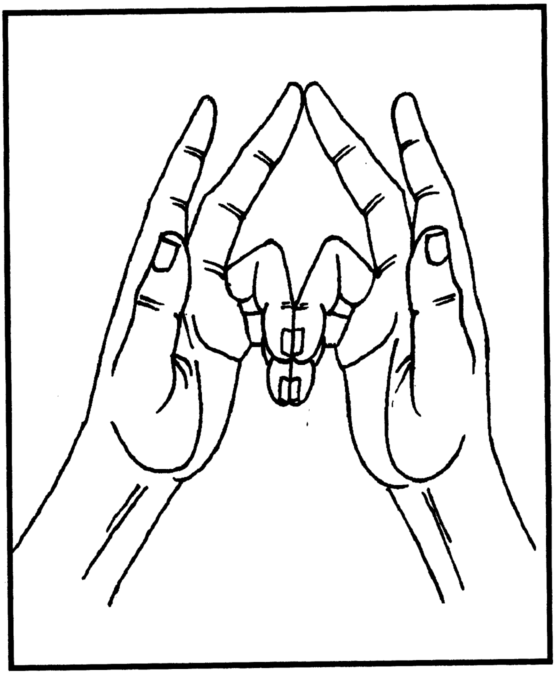

वज्र श्री मुद्रा

होने पर उनसे लड़ने की क्षमता का निर्माण करती है। • प्रजनन ग्रन्थि के स्राव का संतुलन करते हुए यह मुद्रा प्रजनन कार्य में सहायक बनती है। जननेन्द्रिय सम्बन्धी विकारों को दूर करती है। बालों के बढ़ने,स्वर सुधारने एवं शरीर के तापक्रम को सुधारने में सहायक बनती है।

109. वर काय समय मुद्रा

धार्मिक क्रियाओं से सन्दर्भित प्रस्तुत मुद्रा का वर्णन पूर्ववत समझना चाहिए।

विधि

हथेलियों को मध्यभाग में रखें, फिर दायां अंगूठा बायें पर क्रॉस करता हुआ रहें, तर्जनी ऊपर उठी हुई और हल्की सी मुड़ी हुई रहें, मध्यमा अग्रभाग पर स्पर्श करती हुई तथा अनामिका और कनिष्ठिका अग्रभाग पर अन्तर्ग्रंथित रहने पर 'वर काय समय' मुद्रा बनती है।[131]

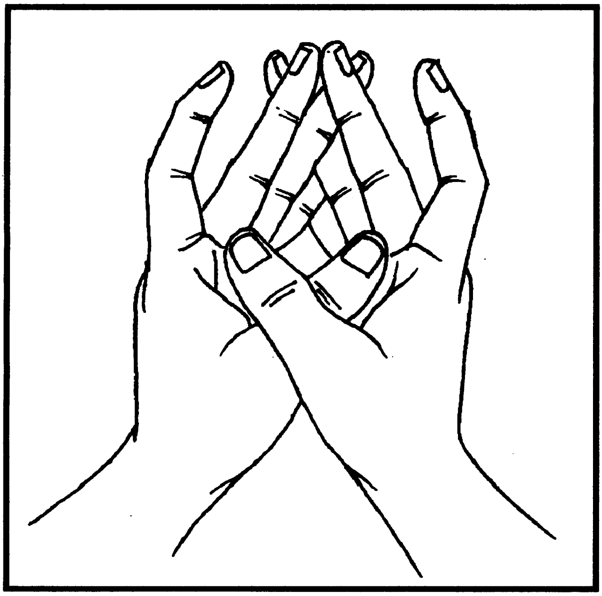

वर काय समय मुद्रा

सुपरिणाम

• उपरोक्त मुद्रा को धारण करने से वायु तत्त्व संतुलित रहता है। यह विशिष्ट शक्ति के रूप में शरीर के प्रत्येक भाग का संचालन करती है। मानसिक शक्ति एवं स्मरण शक्ति का पोषण करती है। • इस मुद्रा का प्रभाव अनाहत एवं विशुद्धि चक्र पर पड़ता है। प्राणधारण एवं उसके सुनियोजन में सहायक बनते हुए अतिन्द्रिय क्षमता का प्रस्फुटन करती है। कलात्मक एवं सृजनात्मक कार्यों में प्रवृत्ति को बढ़ाती है। • विशुद्धि एवं आनंद केन्द्र को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा अनावश्यक वृत्तियों को सहज रूप से शमित करती है। भावधारा को निर्मल एवं परिष्कृत करती है। थायरॉइड-पैराथायरॉइड एवं थायमस ग्रन्थि के स्राव को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा आवाज, स्वभाव एवं शारीरिक स्थूलता आदि को नियंत्रित रखती है।

110. वायु मुद्रा

मुद्रा शास्त्र में वर्णित वायु मुद्रा के विभिन्न प्रकारों में प्रस्तुत मुद्रा जापानी बौद्धों के द्वारा धारण की जाती है। यह संयुक्त मुद्रा समस्त बाधाओं को हवा के द्वारा उड़ा ले जाने की सूचक है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

उभय हथेलियों को मध्यभाग की ओर अभिमुख कर अंगूठों को हथेली के भीतर मोड़ें, तर्जनी के सिवाय शेष अंगुलियों को अंगूठों के ऊपर स्थापित करें तथा तर्जनी को मध्य दिशा की ओर फैलाकर एवं प्रथम पोर को परस्पर जोड़ने पर वायु मुद्रा का यह प्रकार निष्पन्न होता है।[132]

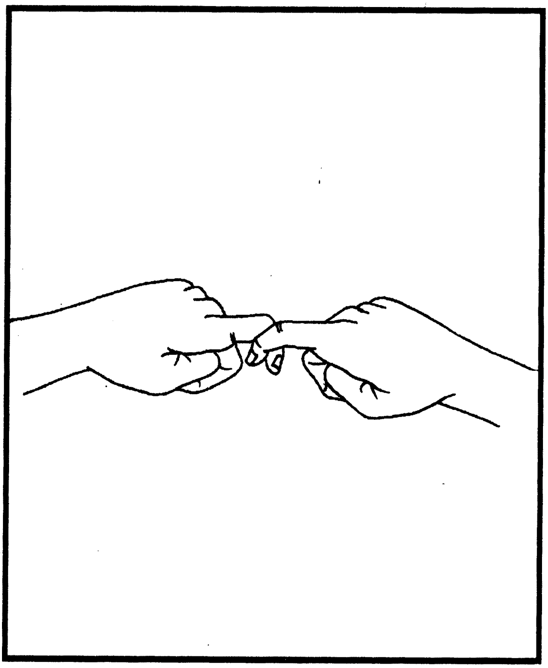

वायु मुद्रा

सुपरिणाम

• वायु मुद्रा का प्रभाव शरीरस्थ जल तत्त्व पर पड़ता है। यह जीवन प्रवाह को सुरक्षित एवं शरीर के तापमान को नियंत्रित रखते हुए रूधिर आदि की कार्य पद्धति में महत्त्वपूर्ण सहयोग देती है। • स्वाधिष्ठान चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा बलिष्ठता एवं स्फूर्ति को बढ़ाती है। स्वास्थ्य केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा ऊर्जा का उर्ध्वारोहण करती है और आत्म विकास में सहायक बनती है।

111. विद्या मुद्रा

यह तान्त्रिक मुद्रा वज्रधातु मण्डल आदि धर्म प्रसंगों पर धारण की जाती है। सामान्य वर्णन पूर्ववत।

विधि

इस मुद्रा में दायीं हथेली मध्यभाग की तरफ तर्जनी और कनिष्ठिका ऊर्ध्वप्रसरित, मध्यमा और अनामिका हथेली में मुड़ी हुई, अंगूठा भी हथेली में मुड़ा हुआ, इसका अग्रभाग मध्यमा के प्रथम जोड़ पर स्पर्श करता हुआ रहे। बायां अंगूठा दायें से फैली हुई कनिष्ठिका को पकड़े हुए, तर्जनी फैली हुई, दूसरी तर्जनी के आंतरिक भाग को स्पर्श करती हुई तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका हथेली में मुड़ी रहती है तब विद्या मुद्रा बनती है।[132]

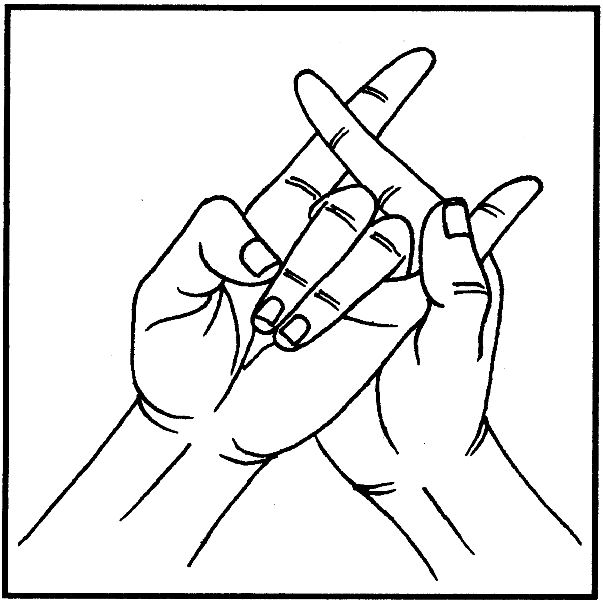

विद्या मुद्रा

सुपरिणाम

• पृथ्वी, आकाश एवं जल तत्त्व को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीर को स्वस्थ, मजबूत एवं तंदरूस्त बनाती है। • मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं आज्ञा चक्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा सूक्ष्म विद्युत प्रवाह का उत्पादन कर ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण करती है। अतिन्द्रिय ज्ञान आदि को प्रकट करती है। • शक्ति, स्वास्थ्य एवं दर्शन केन्द्र को जागृत करते हुए यह मुद्रा साधना में सहायक बनती है, कामवृत्तियों का नियंत्रण एवं परिशोधन करती है। शारीरिक ऊर्जा एवं जैविक विद्युत का संचय करती है। विकास को सहज एवं सरल बनाती है। • प्रजनन एवं पीयूष ग्रन्थि के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा शरीर की

आन्तरिक हलन-चलन, हृदय की धड़कन, शरीर के तापक्रम एवं शक्कर की मात्रा को नियंत्रित रखती है।

112. जेन्-इन् मुद्रा

यह मुद्रा कवच के लिए धारण की जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

हथेलियों को बाहर की तरफ करते हुए अंगूठों को मध्यमा के दूसरे पौर से स्पर्श करवायें, तर्जनियों को सीधी रखें, शेष अंगुलियों को हथेली में मोड़कर तर्जनी के अग्रभाग के समीप लायें। इस भाँति 'जेन्-इन्' मुद्रा बनती है। इस मुद्रा में हाथों में गति होती है।[134]

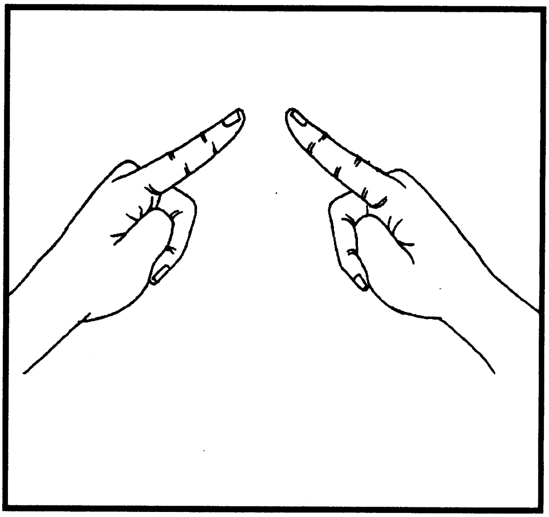

जेन्-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• जेन्-इन् मुद्रा का प्रयोग अग्नि तत्त्व को नियंत्रित एवं नियमित करता है। इससे शरीरस्थ अग्नि का जागरण, स्नायु तंत्र की स्थिति स्थापकता एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। • मणिपुर चक्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा मनोविकारों को घटाती है। परमार्थ रुचि का वर्धन करती है। संकल्पबल, आत्मबल एवं पराक्रम को बढ़ाती है। • एड्रीनल एवं पैन्क्रियाज शक्ति के स्राव को संतुलित करते हुए यह मुद्रा पाचन तंत्र सम्बन्धी विकारों को दूर करती है।

व्यक्ति को साहसी, निर्भयी सहनशील एवं आशावादी बनाती है तथा अल्सर, मधुमेह, यकृत, तिल्ली एवं आँतों से सम्बन्धित रोगों का निवारण करती है।

113. जु-कौ-इन् मुद्रा

भारत में यह गन्ध मुद्रा के नाम से प्रसिद्ध है। यह मुद्रा पूजा के दरम्यान देवताओं का विलेपन करने के प्रतीक रूप में की जाती है। शेष वर्णन पूर्ववत।

विधि

दायें हाथ को ऊपर उठाते हुए सामने की तरफ सीधा रखें। बायां हाथ दायें हाथ की कलाई के नीचे के भाग को पकड़ता हुआ रहने पर 'जु-कौ-इन्' मुद्रा बनती है।[135]

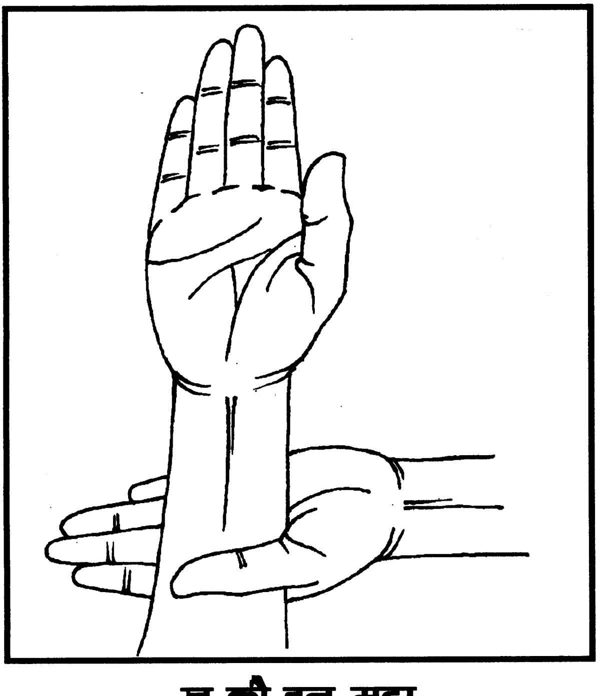

जु-कौ-इन् मुद्रा

सुपरिणाम

• जु-कौ-इन् मुद्रा की निरंतर साधना वायु एवं आकाश तत्त्व को संतुलित रखती है। शरीरस्थ विष द्रव्यों का निष्कासन और हृदय की शुद्धि में सहायक बनती है। • अनाहत एवं सहस्रार चक्र को प्रभावित कर कलात्मक उमंगे

रसानुभूति एवं कोमल संवेदनाओं को उत्पन्न करती है, उदारता, सहकारिता परमार्थ परायणता आदि गुणों का निर्माण करती है, कामेच्छाओं का नियमन कर आध्यात्मिक एवं बौद्धिक विकास में सहायक बनती है। • आनंद एवं ज्योति केन्द्र को सक्रिय करते हुए यह मुद्रा कषाय, नोकषाय, कामवासना, उत्तेजना आदि का उपशमन करती है। भावों को निर्मल एवं परिष्कृत बनाती है। • थायमस एवं पिनियल ग्रन्थि के स्राव को प्रभावित करते हुए यह मुद्रा बालकों के विकास एवं कामेच्छा नियंत्रण में विशेष सहायक बनती है।

मुद्रा विशेषज्ञों के अनुसार मुद्राओं में रहा हुआ आध्यात्मिक पुट उन्हें अधिक प्रभावी बनाता है। इन्हें धारण करते समय व्यक्ति के भीतर स्वयमेव ही सकारात्मक विचारों का उद्भव होता है। आन्तरिक जगत की यही निर्मलता बाह्य जीवन में भी कल्याण भावों का विस्तार करती है। ऐन्द्रिक सुखों की उपलब्धि करवाती है। इन मुद्राओं का हमारे आभ्यंतर एवं बाह्य व्यक्तित्व के समुत्थान में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा हुआ है।

सन्दर्भ-सूची

1. *GDE, एसोटेरिक मुद्राज़ ऑफ जापान, गौरी देवी, पृ. 38*
2. *LCS, पृ. 148*
3. *LCS, पृ. 181*
4. *GDE, पृ. 42*
5. *(क) GDE, पृ. 146 (ख) LCS, पृ. 144*
6. *LCS, पृ. 181*
7. *(क) GDE, पृ. 21 (ख) LCS, पृ. 144*
8. *LCS, पृ. 119*
9. *GDE, पृ. 67*
10. *GDE, पृ.*
11. *GDE, पृ. 85*
12. *GDE, पृ. 79*
13. *GDE, पृ. 51*
14. *(क) GDE, पृ. 53 (ख) LCS, पृ. 72*
15. *(क) GDE, पृ. 328 (ख) LCS, पृ. 208*
16. *GDE, पृ. 31*
17. *(क) GDE, पृ. 300 (ख) LCS, पृ. 257*
18. *(क) GDE, पृ. 284 (ख) LCS, पृ. 255*

19. GDE, पृ. 69
20. GDE, पृ. 223
21. (क) GDE, पृ. 224 (ख) LCS, पृ. 69
22. GDE, पृ. 3
23. GDE, पृ. 67
24. GDE, पृ. 50
25. GDE, पृ. 66
26. GDE, पृ. 33
27. (क) GDE, पृ. 22 (ख) LCS, पृ. 195
28. LCS, पृ. 152
29. (क) EDS, पृ. 95 (ख) GDE, पृ. 33 (ग) LCS, पृ. 160
30. (क) GDE, पृ. 197 (ख) LCS, पृ. 231
31. LCS, पृ. 142
32. LCS, पृ. 175
33. LCS, पृ. 186
34. GDE, पृ. 27
35. GDE, पृ. 80
36. EDS, पृ. 34
37. GDE, पृ. 35
38. (क) GDE, पृ. 16 (ख) LCS, पृ. 169
39. GDE, पृ. 46
40. (क) GDE, पृ. 75 (ख) LCS, पृ. 62
41. GDE, पृ. 37
42. GDE, पृ. 63-64
43. GDE, पृ. 85
44. LCS, पृ. 66
45. GDE, पृ. 63
46. (क) GDE, पृ. 7 (ख) LCS, पृ. 72
47. LCS, पृ. 67
48. GDE, पृ. 5
49. GDE, पृ. 93
50. GDE, पृ. 22
51. (क) GDE, पृ. 31 (ख) LCS, पृ. 155
52. GDE, पृ. 67
53. (क) GDE, पृ. 123 (ख) LCS, पृ. 213
54. GDE, पृ. 37
55. EDS, पृ. 217
56. EDS, पृ. 86
57. EDS, पृ. 86
58. EDS, पृ. 86
59. EDS, पृ. 86

60. *EDS, पृ. 86*
61. *EDS, पृ. 86*
62. *EDS, पृ. 86*
63. *(क) GDE, पृ. 17* *(ख) LCS, पृ. 126*
64. *(क) GDE, पृ. 75* *(ख) LCS, पृ. 59*
65. *GDE, पृ. 62*
66. *GDE, पृ. 6*
67. *(क) GDE, पृ. 27* *(ख) LCS, पृ. 89*
68. *GDE, पृ. 331*
69. *GDE, पृ. 55*
70. *GDE, पृ. 79*
71. *(क) GDE, पृ. 336* *(ख) LCS, पृ. 222*
72. *GDE, पृ. 39*
73. *GDE, पृ. 68*
74. *GDE, पृ. 25*
75. *GDE, पृ. 8*
76. *GDE, पृ. 75*
77. *GDE, पृ. 130*
78. *LCS, पृ. 94*
79. *LCS, पृ. 153*
80. *LCS, पृ. 302*
81. *LCS, पृ. 92*
82. *GDE, पृ. 46*
83. *(क) EDS, पृ. 115* *(ख) GDE, पृ. 32* *(ग) LCS, पृ. 221*
84. *GDE, पृ. 131*
85. *EDS, पृ. 144*
86. *GDE, पृ. 44*
87. *GDE, पृ. 26*
88. *GDE, पृ. 26*
89. *GDE, पृ. 26*
90. *GDE, पृ. 27*
91. *(क) GDE, पृ. 289* *(ख) LCS, पृ. 256*
92. *(क) GDE, पृ. 172* *(ख) LCS, पृ. 156*
93. *(क) GDE, पृ. 6* *(ख) LCS, पृ. 73*
94. *(क) GDE, पृ. 259* *(ख) LCS, पृ. 87*
95. *LCS, पृ. 223*
96. *LCS, पृ. 254*
97. *GDE, पृ. 41*
98. *(क) GDE, पृ. 64* *(ख) LCS, पृ. 83*
99. *GDE, पृ. 68*

100. (क) GDE, पृ. 41 (ख) LCS, पृ. 156
101. GDE, पृ. 66
102. GDE, पृ. 40
103. GDE, पृ. 68
104. (क) GDE, पृ. 151 (ख) LCS, पृ. 220
105. GDE, पृ. 335
106. LCS, पृ. 210
107. GDE, पृ. 47
108. LCS, पृ. 174
109. GDE, पृ. 46
110. LCS, पृ. 169
111. LCS, पृ. 200
112. LCS, पृ. 198
113. LCS, पृ. 200
114. (क) GDE, पृ. 127 (ख) LCS, पृ. 112
115. EDS, पृ. 95
116. GDE, पृ. 47
117. GDE, पृ. 8
118. (क) GDE, पृ. 299 (ख) LCS, पृ. 257
119. (क) GDE, पृ. 279 (ख) LCS, पृ. 252
120. LCS, पृ. 171
121. (क) GDE, पृ. 312 (ख) LCS, पृ. 164
122. (क) GDE, पृ. 239 (ख) LCS, पृ. 184
123. LCS, पृ. 93
124. LCS, पृ. 93
125. GDE, पृ. 83
126. EDS, पृ. 48
127. GDE, पृ. 8
128. (क) GDE, पृ. 75 (ख) LCS, पृ. 59
129. LCS, पृ. 111
130. (क) GDE, पृ. 136 (ख) LCS, पृ. 249
131. (क) GDE, पृ. 143 (ख) LCS, पृ. 218
132. (क) GDE, पृ. 4 (ख) LCS, पृ. 241
133. LCS, पृ. 91
134. (क) GDE, पृ. 5 (ख) LCS, पृ. 89
135. GDE, पृ. 46

अध्याय-11

उपसंहार

भौतिक एवं आध्यात्मिक चिकित्सा में उपयोगी मुद्राएँ

प्राणिक हीलिंग विशेषज्ञ के. के. जायसवाल एवं एक्युप्रेशर चिकित्सज्ञ शरद कुमार जायसवाल, वाराणसी के अनुसार कौन सा रोग किस मुद्रा से ठीक हो सकता है? उससे सम्बन्धित बौद्ध मुद्राओं का एक चार्ट प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान देना जरूरी है कि रोगों से छुटकारा पाने हेतु जिन मुद्राओं का सूचन कर रहे हैं, वे मुद्राएँ उन रोगों की चिकित्सा में मुख्य रूप से सहयोगी हैं, किन्तु सभी मनुष्यों की शारीरिक एवं मानसिक प्रकृति भिन्न-भिन्न होने से कई बार अन्य मुद्राओं का प्रयोग करना भी आवश्यक हो जाता है एतदर्थ मुद्रा विशेषज्ञों से जानकारी प्राप्त करने के बाद ही निर्धारित मुद्राओं से उपचार करना चाहिए।

- किसी भी मुद्रा को निरन्तर कुछ दिनों तक करने पर उसका प्रभाव पड़ता है।
- मुद्रा का प्रयोग सही विधि से एवं उसके प्रति श्रद्धा रखते हुए करना अनिवार्य है।
- पूजा उपासना या विशिष्ट साधना के दौरान यदि सम्यक ज्ञान पूर्वक मुद्रा का प्रयोग किया जाए तो भावधारा निर्मल होने से वे श्रेष्ठ फलदायी होती हैं।

शारीरिक उपचार में प्रभावी मुद्राएँ

अनिद्रा– वज्र रास्ये मुद्रा, मिहरित-गस्सहौ मुद्रा, त्रिशरणा मुद्रा, अधिष्ठान मुद्रा, न्यारै केन् इन् मुद्रा, रागराज मुद्रा, हकु शौ इन् मुद्रा, तेजस्

बोधिसत्त्व मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा।

आफरा– अजण्टटेम्बोरिन् इन् मुद्रा, अन् आयइन् मुद्रा, चक्र मुद्रा, धरणी अवलोकितेश्वर मुद्रा, तौ म्यो इन् मुद्रा, उष्णीष मुद्रा।

आलस्य– अग्निशाला मुद्रा, दैयेतोनोइन् मुद्रा, स्थिराबोधि मुद्रा, उष्णीष मुद्रा, वज्रबंध मुद्रा, उपकेशिनी मुद्रा, स इन् मुद्रा।

आँखों के रोग– पेंग्-खब्क्रवक्कलि मुद्रा, धूप मुद्रा, सै जै इन् मुद्रा, तेजस् बोधिसत्त्व मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, वैश्रवण मुद्रा, सूत्र मुद्रा, पद्यम् मुद्रा।

आँतों के रोग (अल्सर, आँतों में सूजन, आँतों में रुकावट आदि)– ध्यान मुद्रा, तौ म्यो इन् मुद्रा, उष्णीष मुद्रा, पुष्पमाला मुद्रा, दैयेतोनोइन् मुद्रा, अनुज मुद्रा, अष्टदल पद्म मुद्रा।

आमाशय सम्बन्धी विकार (अल्सर, पेट में गाँठ (Tumour), पेट में कीड़े)– पेंग् फ्रतब्रेखनन् मुद्रा, पेंग्-पेर्द्लोक मुद्रा, पुष्पमाला मुद्रा, दै ये तो नो इन् मुद्रा, तौ म्यो इन् मुद्रा, उष्णीय मुद्रा।

अण्डाशय (Testes पुरुष प्रजनन अंग) सम्बन्धी रोग– वज्ररास्ये मुद्रा, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-1, अनुज मुद्रा, बाण मुद्रा, वज्रमुष्टि मुद्रा, वायु मुद्रा।

अपच– विकसित पद्म मुद्रा, सेमुइ इन् मुद्रा, अनुज मुद्रा, अष्टदल पद्म मुद्रा, चित्त गुह्य मुद्रा, चौनेन् जुइन् मुद्रा, तौम्यो इन् मुद्रा।

अपस्मार मिरगी (Epilepsy Fits)– सूत्र मुद्रा, पाद्यम् मुद्रा, नीव इन् मुद्रा, सेगन् सेमुइ इन् मुद्रा, अष्टदल पद्म मुद्रा, कै शिन् इम् मुद्रा, तेजस् बोधिसत्त्व मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, वैश्रवण मुद्रा।

अकड़न (कपकपी Convulsion)– व्रजबंध मुद्रा, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-5, स्थिराबोधि मुद्रा, उष्णीष मुद्रा, तथागत दंष्ट्र मुद्रा, विद्या मुद्रा।

अस्थि तंत्र सम्बन्धी रोग (आर्थ्राइटिस्, जोड़ों में दर्द)– फुन्नु केन इन् मुद्रा, गे इन् मुद्रा, घण्टा वदना मुद्रा, होनजोन बु जौ नो इन् मुद्रा, न्यारै शिन् मुद्रा, पोथी मुद्रा, उपकेशिनी मुद्रा।

उल्टी– अधिष्ठान मुद्रा, रेंजे केन् इन् मुद्रा, अग्निचक्र मुद्रा, फुन्नु केन इन् मुद्रा, पाश मुद्रा, उपाय पारमिता मुद्रा, वज्र कश्यप मुद्रा-1।

उच्चरक्त चाप (High B.P.) – पाश मुद्रा, उपाय पारमिता मुद्रा, वज्र कश्यप मुद्रा-1, वज्र माला मुद्रा, नैवेद्य मुद्रा, चिन्तामणि मुद्रा।

ऊर्जा की कमी– वज्रदर्शे मुद्रा, सूत्र मुद्रा, जह् मुद्रा, पुष्पे मुद्रा, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-1, संकै से शौ इन् मुद्रा, सेगन् सेमुइ इन् मुद्रा, बुजौ इन् मुद्रा, फुत्सु कु यौ इन् मुद्रा, गे बकु गोकौ मुद्रा, गे कै इन् मुद्रा, खड्ग मुद्रा, महाज्ञान खडग् मुद्रा।

एसीडीटी– त्रैलोक्यविजय मुद्रा, अग्निचक्र शमन मुद्रा-1, हयग्रीवा मुद्रा, अग्रज मुद्रा, गोसन् जे मुद्रा, पाश मुद्रा, उपायपारमिता मुद्रा, वज्र कश्यप मुद्रा-1।

एलर्जी– वज्रदर्शे मुद्रा, बिहरै-सत-गस्सहौ मुद्रा, अग्निशाला मुद्रा, आह्वान मुद्रा, नीव इन् मुद्रा, बाह्य बंध मुद्रा, बाण मुद्रा, न्यारै सकु इन् मुद्रा, वज्र कश्यप मुद्रा-1, जु कौ इन् मुद्रा।

एपेन्डिक्स– पाश मुद्रा, उपाय पारमिता मुद्रा, वज्र माला मुद्रा, रूप मुद्रा, सहस्र भुजा अवलोकितेश्वर मुद्रा, पाद्यम् मुद्रा।

एनेमिया (पांडुरोग)– बू मौ इन् मुद्रा, चौ बुत्सु फु इन् मुद्रा, फुत्सु कु यौ इन् मुद्रा, घण्टा वदना मुद्रा, हकु शौ इन् मुद्रा, जु निकुशि जिशिन् इन् मुद्रा।

कब्ज (Constipation) – त्रैलोक्यविजय मुद्रा, तोर्म मुद्रा, चकषुर मुद्रा, चौनेन् जु इन् मुद्रा, धर्म प्रवर्त्तन मुद्रा, उपकेशिनी मुद्रा, विद्या मुद्रा।

कमजोरी– पेंग् रम् प्वेंग मुद्रा, बुप्पत्सु इन् मुद्रा, संकै से शौ इन् मुद्रा, धूप मुद्रा, न्यारै शिन् इन् मुद्रा, पोथी मुद्रा, स्थिराबोधि मुद्रा, उपकेशिनी मुद्रा।

कफ– वज्रमुष्टि मुद्रा, वज्र श्री मुद्रा, विद्या मुद्रा।

कीडनी (गुर्दे) सम्बन्धी समस्याएँ (कीडनी में सूजन, गुर्दे का काम न करना (Renal Failure) हाइड्रोनेफ्रोसिस (मूत्र अधिक इकट्ठा होना) कीडनी का सिकुड़ना-बढ़ना)– भूमिस्पर्श मुद्रा, धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा, श्री वत्स्य मुद्रा, सर्वतथागतेभ्यो मुद्रा, सै जै इन् मुद्रा।

कुष्ठ रोग– विकसित पद्म मुद्रा, अन्जन् इन् मुद्रा, बुद्धालोचनी मुद्रा, रूप मुद्रा, सहस्र भुजा अवलोकितेश्वर मुद्रा, सेमुइ इन् मुद्रा, पूण मुद्रा।

कान की समस्याएँ (कर्णनाद, कान में दर्द, बहरापन, कम सुनना, कान में पीड़ा आदि)– व्याख्यान मुद्रा, हयग्रीवा मुद्रा, नैवेद्य मुद्रा, तोर्म मुद्रा, अचल अग्नि मुद्रा, चौ कोंगौ रेंजे इन् मुद्रा, होरनो इन् मुद्रा, मु नो शौ शु गौ इन् मुद्रा, सै जै इन् मुद्रा, तथागत दंष्ट्र मुद्रा।

कमर की तकलीफे (कमर दर्द, कमर के क्षेत्र में जकड़न, सायटिका, मनके का स्थान च्युत होना (Slipdisc)– धर्मचक्रप्रवर्त्तन मुद्रा, सुवर्ण चक्र मुद्रा, न्यारै सकु इन् मुद्रा, स इन् मुद्रा, श्री वत्स्य मुद्रा, भूमिस्पर्श मुद्रा।

कैन्सर– पुष्पमाला मुद्रा, सर्वतथागतेभ्यो मुद्रा, ज्ञानअवलोकिते मुद्रा, पाद्यम् मुद्रा, पुष्पे मुद्रा, शब्द मुद्रा, बु बोसत्सु इन् मुद्रा, हाय कौ इन् मुद्रा।

कॉलेस्ट्रॉल बढ़ना– व्याख्यान मुद्रा, बु जौ इन् मुद्रा, चित्त गुह्य मुद्रा, धारणी अवलोकितेश्वर मुद्रा, धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा, होनजोन बु जौ नो इन् मुद्रा, होरनो इन् मुद्रा, न्यारै सकु इन् मुद्रा।

कोमा– मिहरितगस्सहौ मुद्रा, वितर्क मुद्रा, क्षेपण मुद्रा, अभिद बुत्सु सैप्पौ इन् मुद्रा-4, सहस्रभुजा अवलोकितेश्वर मुद्रा, सेगन् सेमुइ इन् मुद्रा, बू मौ इन् मुद्रा, गे इन् मुद्रा, तथागत दंष्ट्र मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा।

खाँसी– त्रिशरणा मुद्रा, ज्ञान मुद्रा, किम्यौ-गस्सहौ मुद्रा, न्यारै केन् इन् मुद्रा, सेमुइ इन् मुद्रा, अग्रज मुद्रा, अक्क इन् मुद्रा, बाह्य बंध मुद्रा, न्यारै सकु इन् मुद्रा।

खुजली– अग्निचक्र शमन मुद्रा (2), ओंग्यौ इन् मुद्रा, रेंजे केन् इन् मुद्रा, अक्क इन् मुद्रा, हकु शौ इन् मुद्रा, हाय कौ इन् मुद्रा, पूण मुद्रा।

गर्दन की समस्या (Cervical Spondylitis)– चक्र मुद्रा, चि केन् इन् मुद्रा, कोंगो गस्सहौ मुद्रा, नैबकु केन् इन् मुद्रा, मु नो शु गौ इन् मुद्रा, पोथी मुद्रा, वैश्रवण मुद्रा।

गेंस्ट्रोएन्ट्राइटिस (Dehydration)– जुनि कुशि जि शिन् इन् मुद्रा, नन् कन् निन् इन् मुद्रा, स इन् मुद्रा, वज्र माला मुद्रा, पूण मुद्रा।

गाउट (वात रोग)– नैवेद्य मुद्रा, रेन् रेंजे इन् मुद्रा, जु कौ इन् मुद्रा, बाह्य बंध मुद्रा, बाण मुद्रा, व्याख्यान मुद्रा, पुष्पमाला मुद्रा।

गर्भाशय सम्बन्धी समस्याएँ (प्रजनन समस्या, बांझपन, मासिक स्राव की अनियमितता, पेडु में दर्द, सूजन, गर्भाशय में गांठ (ट्यूमर), ल्युकेरिया (प्रदर रोग), गर्भस्राव (गर्भपात) आदि।)– भूमिस्पर्श मुद्रा, पेंग्लिला मुद्रा, पेंग्रम् प्वेंग मुद्रा, ज्ञान अवलोकिते मुद्रा, गंध मुद्रा-2, नन् कन् निन् इन् मुद्रा, पूण मुद्रा, वायु मुद्रा।

गले की समस्याएँ (गले में दर्द, गला खराब होना, टांसिलाइटिस)– व्याख्यान मुद्रा, अश्वरत्न मुद्रा, कै शिन् इन् मुद्रा, महा आकाश गर्भ मुद्रा, रागराज मुद्रा, महाआकाश गर्भ मुद्रा, धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा।

गठिया– हयग्रीवा मुद्रा, जह् मुद्रा, रागराज मुद्रा, गो सन् जे मुद्रा, सुवर्ण चक्र मुद्रा, धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा, भूमिस्पर्श मुद्रा।

घुटनों की समस्या– अर्घम् मुद्रा, पुष्पमाला मुद्रा, अंकुश मुद्रा, बु बोसत्सु इन मुद्रा, नन् कन् निन् इन् मुद्रा, पोथी मुद्रा, रत्न मुद्रा, उपकेशिनी मुद्रा।

घबराहट– सूत्र मुद्रा, महा आकाश गर्भ मुद्रा, वरकाय मुद्रा, अग्नि ज्वाला मुद्रा।

चर्म रोग– अंजलि मुद्रा, चक्रवर्ती मुद्रा, गगनगंज मुद्रा, कोंगौ केन् इन् मुद्रा, मुशो फुशि इन् मुद्रा, न्यारै शिन् इन् मुद्रा, स इन् मुद्रा, शंख मुद्रा।

चक्कर आना– अन् आय इन् मुद्रा, अनुचित्त मुद्रा, लोचन मुद्रा, मु नो शौ शु गौ इन् मुद्रा, शै कौ इन् मुद्रा, तथागत दंष्ट्र मुद्रा, वैश्रवण मुद्रा।

छाती में दर्द– पेंग् तुक्कर किरिय मुद्रा, पुष्पे मुद्रा, अग्निज्वाला मुद्रा, पुष्पमाला मुद्रा, शै कौ इन् मुद्रा, तेम्बोरिन इन् मुद्रा।

जलोदर– क्षेपण मुद्रा, अजण्ट टेम्बोरिन् इन् मुद्रा, बुद्धालोचनी मुद्रा, नन् कन् निन् इन् मुद्रा, तेम्बौरिन् इन् मुद्रा, वायु मुद्रा।

जबड़े में दर्द– महा आकाश गर्भ मुद्रा, वरकाय समय मुद्रा, अग्नि ज्वाला मुद्रा, भूमिस्पर्श मुद्रा, गो सन् जे मुद्रा।

जड़बुद्धि (जड़ता)— खड्ग मुद्रा, लोचन मुद्रा, मु नो शौ शु गौ इन् मुद्रा, रत्न मुद्रा-1, शै कौ इन् मुद्रा, तथागत दंष्ट्र मुद्रा, विद्या मुद्रा।

टी.बी.— के बोसत्सु इन् मुद्रा, महाज्ञान खड्ग मुद्रा, तेम्बौरिन् इन् मुद्रा, वरकाय समय मुद्रा।

ठंड के साथ बुखार— अनुचित्त मुद्रा, रत्नमुद्रा-1, रेन् रेंजे इन् मुद्रा, शंख मुद्रा, जेन् इन् मुद्रा।

टाइफाइड— अग्निचक्र शमन मुद्रा-1, गे बकु गोकौ मुद्रा, रत्न मुद्रा-1, विद्या मुद्रा।

टॉन्सिलाइटिस— अग्नि ज्वाला मुद्रा, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-2।

डायबीटिज— अंजलि मुद्रा, चक्रवर्ती मुद्रा, गगनगंज मुद्रा, कौतकु मुद्रा, रत्न मुद्रा-1, रेन् रेंजे इन् मुद्रा, जेन् इन् मुद्रा।

डायरिया (उल्टी-दस्त लगना)— नैवेद्य मुद्रा, चिन्तामणि मुद्रा, कौतकु मुद्रा, महा आकाश गर्भ मुद्रा, तथागत वचन मुद्रा, जेन् इन् मुद्रा।

डीहाइड्रेशन (पानी की कमी)— किम् बेइ इन् मुद्रा, कौतकु मुद्रा, शंख मुद्रा, तथागत वचन मुद्रा, तेम्बौरिन् इन् मुद्रा, वायु मुद्रा।

तुतलाना— अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-2, के बोसत्सु इन् मुद्रा, किम् बेइ इन् मुद्रा, वरकाय समय मुद्रा।

थकान— बाम् मुद्रा, कौतकु मुद्रा, रेन् रेंजे इन् मुद्रा, शंख मुद्रा, वायु मुद्रा, विकसित पद्म मुद्रा, पुष्पमाला मुद्रा।

थायरॉइड— वज्रगंधे मुद्रा, सूत्र मुद्रा, सन् कौ छौ इन् मुद्रा, धृतराष्ट्र मुद्रा, के बोसत्सु इन् मुद्रा।

दमा— वज्रदर्शे मुद्रा, वज्रवीने मुद्रा, पुष्पे मुद्रा, अभिषेक मुद्रा, अन्जन् इन् मुद्रा, हौर्यूजि टैम्बौरिन् इन् मुद्रा, दै कै इन् मुद्रा, महा ज्ञान खड्ग मुद्रा, तेम्बौरिन् इन् मुद्रा।

दाद (Ringworms)— वज्रांजलि मुद्रा, बकु जौ इन् मुद्रा, चिंतामणि मुद्रा, धृतराष्ट्र मुद्रा, किम्बेइ इन् मुद्रा, तेम्बौरिन् इन् मुद्रा, वायु मुद्रा।

दुर्बलता– अर्घम मुद्रा, विद्या मुद्रा, घण्टा वदना मुद्रा, धूप मुद्रा।

न्यूमोनिया– अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-5, बसर उन् कोंगौ इन् मुद्रा, बुद्धाश्रमण मुद्रा, चि केन् इन् मुद्रा, किम्यौगस्सहौ मुद्रा, महा ज्ञान खड्ग मुद्रा, रेन् रेंजे इन् मुद्रा, तथागत वचन मुद्रा।

नकसीर– बुप्पत्सु इन् मुद्रा, चक्ररत्न मुद्रा, पेंगतुक्कर किरिय मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, पोथी मुद्रा।

नाक बंद हो जाना– पेंग् तुक्करकिरिय मुद्रा, त्रिशरण मुद्रा, अधिष्ठान मुद्रा, तैजस् बोधि सत्त्व मुद्रा, पद्म मुद्रा, सूत्र मुद्रा।

निम्न रक्त चाप– अभिषेक मुद्रा, अन्जन इन् मुद्रा, ज्ञान अवलोकितेश्वर मुद्रा, चक्ररत्न मुद्रा।

नपुंसकता– आह्वान मुद्रा, अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा-1, कोंगौ रिन् इन् मुद्रा, सौ कौ शु गौ इन् मुद्रा, तथागत कुक्षि मुद्रा।

पोलियो– अन् आय शोशु इन् मुद्रा, कौतकु मुद्रा, मुशोफुशि इन् मुद्रा-2, शंख मुद्रा, सौ कौ शु गौ इन् मुद्रा, वज्र मुष्टि मुद्रा।

पक्षाघात– अन् आय शोशु इन् मुद्रा, कोंगौ गस्सहौ मुद्रा, ओंग्यौ इन् मुद्रा, शब्द मुद्रा, बकु जौ इन् मुद्रा, चौ बुत्सु कु इन् मुद्रा, चौ कोंगौ रेंजे इन् मुद्रा, धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा, जौ रेंजे इन् मुद्रा।

पित्ताशय सम्बन्धी समस्याएँ (पथरी, पित्ताशय क्षेत्र में दर्द, पित्ताशय की नली में गांठ (Billory Tumour) पीलिया)– ध्यान मुद्रा, वज्रस्पर्श मुद्रा, धूप मुद्रा, कौतकु मुद्रा, कोंगौ रिन् इन् मुद्रा, मुशोफशि इन् मुद्रा, सन् को इन् मुद्रा-2, शंख मुद्रा, तथागत वचन मुद्रा।

प्लीहा (Spleen) सम्बन्धी रोग (प्लीहा का बढ़ना (Splenomegaly), दूषित एवं संक्रमित रक्त, ठंड के साथ बुखार, थकान, सुस्ती, कमजोरी, शक की बीमारी)– बुत्सुबुसम्मय इन् मुद्रा।

पाचन समस्या– चक्र रत्न मुद्रा, जौ रेंजे इन् मुद्रा, कवच मुद्रा, कौतकु मुद्रा, कोंगौ रिन् इन् मुद्रा, सन् को इन् मुद्रा-2।

पाइल्स (मस्सा)– बसर उन् कोंगौ इन् मुद्रा, अचल अग्नि मुद्रा, सौ कौ शु गौ इन् मुद्रा।

पैरों की तकलीफें (पैरों में दर्द, ऐंठन, हाथ-पैर का पतला पड़ना, सुन्नापन आदि)– धर्मचक्रप्रवर्त्तन मुद्रा, सुवर्ण चक्र मुद्रा, सर्वधर्मा मुद्रा, सौ कौ शु गौ इन् मुद्रा।

पीठ की समस्याएँ (रीढ की हड्डी में तकलीफ (Spine Problem) झुकी हुई पीठ आदि)– काजि कौ सुइ इन् मुद्रा, कौतकु मुद्रा, सीमाबन्ध मुद्रा।

फीट (मिरगी)– ज्ञान मुद्रा, कर्म आकाश गर्भ मुद्रा, नैबकु केन् इन् मुद्रा, बोन् जिक्रि इन् मुद्रा, चकषुर मुद्रा, लोचन मुद्रा।

फेफड़ों की समस्याएँ (ब्रांकाइटिस, अस्थमा, न्यूमोनिया)– रत्नघट मुद्रा, वज्र मुद्रा-1 रत्नप्रभा आकाश गर्भ मुद्रा, कवच मुद्रा, लोचन मुद्रा, सौ कौ शु गौ इन् मुद्रा, वर काय समय मुद्रा।

फोड़े-फुन्सी– वज्र मुरजे मुद्रा, सर्व धर्मः मुद्रा, करन मुद्रा, रत्नघट मुद्रा, रत्नप्रभा आकाशगर्भ मुद्रा, इस्सइ हौ ब्यो दौ कै गो मुद्रा।

बवासीर– गंध मुद्रा-2, फु कु यौ इन् मुद्रा, न्यारै शिन् इन् मुद्रा, सीमा बन्ध मुद्रा, सर्वधर्म मुद्रा, अधर्म मुद्रा।

बांझपन– बुद्धाश्रमण मुद्रा, गेबकुकेन् इन् मुद्रा, किचिजौ इन् मुद्रा, कोंगौ केन् इन् मुद्रा, सन् कौ छौ इन् मुद्रा, सीमाबन्ध मुद्रा, उपकेशिनी मुद्रा।

ब्लडप्रेशर– अग्निचक्र शमन मुद्रा, हौर्यूजिरटेम्बौरिन् इन् मुद्रा, रत्नकलश मुद्रा, सन् को इन् मुद्रा-2, कवच मुद्रा, शंख मुद्रा।

बिस्तर गिला करना (नींद में पेशाब)– भूतडामर मुद्रा, कोंगौ रिन् इन् मुद्रा, तथागत कुक्षि मुद्रा, घण्टा वदना मुद्रा, वज्र श्री मुद्रा, सीमाबन्ध मुद्रा।

बालों की समस्याएँ (बाल झड़ना, बालों का सफेद होना, बालों का रूखापन आदि)– अभय मुद्रा, कयेन शौ इन् मुद्रा, मु नो शौ शू गौ इन् मुद्रा, न्यारैशिन् इन् मुद्रा, सकु इन् मुद्रा, शै कौ इन् मुद्रा, सीमाबन्ध मुद्रा, तेजस् बोधि सत्त्व मुद्रा।

मूत्राशय सम्बन्धी विकार (मूत्र त्याग में अवरोध, मूत्र मार्ग में संक्रमण (Infection), मूत्राशय में पथरी या गांठ, मूत्राशय का बाहर आना (Urinary Bladder prolopse)– श्री वत्स्य मुद्रा, काजि कौ सुइ इन् मुद्रा, कोंगौ रिन् इन् मुद्रा, तथागत कुक्षि मुद्रा।

मस्क्युलर डीस्ट्रोफी (स्नायुतंत्र की बढ़ती निष्क्रियता)– कयेन शौ इन् मुद्रा, रत्नकलश मुद्रा, रै इन् मुद्रा, सकु इन् मुद्रा, शै कौ इन् मुद्रा, तथागत कुक्षि मुद्रा।

माइग्रेन– वितर्क मुद्रा, ज्ञानश्री मुद्रा, महाकाल मुद्रा, मु नौ शौ शु गौ इन् मुद्रा, मुशो फुशि इन् मुद्रा, रत्नकलश मुद्रा, सकु इन् मुद्रा, शै कौ इन् मुद्रा।

मस्तिष्क समस्याएँ (मस्तिष्क कैन्सर, सिरदर्द, कोमा, ब्रेन ट्युमर, मस्तिष्क कैन्सर आदि)– अभय मुद्रा, समन्तबुद्धनम् मुद्रा, वितर्क मुद्रा, बाम् मुद्रा, पुष्पे मुद्रा, बोन् जिकि इन् मुद्रा, दै कै इन् मुद्रा, धूप मुद्रा, फु कौ इन् मुद्रा, फु कु यौ इन् मुद्रा।

मासिक धर्म सम्बन्धी समस्याएँ (मासिक अनियमितता, दर्द, अधिक नासिक स्राव आदि)– वज्रबंध मुद्रा, वज्रांजली मुद्रा, भूतडामर मुद्रा, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-4, महाकाल मुद्रा।

मल-मूत्र सम्बन्धी समस्याएँ– भूमिस्पर्श, फु कौ इन् मुद्रा, महाकाल मुद्रा, रै इन् मुद्रा, भूतडामर मुद्रा।

यकृत (Liver) की अस्वस्थता (यकृत में संक्रमण (Hepatitis) यकृत का बढ़ना (Hepatomegaly) यकृत में सूजन, यकृत में पित्त (Bile) उल्टी-मिचली, यकृत में गांठ (Liver tumovr) यकृत का काम न करना (Liver failure)– ध्यान मुद्रा, पेंग्-पेर्द् लोक मुद्रा, वज्र मुरजे मुद्रा।

रक्त विकार (रक्त कैन्सर, रक्त में आवश्यक तत्त्वों की कमी आदि) पेंग्-खब्फवक्कील मुद्रा।

रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास– गेबकु केन इन् मुद्रा, ध्यान मुद्रा।

लकवा– बुप्पत्सु इन् मुद्रा, ईश्वर मुद्रा, कर्मआकाश गर्भ मुद्रा, ज्ञानश्री मुद्रा, जौ फ्युदौ इन् मुद्रा, महाकाल मुद्रा, मुशो फुशि इन् मुद्रा-1, त्रिशूल मुद्रा।

वजन बढ़ना– गंधर्व राज मुद्रा, गेबकु केन इन् मुद्रा, कन्शुकुन्देन् इन् मुद्रा, किचिजौ इन् मुद्रा।

स्नायुतंत्र की समस्या (स्नायुतंत्र में रूकावट, स्नायु में खिंचाव)– अभय मुद्रा, अश्वरत्न मुद्रा, वज्र मुद्रा-1, बाह्य बंध मुद्रा, ज्ञान मुद्रा, पोथी मुद्रा, वैश्रवण मुद्रा।

सर्दी, सिरदर्द– वज्रस्पर्शे मुद्रा, सूत्र मुद्रा, अभय मुद्रा, रत्नकलश मुद्रा, होह् मुद्रा, लोचन मुद्रा, नैवेद्य मुद्रा।

सायनस– सूत्र मुद्रा, ज्ञान श्री मुद्रा, महाकाल मुद्रा, न्यारै सकु इन् मुद्रा, त्रिशरणा मुद्रा, अचल अग्नि मुद्रा।

सीने में दर्द– गणधारन् टेम्बौरिन् इन् मुद्रा, हेमन्त मुद्रा, कटक मुद्रा, मुशो फुशि इन् मुद्रा-1, ध्यान मुद्रा, व्याख्यान मुद्रा।

सरवाईकल स्पोन्डिलाइटिस– गणधारन् टैम्बौरिन् इन् मुद्रा, गौ बुकु इन् मुद्रा, कटक मुद्रा, रै इन् मुद्रा, सकु इन् मुद्रा, अक्क इन् मुद्रा।

स्मरण शक्ति की समस्या (जल्दी विस्मृत करना, याद ना होना, बौद्धिक, दुर्बलता आदि)– अभय मुद्रा, वज्र मुद्रा-1, वज्र आकाशगर्भ मुद्रा।

श्वसन तंत्र की समस्या (सांस फूलना, बेचैनी घबराहट, दमा, श्वास लेने में तकलीफ आदि)– वज्रवीने मुद्रा, होह् मुद्रा।

स्वर यंत्र की समस्या (आवाज का दबना, मोटा होना)– अश्वरत्न मुद्रा।

हृदय सम्बन्धी रोग (सदमा (shock), cardiac fuilure, Disorders of Heart values हार्ट अटैक Heart infections Disorders)– ध्यान मुद्रा, पेंग्लिला मुद्रा, वज्र मुद्रा-1, होह् मुद्रा।

मानसिक उपचार में प्रभावी मुद्राएँ

क्रोध, पागलपन, अनियंत्रण, अहंकार, असंतुलन, अकेलापन– भूमिस्पर्श मुद्रा, धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा, पेंग्त वैनेत्र मुद्रा, सुवर्णचक्र मुद्रा वज्रबंध

मुद्रा, सर्वतथागतेभ्यो मुद्रा, अधर्म मुद्रा, गंध मुद्रा-2, पाद्यम् मुद्रा, तोर्म मुद्रा, अग्निचक्र शमन मुद्रा-1, अग्निशाला मुद्रा, अभिद बुत्सुसेप्पौ इन् मुद्रा-5, अन् आयइन् मुद्रा, अन् आय शोशु इन् मुद्रा, अंजलि मुद्रा, चक्रवर्ती मुद्रा, गगनगंज मुद्रा, गंधर्वराज मुद्रा, हयग्रीवा मुद्रा, कन्शुकुन्देन् इन् मुद्रा, कोंगौ केन् इन् मुद्रा, पुष्पमाला मुद्रा, रत्नघट मुद्रा, रत्नप्रभा आकाशगर्भ मुद्रा, अंकुश मुद्रा, बुबोसत्सु इन् मुद्रा, दै ये तो नो इन् मुद्रा, फुन्नु केन् इन् मुद्रा, गे इन् मुद्रा, घण्टा वदना मुद्रा, जौ फ्युदौ इन् मुद्रा कौ तकु मुद्रा, नन् कन् निन् इन् मुद्रा, रेन् रेंजे इन् मुद्रा, स इन् मुद्रा, शंख मुद्रा-2, सीमा बन्ध मुद्रा, स्थिराबोधि मुद्रा, उपकेशिनी मुद्रा, उष्णीष मुद्रा, वज्रमुष्टि मुद्रा-1, वज्र श्री मुद्रा।

नशे की आदत, भावात्मक अस्थिरता (Over confidence), तृष्णा, अविश्वास– भूमिस्पर्श मुद्रा, धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा, पेंग्-रम्-प्वेंग मुद्रा, पेंग्-पेर्द्लोक मुद्रा, वज्रबंध मुद्रा, ज्ञानअवलोकिते मुद्रा, त्रैलोक्यविजय मुद्रा, वज्रांजलि मुद्रा, भूतडामर मुद्रा, क्षेपण मुद्रा, विकसित पद्म मुद्रा, अग्निचक्र शमन मुद्रा-2, आह्वान मुद्रा, आजण्ट टेम्बोरिन इन् मुद्रा, अभिद-बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा, बसर उन् कोंगौ इन् मुद्रा, बुद्धालोचनी मुद्रा, बुद्धाश्रमण मुद्रा, बुप्पत्सु इन मुद्रा, गंधर्वराज मुद्रा, कन्शुकुन्देन् इन् मुद्रा, किचिजौइन् मुद्रा, ओंग्यौ इन् मुद्रा, रत्नप्रभाआकाशगर्भ मुद्रा, रेंजे केन् इन् मुद्रा, अचल मुद्रा, अनुज मुद्रा, बाण मुद्रा, बू मौ इन् मुद्रा, चिंतामणि मुद्रा, चौजइ इन् मुद्रा, धृतराष्ट्र मुद्रा, जुनि कुशि जि शिन् इन् मुद्रा, कोंगौ रिन् इन् मुद्रा, महाकाल मुद्रा, पूण मुद्रा, रै इन् मुद्रा, सै जे इन् मुद्रा, सौ कौ शुगौ इन् मुद्रा।

एकाग्रता की कमी, अखुशहाल जीवन, निरर्थक चिन्ता, लालच, प्यार और वासना में भ्रम, स्वाभिमान की कमी– वज्रमाला मुद्रा, जेन् इन् मुद्रा, ध्यान मुद्रा, पेंग्फ्रतब्रेखनन् मुद्रा, पेंग् पलेलै मुद्रा, पेंग्-सोंखेम् मुद्रा, पेंग्-पेर्द्लोक मुद्रा, व्रजमुरजे मुद्रा, पुष्पमाला मुद्रा, त्रैलोक्यविजय मुद्रा, वितर्क मुद्रा, भूतडामर मुद्रा, धूप मुद्रा, करन मुद्रा, विकसित पद्म मुद्रा, अभिषेक मुद्रा, अधिष्ठान मुद्रा, अग्निचक्र शमन मुद्रा-1, अग्निचक्र शमनमुद्रा-2, अजण्ट टेम्बोरिन इन् मुद्रा, अन् आयइन् मुद्रा, अंजलि मुद्रा, अनुचित मुद्रा, अन्जन् इन् मुद्रा, बसरउन् कोंगौ इन मुद्रा, बुद्धालोचनी मुद्रा, बुद्धाश्रमण मुद्रा, चक्र मुद्रा,

चक्रवर्ती मुद्रा, गगनगंज मुद्रा, गेबकु केन इन् मुद्रा, हयग्रीवा मुद्रा, हौर्यूजि टेम्बोरिन् इन् मुद्रा, रूप मुद्रा, धर्म प्रवर्त्तन मुद्रा, इस्सइ हौ ब्यो दौ कै गो मुद्रा, महाकर्म मुद्रा, पाश मुद्रा।

गाली देना, चिल्लाना, बेहोशी, अनुत्साह, निष्ठुरता, आत्मसम्मान की कमी, प्रेम-स्नेह की कमी– ध्यान मुद्रा, पेंग् लिला मुद्रा, पेंग्– खक्ष्वक्कलि मुद्रा, अश्वरत्न मुद्रा, वज्रदर्शे मुद्रा, तथागत वचन मुद्रा, तैम्बौरिन् इन् मुद्रा, वज्र कश्यप मुद्रा-1, वरकाय समय मुद्रा, बिहररैसत-गस्सहौ मुद्रा, वज्र मुद्रा-1, होह् मुद्रा, नैवेद्य मुद्रा, पुष्पे मुद्रा, अभिषेक मुद्रा, अग्नि ज्वाला मुद्रा, अग्निशाला मुद्रा, आह्वान मुद्रा, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-2, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-5, अजन् इन् मुद्रा, गणधारन् टेम्बौरिन् इन् मुद्रा, हेमन्त मुद्रा हौर्यूजि टेम्बौरिन् इन् मुद्रा, ईश्वर मुद्रा, कटक मुद्रा, नीव इन् मुद्रा, पुष्पमाला मुद्रा, रत्नघट मुद्रा, चित्तगुह्य मुद्रा, चौनेने जु इन् मुद्रा, धारणी अवलोकितेश्वर मुद्रा, होनजोन बु जौ नो इन् मुद्रा, होरनो इन् मुद्रा, कवच मुद्रा, रेन् रेंजे इन् मुद्रा।

व्यवहार अकुशल भावनाओं में रुकावट, आन्तरिक चिन्ता, अनुशासनहीनता, आत्म ग्लानि, घबराहट, भाषा सम्बन्धी समस्या– व्याख्यान मुद्रा, पेंग् तुक्करकिरिय मुद्रा, वज्रगंधे मुद्रा, हयग्रीवा मुद्रा, पुष्पमाला मुद्रा, सूत्र मुद्रा, वज्र आकाशगर्भ मुद्रा, नैवेद्य मुद्रा, त्रिशरणा मुद्रा, अग्निज्वाला मुद्रा, अभिद बुत्सु सेप्पो इन् मुद्रा-2, अन् आय शोशु इन् मुद्रा, चक्र मुद्रा, गौबुकु इन् मुद्रा, ज्ञान मुद्रा, कटक मुद्रा, किम्यौगस्सहौ मुद्रा, नैबकु केनइन् मुद्रा, न्यारै केन् इन् मुद्रा, रागराज मुद्रा, सन् कौ छौ इन् मुद्रा, अग्रज मुद्रा, अक्क इन् मुद्रा, बाह्य बंध मुद्रा, गो सन् जे मुद्रा, कै शिन् इन् मुद्रा, के बोसत्सु इन् मुद्रा, किम्बेइ इन् मुद्रा, किम्बेइ इन् मुद्रा, महा आकाश गर्भ मुद्रा, रेंजे बु शु इन् मुद्रा, तथागत कुक्षि मुद्रा, उपाय पारमिता मुद्रा।

अवसाद, अधीरता अध्यात्मनिरपेक्ष, स्मृति समस्या, मानसिक विकार, निर्णय की अक्षमता पागलपन– पोथी मुद्रा, अभय मुद्रा, भूमिस्पर्श मुद्रा, पेंग्-रम्-प्वेंग मुद्रा, वज्ररास्ये मुद्रा, रत्नवाहन मुद्रा, रत्नवाहन मुद्रा मिहरितगस्सहौ मुद्रा, ज्ञानअवलोकिते मुद्रा, वज्र मुद्रा-1, सूत्र मुद्रा, वज्रांजलि मुद्रा, वितर्क मुद्रा, बाम् मुद्रा, क्षेपण मुद्रा, पाद्यम् मुद्रा, तोर्म मुद्रा, त्रिशरणा

मुद्रा, अधिष्ठान मुद्रा, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-4, अभिद बुत्सु सैप्पौ इन् मुद्रा-6, बुप्पत्सु इन् मुद्रा, गणधारन् टैम्बौरिन् इन् मुद्रा, गौ बुकु इन् मुद्रा, ज्ञान मुद्रा, कर्म आकाश गर्भ मुद्रा, सहस्र भुजा अवलोकितेश्वर मुद्रा, अष्टदल पद्म मुद्रा, हकु शौ इन् मुद्रा, ज्ञानश्री मुद्रा, मुशो फुशि इन् मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, वैश्रवण मुद्रा, विद्या मुद्रा।

उन्मत्तता, मृत्युभय, निराशा, आनंद की कमी, अनुत्साह – पेंग् नकवलोक् मुद्रा, पेंग् खब्क्रवक्कलि मुद्रा, चक्ररत्न मुद्रा, वज्रदर्शे मुद्रा, मिहरित गस्सहौ मुद्रा, बाम् मुद्रा, जह् मुद्रा, पुष्पे मुद्रा, अभि बुत्सु सेप्पौ-इन् मुद्रा-1, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-4, अन् आयशोशु इन् मुद्रा, बुप्पत्सु इन् मुद्रा, ईश्वर मुद्रा, कर्म आकाश गर्भ मुद्रा, कोंगोगस्सहौ मुद्रा, ओंग्यौ इन् मुद्रा, संकै सै शौ इन् मुद्रा, सेगन् सेमुइ इन् मुद्रा, शब्द मुद्रा, अग्निचक्र मुद्रा, बुक जौइन् मुद्रा, बोन् जिकि इन् मुद्रा, बु जौ इन् मुद्रा, जौ बुत्सु फु इन् मुद्रा, चौ कोंगौ रेंजे इन् मुद्रा, दै कै इन् मुद्रा, धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा, धूप मुद्रा, फु कौ इन् मुद्रा, फु कु यौ इन् मुद्रा, फुत्सुकु यौ इन् मुद्रा, गे बकु गोकौ मुद्रा, गे कै इन् मुद्रा, जौ रेंजे इन् मुद्रा, कयेन शौ इन् मुद्रा, खड्ग मुद्रा-1, महाज्ञान खड़ग मुद्रा, महाकाल मुद्रा, मु नो शौशु गौ इन् मुद्रा, न्यारै शिन् इन् मुद्रा, रत्नकलश मुद्रा, सकु इन् मुद्रा, शै कौ इन् मुद्रा, तथागत दंष्ट्र मुद्रा, तेजस् बोधिसत्त्व मुद्रा, जु कौ इन् मुद्रा।

आध्यात्मिक उपचार में प्रभावी मुद्राएँ

क्रोध, मान, माया, लोभ की वृत्ति, वाचालता, ईर्ष्या, प्रमाद– भूमि स्पर्श मुद्रा, धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा, सुवर्ण चक्र मुद्रा, वज्रस्पर्शे मुद्रा, सर्वधर्मः मुद्रा, सर्वतथागतेभ्यो मुद्रा, अर्धम मुद्रा, गंध मुद्रा-2, पाद्यम् मुद्रा, तोर्म मुद्रा, अग्निचक्र शमन मुद्रा-1, अग्निशाला मुद्रा, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-5, अन् *आयइन् मुद्रा, अन् आय शोशु इन् मुद्रा, अंजलि मुद्रा, चक्रवर्ती मुद्रा, गगनगंज* मुद्रा, गंधर्व राज मुद्रा, हयग्रीवा मुद्रा, कन्शुकुन्देन् इन् मुद्रा, संकै सौ शौ इन् मुद्रा, अंकुश मुद्रा, बु बोसत्सु इन् मुद्रा, दै ये तो नो इन् मुद्रा, फुन्नु केन् इन् मुद्रा, गे इन् मुद्रा, घण्टा वदना मुद्रा, कौतकु मुद्रा, नन् कन् निन् इन् मुद्रा, रेन् रेंजे इन् मुद्रा, स इन् मुद्रा, शंख मुद्रा-2, सीमा बन्ध मुद्रा, स्थिराबोधि मुद्रा, उपकेशिनी मुद्रा, उष्णीष मुद्रा, वज्र मुष्टि मुद्रा-1, वज्रश्री मुद्रा।

सप्तव्यस की लत, चंचलता, तृष्णा, कामुकता– भूमिस्पर्श मुद्रा, धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा, पेंग् लिला मुद्रा, पेंग्-रम-प्वेंग मुद्रा, पेग्-पेर्दूलोक मुद्रा, वज्ररास्ये मुद्रा, ज्ञान अवलोकिते मुद्रा, त्रैलोक्यविजय मुद्रा, वज्रांजलि मुद्रा, भूतडामर मुद्रा, क्षेपण मुद्रा, विकसित पद्म मुद्रा, अग्निचक्र शमन मुद्रा-2, आह्वान मुद्रा, अजण्ट टेम्बोरिन इन् मुद्रा, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-1, बसरउन् कोंगौ इन् मुद्रा, बुद्धलोचनी मुद्रा, बुद्धाश्रमण मुद्रा, बुप्पत्सु इन् मुद्रा, गंधर्वराज मुद्रा, कन्शुकुन्देन् इन् मुद्रा, किचिजौइन् मुद्रा, कोंगौ केन् इन् मुद्रा, रत्नप्रभाआकाशगर्भ मुद्रा रेंजे केन् इन् मुद्रा, सन् कौ छौ इन् मुद्रा, अचल मुद्रा, अक्क इन् मुद्रा, अनुज मुद्रा, बू मौ इन् मुद्रा चिन्तामणि मुद्रा, चौ जइ इन् मुद्रा, धृतराष्ट्र मुद्रा, हकु शौ इन् मुद्रा, जौ फ्युदौ इन् मुद्रा, जुनि कुशि जि शिन् इन् मुद्रा, किम्बेई इन् मुद्रा, कोंगौ रिन् इन् मुद्रा, महाकाल मुद्रा, पूण मुद्रा, सै जै इन मुद्रा, सौ कौ शु गौ इन् मुद्रा, वायु मुद्रा।

आत्मबल की कमी, एकाग्रता की कमी, शंकालु वृत्ति– वज्र माला मुद्रा, जेन् इन् मुद्रा, ध्यान मुद्रा, पेंग् फ्रतब्रेखनन् मुद्रा, पेंग् पलेलै मुद्रा, पेंग्-सोंखेम् मुद्रा, व्रजमुरजे मुद्रा, वज्रस्पर्शे मुद्रा पुष्पमाला मुद्रा, सर्वधर्मः मुद्रा, त्रैलोक्यविजय मुद्रा, वितर्क मुद्रा, भूतडामर मुद्रा, धूप मुद्रा, करज मुद्रा, विकसित पद्म मुद्रा, अभिषेक मुद्रा, अधिष्ठान मुद्रा, अग्निचक्र शमन मुद्रा-1, अग्निचक्र शमन मुद्रा-2, अजण्ट टेम्बोरिन इन् मुद्रा, अन् आय इन् मुद्रा, अंजलि मुद्रा, अनुचित मुद्रा, अनजन् इन् मुद्रा, बसर इन् कोंगौ इन् मुद्रा, बुद्धालोचनी मुद्रा, बुद्धाश्रमण मुद्रा, चक्र मुद्रा, चक्रवर्ती मुद्रा, गगनगंज मुद्रा, गे बकु केन् इन् मुद्रा, हयग्रीवा मुद्रा, हौर्यूजि टेम्बौरिन् इन् मुद्रा, रूप मुद्रा, धर्मप्रवर्त्तन मुद्रा, जौ रेंजे इन् मुद्रा, महा आकाश गर्भ मुद्रा, महाकर्म मुद्रा, पाश मुद्रा, रेन् रेंजे इन् मुद्रा।

वाणी पर अनियंत्रण, असंवेदनशीलता, करुणाहीन, हिंसक भावना– ध्यान मुद्रा, पेंग् खब्क्रवक्कलि मुद्रा, अश्वरत्न मुद्रा, वज्रदर्शे मुद्रा, बिहररै सतगस्सहौ मुद्रा, वज्र मुद्रा, होह् मुद्रा, नैवेद्य मुद्रा, पुष्पे मुद्रा, अभिषेक मुद्रा, अग्निज्वाला मुद्रा, अग्निशाला मुद्रा, आह्वान मुद्रा, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-2, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-5, अनजन् इन् मुद्रा, गणधारन् टेम्बौरिन् इन्

मुद्रा, हेमन्त मुद्रा, हौर्यूंजि टेम्बौरिन् इन् मुद्रा, ईश्वर मुद्रा, नीव-इन मुद्रा, पुष्पमाला मुद्रा, रत्नघट मुद्रा, रत्नप्रभा आकाश गर्भ मुद्रा, बाण मुद्रा, चित्त गुह्य मुद्रा, चौ नेन् जु इन् मुद्रा, धारणी अवलोकितेश्वर मुद्रा, धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा, होनजोन बु जौ नो इन् मुद्रा, होरनो इन् मुद्रा, कवच मुद्रा, के बोसत्सु इन् मुद्रा, मुशो फुशि इन मुद्रा, तथागत वचन मुद्रा, तैम्बौरिन् इन् मुद्रा, वज्रकश्यप मुद्रा-1, वर काय समय मुद्रा।

अध्यात्मविमुख, आत्मानुशासन की कमी, मान कषाय की प्रबलता– व्याख्यान मुद्रा, पेंग् तुक्करकिरिय मुद्रा, वज्रगन्धे मुद्रा, हयग्रीवा मुद्रा, पुष्पमाला मुद्रा, सूत्र मुद्रा, जह् मुद्रा, नैवेद्य मुद्रा, त्रिशरणा मुद्रा, अग्निज्वाला मुद्रा, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-2, अन् आय शोशु इन् मुद्रा, चक्र मुद्रा, गौबुकु इन् मुद्रा, ज्ञान मुद्रा, किम्यौ गस्सहौ मुद्रा, नैबकु केन् इन् मुद्रा, न्यारै केन् इन् मुद्रा, रागराज मुद्रा, सन् कौ छौ इन् मुद्रा, अग्रज मुद्रा, बाह्य बंध मुद्रा, गौ सन् जे मुद्रा, रै इन् मुद्रा, रेंजे बुशु इन् मुद्रा, तथागत कुक्षि मुद्रा, उपायपारमिता मुद्रा।

ज्ञान का अभिमान, मायाचारी, प्रदर्शन की भावना– अभय मुद्रा, भूमिस्पर्श मुद्रा, पेंग् तवैनेत्र मुद्रा, पेंग्-रम्-प्वेंग मुद्रा, मिहरितगस्सहौ मुद्रा, ज्ञानअवलोकिते मुद्रा, सूत्र मुद्रा, वज्र मुद्रा, वज्रांजलि मुद्रा, वितर्क मुद्रा, क्षेपण मुद्रा, पाद्यम मुद्रा, तोर्म मुद्रा, त्रिशरणा मुद्रा, अधिष्ठान मुद्रा, अभिद बुत्सुसेप्पौ इन मुद्रा-4, बुप्पत्सु इन् मुद्रा, गणधारन् टेम्बौरिन् इन् मुद्रा, गौ बुकु इन् मुद्रा, ज्ञान मुद्रा, कर्मआकाशगर्भ मुद्रा, कोंगौ गस्सहौ मुद्रा, नैबकु केन् इन् मुद्रा, नीव-इन् मुद्रा, न्यारै केन् इन् मुद्रा, रागराज मुद्रा, सहस्र भुजा अवलोकितेश्वर मुद्रा, अष्टदल पद्म मुद्रा, हकु शौ इन् मुद्रा, इस्सई हौ ब्यो दौ कै गौ मुद्रा, ज्ञानश्री मुद्रा, कै शिन् इन् मुद्रा, खड्ग मुद्रा-1, पोथी मुद्रा, रत्नकलश मुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, वैश्रवण मुद्रा, विद्या मुद्रा।

मृत्यु, स्वरमणता की कमी, परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, निन्दनीय कार्यों में उत्साह– पेंग् नकवलोक् मुद्रा, पेंग-खब्क्रवक्कील मुद्रा, चक्ररत्न मुद्रा, वज्रदर्शे मुद्रा, मिहरितगस्सहौ मुद्रा, पुष्पे मुद्रा, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-1, अभिद बुत्सु सेप्पौ इन् मुद्रा-4, अन् आय शोशु इन् मुद्रा, बुप्पत्सु इन् मुद्रा, ईश्वर मुद्रा, कर्मआकाश गर्भ मुद्रा, कोंगौ गस्सहौ मुद्रा, औंग्यौ इन् मुद्रा, संकै सै शौ इन

मुद्रा, सेगन् सेमुइ इन् मुद्रा, शब्द मुद्रा, अग्निचक्र मुद्रा, बकु जौ इन् मुद्रा, बोन् जिकि इन् मुद्रा, बु जौ इन् मुद्रा, चौबुत्सु फु इन् मुद्रा, चौ कोंगौ रेंजे इन् मुद्रा, दै कै इन् मुद्रा, धूप मुद्रा, फु कौ इन् मुद्रा, फु कु यौ इन् मुद्रा, फुत्सु कु यौ इन् मुद्रा, गे बकु गोकौ मुद्रा, गे कै इन् मुद्रा, कयेन शौ इन् मुद्रा, महाज्ञान खड़ग मुद्रा, महाकाल मुद्रा, मु नो शौ शु गौ इन् मुद्रा, न्यारै शिन् इन् मुद्रा, रत्नकलश मुद्रा, सकु इन् मुद्रा, शै कौ इन् मुद्रा, तथागत दंष्ट्र मुद्रा, तेजस बोधिसत्त्व मुद्रा, जु कौ इन् मुद्रा।

प्रस्तुत सूची से यह प्रमाणित हो जाता है कि मुद्रा साधना यह एक संजीवनी औषधि है। इसका उपयोग करने मात्र से मनुष्य के भीतर रहे हुए दोष एवं विकार समाप्त हो जाते हैं। शारीरिक स्वस्थता एवं सुंदरता के साथ-साथ वैचारिक सकारात्मकता, मानसिक शांतता एवं भावनात्मक सुरूपता प्राप्त करने के लिए भी मुद्रा योग अपूर्व साधना है।

उपरोक्त वर्णन के द्वारा व्यक्ति स्वयं अपने नकारात्मक दुर्गुणों को दूर करने का एक लघु प्रयास कर सकता है। इनका नियमित प्रयोग अवश्यमेव लक्ष्य की संसिद्धि में सहायक बनता है तथा शुद्ध, सात्त्विक एवं संतुलित जीवन की प्राप्ति करवाता है।

●

सहायक ग्रन्थ सूची

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
1.	Life and Ritual of Old Siam	Anuman Rajadhon, Phraya	New Haven	1969
2.	Buddhist Iconography	Banerjee, P.	New Delhi	1989
3.	The Tibet Guide	Batchelor Stephen	London	1987
4.	The Cult of Tara : Magic and Ritual in Tibet	Beyer, Stephen	Berkeley	1973
5.	The Indian Buddhist Iconography Mainly Based on the Seadhanamealea and other cognate Tantric Texts of Rituals	Bhattacharyya, Benoytosh	Calcutta	1958
6.	The Heritage of Thai Sculputure	Boisselier Jean	Bangkok	1975
7.	The Sculputre of Thailand	Diskul S. and Griswold A.B.	Newyork	1972
8.	An Encyclopaedia of Buddhist Deities, Demigods Godlings, Saints and Demons : With Sepecial Focus on Iconographic Attributes-2 Vols.	Bunce Fredrick W.	New Delhi	1994
9.	Buddhist Iconography	Chandra Lokesh	New Delhi	1991
10.	Mudras in Japan : Symbolic	Lokesh Chandra and Sharada Rani	New Delhi	1978

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
	Handpostures in Japanese Mantrayana or the Esoteric Buddhism of the Shingon Denomination			
11.	History of Siam prior to the Ayudhya Period, Journal of the Siam Society	Damrong Rajanubhab, H.R.H. prince	Bangkok	1920
12.	Mounuments of the Buddha in Siam	Damrong Rajanubhab, Translator - Sulak Sivaraksa and A.B. Grisworld	Bangkok	1982
13.	Esoteric Mudras of Japan : Mudras of the Garbhadnatu and Vajradhata Mandalas of Homa and Eighteen step tifes, and the Main Buddhas and Bodhisattvas, Gods and Godesses of various Sutras and Tantras	Devi Gauri	Delhi	1999
14.	The Attitudes of the Buddha, Journal of the Siam Society	Frank Furter O.		
15.	The Gods of Northern Buddhism : Their history iconography and progressive Evolution through the Northern Buddhist countries,	Alice Getty	Munshiram Manoharlal Publishers, New Delhi	1978

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
16.	The Iconography of Tibetan Lamaism	Gordon antoinette K.		
17.	The Iconography of the Hindus, Buddhists and Jains	R.s. Gupta, D.B. Tarapore Vala	Sons Icoprivate Ltd., Bombay	1980
18.	The Book of Buddhas	Jansen Eva Rudy	Diever Holland	1993
19.	A History of Wat Phra chetunhon and its Buddha images	Matics K.I.	Bangkok	1979
20.	Oracles and Demons of Tibet : The cult and Iconography of the Tibetan Protective Deities	Nebesky Wojkowitz Rene de	New York	1977
21.	Mustic Art of Ancient Tibet	Olskhak, Blanche C and Gesche Thupten Wangual	Boston and London	1988
22.	Oxford-Duden Pictorial Thai and English Dictionary		Oxford University Press, Oxford	1993
23.	Monuments of Buddha in Siam	Rajanubhab, Prince Damrong	Bangkok	1973
24.	Mudra A Study of Symbolic Gestures in Jopanese Buddhist Sculpture	Saunders Epale	New York	1960
25.	Art in Thailand : A Brief History	Subhadridas Diskul	M.C. Bangkok	1981

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
26.	Translation of Thain Pang (Mudras)	Sutthi, (Phra) Suradej	Bangkok	2000
27.	Iconography of Buddhist			
28.	Iconography of Buddhist and Brahmanical Sculptures. In the Pacca Museum			
29.	Nalini Kanta Bhattasali		Aryan Book International New Delhi	2001
30.	Tara - The supreme Bharatiya	Pushpendra Kumar Goddess	Vidya Prakashan, Varanasi	1992
31.	Buddhis and Lamaism of Tibet Austine waddell		Heritage Publishers, New Delhi	1974
32.	Vajrayana Buddhist in South India,	Centres Bharatiya	Dr. B. Subrahmanyam Kala Prakashan, D	2001
33.	आर्य मंजु श्री कल्प	सं. गणपति शास्त्री,	प्रका. अमर पब्लिकेशन्स, वाराणसी	1920
34.	Mudras in Buddhist and Hindu Practices an Iconographic consideration	F.W. Bunce,	D.K. Printworld, New Delhi	2005

सज्जनमणि ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित साहित्य का संक्षिप्त सूची पत्र

क्र.	नाम	ले./संपा./अनु.	मूल्य
1.	सज्जन जिन वन्दन विधि	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
2.	सज्जन सद्ज्ञान प्रवेशिका	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
3.	सज्जन पूजामृत (पूजा संग्रह)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
4.	सज्जन वंदनामृत (नवपद आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
5.	सज्जन अर्चनामृत (बीसस्थानक तप विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
6.	सज्जन आराधनामृत (नव्वाणु यात्रा विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
7.	सज्जन ज्ञान विधि	साध्वी प्रियदर्शनाश्री	सदुपयोग
		साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
8.	पंच प्रतिक्रमण सूत्र	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
9.	तप से सज्जन बने विचक्षण	साध्वी मणिप्रभाश्री	सदुपयोग
	(चातुर्मासिक पर्व एवं तप आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
10.	मणिमंथन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
11.	सज्जन सद्ज्ञान सुधा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
12.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
13.	सज्जन गीत गुंजन (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
14.	दर्पण विशेषांक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
15.	विधिमार्गप्रपा (सानुवाद)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
16.	जैन विधि-विधानों के तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन का शोध प्रबन्ध सार	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
17.	जैन विधि विधान सम्बन्धी साहित्य का बृहद् इतिहास	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
18.	जैन गृहस्थ के सोलह संस्कारों का तुलनात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00

19.	जैन गृहस्थ के व्रतारोपण सम्बन्धी संस्कारों का प्रासंगिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
20.	जैन मुनि के व्रतारोपण सम्बन्धी विधि-विधानों की त्रैकालिक उपयोगिता, नव्ययुग के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
21.	जैन मुनि की आचार संहिता का सर्वाङ्गीण अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
22.	जैन मुनि की आहार संहिता का समीक्षात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
23.	पदारोहण सम्बन्धी विधियों की मौलिकता, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
24.	आगम अध्ययन की मौलिक विधि का शास्त्रीय अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
25.	तप साधना विधि का प्रासंगिक अनुशीलन, आगमों से अब तक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
26.	प्रायश्चित्त विधि का शास्त्रीय पर्यवेक्षण व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
27.	षडावश्यक की उपादेयता, भौतिक एवं आध्यात्मिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
28.	प्रतिक्रमण, एक रहस्यमयी योग साधना	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
29.	पूजा विधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता, मनोविज्ञान एवं अध्यात्म के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
30.	प्रतिष्ठा विधि का मौलिक विवेचन आधुनिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
31.	मुद्रा योग एक अनुसंधान संस्कृति के आलोक में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
32.	नाट्य मुद्राओं का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00

33.	जैन मुद्रा योग की वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
34.	हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता, चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
35.	बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक परिशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
36.	यौगिक मुद्राएँ, मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
37.	आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
38.	सज्जन तप प्रवेशिका	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
39.	शंका नवि चित्त धरिए	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00

●

विधि संशोधिका का अणु परिचय

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी (D.Lit.)

नाम	:	नारंगी उर्फ निशा
माता-पिता	:	विमलादेवी केसरीचंद छाजेड
जन्म	:	श्रावण वदि अष्टमी, सन् 1971 गढ़ सिवाना
दीक्षा	:	वैशाख सुदी छट्ठ, सन् 1983, गढ़ सिवाना
दीक्षा नाम	:	सौम्यगुणा श्री
दीक्षा गुरु	:	प्रवर्त्तिनी महोदया प. पू. सज्जनमणि श्रीजी म. सा.
शिक्षा गुरु	:	संघरत्ना प. पू. शशिप्रभा श्रीजी म. सा.
अध्ययन	:	जैन दर्शन में आचार्य, विधिमार्गप्रपा ग्रन्थ पर Ph.D. कल्पसूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, नंदीसूत्र आदि आगम कंठस्थ, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी भाषाओं का सम्यक् ज्ञान।
रचित, अनुवादित एवं सम्पादित साहित्य	:	तीर्थंकर चरित्र, सद्ज्ञानसुधा, मणिमंथन, अनुवाद-विधिमार्गप्रपा, पर्युषण प्रवचन, तत्वज्ञान प्रवेशिका, सज्जन गीत गुंजन (भाग : १-२)
विचरण	:	राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, थलीप्रदेश, आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, महाराष्ट्र, मालवा, मेवाड़।
विशिष्टता	:	सौम्य स्वभावी, मितभाषी, कोकिल कंठी, सरस्वती की कृपापात्री, स्वाध्याय निमग्ना, गुरु निश्रारत।
तपाराधना	:	श्रेणीतप, मासक्षमण, चत्तारि अट्ठ दस दोय, ग्यारह, अट्ठाई बीसस्थानक, नवपद ओली, वर्धमान ओली, पखवासा, डेढ़ मासी, दो मासी आदि अनेक तप।

सज्जन पुरुषों के दिव्यआयाम

- ★ भगवान बुद्ध ने किन मुद्राओं की साधना की ?
- ★ मुद्रा प्रयोग के द्वारा रोगोपचार कैसे संभव है ?
- ★ **Depression**, मानसिक तनाव आदि के निवारण में मुद्रा विज्ञान की उपादेयता ?
- ★ भारत के बाहर अन्य देशों में मुद्रा साधना होती है या नहीं ?
- ★ सप्त रत्न, अष्टमंगल, म-म-मडोस आदि मुद्राओं के वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक सुप्रभाव ?
- ★ गर्भधातु-वज्रधातु मण्डल में प्रयुक्त मुद्राओं का वैशिष्टय क्या है ?
- ★ भ. बुद्ध द्वारा आचरित ४० मुद्राएँ किसकी प्रतीक हैं ?

SAJJANMANI GRANTHMALA
Website : www.jainsajjanmani.com,E-mail : vidhiprabha@gmail.com
ISBN 978-81-910801-6-2 (XIX)